सिरिनाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण पुव्वहरेण विमलायरियेण
विरइयं सक्कयछायासमलंकियं

पउमचरियं

(पद्मचरित्रम्)

: छायाकार-संशोधक-संपादकश्च :
मुनि पार्श्वरत्नविजयः

द्वितीय विभागः

: प्रकाशक :
आ. ॐकारसूरी आराधना भवन,
गोपीपुरा, सुरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर ग्रंथावली - ६६

सिरिनाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण पुव्वहरेण विमलायरियेण

विरइयं सक्कयछायासमलंकियं

पउमचरियं

(पद्मचरित्रम्)

द्वितीय विभागः

पूर्व सम्पादकः

डॉ. हर्मन जेकोबी

संशोधकः पुनःसम्पादकश्च

मुनिपुण्यविजयः

छायाकार-संशोधक-संपादकश्च

मुनि पार्श्वरत्नविजयः

: प्रकाशक :

आ. ॐकारसूरी आराधना भवन

आ. ॐकारसूरि ज्ञानमंदिर, गोपीपुरा, सुरत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ का नाम : **पउमचरियं (संस्कृत छाया सह)**

भाग : २

आवृत्ति : **प्रथम सं. २०६८**

प्रकाशक : **आ. ॐकारसूरी आराधना भवन**
गोपीपुरा, सुरत

मूल्य : **३०० रूपये**

प्रत : **५००**

प्राप्तिस्थान :

- **आचार्य श्रीॐकारसूरिज्ञानमंदिर**
आचार्य श्रीॐकारसूरि आराधनाभवन,
सुभाषचोक, गोपीपुरा, सुरत
फोन : ९८२४१५२७२७

- **आचार्य श्रीॐकारसूरि गुरुमंदिर**
वावपथकनी वाडी, दशापोरवाड सोसायटी,
पालडी चार रस्ता, अमदावाद-३८० ००७
फोन : ०७९-२६५८६२९३
E-mail : omkarsuri@rediffmail.com / mehta_sevantilal@yahoo.co.in

- **विजयभद्र चेरिटेबल ट्रस्ट**
पार्श्वभक्तिनगर, नेशनल हाईवे नं. १४,
भीलडीयाजी, जि. बनासकांठा-३८५५३५
फोन : ०२७४४-२३३१२९, २३४१२९

- **सरस्वती पुस्तक भंडार**
हाथीखाना, रतनपोल, अमदावाद-३८० ००१

'आख्यानक मणिकोश' संस्कृत छाया के साथ ४ भाग में आगामी दिनो में प्रकाशित होंगा ।

मुद्रक : **किरीट ग्राफीक्स**
४१६, वृन्दावन शोपींग सेन्टर, रतनपोळ, अमदावाद-१, दूरभाष : ९८९८४९००९१

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रंथ समर्पण...

सिद्धांतदिवाकर,

गीतार्थमूर्धन्य

प.पू. वर्तमान गच्छाधिपति

आ.भ.श्री जयघोषसूरीश्वरजी

म.सा.ना करकमलमां

समर्पित...

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशकीय

पू.आ.भ.श्री अरविंदसूरी म.सा., पू.आ.भ.श्री यशोविजयसूरि म.सा. आदिनी प्रेरणा-मार्गदर्शनपूर्वक आ ग्रंथमाळामां अनेकविध ग्रंथरत्नो प्रगट थई रह्या छे.

'पउमचरियं' ग्रंथना **४ भाग**ना प्रकाशन माटे पू.आ.भ.श्री **मुनिचन्द्रसूरि** म.सा.अे प.पू.मुनिराजश्री **पार्श्वरत्नविजयजी** म.सा.ने प्रेरणा अने मार्गदर्शन आप्युं अने अमारी ग्रंथमाळामां आ महाकाय ग्रंथ प्रगट करवा भलामण करी अे प्रमाणे आ ग्रंथ अमारी संस्था द्वारा प्रकट करता अमो आनंद अनुभवीअे छीअे.

प्रस्तुत ग्रंथ प्रगट करवा माटे पू. मुनिराज श्री**पार्श्वरत्नविजयजी** म.सा. तेमज साध्वीश्री **महायशाश्रीजी**अे आ ग्रंथमां प्रुफ संशोधनादि कार्योमां श्रुतभक्तिथी प्रेराई भारे जहेमत उठावी छे. तेनी अमो भूरी भूरी अनुमोदना करीअे छीअे.

आ साहित्यनो स्वाध्याय करी सहु आत्मकल्याणने वरे अे ज अभिलाषा.

लि.

प्रकाशक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पउमचरियं

भाग-२

ग्रंथ प्रकाशननो संपूर्ण लाभ

रांदेर रोड जैन संघ

अडाजण पाटिया सूरते

ज्ञानद्रव्यमांथी लीधो छे.

अनुमोदना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

'पउमचरिय' प्राकृतभाषानो अनूठो ग्रंथ छे. पउम = पद्म एटले राम. आ रामचरित्र छे. सौथी जुनुं जैनरामायण आ छे. आ ग्रंथनुं सहु पहेला संपादन जर्मन विद्वान हर्मन जेकोबीए करेलुं. ई.स. १९१४मां भावनगरनी आत्मानंद सभाए आनुं प्रकाशन करेलुं.

पुनः संपादन आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजय म.ए कर्युं. शांतिलाल वोराना हिंदी अनुवाद साथे प्राकृत ग्रंथ परिषद द्वारा ई.स. १९६२ अने १९६८मां बे भागमां प्रकाशित थयुं.

आ.भ. नरचन्द्रसूरि म.सा.ना प्रयासथी उपरोक्त ग्रंथनुं पुनर्मुद्रण आ ज संस्थाए ई.स. २००५मां कर्युं छे.

प्राकृत ग्रंथ परिषद प्रकाशित भाग-१मां V. M. Kulkarni लिखित Introduction मां अने Dr. K. R. Chandra ए एमना Ph.D. माटेना महानिबंध A Critical Study of Paumacariyam (रीसर्च ईन्स्टीटयूट ओफ प्राकृत जैनोलोजी एन्ड अहिंसा वैशाली मुझफरपुर बिहार द्वारा प्रकाशित)मां 'पउमचरियं' विशे विगते पोतानी रीते चर्चा करी छे. अमे केटलीक वात मूळ ग्रंथ अने आ बे ग्रंथोना आधारे अहीं करीए छीए.

ग्रंथकारनो समय अने शाखा

सामान्य रीते मोटाभागना ग्रंथकारो पोताना कुल विषे, गुरुपरंपरा विषे अने रचना संवत विषे कशुं लखता नथी होता. सद्भाग्ये पूर्वधर ग्रंथकार श्री विमलसूरिजीए आवी बधी विगतो असंदिग्ध रीते आपी छे. छतां कमनसीबे आधुनिक विद्वानोए एमना समय विषे अने तेओश्री श्वेतांबर शाखाना दिगंबर शाखाना के यापनीय शाखाना होवा विषे भिन्न भिन्न मतो प्रगट कर्या छे.

ग्रंथकारे आपेली विगतो आ प्रमाणे छे.

> ''पंचेव य वाससया दुसमाए तीसवरिससंजुत्ता ।
> वीरे सिद्धिमुवगए तओ निबद्धं इमं चरियं ॥ ११८-१०३ ॥
>
> राहु नामायरिओ ससमयपरसमयगहियसहभावो ।
> विजओ य तस्स सीसो नाइलकुलवंसनंदियरो ॥ ११८-११७ ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीसेण तस्स रइयं, राहवचरियं तु सूरिविमलेण ।
सोऊणं पुव्वगए नारायण-[1]सीरिचरियाइं ॥ ११८-११८ ॥

सुत्ताणुसारसरसं रइयं गाहाहि पायडफुडत्थं ।
विमलेण पउमचरियं संखेवेण निसामेह ॥ १-३१ ॥"

अंते : "इइ नाइलवंसदिणयरराहुसूरिपसीसेण महप्पेण पुव्वहरेण ।
विमलायरिएण विरइयं सम्मत्तं पउमचरियं ॥ ११८ ॥"

'पउमचरियं'नो उल्लेख आ.उद्योतनसूरिजीए ई.स. ७७८मां रचेला कुवलयमाळा ग्रंथमां (पेज ३:११ २७-२९) कर्यो छे. केटलाक विद्वानोनुं मानवुं छे के ई.स. ६७७मां रचायेलुं 'पद्मचरित' प्रस्तुत 'पउमचरिय'नो ज विस्तार छे. एटले पउमचरियं विक्रमना सातमा सैका पहेलाथी ज जाणीतुं बन्युं छे ए निश्चित छे.

ग्रंथकारे आपेली माहिती प्रमाणे नाईलवंशमां सूर्यसमान आचार्य 'राहुसूरि' स्वसमय अने परसमयना विशेषज्ञ हता. तेमना शिष्य नाईलवंशने आनंद करावनार 'विजय' थया. तेमना शिष्य पूर्वधर आ. विमलसूरिए 'पूर्व'मां रहेला नारायण (वासुदेव) अने बळदेवना चरित्र सांभळीने वीरप्रभुना निर्वाणने ५३० [2]वर्ष पसार थया त्यारे संक्षेपमां 'पउमचरिय' रच्युं छे.

उद्योतनसूरिए करेला उल्लेख 'बुहयणसहस्सदइयं हरिवंसुप्पत्तिकारयं पढमं ।' मुजब विमलसूरिए हरिवंसनुं वर्णन करतुं कोई काव्य रच्युं होय तेम जणाय छे. जो के अत्यारे ते मळतुं नथी.

ग्रंथकार श्वेतांबर शाखाना ज होवाना अनेक स्पष्ट प्रमाणो ग्रंथमां उपलब्ध थाय छे. कोइ कोइ बाबतो दिगंबर संमत पण आमां जोवा मले छे एनुं कारण एवुं पण होय के कोइए संप्रदायव्यामोहथी ग्रंथमां फेरफार कर्यो होय. आवुं अनुमान करवानुं कारण ए छे के–

पउमचरिय २०:९५मां पूर्वमुद्रित संस्करणमां आ प्रमाणे पाठ छे.

अट्ठारस तेर अट्ठ य सयाणि सेसेसु पञ्चधणुवीसं ।
पडिहायन्तो कमसो उस्सेहो कुलकराण इमो ॥ २०-९५ ॥

जेसलमेरनी प्राचीन ताडपत्रीय प्रतनो पाठ पउमचरियं भाग-२ परिशिष्ट ७ 'पाठान्तराणि' पृ. ८४मां आ प्रमाणे छे.

नव अट्ठ सत्त सड्ढा छच्छच्च धणू अद्धछट्ठा य ।
पंच सया पणुवीसा उस्सेहो कुलकराण इमो ॥

पूर्वसंस्करणना पाठ मुजब कुलकरोनी ऊंचाई क्रमशः १८०० १३०० ८०० धनुष्य पछी क्रमशः २५-२५ धनुष घटाडवी एवो अर्थ अभिप्रेत छे. आवो सुधारो कागळनी प्रतोमां दिगंबरग्रंथ तिलोयपन्नत्ति ४२१:४९५ प्रमाणे

१. केटलाक विद्वानोए 'सिरि'नो अर्थ बळदेव करवाना बदले 'श्री' कर्यो छे.

२. एक प्रतना पाठ प्रमाणे ५२० वर्ष अने पं.कल्याणविजयजी गणिना मते 'तिसयवरिससंजुत्ता' पाठ होवो जोईए. ए प्रमाणे गणतां ई.स. २७४ पउमचरियंनो रचना संवत आवे. मुनि मौर्यरत्नविजयजीना अनुमान मुजब जो दूसमाए तिवरिससंजुत्ता पाठ होय तो वी.नि.सं. ५०३मां रचना थई एवो अर्थ थाय.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुधार्यो छे तेवुं स्पष्ट जणाय छे. ज्यारे जेसलमेरनी ताडपत्रीय प्रतनो पाठ प्राचीन अने स्वीकारवा योग्य होवा छतां ए प्रत मळी त्यारे ग्रंथनुं मुद्रण शरू थयुं होवाथी एना पाठो ७मा परिशिष्टमां अपाया छे. जे प्रतना पाठ मुजब कुलकरोनी क्रमशः ऊंचाई ९०० ८०० ७०० ६५० ६०० ५५० ५२५ धनुष्य होवानुं जणाय छे. अने आ प्रमाण आवश्यक निर्युक्ति गाथा[१] १५६ प्रमाणेनुं छे.

आथी स्पष्ट समजाय छे के पाछळथी कागळनी प्रतो उपर प्रतिलेखन करती वखते दिगंबर संप्रदायना अभिनिवेशथी कोईके मनस्वी फेरफारो कर्या छे. आ कारणे प्रस्तुत ग्रंथमां केटलीक वातो दिगंबरसंप्रदायानुसारी जोवा मळे छे.

श्री कुलकर्णी अने चंद्रए नोंधेली केटलीक विगतो

१. पउमच. २:२८-२९मां भ. महावीरप्रभुना लग्ननो उल्लेख नथी.

२ पउमच. २:२२ मां भ. महावीरना देवानंदानी कुक्षीमां च्यवननी वात नथी.

(जो के ग्रंथकार अतिसंक्षेपमां वर्णन करता होय त्यारे अमुक घटनानो उल्लेख छोडी दे एनो अर्थ एमने ए मान्य नथी एवो करी न शकाय. जेमके त्रिशष्ठि १०मा पर्वमां देवनंदानी कुक्षीमां च्यवननो उल्लेख करनार क.स. हेमचन्द्रसूरि म.सा.ए योगशास्त्रनी टीकामां देवानंदानो उल्लेख नथी कर्यो.)

३. आवी रीते कुलकरनी संख्या १४ (३ : ५०-५६)

समाधिमरणनुं चोथा शिक्षापदमां स्थान (१४ : ११५) वगेरे केटलीक बाबतो विद्वानोए नोंधी छे.

कुलकर्णी अने चंद्रए पउमचरियंमां मात्र श्वेतांबर संप्रदायने ज स्वीकार्य थई शके एवी बाबतोनी नोंध आपी छे.

केटलीक आ प्रमाणे छे.

१. जिणवरमुहाओ अत्थो जो पुव्विं निग्गओ बहुवियप्पो ।
सो गणहरेहिं धरिउं संखेवमिणो य उवइट्ठो ॥ १ : १० ॥

पउमचरियंनी शरूआतमां ज जिनेश्वरना मुखथी निकळेलो अर्थ गणधरोए धारण करी उपदेश आप्यानुं जणावे छे.

दिगंबरमत मुजब भगवान देशनामां कोई शब्द बोलता नथी. मात्र दिव्यध्वनि ज प्रगटतो होय छे. पं.श्री कल्याणविजयजीना मते आ मुद्दो ग्रंथकारना श्वेतांबर होवा माटे अगत्यनो छे.

२. २ : २६मां मेरूकंपननी वात छे.

३. २ : ३६, ३७मां महावीरप्रभु ठेर ठेर देशना आपतां विपुलगिरि पहोंच्या.

४. ३ : ६२, २१ : १२-१४ मरूदेवा माता अने पद्मावती माताने आवेला १४ स्वप्न. (पद्मचरितमां दि. रविषेणाचार्ये १६ स्वप्न बताव्या छे.) १४ स्वप्न माटेनी गाथा गयवसह... अक्षरशः कल्पसूत्र अने ज्ञाताधर्मकथा जोडे मळती आवे छे.

---

१. णव धणुसया य पढमो अट्ठ य सत्तद्ध-सत्तमारं च । छच्चेव अद्धछट्ठा पंचसया पण्णवीसं तु ॥ १५६ ॥

२. जो के कहेवाता विद्वानो क्यारेक साव वाहियात दलीलो करता होय छे. जेमके पउमच.मां स्थावरना पांच प्रकारो बताव्या छे माटे आ ग्रंथ दिगंबर छे एवुं पंडित प्रेमी जणावे छे. (जुओ कुलकर्णीनी Introduction पेज १९)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

५. ८३:१२ कैकयीनुं मोक्षगमन. (दिगंबरो स्त्रीओनी मुक्ति मानता नथी.)

६. ७५ : ३५-३६ बार देवलोकनुं वर्णन. (दि. १६ देवलोक माने छे.)

७. १७ : ४२ 'धर्मलाभ' शब्दनो प्रयोग. (दि. 'धर्मवृद्धि' शब्द प्रयोग करे छे.)

८. २ : ८२ वीसस्थानक वर्णन ज्ञाताधर्मकथा ८ : ६९ने मळतुं छे.

९. ४ : ५८, ५ : १६८ चक्रवर्तीनी ६४००० राणीओ (दि.मां ९६००० बतावी छे.)

१०. २ : ५० समवसरणना ३ गढनुं वर्णन.
(दि.मां माटीना गढ साथे ४ गढ होय छे. तिलोयपन्नत्ति ४ : ७३३)

जुदा जुदा विद्वानोना अभिप्रायोनी चर्चा कर्या पछी श्रीकुलकर्णी एवा तारण उपर आवे छे के - ग्रंथकार आ.विमलसूरि श्वेतांबर संप्रदायना हता. आ निर्णय उपर आववा माटे तेओ मुख्य त्रण मुद्दाओ आ प्रमाणे जणावे छे.

१. नाईलकुलवंशने नाईलीशाखा अथवा नागेन्द्रगच्छ तरीके ओळखवामां आवे छे. नंदिसूत्रमां श्वेतांबराचार्य भूतदिन्ननुं विशेषण 'नाइलकुलवंशनंदिकर' अपायुं छे. आ ज विशेषण आ. विमलसूरिए (११८ : ११७मां) पोताना गुरु माटे प्रयोज्युं छे.

२. पउमचरियंमां चारथी पांच वखत 'सेयंबर' शब्दप्रयोग सहज रीते थयो छे.

३. पउमचरियंनी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत छे. श्वेतांबर संप्रदायनुं मोटाभागनुं प्रकरणादि साहित्य महाराष्ट्रीय प्राकृतमां मळे छे. दिगंबरोनुं साहित्य महाराष्ट्री प्राकृतमां मळतुं नथी. मुख्यतया दि. साहित्य शौरसेनीमां मळे छे.)

ग्रंथकारश्रीए आपेलो रचना संवत अमान्य करी केटलाक विद्वानोए जुदी मान्यता रजू करी छे.

१. हर्मन जेकोबीना मते वीरनिर्वाण संवत नहीं पण विक्रमसंवत ५३०मां रचना थई हशे.

२. डो. के. एच. ध्रुवना मते ई.स. ६७८ थी ७७८ वच्चे रचना थई छे. (जैनयुग वो.-१ भाग-२ वि.सं. १९८१ पेज ६८-६९)

३. पं. परमानंद जैन शास्त्रीना मते आ. विमलसूरि कुंदकुंदाचार्य पछी थया छे. (अनेकांत कि. १०-११ ई.स. १९४२)

४. पं. कल्याणविजयजीना मते ई.स. २७४ (डो. कुलकर्णी उपरना पत्रमां, जुओ डो. कुलकर्णिनी प्रस्तावना)

ग्रंथकारे असंदिग्ध शब्दोमां जणावेल रचना संवतने न मानवा माटे विद्वानो केटलाक कारणो आपे छे. ते आवा छे.

१. शक, सुरंग, यवन, दिनार जेवा शब्दोनो उपयोग पउमचरियंमां आवे छे ते शब्दोनो प्रयोग भारतमां मोडेथी शरू थयो छे.

२. ग्रहोना नाम ग्रीक असरवाळा छे.

३. केटलाक छंदो अर्वाचीन ग्रंथमां ज जोवा मळे तेवा अहीं छे.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो के विद्वानोए आ कारणोने वजूद वगरना जणावी आना उत्तरो पण आप्या छे.

१. 'यवन' शब्दनो उल्लेख महाभारत १२-२०७-४३ मां अने पाणिनी अष्टाध्यायी अने अशोकना शिलालेखमां पण छे. 'सुरंग' शब्द अर्थशास्त्रमां पण प्रयुक्त छे.

२. ग्रीक शब्दोनो परिचय ई.पूर्वे पांच-छ सदीमां पण होवाना पुरावा छे. वगेरे.

समग्रतया जोईए तो ग्रंथकारो पोतानी गुरुपरंपरा रचना संवत विषे भाग्ये ज उल्लेख करता होय छे. क्यारेक रचना संवत आप्यो होय तो पण ए शक संवत के विक्रमसंवत गणवो एवा प्रश्नो थाय छे. ज्यारे अहीं तो प्रभुवीरना मोक्षगमनथी ५३० वर्ष गये छते रचना कर्यानुं लख्युं छे त्यारे एने अमान्य करवानुं कोई व्याजबी कारण जणातुं नथी.

वर्तमानकाळमां संस्कृतनुं अध्ययन जेटलुं व्यापक बन्युं छे एटलुं प्राकृत भाषाओनुं बन्युं नथी.

संस्कृत छाया

संस्कृत अध्ययन माटे विपुल प्रमाणमां साधनग्रंथो रचाया छे. रचाय छे. कमनसीबे प्राकृत अध्ययन माटे प्रमाणमां ओछुं साहित्य मळे छे.

अभ्यासीओए पण प्राकृत भाषाना अध्ययन माटे विशेष प्रयत्न करवो जरूरी छे एम लागे छे.

ज्यारे आपणां बधा आगमग्रंथो अने अनेक प्रकरणादि ग्रंथो अर्धमागधी वगेरे प्राकृत भाषाओमां रचाया छे त्यारे साधु-साध्वीजीओए ए माटे विशेष लक्ष्य आपवुं जरूरी छे.

आवा विशिष्ट अभ्यासीओनी अल्पताने कारणे घणां प्राकृत भाषाओना अमूल्य ग्रंथोनो अभ्यास घटतो रह्यो छे.

आ संजोगोमां आवा प्राकृत ग्रंथोनी संस्कृत छाया बनाववानो प्रयोग शरू थयो.

ताजेतरमां आ. धनेश्वरसूरिकृत सुरसुंदरी चरियंनी संस्कृत छाया साध्वी श्री महायशाश्रीए अने संवेगरंगसाळानी मुनि मुक्तिश्रमणविजयजीए करी छे. भूतकाळमां पण सुपासनाहचरियं वगेरेनी संस्कृत छायाओ प्रगट थई छे.

प्रस्तुत पउमचरियंनी पण संस्कृत छाया आ ग्रंथनो वधु अभ्यास थाय ए लक्ष्यथी करवामां आवी छे.

अभ्यासीओ मूळ पउमचरियं ग्रंथने ज वांचवा प्रयत्न करे अने संस्कृत छायाने क्लिष्ट स्थळो समजवा माटे उपयोगमां ले तेवी अपेक्षा छे.

मुनिश्री **पार्श्वरत्नविजयजीए** आ ग्रंथरत्ननी संस्कृतछाया घणा उत्साहथी बनावी ने अभ्यासीओ उपर उपकार कर्यो छे. **आख्यानकमणिकोशनी** प्राकृतकथाओनी संस्कृतछाया पण तेओ बनावी रह्या छे. प्राकृतसाहित्यने लोकभोग्य बनाववानो आ प्रयत्न सफळ रहे एज आशा आशीर्वाद.

पू.आ.भ.श्री **अरविन्दसूरीश्वरजी** म.सा.ना आज्ञावर्तिनी स्व.सा.श्री **सत्यरेखाश्रीजी**ना शिष्या विदुषी साध्वीश्री **महायशाश्रीजीए** ग्रंथना आदिथी अंत सुधीना प्रुफो जोया छे अने संस्कृत छायामां जरुरी परिमार्जन वगेरे कर्युं छे. खूब खूब आशीर्वाद.

• **पू. आ. विजयभद्रसुरीश्वरजीना शिष्यरत्न**
पू. मुनिराजश्री जिनचंद्रविजयजी म.सा.ना विनेय
आ. विजयमुनिचंद्रसूरि

• • •

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ग्रन्थानुक्रमः

[द्वितीय विभाग]

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
१७.	हणुयसंभवविहाणो नाम सत्तरसमो उद्देसओ	१९०-१९९
	अञ्जनायाः परिदेवनम् –	१९२
	अञ्जनागर्भपूर्वभवचरितम्–	१९३
	अञ्जनापूर्वभवचरितम् –	१९४
	अञ्जनायाः पुत्रप्रसूतिः–	१९७
	अञ्जनायाः मातुलमीलनम् –	१९७
१८.	पवणंजयञ्जणासुन्दरीसमागमविहाणो नाम अट्ठारसमो उद्देसओ	२००-२०४
	पवनञ्जयेन अञ्जनाया गवेषणा–	२००
	पवनञ्जयस्य विलपनम् –	२०१
१९.	रावणरज्जविहाणो नाम एगूणवीसइमो उद्देसओ	२०५-२०८
	रावणस्य वरुणेन सह सङ्ग्रामः –	२०५
२०.	तित्थयराइभवाणुकित्तणो नाम वीसइमो उद्देसओ	२०९-२२६
	तीर्थकराः तेषां च द्विचरमपूर्वजन्मनगर्यः–	२०९
	तीर्थकराणां द्विचरमाः पूर्वभवा :–	२१०
	तीर्थकराणां द्विचरमपूर्वजन्मगुरवः–	२१०
	तीर्थकराणामुपान्त्यदेवभवाः–	२११
	तीर्थकराणां राज्यर्द्धिः देहवर्णाश्च–	२१३
	पल्योपमसागरोपमोत्सर्पिण्यादिकालस्वरूपम् –	२१४
	तीर्थकराणामन्तराणि–	२१५
	पञ्चमषष्ठारकयोःस्वरूपम् –	२१६
	कुलकराणां तीर्थकराणां चोत्सेधा–	२१७
	कुलकराणां तीर्थकराणां चायूंषि–	२१७
	जिनानन्तरे द्वादशचक्रवर्तिनः तत्पूर्वभवादि च–	२१८
	सनत्कुमारचक्रिचरितम्–	२१८
	पुण्य-पाप-फलम् –	२२२
	वासुदेवाः तत्सम्बद्धानि स्थानकानि च विविधानि–	२२३
	बलदेवाः तत्सम्बद्धानि विविधानि स्थानकानि च–	२२४
	प्रतिवासुदेवास्तत्सम्बद्धानि विविधानि स्थानकानि च–	२२५
२१.	सुव्वयवज्जबाहुकित्तिधरमाहप्पवण्णणो एक्कवीसइमो उद्देसओ	२२७-२३४
	हरिवंशोत्पत्तिः–	२२७
	मुनिसुव्रतजिनचरितम् –	२२८
	जनकराजोत्पत्तिः–	२२९
	दशरथराजोत्पत्तिः–	२२९
	मुनिवरदर्शनम् –	२३०
	संसारस्वरूपं बन्धमोक्षस्वरूपं च–	२३१
	वज्रबाहुदीक्षा –	२३२
	कीर्त्तिधरः–	२३३
२२.	सुलकोसलमाहप्पजुत्तो दसरहउप्पत्तिभिहाणो नाम बावीसइमो उद्देसओ	२३५-२४३
	विविधानि तपांसि–	२३६
	हिरण्यगर्भः–	२३८
	सिंहिका-नघुषौ–	२३९
	सोदासः–	२४०
	मांसभक्षणविपाकः–	२४१
	दशरथः–	२४३
२३.	बिहीसणवयणविहाणो नाम तेवीसइमो उद्देसओ	२४४-२४५

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम	विषय	पृष्ठ नं.
२४.	केगइवरसंपायणो नाम चउवीसइमो उद्देसओ	२४६-२४९
२५.	चउभाइविहाणो नाम पञ्चवीसइमो उद्देसओ	२५०-२५१
२६.	सीया-भामण्डलउप्पत्तिविहाणो नाम छव्वीसइमो उद्देसओ	२५२-२५९
	भामण्डलपूर्वभवचरितम् –	२५२
	मांसविरत्युपदेशः, मांसभक्षणे नरकवेदना वर्णनं च–	२५४
	मांसविरतिफलम्–	२५६
	सीता–	२५९
२७.	मेच्छपराजयकित्तणो नाम सत्तावीसइमो उद्देसओ	२६०-२६३
	रामस्य अनार्यैः सह युद्धम्–	२६०
२८.	रामलक्खणधणुरयणलाभविहाणो नाम अट्ठावीसइमो उद्देसओ	२६४-२७४
२९.	दसरहवइरागसव्वभूयसरणागमो नाम एगूणतीसइमो उद्देसओ	२७५-२७८
३०.	भामण्डलसंगमविहाणो नाम तीसइमो उद्देसओ	२७९-२८६
	भामण्डलपूर्वभवः –	२८०
	चन्द्रगति-भामण्डलपूर्वभवसम्बधः –	२८३
३१.	दसरहपव्वज्जानिच्छयविहाणो नाम एक्कतीसइमो उद्देसओ	२८७-२९६
	दशरथपूर्वभवः–	२८७
	हेमन्तवर्णनम् –	२९०
	भरतस्य राज्यं रामस्य च वनवासः–	२९१
३२.	दसरहपव्वज्जारामनिग्गमणभरहरज्जविहाणो नाम बत्तीसइमो उद्देसओ	२९७-३०५
	दशरथप्रव्रज्या–	२९९
	विविधव्रतनियमजिनपूजादानादीनां फलम्–	३०१
३३.	वज्जयण्णउवक्खाणो नाम तेत्तीसइमो उद्देसओ	३०५-३१४
	वज्रकर्णराजकथा–	३०७
३४.	वालिखिल्लउवक्खाणं नाम चउतीसइमो उद्देसओ	३१६-३२०
३५.	कविलोवक्खाणं नाम पञ्चतीसइमो उद्देसओ	३२१-३२७
३६.	वणमालानामं छत्तीसइमं पव्वं	३२८-३३०
३७.	अइविरियनिक्खमणं नाम सत्ततीसइमं पव्वं	३३१-३३६
३८.	जियपउमावक्खाणं नाम अट्ठतीसइमं पव्वं	३३७-३४१
३९.	देसभूसण-कुलभूसणवक्खाणं नाम एगूणचत्तालं पव्वं	३४२-३५२
४०.	रामगिरिउवक्खाणं नाम चत्तालं पव्वं	३५३-३५४
४१.	जडागीपक्खिउवक्खाणं नाम एगचत्तालं पव्वं	३५५-३६०
४२.	दण्डगारण्णनिवासविहाणं नाम बायालीसइमं पव्वं	३६१-३६३
४३.	सम्बुक्कवहणं नाम तेयालीसइमं पव्वं	३६४-३६७
४४.	सीयाहरणे रामविप्पलावविहाणं नाम चउत्तालीसं पव्वं	३६८-३७२
४५.	सीयाविप्पओगदाहपव्वं पणयालं	३७३-३७६
४६.	मायापायारविउव्वणं नाम छायालीसं पव्वं	३७७-३८४

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

પઉમચરિયની જૈન મહારાષ્ટ્રીભાષા વિશે કંઈક...

લે. શાંતિલાલ છ. ઉપાધ્યાય

જૈનોએ-શ્વેતાંબરોએ-જે પ્રાચીન ચરિત્રો, કથાઓ, સ્તોત્રો વિગેરે લખ્યાં છે તે બધાંની ભાષાને જૈન મહારાષ્ટ્રી એવી સંજ્ઞા અપાય છે. હાલમાં ઉપલબ્ધ એવાં જે નાટકો છે તેમાં જે મહારાષ્ટ્રી ભાષા આવે છે તે ભાષામાં અને શ્વેતાંબરોએ ઉપયોગ કરેલી ભાષામાં જરા જરા તફાવત છે એટલે જ વિદ્વાનોએ તેને "જૈન મહારાષ્ટ્રી" કહી છે. આ ભાષા ઉપર જૈન અર્ધમાગધી ભાષાનો પણ પ્રભાવ ઘણા જ પ્રમાણમાં પડ્યો છે. જૈન મહારાષ્ટ્રીમાં લખાએલાં ઘણાં પુસ્તકો મળી આવે છે અને તે બધાં પ્રાચીન છે. દા.ત., પયન્ના, નિર્યુક્તિઓ, ઉપદેશમાલા વિગેરે તદુપરાંત ઘણાં ભાષ્યો, ચૂર્ણિઓ, સંગ્રહણીઓ વિગેરે જાણીતાં છે. પંડિત હરગોવિંદદાસે અનુમાન કર્યું છે કે જૈન મહારાષ્ટ્રી ક્રમશઃ પરિવર્તન પામીને મધ્યયુગની "વ્યંજનલોપબહુલા" એવી મહારાષ્ટ્રીમાં રૂપાન્તરિત થઈ. (જુઓ તેમનો પ્રાકૃત શબ્દ મહાર્ણવ ભાગ-૪, પૃ. ૩૨)

જૈન મહારાષ્ટ્રી ભાષાનાં અમુક લક્ષણો અહિં આપવામાં આવે છે.

- ક ની જગ્યાએ "ગ"
- લુપ્તવ્યંજનોની જગ્યાએ "ય"
- જહા અને જાવ ની સ્થાને કોઈવાર અહા અને આવ.
- સમાસના ઉત્તર પદની પૂર્વમાં "મ્"
- તૃતીયા એકવચનનો કોઈવાર "સા" પ્રત્યય.
- સોચ્ચા, કિચ્ચા વિગેરે ત્વા પ્રત્યયનાં રૂપો.
- કડ, સંવુડ વિગેરે "ત" પ્રત્યયનાં રૂપો.

આ ઉપરથી નાટકોની મહારાષ્ટ્રીમાં અને પઉમચરિયની જૈન મહારાષ્ટ્રીમાં જરા જરા તફાવત માલૂમ પડે છે. તદુપરાંત જૈન અર્ધમાગધીનો પણ પ્રભાવ જૈન મહારાષ્ટ્રી ઉપર પડ્યો હતો તે પણ જણાય છે.

ડૉ. હર્મન યાકોબીએ પઉમચરિયની ભાષા વિષે થોડુંક તેમના એક (આગળ ઉલ્લેખાએલા) લેખમાં લખ્યું છે કે "પ્રાકૃતગ્રંથોમાં નામનાં રૂપો, ધાતુઓનાં જુદાં જુદાં રૂપો વિગેરેનો અંદર અંદર જે ગોટાળો થઈ જાય છે તે અહિં બહુ જ મોટા પ્રમાણમાં જણાય છે. દા.ત., સપ્તમી બહુવચન તૃતીયાના બહુવચનમાં વપરાયેલું છે; તુમ્ પ્રત્યયવાળાં અને ત્વા પ્રત્યયવાળાં રૂપોનો પણ ગોટાળો નજરે ચઢે છે. વળી કેટલાંક નામનાં રૂપોને પ્રત્યયો પણ લગાડવામાં આવ્યા નથી. આ ઉપરથી એમણે લખ્યું છે કે 'પઉમચરિય' એવી જૂની પ્રાકૃતભાષામાં લખાયું છે કે જેના ઉપર વ્યાકરણના સંપૂર્ણ સંસ્કારો પડ્યા હતા નહિ."

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

આ લેખકે સંગ્રહ કરેલા અમુક જ દાખલાઓ અહિં આપવામાં આવે છે.

(૧) સપ્તમી બહુવચન તૃતીયા બહુવચન માટે.
उरगमहाफणीमणीसु पज्जलियं, भुयङ्गपासेसु बन्धणं, .
फलिहासु संपउत्तं, सरसरसिवावीवप्पिणसहसु,
गएसु पेल्लिज्जइ, नाणेसु तीसु सहिओ, कीलणसएसु कीलन्तो,
भयासुलग्गा, आउहकिरणेसु दिप्पन्तो, जुवईसु अवरद्धं,

(૨) સપ્તમી બહુવચન ચતુર્થી બહુવચન માટે.
सुएसु दाऊण

(૩) છઠ્ઠી બહુવચન તૃતીયા બહુવચન માટે.
भरियं चिय दन्तकीडाणं; वन्दीण घुट्ठं

(૪) त्वा પ્રત્યયનાં રૂપો માટે तुम् પ્રત્યયનાં રૂપો.
धरिउं, काउं, मोत्तुं, सुणित्तुं, दट्ठु, रइत्तु, मुणित्तु વિગેરે.

(૫) तुम् પ્રત્યયનાં રૂપો માટે त्वा પ્રત્યયનાં રૂપો.
वण्णिऊण, तीरइ, काउण समाढत्ता, परिदेविऊण, चिन्तिऊण, हरिऊण, रुम्भिऊण, घेत्तूण, गन्तूण

(૬) તૃતીયાનાં રૂપો સપ્તમી માટે.
सेज्जाहि सुहनिसण्णा, आवइहि (आपद्भिः)

(૭) પ્રત્યય વિનાનાં રૂપો.
वीरं विलीणरयमल, ससयपरमं, सम्पेल्लुप्पेल्लकुणमाणा, अन्ने वि जे गणहर अणगार लद्धमाहप्पे, વિગેરે.

પ્રાકૃત વ્યાકરણકારોએ પ્રાકૃત શબ્દોના ત્રણ ભાગો પાડ્યા છે જેવા કે તત્સમ્, તદ્ભવ, દેશ્ય.

હેમચંદ્રાચાર્યે ૮મા અધ્યાયના ૪ થા પાદમાં જે આદેશો આપેલા છે તે બધા અમુક પ્રાકૃત ધાત્વાદેશો નિયમાનુસાર કે પદ્ધતિસર ગોઠવેલા નથી. તેમણે ગમે તેમ છૂટાછવાયા આપ્યા છે.

આ આદેશોમાંના ઘણા દેશી ધાતુઓ છે અને બીજાઓ ૮ મા અધ્યાયના ૧ અને ૨જા પાદના નિયમો લગાડીને બનાવી શકાય છે. સર જ્યોર્જ ગ્રીઅરસને તેમના પ્રાકૃત ધાત્વાદેશોના મનનીય લેખમાં પ્રાકૃત ધાતુઓના ચાર ભાગ પાડ્યા છે. ૧ જે સંસ્કૃતના જેવા જ છે. દા.ત. ચલ્. ૨. જે ભાષાશાસ્ત્રના નિયમાનુસાર સિદ્ધ થઈ શકે છે. દા.ત., પીડ્માંથી પીલ. આ વર્ગના આવા ધાતુઓ આદેશ કહી શકાય જ નહિ, કારણ કે સંસ્કૃત ધાતુ માટે અહિં કોઈ ઈતર ધાતુ નથી, ફક્ત તેનું બીજું સ્વરૂપ જ છે. (જુઓ તેમનો "પ્રાકૃતધાત્વાદેશ"નો લેખ. એશીઆટિક સોસાયટી, બંગાલ. વો. ૮ નં. ૨, ૧૯૨૪). ૩ જે સંસ્કૃત ધાતુઓ સાથે કોઈપણ નિયમાનુસાર સરખાવી શકાય નહિ અગર સંસ્કૃતમાંથી સિદ્ધ કરી શકાય જ નહિ. જેવા કે ચલ્ નો આદેશ ચલ્લૂ આવા જ શબ્દો ખરેખરા આદેશો કહી શકાય. આમાંના ઘણા દેશ્ય શબ્દો છે એમ તેઓ જણાવે છે. ૪ જે ધાતુઓ સંસ્કૃતમાંથી બનાવી શકાય છે પણ જેના અર્થમાં ફેરફાર થઈ ગયો છે અને તેથી જ જેને પ્રાકૃતના વ્યાકરણશાસ્ત્રીઓએ તે પ્રાકૃત ધાતુઓને બીજા જ સંસ્કૃત ધાતુઓ સાથે સરખાવ્યા છે કે જેનો અર્થ તેને લગતો હોય. આ પણ આદેશો છે. ડૉ. વૈદ્યનો મત એવો છે કે 'જે ધાતુઓ ઉપરથી સંસ્કૃતનો સંબંધ તારવી શકાતો હોય તેને આદેશ કહેવા જોઈએ નહિ. પણ જે કોઈ જાતનો

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

સંબંધ બતાવી ન શકે તેમને જ આદેશ તરીકે વર્ણવવા જોઈએ. (જુઓ ડૉ. પી. એલ. વૈદ્યનું સંપાદન કરેલું પ્રાકૃત વ્યાકરણ. નોટ્સ પૃ. ૨૮) અહિંઆ પઉમચરિયમાં વપરાયેલાં અમુક ધાત્વાદેશો આપી તે બધા હેમચંદ્રાચાર્યે સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયના ૪થા પાદમાં નોંધ્યા છે તે બતાવ્યું છે. અમુક જે નાના નાના ફેરફારો છે તે પણ બતાવ્યું છે. વળી પઉમચરિયમાં વપરાએલા જે ધાત્વાદેશો તેમણે નોંધ્યા નથી તે પણ બતાવ્યા છે. વળી પઉમચરિયમાં જે દેશી શબ્દો વપરાએલા છે તેમાંથી અમુક ચુંટી કાઢી અહિં લખ્યા છે. આ લખવાનો ઉદ્દેશ એ જ છે કે તત્કાલીન અને તત્પૂર્વીય પ્રાકૃત સાહિત્ય કેટલું વિપુલ હતું એ આ ઉપરથી જણાય છે.

પઉમચરિયમાં આવેલા ધાત્વાદેશો	**સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયમાં નોંધાયેલા ધાત્વાદેશો**	**પઉમચરિયમાં આવેલા ધાત્વાદેશો**	**સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયમાં નોંધાયેલા ધાત્વાદેશો**	**પઉમચરિયમાં આવેલા ધાત્વાદેશો**	**સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયમાં નોંધાયેલા ધાત્વાદેશો**
अच्छ	૨૧૫	जिण	૨૪૧	पलोट्ट	૨૦૦
अग्घ	૧૦૦	जुज्झ	૨૧૭	पुच्छ	૯૭
अब्भिड	૧૬૪	जेम	૨૧૦	पुलय	૧૮૧
(सम्) अल्लिअ	૩૯ (अल्लिव)	ठा (ठायइ)	૧૬ (ठाअइ)	पेच्छ	૧૮૧
अल्लिअ	૧૩૯	डज्झ	૨૪૬	पेल्ल	૧૪૩
(सम्) आढप्प	૨૫૪	णज्ज	૨૫૨	फिट्ट	૧૭૭
आरोल	૧૦૨	तर	૮૬	बुक्क	૯૮
ओलक्ख	૧૮૧ (ओअक्ख)	तिप्प	૧૮૩	बुज्झ	૨૧૭
कीर	૨૦૫	तीर	૮૬	भण्ण	૨૪૯
कुण	૬૫	तूर	૧૭૧	भिस	૨૦૩
खम्म	૨૪૪	तोड	૧૧૬	भमाड	૧૬૧
गेण्ह	૨૦૯	थुण	૧૪૧	भिन्द	૨૧૬
घत्त	૧૪૩	थुव्व	૨૪૨	मल	૧૨૬
घुम्म	૧૧૭	दट्ठ	૨૧૩	मह	૧૯૨
घुल	૧૧૭	दाव	૩૨	मिल	૨૩૨ (मिल्ल)
घोल	૧૧૭	दुगुंछ	૪	मुज्झ	૨૧૭
घेप्प (घिप्प also)	૨૫૬	दूम	૨૩	मुण	૭
घेत्त	૨૧૦	धाड	૭૯	मुत	૨૧૨
चड	૨૦૬	धुण	૨૪૧	रिय	૧૮૩ (रिअ)
चड्ड	૧૮૫	निच्छूढ	૨૫૮	रुम्भ	૨૧૮
चिंच	૧૧૫	निय	૧૮૧	रेह	૧૦૦
चिट्ठ	૧૬	निम्मव	૧૯	वल	૨૦૯
छज्ज	૧૦૦	निलुक्क	૫૫	वास	૧૭૯
छड्ड	૯૧	निल्लूर	૧૨૪	विर	૧૦૬
छिव	૧૮૨	निव्वड	૬૨	विसूर	૧૩૨
छुह	૧૪૩	नीहर	૭૯	विहड	૨૭ (विहोड)
जम्प	૨	पज्झर	૧૭૩	वेढ	૨૨૧
जम्म	૧૩૬	पम्हुस	૭૫	वोल (वोले इ)	૧૬૨ (वोलइ)
जाण (जाणेइ)	૭ (जाणइ)	पल्हत्थ	૨૦૦	सक्क	૨૩૦

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

પઉમચરિયમાં આવેલા ધાત્વાદેશો	સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયમાં નોંધાયેલા ધાત્વાદેશો	પઉમચરિયમાં આવેલા ધાત્વાદેશો	સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયમાં નોંધાયેલા ધાત્વાદેશો	પઉમચરિયમાં આવેલા ધાત્વાદેશો	સિદ્ધહેમના ૮મા અધ્યાયમાં નોંધાયેલા ધાત્વાદેશો
संघ (संघेइ)	२ (संघइ)	सुव्व	२४३	हो	६०
(सं, भर)	७४	हक्खुअ	१४४	ओइंध (आ + मुच्?)	हेमचंद्राचार्येनोंध्यो नथी. (પાઈઅસદ્દમહણ્ણવો)
साह	२	हम्म	२४४	सामच्छ [देशी. " "]	" "
सिज्झ	२१७	हव	६०		
सुण	२४१	हप्प	६३		
सुमर	७४	हुव	६०		

પઉમચરિયમાં વપરાયેલ દેશી શબ્દોમાંથી ચુંટી કાઢેલા અમુક શબ્દો.

अणोरपार	पसय
आभिट्ट	परिहत्थ
कडिल्ल	पाइक्क (देशी ?) હેમચંદ્રાચાર્ય 'पदाति'માંથી આપે છે
चच्चिक	भसल પાઈઅસદ્દમહણ્ણવો 'ભ્રમર'માંથી આપે છે.
चडक्क	मज्झयार
तल्लिच्छ	वप्पिण
तत्तिल्ल	विरिक्क
तिमिंगिलि	विलय હેમચંદ્રાચાર્યે 'वनिता' માંથી આપે છે.
तिरीड (देशी ?) પાઈઅસદ્દમહણ્ણવોમાં 'કિરીટ'માંથી આપ્યું છે.	सवडंमुह
	सवडहुत्त
धाहाविथ	हलबोल

પઉમચરિયના નીચે આપેલા ધાત્વાદેશો અને શબ્દો હેમચંદ્રાચાર્યે આપેલા અપભ્રંશના શ્લોકોમાં પણ જડે છે.

પઉમચરિય.	સિદ્ધહેમના અપભ્રંશ શ્લોકો.	પઉમચરિય.	સિદ્ધહેમના અપભ્રંશ શ્લોકો.
फोड	૩૫૦	कर (करेवि)	૩૪૦
मोड	૪૪૫	सुण (सुणेवि)	—
फेड	૩૫૮	चडक्क	૪૦૬
ठव	૩૫૭	आयरु	૩૪૧
घेप्प	૩૩૫	नवरि	૪૨૩
अब्भिड	૩૮૩		

(શ્રી આત્મારામજી શતાબ્દી ગ્રંથમાં પ્રકાશિત લેખ 'મહાકવિ વિમલસૂરિ અને તેમનું રચેલું મહાકાવ્ય પઉમચરિય'માંથી)

• • •

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१७. अंजणाणिव्वासण-हणुयउप्पत्तिअहियारो

केत्तियमेत्ते वि गए, काले गब्भप्पयासया बहवे जाया विविहविसेसा, महिन्दतणयाए देहम्मि ॥१॥

पीणुन्नया य थणया, सामलवयणा कडी य वित्थिण्णा । गब्भभरभारकन्ता, गई य मन्दं समुव्वहइ ॥२॥

एएहि लक्खणेहिं, मुणिया पवणंजयस्स जणणीए । भणिया य जायगब्भा, पावे ! कन्ते पउत्थम्मि ॥३॥

काऊण सिरपणामं, कहेइ पवणंजयागमं सव्वं । मुद्दा य पच्चयत्थं, तह वि य न पसज्जई सासू ॥४॥

भणइ तओ [1]कित्तिमई, जो न वि नामं पि गेण्हई तुज्झं । सो किह दूरपवासं, गन्तूण पुणो नियत्तेइ ? ॥५॥

धिद्धि ! त्ति दुट्ठसीले !, निययकुलं निम्मलं कयं मलिणं । लोगम्मि गरहणिज्जं, एरिसकम्मं जणन्तीए ॥६॥

एवं बहुप्पयारं, उवलम्भेऊण तत्थ कित्तिमई । आणवइ कम्मकारं, नेहि इमं पियहरं सिग्घं ॥७॥

लद्धाएसेण तओ, समयं सहियाए अञ्जणा तुरियं । जाणम्मि समारूढा, महिन्दनयरामुहं नीया ॥८॥

संपत्ता य खणेणं, पावो मोत्तूण पुरवरासन्ने । खामेऊण नियत्तो, ताव य अत्थंगओ सूरो ॥९॥

जाए तमन्धयारे, बाला परिदेविऊण आढत्ता । हाहक्कारमुहरवा, दस वि दिसाओ पलोयन्ती ॥१०॥

भणइ य वसन्तमाले !, पावं अइदारुणं पुराचिण्णं । जेणेस अयसपडहो पुहइतले ताडिओ मज्झं ॥११॥

---

१७. अञ्जनानिर्वासनो हनुमदुत्पत्तिरधिकारः

केचिन्मात्रे ऽपि गते काले गर्भप्रकाशका बहवः । जाता विविधविशेषा महेन्द्रतनयाया देहे ॥१॥

पीनोन्नौ च स्तनौ श्यामलवदनौ कटी च विस्तीर्णा । गर्भभरभाराक्रान्ता गतिं च मन्दं समुद्वहति ॥२॥

एतै र्लक्षणै र्ज्ञाता पवनञ्जयस्य जनन्या । भणिता च जातगर्भा पावे ! कान्ते प्रवसिते ॥३॥

कृत्वा शिरः प्रणामं कथयति पवनञ्जयागमं सर्वम् । मुद्रा च प्रत्ययार्थं तथापि च न प्रसज्ञति श्वश्रुः ॥४॥

भणति ततः कीर्तिमती यो नापि नामापि गृह्णाति तव । स कथं दूरप्रवासं गत्वा पुन निवर्तते ? ॥५॥

धिग्धिगिति दुष्टशीले ! निजकुलं निर्मलं कृतं मलिनम् । लोके गर्हणीयमेतादृशकर्म जनयन्त्या ॥६॥

एवं बहुप्रकारमुपालम्भ्य तत्र कीर्तिमती । आज्ञापयति कर्मकारं नयेमां पितृगृहं शीघ्रम् ॥७॥

लब्धादेशेन ततः समकं सख्याऽञ्जना त्वरितम् । यानं समारुढा महेन्द्रनगराभिमुखं नीता ॥८॥

संप्राप्ता च क्षणेन पापस्त्यक्त्वा पुरवरासन्ने । क्षमित्वा निवृत्तस्तावच्चास्तंगतः सूर्यः ॥९॥

जाते तमोऽन्धकारे बाला परिदेवयितुमारब्धा । हाहाकारमुखरवा दशापिदिशः प्रलोकयन्ती ॥१०॥

भणति च वसन्तमाले ! पापमतिदारुणं पूराचीर्णम् । येनेषो ऽयशः पटहः पृथिवीतले ताडितो मम ॥११॥

१-२. केउमई-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एक्कं चिय जाव न वी, दुक्खं वोलेइ जणियपियविरहं । ताव य उवट्ठियं मे, बीयं अववायसंबन्धं ॥१२॥
किं मज्झ पयावइणा, इमं सरीरं अलद्धसुहसायं । बहुदुक्खसन्निहाणं, जाणन्तेणेव निम्मवियं ? ॥१३॥
भणइ य वसन्तमाला, बाले ! किं विलविएण रण्णम्मि ? । पुव्वकयं निम्मायं, अणुहवियव्वं अविमणाए ॥१४॥
कयपल्लवोवहाणे, वसन्तमालाए विरइए सयणे । सुवइ खणलद्धनिद्दा, पडिया चिन्तासमुद्दम्मि ॥१५॥
सूरुग्गमम्मि तो सा, सहीए समयं कुलोचियं नयरं । पविसन्ती दीणमुही, पडिरुद्धा दारवालेणं ॥१६॥
पडिपुच्छियाए सिट्ठं, वसन्तमालाए दारवालस्स । पवणंजयमाईयं, सव्वं चिय अञ्जणागमणं ॥१७॥
अह सो वि दारवालो, सिलाकवाडो त्ति नाम गन्तूणं । तं चेव वयणनिहसं, महिन्दरायस्स साहेइ ॥१८॥
जं दारवालएणं, सिट्ठं दुहियागमं सअववायं । तं सोऊण महिन्दो, अहोमुहो लज्जिओ जाओ ॥१९॥
रुट्ठो पसन्नकित्ती, महिन्दपुत्तो तओ भणइ एवं । धाडेह [1]पावकम्मा, बाला कुलदूसणी एसा ॥२०॥
नामेण महुच्छाहो, सामन्तो भणइ एव न य जुत्तं । दुहियाण होह सरणं, माया-वित्तं महिलियाणं ॥२१॥
अच्चन्तनिट्ठुरा सा, केउ(?कित्ति)मई लोयधम्मकयभावा । निद्दोसा एस पहू !, बाला निद्धाडिया तीए ॥२२॥
भणइ य महिन्दराया, पुव्विं पि मए सुयं जहा एसा । पवणंजयस्स वेसा, तेण य गब्भस्स संदेहो ॥२३॥
मा होहिइ अववाओ, मज्झं पि इमाए संकिलेसेणं । भणिओ य दारवालो, धाडेह लहुं पुरवराओ ॥२४॥

एकमेव यावन्नापि दु:खं अतिक्रामति जनितप्रियविरहम् । तावच्चोपस्थितं मे द्वितीयमपवादसम्बन्धम् ॥१२॥
किं मम प्रजापतिनेदं शरीरमलब्धसुखशातम् । बहुदु:खसन्निधानं जानतैव निर्मापितम् ? ॥१३॥
भणति च वसन्तमाला बाले ! किं विलापितेनारण्ये ? । पूर्वकृतं निर्मातमनुभवितव्यमविमनसा ॥१४॥
कृतपल्लवोपधाने वसन्तमालया विरचिते शयने । स्वपिति क्षणलब्धनिद्रा पतिता चिन्तासमुद्रे ॥१५॥
सूर्योद्गते तदा सा सख्या समं कुलोचितं नगरम् । प्रविशन्ती दीनमुखी प्रतिरुद्धा द्वारपालेन ॥१६॥
प्रतिपृच्छितया शिष्टं वसन्तमालया द्वारपालस्य । पवनञ्जयादिकं सर्वमेवाञ्जनागमनम् ॥१७॥
अथ सोऽपि द्वारपाल: शिलाकपाट इति नाम गत्वा । तदेव वचननिकसं महेन्द्रराज्ञ: कथयति ॥१८॥
यद्द्वारपालेन शिष्टं दुहित्रागमं सापवादम् । तच्छ्रुत्वा महेन्द्रोऽधोमुखो लज्जितो जात: ॥१९॥
रुष्ट: प्रसन्नकीर्ति महेन्द्रपुत्रस्ततो भवत्येवम् । निस्सार्यतां पापकर्मा बाला कुलदुषण्येषा ॥२०॥
नाम्ना मधुत्साह: सामन्तो भणत्येवं न च युक्तम् । दु:खितानां भवत: शरणं माता-पितरौ महिलानाम् ॥२१॥
अत्यन्तनिष्ठुरा सा कीर्तिमती लोकधर्मकृतभावा । निर्दोषा एषा प्रभो ! बाला निष्काशिता तया ॥२२॥
भणति च महेन्द्रराजा पूर्वमपि मया श्रुतं यथैषा । पवनञ्जयस्य द्वेष्या तेन च गर्भस्य संदेह: ॥२३॥
मा भविष्यत्यपवादो ममाप्यनया संक्लेशेन । भणितश्च द्वारपालो निस्सारय लघु पुरवरात् ॥२४॥

---

१. पावकम्मं बालं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो दारवालएणं, लद्धाएसेण अञ्जणा तुरियं । निद्धाडिया पुराओ सहीए समयं परविएसं ॥२५॥

सुकुमालहत्थ-पाया, खरपत्थर-विसमकण्टइल्लेणं । पन्थेण वच्चमाणी, अइगरुयपरिस्समावन्ना ॥२६॥

जं जं सयणस्स घरं, वच्चइ आवासयस्स कज्जेणं । तं वारेन्ति नरा, नरिन्दसंपेसिया सव्वं ॥२७॥

एवं धाडिज्जन्ती, सव्वेण जणेण निरणुकम्पेणं । घोराडविं [१]पविट्ठा, पुरिसाण वि जा भयं देइ ॥२८॥

नाणाविहगिरिपउरा, नाणाविहपायवेहि संछन्ना । महई अणोरपारा, नाणाविहसावयाइण्णा ॥२९॥

वाया-ऽऽयवपरिसिन्ना, तण्हाए छुहाए पीडियसरीरा । एगुद्देसम्मि ठिया, करेइ परिदेवणं बाला ॥३०॥

अञ्जनाया: परिदेवनम् –

हा कट्ठं चिय पहया, विहिणा हं विविहदुक्खकारीणं । अणहेउवइरिएणं, कं शरणं वो पवज्जामि ? ॥३१॥

भत्तारविरहियाणं, होइ पिया आलओ महिलियाणं । मह पुणे पुण्णेहि विणा, सो वि हु वइरीसमो जाओ ॥३२॥

ताव च्चिय हियइट्ठा, माऊण पिऊण बन्धवाणं च । जाव न धाडेइ पई, [२]महिला नियस्स गेहस्स ॥३३॥

ताव सिरी सोहग्गं, ताव य गरूयाउ होन्ति महिलाओ । जाव य पई महग्घं, सिणेहपक्खं समुव्वहइ ॥३४॥

माया पिया य भाया, वच्छल्लं तारिसं करेऊणं । अवराहविरहियाए, कह मज्झ पणासियं सव्वं ? ॥३५॥

न य मज्झ सासुयाए, न चेव पियरेणमूढभावेणं । अयसस्स मूलदलियं, दोसस्स परिक्खणं न कयं ॥३६॥

एवं बहुप्पयारं, [३]रोवन्ती अञ्जणा निवारेउं । भणइ य वसन्तमाला, सामिणि ! वयणं निसामेहि ॥३७॥

तदा द्वारपालेन लब्धादेशेनाञ्जना त्वरितम् । निस्सारिता पुरात्सख्या समकं परविदेशम् ॥२५॥

सुकुमालहस्तपादा खरप्रस्तरविषमकण्टकाकीर्णेन । पथा गच्छन्त्यतिगुरुकपरिश्रमापन्ना ॥२६॥

यं यं स्वजनस्य गृहं गच्छति आवासस्य कार्येण । तं तं वारयन्ति नरा नरेन्द्रसंप्रेषिताः सर्वम् ॥२७॥

एवं निस्सार्यमाणा सर्वेण जनेन निरनुकम्पेन । घोराटवीं प्रविष्टा पुरुषाणामपि या भयं ददाति ॥२८॥

नानाविधगिरि-प्रचुरा नानाविधपादपैः संच्छन्ना । महद्विस्तीर्णा नानाविधश्वापदाकीर्णा ॥२९॥

वाताऽऽतपपरिषण्णा तृष्णया क्षुधया पीडितशरीरा । एकोद्देशे स्थिता करोति परिदेवनं बाला ॥३०॥

अञ्जनाया: परिदेवनम् -

हा कष्टमेव प्रहता विधिनाऽहं विविधदुःखकारिणा । अहेतुवैरिणा कं शरणं वा प्रपद्ये ॥३१॥

भर्त्तारविरहितानां भवति पिताऽऽलयो महिलानाम् । मम पुनः पुण्यैर्विना सोऽपिहु वैरीसमो जातः ॥३२॥

तावदेव हृदयेष्टा मातुः पितु र्बान्धवानां च । यावन्न निस्सारयति पति र्महिलां निजकस्य गृहात् ॥३३॥

तावत्श्रीः सौभाग्यं तावच्च गुरुका भवन्ति महिलाः । अपराधविरहितायाः कथं मम प्रणाशितं सर्वम् ? ॥३५॥

न च मम श्वश्रा न चैव पित्रा मूढभावेन । अयशसो मूलं दलितं दोषस्य परीक्षणं न कृतम् ॥३६॥

एवं बहुप्रकारं रुदन्तीमञ्जनां निवार्य । भणति च वसन्तमाला स्वामिनि ! वचनं निशामय ॥३७॥

---

१. पवन्ना-प्रत्य० । २. महिलं निययाउ गेहाओ-प्रत्य० । ३. रोवन्ति अञ्जणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवलोइऊण बाले !, पेच्छ गुहा सुन्दरा समासन्ने । एयं वच्चामु[1] लहुं, एत्थं पुण सावया घोरा ॥३८॥

गब्भस्स मा विपत्ती, होही भणिउं वसन्तमालाए । हत्थावलम्बियकरा, नीया य गुहामुहं तुरिया ॥३९॥

दिट्ठो य तत्थ समणो, सिलायले समयले सुहनिविट्ठो । चारणलद्धाइसओ, जोगारूढो विगयमोहो ॥४०॥

करयलकयञ्जलीओ, मुणिवसहं वन्दिऊण भावेणं । तत्थेव निविट्ठाओ, दोण्णि वि भयवज्जियङ्गीओ ॥४१॥

ताव य झाणुवओगे, संपुण्णे साहवो वि जुवईओ । दाऊण धम्मलाहं, पुच्छइ देसे कहिं तुम्हे ? ॥४२॥

तो पणमिऊण[2] साहू, वसन्तमाला कहेइ संबन्धं । एसा महिन्दधूया, नामेणं अञ्जणा चेव ॥४३॥

पवणंयस्स महिला, लोए गब्भाववायकयदोसा । बन्धवजणेण चत्ता, एत्थ पविट्ठा अरण्णम्मि ॥४४॥

केण व कज्जेण इमा, वेसा कन्तस्स सासुयाए य ? । अणुहवइ महादुक्खं, कस्स व कम्मस्स उदएणं ? ॥४५॥

को वा य मन्दपुण्णो, जीवो एयाए गब्भसंभूओ ? । जस्स कएण महायस ! जीवस्स वि संसयं पत्ता ॥४६॥

तत्तो सो अमियगई, कहेइ सव्वं तिनाणसंपन्नो । कम्मं परभवजणियं, फुड-वियडत्थं जहावत्तं ॥४७॥

अञ्जनागर्भपूर्वभवचरितम्—

इह जम्बुद्दीववरे, पियनन्दी नाम मन्दिरपुरम्मि । तस्स जया वरमहिला, पुत्तो से होइ दमयन्तो ॥४८॥

अह अन्नया कयाई, दमयन्तो पत्थिओ वरुज्जाणं । पुरजणकयपरिवारो, कीलइ रइसागरोगाढो ॥४९॥

अवलोक्य बाले ! पश्य गुहा सुन्दरा समासन्ने । एवं गच्छावो लघुमत्र पुनः श्वापदा घोराः ॥३८॥

गर्भस्य मा विपत्ति र्भवेद् भणित्वा वसन्तमालया । हस्तावलम्बिकरा नीता च गुहामुखं त्वरिता ॥३९॥

दृष्टश्च तत्र श्रमणः शिलातले समतले सुखनिविष्टः । चारणलब्धातिशयो योगारुढो विगतमोहः ॥४०॥

करतलकृताञ्जली मुनिवृषभं वन्दित्वा भावेन । तत्रैव निविष्टे द्वयपि भयवर्जिताङ्गी ॥४१॥

तावच्च ध्यानोपयोगे संपूर्णे साधुरपि युवत्योः । दत्वा धर्मलाभं पृच्छति देशे कुत्र युवाम् ? ॥४२॥

ततः प्रणम्य साधुं वसन्तमाला कथयति सम्बन्धम् । एषा महेन्द्रदुहिता नाम्नाऽञ्जनैव ॥४३॥

पवनञ्जयस्य महिला लोके गर्भापवादकृतदोषा । बन्धवजनेन त्यक्तात्र प्रविष्टाऽरण्ये ॥४४॥

केन वा कार्येणेमा द्वेष्या कान्तस्य श्वश्रवश्च ? । अनुभवति महादुःखं कस्य वा कर्मणउदयेन ? ॥४५॥

को वा च मन्दपुण्यो जीव एतस्या गर्भसंभूतः ? । यस्य कृतेन महायश! जीवस्यापि संशयं प्राप्ता ॥४६॥

ततः सोऽमितगतिः कथयति सर्वं त्रिज्ञानसंपन्नः । कर्म परभवजनितं स्फुटविकटार्थं यथावृत्तम् ॥४७॥

अञ्जनागर्भ पूर्वभव चरित्रम् -

इह जम्बूद्वीपवरे प्रियनन्दी नाम मन्दिरपुरे । तस्य जया वरमहिला पुत्रस्तस्य भवति दमयन्तः ॥४८॥

अथान्यदा कदाचिद्दमयन्तः प्रस्थितो वरोद्यानम् । पुरजनकृतपरिवारः क्रीडति रतिसागरावगाढः ॥४९॥

---

१. वच्चामि-प्रत्य० । २. साहुं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रमिऊण तओ सुइरं, पेच्छइ साहुं तहिं गुणसमिद्धं । गन्तूण ताण पासे, धम्मं सोऊण पडिबुद्धो ॥५०॥

दाऊण भावसुद्धं, सत्तगुणं फासुयं मुणिवराणं । संजम-तव-नियमरओ, कालगओ सुरवरो जाओ ॥५१॥

दिव्वा-ऽमलदेहधरो, सुरसोक्खं भुञ्जिऊण चिरकालं । चविओ य इहाऽऽयाओ, जम्बुद्दीवे वरपुरम्मि ॥५२॥

हरिवाहणस्स पुत्तो, जाओ गब्भे पियङ्गुलच्छीए । नामेण सीहचन्दो, सव्वकलापारओ सुहओ ॥५३॥

जिणधम्मभावियमणो, कालं काऊण वरविमाणम्मि । सिरि-कित्ति-लच्छिनिलओ, देवो जाओ महिड्डीओ ॥५४॥

तत्तो वि देवसोक्खं, भोत्तूण चुओ इहेव वेयड्ढे । कणओयरीए गब्भे, सुकण्ठपुत्तो समुप्पन्नो ॥५५॥

अह सीहवाहणो सो, अरुणपुरं भुञ्जिऊण चिरकालं । लच्छीहरस्स पासे, निक्खन्तो विमलजिणतित्थे ॥५६॥

काऊण तवमुयारं, आराहिय संजमं तवबलेणं । जाओ लन्तयकप्पे, देवो दिव्वेण रूवेणं ॥५७॥

तं अमरपवरसोक्खं, भोत्तूण चुओ महिन्दतणयाए । गब्भम्मि समावन्नो, इह जीवो पुव्वकम्मेहिं ॥५८॥

एसो ते परिकहिओ, इमस्स गब्भस्स संभवो भद्दे ! । तुह सामिणीए हेउं, सुणेहि घणविरहदुक्खस्स ॥५९॥

अञ्जनापूर्वभवचरितम् —

एसा आसि परभवे, बाला कणओयरी महादेवी । लच्छि त्ति नाम तइया, तीए सवत्ती तहिं बीया ॥६०॥

सम्मत्तभावियमई, सा लच्छी ठविऊण जिणपडिमा । अच्चेइ पययमणसा, थुणइ य थुइमङ्गलसतेहिं ॥६१॥

तो नियसवत्तीए, गाढं कणओयरीए रुट्ठाए । घेत्तूण सिद्धपडिमा, ठविया घरबाहिरुद्देसे ॥६२॥

रन्त्वा ततः सुचिरं पश्यति साधुस्तत्र गुणसमृद्धम् । गत्वा तेषां पार्श्वे धर्मं श्रुत्वा प्रतिबुद्धः ॥५०॥

दत्वा भावशुद्धं सत्त्वगुणं प्रासुकं मुनिवराणाम् । संयम-तपो नियमरतः कालगतः सुरवरो जात ॥५१॥

दिव्याऽमलदेहधरः सुरसुखं भुक्त्वा चिरकालम् । च्युतश्चेहागतो जम्बुद्वीपे वरपुरे ॥५२॥

हरिवाहनस्य पुत्रो जातो गर्भे प्रियङ्गुलक्ष्म्याः । नाम्ना सिंहचन्द्रः सकलकलापारगः सुभगः ॥५३॥

जिनधर्मभावितमनाः कालं कृत्वा वरविमाने । श्रीकीर्तिलक्ष्मीनिलयो देवो जातो महर्द्धिकः ॥५४॥

ततोऽपि देवसुखं भुक्त्वा च्युत इहैव वैताढ्ये । कनकोदर्याः गर्भे सुकण्ठपुत्रः समुत्पन्नः ॥५५॥

अथ सिंहवाहनः सोऽरुणपुरं भुक्त्वा चिरकालम् । लक्ष्मीधरस्य पार्श्वे निष्क्रान्तो विमलजिनतीर्थे ॥५६॥

कृत्वा तप उदारमाराधितसंयमं तपोबलेन । जातो लान्तककल्पे देवो दिव्येन रुपेण ॥५७॥

तदमरप्रवरसुखं भुक्त्वा च्युतो महेन्द्रतनयायाः । गर्भे समापन्न इह जीवः पूर्वकर्मभिः ॥५८॥

एष ते परिकथित तस्य गर्भस्य संभवो भद्रे ! । तव स्वामिन्याः हेतुं श्रृणु घनविरहदुःखस्य ॥५९॥

अञ्जना पूर्वभव चरित्रम् -

एषाऽऽसीत्पूर्वभवे बाला कनकोदरी महादेवी । लक्ष्मीरिति नाम तदा तस्याः सपत्नी तत्र द्वितीया ॥६०॥

सम्यक्त्वभावितमतिः सा लक्ष्मीः स्थापयित्वा जिनप्रतिमाम् । अर्चयति प्रणतमनसा स्तौति च स्तुतिमङ्गलशतैः ॥६१॥

तदा निजस्वपत्न्या गाढं कनकोदर्या रुष्ट्या । गृहीत्वा सिद्धप्रतिमा स्थापिता गृहबाह्योद्देशे ॥६२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामेण संजमसिरी, तइया अज्जा कएण भिक्खाए। नयरम्मि परिभमन्ती, पेच्छइ घरबाहिरे पडिमा ॥६३॥

मुणियपरमत्थसारा, अज्जा कणओयरिं भणइ एत्तो। भद्दे! सुणाहि वयणं, जं तुज्झ हियं च पत्थं च ॥६४॥

नरय-तिरिएसु जीवो, हिण्डन्तो निययपावपडिबद्धो। दुक्खेहि माणुसत्तं, पावइ कम्मावसेसेणं ॥६५॥

तं चेव तुमे लद्धं, माणुसजम्मं कुलं चिय विसिट्ठं। होऊण एरिसगुणा, मा कुणसु दुगुञ्छियं कम्मं ॥६६॥

जो जिण-गुरुपडिकुट्ठो, पुरिसो महिला व होइ जियलोए। सो हिण्डइ संसारे, दुक्खसहस्साइ पावेन्तो ॥६७॥

सोऊण अज्जियाए, वयणं कणओयरी सुपडिबुद्धा। ठावेइ चेइयहरे, जिणवरपडिमा पयत्तेणं ॥६८॥

जाया गिहिधम्मरया, कालगता तत्थ संजमगुणेणं। देवी होऊण चुया, उप्पन्ना अञ्जणा एसा ॥६९॥

जं बाहिरम्मि पडिमा, ठविया एयाए राग-दोसेणं। तं एस महादुक्खं, अणुहूयं [1]रायधूयाए ॥७०॥

गेण्हसु जिणवरधम्मं, बाले! संसारदुक्खनासयरं। मा पुणरवि घोरयरे, भमिहिसि भवसागरे घोरे ॥७१॥

जो तुज्झ एस गब्भो, होही पुत्तो गुणाहिओ लोए। सो विज्जाहरइड्ढि, सम्मत्तगुणं च पाविहिइ ॥७२॥

थोवदिवसेसु बाले!, दइएण समं समागमो तुज्झं। होही निस्संदेहं, भयमुव्वेयं विवज्जेहि ॥७३॥

भावेण वन्दिओ सो, समणो दाऊण ताण आसीसं। उप्पइय नहयलेणं, निययट्ठाणं गओ धीरो ॥७४॥

पलियङ्कगुहावासे, तोए उवगरण-भोयणाईयं। सव्वं वसन्तमाला, करेइ विज्जानिओगेणं ॥७५॥

नाम्ना संयमश्रीस्तदाऽऽर्या कृतेन भिक्षायाः। नगरे परिभ्रमन्ती पश्यति गृहबहिः प्रतिमा ॥६३॥

ज्ञातपरमार्थसाराऽऽर्या कनकोदरिं भणतीतः। भद्रे! श्रुणु वचनं यत्तव हितं च पथ्यं च ॥६४॥

नरक-तिर्यक्षु जीवो हिण्डमानोनिजपापप्रतिबद्धः। दुःखै र्मनुष्यत्वं प्राप्नोति कर्मावशेषेण ॥६५॥

तदेव त्वया लब्धं मनुष्यजन्म कुलमेव विशिष्टम्। भूत्वेतादृशगुणा मा कुरुष्व जुगुप्सितं कर्म ॥६६॥

यो जिन-गुरुप्रतिकृष्टः पुरुषो महिला व भवति जीवलोके। स हिण्डते संसारे दुःख सहस्राणि प्राप्नुवन् ॥६७॥

श्रुत्वाऽऽर्याया वचनं कनकोदरी सुप्रतिबुद्धा। स्थापयति चैत्यगृहे जिनवरप्रतिमां प्रयत्नेन ॥६८॥

जाता गृहिधर्मरता कालगता तत्र वा संयमगुणेन। देवी भूत्वा च्युतोत्पन्नाऽञ्जनैषा ॥६९॥

यद्बहिः प्रतिमा स्थापिताऽनया रागद्वेषेण। तदेतन्महादुःखमनुभूतं राजपुत्र्या ॥७०॥

गृहाण जिनवरधर्मं बाले! संसारदुःखनाशकरम्। मा पुनरपि घोरतरे भ्रमिष्यसि भवसागरे घोरे ॥७१॥

यस्तवैष गर्भोभविष्यति पुत्रो गुणाधिको लोके। स विद्याधरर्द्धिं सम्यक्त्वगुणं च प्राप्स्यति ॥७२॥

स्तोकदिवसै र्बाले! दयितेन समं समागमस्तव। भविष्यति निस्संदेहं भयमुद्वेगं विवर्जय ॥७३॥

भावेन वन्दितः स श्रमणो दत्वा तयोराशीषम्। उत्पत्य नभस्तलेन निजस्थानं गतो धीरः ॥७४॥

पर्यंकगुहावासे तस्या उपकरणभोजनादिकम्। सर्वं वसन्तमाला करोति विद्यानियोगेन ॥७५॥

---

१. राजदुहित्रा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं कमेण सूरो, अत्थाओ सयलकिरणपरिवारो । उत्थरिऊण पवत्तो, बहलतमो कज्जलसवण्णो ॥७६॥
ताव च्चिय संपत्तो, सीहो दढदाढकेसरारुणिओ । पज्जलियनयणजुयलो, ललन्तजीहो कयन्तो व्व ॥७७॥
तं पेच्छिऊण सीहं, दोण्णि वि भयविहलपुण्णवयणो । [1]अच्चन्तमसरणाओ, दस वि दिसाओ पलोयन्ति ॥७८॥
दट्ठुं वसन्तमाला, तिहत्थमेत्तट्ठियं गयवरारिं । पासेसु अञ्जणाए, कुरलि व्व नहङ्गणे भमइ ॥७९॥
हाहा ! हया सि मुद्धे !, पुव्वं दोहग्गविरहदुक्खेणं । बन्धवजणेण चत्ता, पुणरवि सीहेण पडिरुद्धा ॥८०॥
एसा महिन्दतणया, पवणंजयगेहिणी गुहामज्झे । सीहेण खज्जमाणी, रक्खसु वणदेवए ! तुरियं ॥८१॥
दट्ठूण गुहावासी, मणिचूलो नाम तत्थ गन्धव्वो । काऊण सरहरूवं, धाडेइ गुहाउ पञ्चमुहं ॥८२॥
सीहभयम्मि ववगए, संपडिए जीवियव्वए बाला । सयणिज्जम्मि निसण्णा, वसन्तमालाए रइयम्मि ॥८३॥
ताव च्चिय गन्धव्वो, भणिओ देवीए चित्तमालाए । सामिय ! गायसु गीयं, एयाणं सज्झसावहरं ॥८४॥
तो गाइउं पवत्तो, गन्धव्वो मणहरं सह पियाए । वरवीणागहियकरो, जिणवरथुइमङ्गलसणाहं ॥८५॥
सोऊण गीयसद्दं, महिन्दतणया वसन्तमाला य । ववगयभयाउ दोण्णि वि, अच्छन्ति तहिं गुहावासे ॥८६॥
जाए पभायसमए, नाणाविहजलय-थलयकुसुमेहिं । मुणिसुव्वयस्स चलणे, अच्चेन्ति विसुद्धभावाओ ॥८७॥
अच्छन्ति तत्थ दोण्णि वि, जिणपूया-वन्दणुज्जयमईओ । गन्धव्वो च्चिय ताओ रक्खइ निययं पयत्तेणं ॥८८॥

एवं क्रमेण सूर्योऽस्तः सकलकिरणपरिवारः । अवस्तृत्य प्रवृत्तो बहलतमः कज्जलवर्णः ॥७६॥
तावदेव संप्राप्तः सिंहो दृढदंष्ट्राकेसरारुणितः । प्रज्वलितनयनयुगलो ललज्जीह्वः कृतान्त इव ॥७७॥
तं दृष्ट्वा सिंहं द्वयपि भयविह्वलपूर्णवदने । अत्यन्तमशरणे दशापि दिशः प्रलोकेते ॥७८॥
दृष्ट्वा वसन्तमाला त्रिर्हस्तमात्रस्थितं गजवरारिम् । पार्श्वे अञ्जनायाः पक्षीणीव नभोऽगणे भ्रमति ॥७९॥
हा हा ! हताऽसि मुग्धे ! पूर्वदौर्भाग्यविरहदुःखेन । बान्धवजनेन त्यक्ता पुनरपि सिंहेन प्रतिरुद्धा ॥८०॥
एषा महेन्द्रतनया पवनञ्जयगृहिणी गुहामध्ये । सिंहेन भक्ष्यमाणा रक्ष वनदेवते ! त्वरितम् ॥८१॥
दृष्ट्वा गुहावासी मणिचूडो नाम तत्र गान्धर्वः । कृत्वा शरभरुपं निस्सारयति गुहायाः पञ्चमुखम् ॥८२॥
सिंहभये व्यगते संप्राप्ते जीवितव्ये बाला । शयनीये निषण्णा वसन्तमालया रचिते ॥८३॥
तावदेव गान्धर्वो भणितो देव्या चित्रमाल्या । स्वामिन् । गाय गीतमेतयोः साध्वसापहरम् ॥८४॥
तदा गातुं प्रवृत्तो गान्धर्वो मनोहरं सह प्रियया । वरवीणागृहीतकरो जिनवरस्तुतिमङ्गलसनाथम् ॥८५॥
श्रुत्वा गीतशब्दं महेन्द्रतनया वसन्तमाला च । व्यगतभये द्वयप्यासाते गुहावासे ॥८६॥
जाते प्रभातसमये नानाविधजलजस्थलजकुसुमैः । मुनिसुव्रतस्य चरणावर्चयतो विशुद्धभावात् ॥८७॥
आसाते तत्र द्वयपि जिनपूजावन्दनोद्यतमती । गान्धर्व एव ते रक्षति नित्यं प्रयत्नेन ॥८८॥

---

१. कंपंतसरीराओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अञ्जनायाः पुत्रप्रसूतिः-

अह अञ्जणा कयाई, वसन्तमालाए विरइए सयणे । वरदारयं पसूया, पुव्वदिसा चेव दिवसयरं ॥८९॥

तस्स पभावेण गुहा, वरतरुवरकुसुम-पल्लवसणाहा । जाया कोइलमुहला, महुयरझंकारगीयरवा ॥९०॥

घेत्तूण बालयं सा, उच्छङ्गे अञ्जणा रुयइ मुद्धा । किं वच्छ ! करेमि तुहं, एत्थारण्णे अपुण्णा हं ? ॥९१॥

एस पिया ते पुत्तय ! अहवा मायामहस्स य घरम्मि । जइ तुज्झ जम्मसमओ, होन्तो वि तओ महाणन्दो ॥९२॥

तुज्झ पसाएण अहं, पुत्तय ! जीवामि नत्थि संदेहो । पइसयणविप्पमुक्का, जूहपणट्ठा मई चेव ॥९३॥

भणइ य वसन्तमाला, सामिणि छड्डेहि परिभवं सव्वं । न य होइ अलियवयणं, जं पुव्वं मुणिवराइट्ठं ॥९४॥

अञ्जनायाः मातुलमीलनम् –

एयं ताण पलावं, सुणिऊण नहङ्गणाउ ओइण्णो । सयलपरिवारसहिओ, ताव य विज्जाहरो सहसा ॥९५॥

पेच्छइ गुहापविट्ठो, जुवईओ दोण्णि रूवकलियाओ । पुच्छइ कियालुयमणो, कत्तो सि इहाऽऽगया तुब्भे ? ॥९६॥

भणइ य वसन्तमाला, सुपुरिस ! एसा महिन्दनिवधूया । नामेण अञ्जणा वि हु, महिला पवणंजयभडस्स ॥९७॥

सो अन्नया कयाई, काऊण इमाए गब्भसंभूई । चलिओ सामिसयासं, न य केणइ तत्थ परिणाओ ॥९८॥

दिट्ठा य सासुयाए, गुरुभारा एस मूढहिययाए । काऊण दुट्ठसीला, पिउभवणं पेसिया सिग्घं ॥९९॥

अञ्जनायाः पुत्रप्रसूतिः –

अथाञ्जना कदाचिद्वसन्तमालया विरचिते शयने । वरदारकं प्रसूता पूर्वदिगिव दिवाकरम् ॥८९॥

तस्य प्रभावेन गुहा वरतरुवरकुसुमपल्लवसनाथा । जाता कोकिलमुखरा मधुकरझंकारगीतरवा ॥९०॥

गृहीत्वा बालकं सोत्सङ्गे अञ्जना रोदिति मुग्धा । किं वत्स! करोमि तवात्रारण्ये ऽपुण्याहम् ॥९१॥

एष पिता ते पुत्र ! अथवा मातामहस्य च गृहे । यदि तव जन्मसमयोऽभवदपि ततो महानन्दः ॥९२॥

तव प्रसादेनाहं पुत्र ! जीवामि नास्ति संदेहः । पतिस्वजनविप्रमुक्ता युथप्रभ्रष्टा मृगीव ॥९३॥

भणति च वसन्तमाला स्वामिनि मुञ्च परिभवं सर्वम् । न च भवत्यलिकवचनं यत्पूर्वं मुनिवरादिष्टम् ॥९४॥

अञ्जनायाः मातुलमीलनम् –

एवं तयोः प्रलापं श्रुत्वा नभोऽगनादवतीर्णः । सकलपरिवारसहितस्तावच्च विद्याधरः सहसा ॥९५॥

पश्यति गुहाप्रविष्टो युवती द्वे रुपकलिते । पृच्छति कृपालुमनाः कुत इहागते युवाम् ॥९६॥

भणति च वसन्तमाला सत्पुरुष ! एषा महेन्द्रनृपदुहिता । नाम्नाऽञ्जनाऽपि हु महिला पवनञ्जयभटस्य ॥९७॥

सोऽन्यदा कदाचित्कृत्वाऽस्यां गर्भसम्भूतिः । चलितः स्वामीसकाशं न च केनचित्तत्र परिज्ञातः ॥९८॥

दृष्टा च श्वश्र्वा गुरुभारैषा मूढहृदयया । कृत्वा दुष्टशीला पितृभवनं प्रेषिता शीघ्रम् ॥९९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तेण वि य महिन्देणं, निच्छूढा तिव्वदोसभीएणं । समयं मए पविट्ठा, एसा रण्णं महाघोरं ॥१००॥

एसा दोसविमुक्का, रयणीए अज्ज पच्छिमे जामे । वरदारयं पसूया, पलियङ्कगुहाए मज्झम्मि ॥१०१॥

एवं चिय परिकहिए, जंपइ विज्जाहरो सुणसु भद्दे ! । नामेण चित्तभाणू, मज्झ पिया कुरुवरद्दीवे ॥१०२॥

पडिसुज्जउ त्ति अहयं, सुन्दरमालाए कुच्छिसंभूओ । वरहियसुन्दरीए, भाया य महिन्दभज्जाए ॥१०३॥

मह एस भइणिधूया, बाला चिरकालदिट्ठपम्हुट्ठा । साभिन्नाणेहि पुणो, मुणिया सयणाणुराएणं ॥१०४॥

नाऊण माउलं सा रुवइ वणे तत्थ अञ्जणा कलुणं । घणदुक्खवेढियङ्गी, वसन्तमालाएसमसहिया ॥१०५॥

वारेऊण रुयन्ती, भणिओ पडिसुज्जएण गणियण्णू । नक्खत्त-करण-जोगं, कहेहि एयस्स बालस्स ॥१०६॥

सो भणइ अज्ज दियहो, विभावसु बहुलअट्ठमी य चेत्तस्स ।
समणो च्चिय नक्खत्तं, बम्भा उण भण्णए जोगो ॥१०७॥

मेसम्मि रवी तुङ्गो, वट्टइ मयरे ससी य समठाणे । आरो वसभे गमणो, कुलिरम्मि य भग्गवो तुङ्गो ॥१०८॥

गुरुसणि मोणे तुङ्गा, बुहो य कण्णंमि वट्टए उच्चो । साहेन्ति रायरिद्धि, इमस्स बालस्स जोगत्तं ॥१०९॥

सुपुरिस ! सुभो मुहुत्तो, उदओ मीणस्स आसि तव्वेलं । सव्वे गहाऽणुकूला, विद्धिट्ठाणेसु वट्टन्ति ॥११०॥

एवं महानिमित्तं, भणियं बल-भोग-रज्ज-सामिद्धी । भोत्तूण एस बालो, सिद्धिसुहं चेव पाविहिई ॥१११॥

नक्खत्तपाढयं पि य, संपूएऊण तत्थ पडिसूरो । तो भणइ भाइणेज्जी, हणुरुहनयरं पगच्छामो ॥११२॥

तेनाऽपि च महेन्द्रेण निष्काषिता तीव्रदोषभीतेन । समकं मया प्रविष्टैषाऽरण्यं महाघोरम् ॥१००॥

एषा दोषविमुक्ता रजन्यामद्य पश्चिमे यामे । वरदारकं प्रसूता पर्यंकगुहाया मध्ये ॥१०१॥

एवमेव परिकथिते जल्पति विद्याधरः श्रृणु भद्रे ! । नाम्ना चित्रभानुर्ममपिता कुरुवरद्वीपे ॥१०२॥

प्रतिसूर्यक इत्यहं सुन्दरमालायाः कुक्षि संभूतः । वरहृदयसुन्दर्या भ्राता च महेन्द्रभार्यायाः ॥१०३॥

ममैषा भगिनीदुहिता बाला चिरकालदृष्टविस्मृता । साभिज्ञानैः पुनर्ज्ञाता स्वजनानुरागेण ॥१०४॥

ज्ञात्वा मातुलं सा रोदिति वने तत्राञ्जनाकरुणम् । घनदुःखवेष्टिताङ्गी वसन्तमालायाः समसहिता ॥१०५॥

वारयित्वा रुदन्तीं भणितः प्रतिसूर्येण गणितज्ञः । नक्षत्र-करण-योगं कथयैतस्य बालस्य ॥१०६॥

स भणत्यद्य दिवसो विभावसु र्बहुलाष्टमी च चैत्रस्य । श्रवण एव नक्षत्रं ब्रह्म पुन र्भण्यते योगः ॥१०७॥

मेषे रविरुतुङ्गो वर्तते मकरे शशी च समस्थाने । आरो वृषभे गमनः कुलिरे च भार्गवस्तुङ्गः ॥१०८।

गुरुशनी मीन उत्तुङ्गा, बुधश्च कन्यायां वर्तत उच्चः । कथयन्ति राजर्द्धिमेतस्य बालस्य योग्यताम् ॥१०९॥

सत्पुरुष ! शुभोमुर्हूत उदयो मीनस्यासीत्तत्कालम् । सर्वे ग्रहा अनुकूला वृद्धिस्थानेषु वर्तन्ते ॥११०॥

एवं महानिमित्तं भणितं बल-भोग-राज्य समृद्धिम् । भुक्तवैष बालः सिद्धिसुखमेव प्राप्स्यति ॥१११॥

नक्षत्रपाठकमपि च सं पूजयित्वा तत्र प्रतिसूर्यः । तदा भणति भागिनेयीं हनुरुहनगरं प्रगच्छामः ॥११२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो निग्गया गुहाओ, ठाणनिवासिं सुरं खमावेउं । वच्चइ नहङ्गणेणं, वरकणयविमाणमारूढा ॥११३॥

उच्छङ्गवट्ठियतणू, बालो दट्ठूण खिङ्खिणीजालं । मीणो व्व समुच्छलिओ, पडिओ गिरिणो सिलापट्टे ॥११४॥

दट्ठूण सुयं पडियं, रोयन्ती भणइ अञ्जणा कलुणं । दाऊण निही मज्झं, अच्छीणि पुणो अवहियाणि ॥११५॥

तो सा महिन्दतणया, समयं पडिसुज्जएण अवइण्णा । हाहाकारमुहरवा, पेच्छइय सिलायले बालं ॥११६॥

निरुवहयङ्गोवङ्गो, गहिओ बालाए परमतुट्ठाए । पडिसुज्जएण वि तओ, पसंसिओ हरिसियमणेणं ॥११७॥

जाणविमाणारूढा, समयं पुत्तेण अञ्जणा तुरियं । बहुतूरमङ्गलेहिं, पवेसिया हणुरुहं नयरं ॥११८॥

जम्मूसवो महन्तो, तस्स कओ खेयरेहि तुट्ठेहिं । देवेहि देवलोए, नज्जइ इन्दे समुप्पन्ने ॥११९॥

बालत्तणम्मि जेणं, सेलो आचुण्णिओ य पडिएणं । तेणं चिय सिरिसेलो, नामं पडिसुज्जएण कयं ॥१२०॥

हणुरुहनयरम्मि जहा, सक्कारो पाविओ अहमहन्तो । हणुओ त्ति तेण नामं, बीयं ठवियं गुरुयणेणं ॥१२१॥

सव्वजणाणन्दयरो, तम्मि पुरे सुरकुमारसमरूवो । अच्छइ परिकीलन्तो, सुहेण जणणीए हियइट्ठो ॥१२२॥

एव नरा सुणिऊण महन्तं, पुव्वकयं बहुदुक्खविवायं ।
संजमसुट्ठियउज्जुयभावा, होह सया विमले जिणधम्मे ॥१२३॥

॥ इय पउमचरिए हणुयसंभवविहाणो नाम सत्तरसमो उद्देसओ समत्तो ॥

ततो निर्गता गुहात्स्थाननिवासिनं सुरं क्षमयित्वा । गच्छति नभोऽङ्गनेनः वरकनकविमानमारुढा ॥११३॥

उत्सङ्गावस्थिततनुः बालो दृष्ट्वा किंकिणीजालम् । मीन इव समुच्छलितः पतितो गिरेः शिलापट्टे ॥११४॥

दृष्ट्वा च सुतं पतितं रुदन्ती भणत्यञ्जना करुणम् । दत्वा निधिं ममाऽक्षिणि पुनरेवहितानि ॥११५॥

ततः सा महेन्द्रतनया समकं प्रतिसूर्येणावतीर्णा । हाहाकारमुखरवा पश्यति च शिलातले बालम् ॥११६॥

निरुपहताङ्गोपाङ्गो गृहीतो बालया परमतुष्टया । प्रतिसूर्येणापि ततः प्रशंसितो हर्षितमनेन ॥११७॥

यानविमानारुढा समकं पुत्रेणाञ्जना त्वरितम् । बहुतूर्यमङ्गलैः प्रवेशिता हनुरुहं नगरम् ॥११८॥

जन्मोत्सवो महांस्तस्य कृतः खेचरैस्तुष्टैः । देवै र्देवलोके ज्ञायत इन्द्रे समुत्पन्ने ॥११९॥

बालत्वे येन शैल आचूर्णितश्च पतितेन । तेनैव श्रीशैलो नाम प्रतिसूर्येण कृतम् ॥१२०॥

हनुरुहनगरे यथा सत्कारः प्रापितोऽतिमहान् । हनुमानिति तेन नाम द्वितीयं स्थापितं गुरुजनेन ॥१२१॥

सर्वजनानन्दकरस्तस्मिन्पुरे सुरकुमारसमरुपः । आस्ते परिक्रीडन् सुखेन जनन्या हृदयेष्टः ॥१२२॥

एवं नरा श्रुत्वा महत्पूर्वकृतं बहुदुःखविपाकम् । संयमसुस्थितर्जुभावा भवत सदा विमले जिनधर्मे ॥१२३॥

॥ इति पद्मचरित्रे हनुमत् संभव विधानो नाम सप्तदशोद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१८. पवणंजय-अंजणासुन्दरीसमागमविहाणं

पवनञ्जयेन अञ्जनाया गवेषणा—

एवं ते मगहाहिव !, कहियं सिरिसेलजम्मसंबन्धं । एत्तो सुणाहि संपइ, पवणंजयकारणं सव्वं ॥१॥

पवणंजएण एत्तो, गन्तुं लङ्काहिवं पणमिऊणं । लद्धाएसेणं चिय, वरुणेण समं कयं जुज्झं ॥२॥

संगामम्मि पवत्ते, वरुणं उवउट्ठिऊण पवणगई । कारेइ संधिसमयं, जलकन्तो दूसणं मुयइ ॥३॥

लङ्काहिवेण एत्तो, सम्माणेऊण तत्थ पवणगई । वीसज्जिओ य वच्चइ, सपुरं गयणेण तूरन्तो ॥४॥

पविसइ नियनयरं, गुरूण काऊण सहरिसो विणयं । कन्तासमूसुयमणो, अल्लीणो अञ्जणाभवणं ॥५॥

तत्थ भवणे निविट्ठो, संभासेऊण परियणं सयलं । कन्तं अपेच्छमाणो, पुच्छइ पवणंजओ मित्तं ॥६॥

परिमुणियकारणेणं, सिट्ठं मित्तेण तुज्झ सा महिला । नीया महिन्दनयरं, तत्थऽच्छइ पिइहरे बाला ॥७॥

एवं च कहियमेत्ते, महिन्दनयरं गओ पवणवेगो । दट्ठूण नियससुरं, रियइ[1] तओ अञ्जणाभवणं ॥८॥

तत्थ वि य अपेच्छन्तो, कन्ताविरहग्गितवियसव्वङ्गो । भवणेक्कवरतरुणी[2], पुच्छइ कत्तो महं भज्जा ? ॥९॥

तीए वि तस्स सिट्ठं, सा महीला तुज्झ गब्भदोसेणं । अववायजणियदुक्खा, गुरूहि चत्ता गया रण्णं ॥१०॥

---

१८. पवनञ्जयाञ्जनासुन्दरीसमागम विधानम्

पवनञ्जयेन अञ्जनाया गवेषणा -

एवं ते मगधाधिप ! कथितं श्रीशैलजन्मसम्बन्धम् । इत: श्रुणु संप्रति पवनञ्जयकारणं सर्वम् ॥१॥

पवनञ्जयेनेतो गत्वा लङ्काधिपं प्रणम्य । लब्धादेशेनैव वरुणेन समं कृतं युद्धम् ॥२॥

संग्रामे प्रवृत्ते वरुणमुपोत्थाय पवनगति: । कारयति संधिसमयं जलकान्तो दूषणं मुञ्चति ॥३॥

लङ्काधिपेनेत: सन्मान्य तत्र पवनगति: । विसर्जितश्च व्रजति स्वपुरं गगनेन त्वरन् ॥४॥

प्रविशति निजनगरं गुरूणां कृत्वा सहर्षो विनयम् । कान्तासमुत्सुकमना आलीनोऽञ्जनाभवनम् ॥५॥

तत्र भवने निविष्ट: संभाष्य परिजनं सकलम् । कान्तामपश्यन् पृच्छति पवनञ्जयो मित्रम् ॥६॥

परिज्ञातकारणेन शिष्टं मित्रेण तव सा महिला । नीता महेन्द्रनगरे तत्रास्ति पितृगृहे बाला ॥७॥

एवं च कथितमात्रे महेन्द्रनगरं गत:पवनवेगो । दृष्ट्वा निजश्वसुरमिर्यति ततोऽञ्जनाभवनम् ॥८॥

तत्रापि चापश्यन्कान्ताविरहाग्नितप्तसर्वाङ्ग: । भवनैकवरतरुणिं पृच्छति कुतो मम भार्या ? ॥९॥

तयाऽपि तस्य शिष्टं सा महिला तव गर्भदोषेण । अपवादजनितदु:खा गुरुभिस्त्यक्ता गतारण्यम् ॥१०॥

---

१. इर्यत्ति-गच्छति । २. तरुणि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुणिऊण वयणमेयं, पवणगई दुक्खदूमियसरीरो । छिद्देण य निग्गन्तुं, भमइ य [1]कन्ता गवेसन्तो ॥११॥

परिहिण्डऊण वसुहं, अलहन्तो अञ्जणाए पडिवत्ती । गच्छसु आइच्चपुरं, मित्तं पवणंजओ भणइ ॥१२॥

एयं चिय संबन्धं, गुरूण सव्वं कहेहि गन्तूण । अहयं पुण पुहइयले, भमामि [2]कन्ता गवेसन्तो ॥१३॥

जइ तं महिन्दतणयं, एत्थ न पेच्छामि परिभमन्तो हं । तो निच्छएण मरणं, मित्त पइन्ना महं एसा ॥१४॥

तं मोत्तूण पहसिओ, आइच्चपुरं खणेण संपत्तो । पवणंजयसंबन्धं, गुरूण सव्वं निवेएइ ॥१५॥

पवनञ्जयस्य विलपनम् —

पवणंजओ वि एत्तो, आरुहिउं गयवरं गयणगामी । परिहिण्डिऊण वसुहं, कुणइ पलावं तओ विमणो ॥१६॥

सोगायवसंतत्ता, मिणालदलकमलकोमलसरीरा । हरिणि व्व जूहभट्ठा, कत्तो व गया महं कन्ता ? ॥१७॥

गुरुभारखेइयङ्गी, चलणेहिं दब्भसूइभिन्नेहिं । गमणं अणुच्छहन्ती, किं खइया दुट्ठसत्तेणं ? ॥१८॥

किं वा असण-तिसाए, बाहिज्जन्ती [3]मुया अरण्णम्मि ? । किं खेयरेण केणइ, अवहरिया सा महं कन्ता ? ॥१९॥

एवं बहुप्पयारं, पवणगई विलविऊण दीणमुहो । [4]भूयरवं नाम वणं, संपत्तो सो गवेसन्तो ॥२०॥

तत्थ वि य अपेच्छन्तो, महिलं पवणंजओ विगयहासो । तो सुमरिउं पइन्नं, सत्थेसु समं मुयइ [5]हत्थी ॥२१॥

जं परिहवो महन्तो, तुज्झ कओ वाहणाइसत्तेणं । तं खमसु मज्झ गयवर ! विहरहसु रण्णे जहिच्छाए ॥२२॥

श्रुत्वा वचनमेतत्पवनगतिर्दु:खदवितशरीर: । छिद्रेण च निर्गत्य भ्रमति च कान्तां गवेषयन् ॥११॥

परिहिण्ड्य वसुधामलभमानोऽञ्जनाया: प्रतिपत्ति: । गच्छादित्यपुरं मित्रं पवनञ्जयो भणति ॥१२॥

एवमेव सम्बन्धं गुरूणां सर्वं कथय गत्वा । अहं पुन: पृथिवीतले भ्रमामि कान्तां गवेषयन् ॥१३॥

यदि तां महेन्द्रातनयामत्र न पश्यामि परिभ्रमन्नहम् । तदा निश्चयेन मरणं मित्र ! प्रतिज्ञा ममैषा ॥१४॥

तं मुक्त्वा प्रहसित आदित्यपुरं क्षणेन संप्राप्त: । पवनञ्जयसंबंधं गुरूणां सर्वं निवेदयति ॥१५॥

पवनञ्जयस्य विलपनम् -

पवनञ्जयोऽपीत आरुह्य गजवरं गगनगामी । परिहिण्ड्य वसुधां करोति प्रलापं ततो विमना: ॥१६॥

शोकातपसंतप्ता म्लानदलकमलकोमलशरीरा । हरिणीव यूथभ्रष्टा कुतो वा गता मम कान्ता ? ॥१७॥

गुरुभारखेदिताङ्गी चरणाभ्यां दर्भसूचिभिन्न भ्याम् । गमनमनुत्सहन्ती किं खादिता दुष्टसत्वेन ? ॥१८॥

किं वा अशन-तृड्भ्यां बाधमाना मृताऽरण्ये ? । किं खेचरेण केनचिदपहृता सा मम कान्ता ? ॥१९॥

एवं बहुप्रकारं पवनगति विलप्य दीनमुख: । भूतरवं नाम वनं संप्राप्त: स गवेषयन् ॥२०॥

तत्रापि चापश्यन्महिलां पवनञ्जयो विगतहास्य: । तत: स्मृत्वा प्रतिज्ञां शस्त्रै: समं मुञ्चति हस्तिनम् ॥२१॥

यत्परिभवो महांस्तवकृतो वहनातिसक्तेन । तत्क्षमस्व मम गजवर ! विहरारण्ये यथेच्छया ॥२२॥

१-२. कंतं-प्रत्य० । ३. मया-प्रत्य० । ४. भूयवरं-प्रत्य० । ५. हत्थि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं चिय वोलणा, रयणी पवणंजयस्स तम्मि वणे । जं पिउणा तस्सकयं, तं मगहवई सुणसु एत्तो ॥२३॥

पवणंजयवुत्तन्ते, मित्तेण निवेइए गुरूण तओ । सव्वो सयण-परियणो, जाओ अइदुक्खिओ विमणो ॥२४॥

सुयसोगगग्गरगिरा, केउ (कित्ति) मई भणइ पहसियं एत्तो । पुत्तं मोत्तूण ममं, एगागी किं तुमं आओ ? ॥२५॥

सो भणइ देवि ! तेणं, अहयं संपेसिओ इहं तुरिओ । विरहभयदुक्खिएणं, काऊण इमं पइन्नं तु ॥२६॥

जइ तं एत्थ [1]वरतणू, न य हं पेच्छामि सोमससिवयणं । ता मज्झ एत्थ मरणं, होही भणियं तुह सुतेणं ॥२७॥

सुणिऊण वयणमेयं, केउ (कित्ति) मई मुच्छिया समासत्था ।
जुवईहिं संपरिवुडा, कुणइ पलावं तओ कलुणं ॥२८॥

अमुणियकज्जाए मए, पावाए एरिसं कयं कम्मं । जीवस्स वि संदेहो, जेण य पुत्तस्स मे जाओ ॥२९॥

एयं आइच्चपुरं, आरामुज्जाण-काणणसमिद्धं । मह पुत्तेण विरहियं, न देइ सोहं अरण्णं व ॥३०॥

संठाविऊण महिलं, पल्हाओ निग्गओ पुरवराओ । पुत्तस्स मग्गणट्ठे, पुरओ च्चिय पहसियं काउं ॥३१॥

सव्वे वि खेयरिन्दा, वाहरिया उभयसेढिवत्थव्वा । सिग्घं चिय संपत्ता, पल्हायनराहिवसयासं ॥३२॥

हिण्डन्ति गवेसन्ता, पवणगइं ते समन्तओ पुहइं । पडिसुज्जएण दिट्ठा, दूया पल्हायनिवतणया ॥३३॥

परिपुच्छिएहि सिट्ठं, पवणंजयकारणं अपरिसेसं । सोऊण अञ्जणा वि य, अहिययरं दुक्खिया जाया ॥३४॥

रोवन्ती भणइ तओ, हा नाह ! कओ गओ अपुण्णाए । बहुदुक्खभाइणीए, अलद्धसुहसंगमासाए ? ॥३५॥

एवमेव व्यतीता रजनी पवनञ्जयस्य तस्मिन् वने । यत्पित्रातस्य कृतं तन्मगधपते श्रुण्वितः ॥२३॥

पवनञ्जयवृतान्ते मित्रेण निवेदिते गुरुणां ततः । सर्वः स्वजनपरिजनो जातोऽतिदुःखितो विमनाः ॥२४॥

सुतशोकगद्गदिरा कीर्तिमती भणति प्रहसितमितः । पुत्रं मुक्त्वा ममैकाकिनं किं त्वमायातः ? ॥२५॥

स भणति देवि तेनाहं संप्रेषित इह त्वरितः । विरहभयदुःखितेन कृत्वेमां प्रतिज्ञां तु ॥२६॥

यदि तामत्र वरतनुं न चाहं पश्यामि सौम्यशशिवदनाम् । ततो ममात्र मरणं भविष्यति भणितं तव सुतेन ॥२७॥

श्रुत्वा वचनमेतत्कीर्तिमती मुर्च्छिता समाश्वास्ता । युवतिभिः संपरिवृता करोति प्रलापं ततः करुणम् ॥२८॥

अमुणितकार्यया मया पापयेतादृशं कृतं कर्म । जीवस्यापि संदेहो येन च पुत्रस्य मे जातः ॥२९॥

एतदादित्यपुरमारामोद्यानकाननसमृद्धम् । मम पुत्रेण विरहितं न ददाति शोभामरण्यमिव ॥३०॥

संस्थाप्य महिलां प्रह्लादो निर्गतः पुरवरात् । पुत्रस्य मार्गणार्थे पुरत एव प्रहसितं कृत्वा ॥३१॥

सर्वेऽपि खेचरेन्द्रा व्याहृता उभयश्रेणिवास्तव्याः । शीघ्रमेव संप्राप्ताः प्रह्लादनराधिपसकाशम् ॥३२॥

हिण्डन्ते गवेषयन्तः पवनगतिं ते समन्ततः पृथिवीम् । प्रतिसूर्येण दृष्टा दूताः प्रह्लादनृपसत्काः ॥३३॥

परिपृष्टैः शिष्टं पवनञ्जयकारणमपरिशेषम् । श्रुत्वाऽञ्जनाऽपि चाधिकतरं दुःखिता जाता ॥३४॥

रुदन्ती भणति ततो हा नाथ! कुतो गतो ऽपुण्यया । बहुदुःखभागिन्याऽलब्धसुखसंगमाशया ? ॥३५॥

---

१. वरतणुं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिसुज्जओ वि एत्तो, आसासेऊण [1] अञ्जणा तुरियं । उप्पइओ गयणयले, पेच्छइ विज्जाहरे सव्वे ॥३६॥

अह ते गवेसमाणा, भूयारण्णं वणं समणुपत्ता । पेच्छन्ति तत्थ हत्थिं, पवणंजयसन्तियं मत्तं ॥३७॥

दट्ठूण गयवरं तं, सव्वे विज्जाहरा सुपरितुट्ठा । जंपन्ति एक्कमेक्कं, पवणगई एत्थ निक्खुत्तं ॥३८॥

अञ्जणगिरिसमसरिसो, सियदन्तो चडुलचलणगइगमणो । पासेसु परिभमन्तो, रक्खइ सामी सुभिच्चो व्व ॥३९॥

दट्ठूण पवणवेगं, ओइण्णा खेयरा नहयलाओ । वारेइ अल्लियन्ते, तस्स समीवं गयवरो सो ॥४०॥

काऊण वसे हत्थिं, पवणसमीवम्मि खेयरा पत्ता । पेच्छन्ति अचलियङ्गं, मुणि व्व जोगं समारूढं ॥४१॥

आलिङ्गिऊण पुत्तं, पल्हाओ रुयइ बहुविहपलावं । हा वच्छ ! महिलियाए, कएण दुक्खं इमं पत्तो ॥४२॥

परिवज्जियमाहारं, कयमोणं मरणनिच्छिउच्छाहं । नाऊण साहइ फुडं, पडिसूरो अञ्जणापगयं ॥४३॥

एत्तो कुमार ! निसुणसु, संझागिरिमत्थए मुणिवरस्स । उप्पन्नं नाणवरं, नामेण अणन्तविरियस्स ॥४४॥

तं वन्दिऊण समणं, आगच्छन्तेण तत्थ रयणीए । पलियङ्कगुहाए मए, रोवन्ती अञ्जणा दिट्ठा ॥४५॥

परिपुच्छिया य तीए, सिट्ठं निव्वासकारणं सव्वं । आसासिया मए च्चिय, सयणसिणेहं वहन्तेणं ॥४६॥

तद्दिवसं चिय तीए, जाओ पुत्तो सुरूवलायण्णो । दिव्वविमाणारूढो, निज्जन्तो महियले पडिओ ॥४७॥

ओइण्णो च्चिय सहसा, गयणाओ अञ्जणाए समसहिओ । पेच्छामि बालयं तं, पडियं गिरिकन्दरुद्देसे ॥४८॥

प्रतिसूर्योऽपीत आश्वास्याञ्जनां त्वरितम् । उत्पतितो गगनतले पश्यति विद्याधरान् सर्वान् ॥३६॥

अथ ते गवेषयन्तो भूतारण्यं वनं समनुप्राप्ताः । पश्यन्ति तत्र हस्तिनं पवनञ्जयसत्कं मत्तम् ॥३७॥

दृष्ट्वा गजवरं तं सर्वे विद्याधराः सुपरितुष्टाः । जल्पन्त्येकैकं पवनगतिरत्र निश्चितम् ॥३८॥

अञ्जनगिरिसमसदृशः श्वेतदन्तश्चटूलचरणगतिगमनः । पार्श्वे परिभ्रमन्रक्षति स्वामिनं सुभृत्य इव ॥३९॥

दृष्ट्वा पवनवेगमवतीर्णाः खेचरा नभस्तलात् । वारयत्युपसर्पस्तस्य समीपं गजवरः सः ॥४०॥

कृत्वा वशे हस्तिनं पवनसमीपे खेचराः प्राप्ताः । पश्यन्त्यचलिताङ्गं मुनिमिव योगं समारुढम् ॥४१॥

आलिङ्ग्य पुत्रं प्रह्लादो रोदिति बहुविधप्रलापम् । हा वत्स! महिलाया कृतेन दुःखमिदं प्राप्तः ॥४२॥

परिवर्जितमाहारं कृतमौनं मरणनिश्चितोत्साहम् । ज्ञात्वा कथयति स्फूटं प्रतिसूर्यो ऽञ्जनावगतम् ॥४३॥

इतः कुमार ! निःश्रुणु संध्यागिरिमस्तके मुनिवरस्य । उत्पन्नं ज्ञानवरं नाम्नानन्तवीर्यस्य ॥४४॥

तं वन्दित्वा श्रमणमागच्छता तत्र रजन्याम् । पर्यंकगुहायां मया रुदन्ती अञ्जना दृष्टा ॥४५॥

प्रतिपृच्छिता च तया शिष्टं निर्वासकारणं सर्वम् । आश्वासिता मयैव स्वजनस्नेहं वहता ॥४६॥

तद्दिवसमेव तस्या जातः पुत्रः सुरुपलावण्यः । दिव्यविमानारुढो नयन्महितले पतितः ॥४७॥

अवतीर्ण एव सहसा गगनादञ्जनया समसहितः । पश्यामि बालकं तं पतितं गिरिकन्दरोद्देशे ॥४८॥

---

१. अञ्जणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संचुण्णिओ य सेलो, सहसा बालेण पडियमेत्तेणं । तेणं चिय सिरिसेलो, नामं से कयं कुमारस्स ॥४९॥
सहियाए समं बाला, गहियसुया आयरेण लीलाए । नीया हणुरुहनयरं, तत्थ पमोओ कओ विउलो ॥५०॥
तत्तो य हणुरुहपुरे, जेणं संवड्ढिओ य सो बालो । हणुओ त्ति तेण नामं, बीयं चिय पायडं जायं ॥५१॥
एसा ते परिकहिया, समयं पुत्तेण मह पुरे बाला । अच्छइ महिन्दतणया, मा अन्नमणं तुमं कुणसु ॥५२॥
सुणिऊण वयणमेयं, चलिओ पवणंजओ परमतुट्ठो । विज्जाहरेहि समयं, हणुरुहनयरं समणुपत्तो ॥५३॥
विज्जाहरेहि परमो, तत्थेव कओ समागमाणन्दो । बहुखाण-पाण-भोयण-नड-नट्टरमन्तअइसोहो ॥५४॥
गमिऊण दोण्णि मासे, तत्थ गया खेयरा नियपुराइं । पवणंजओ वि अच्छइ, तम्मि पुरे अञ्जणासहिओ ॥५५॥
तत्थेव य हणुमन्तो संपत्तो जोव्वणं सह कलासु । साहियविज्जो य पुणो जाओ बल-विरिय संपन्नो ॥ ५६ ॥
पुत्तेण महिलियाए, सहिओ पवणंजओ हणुरुहम्मि । अच्छइ भोगसमिद्धिं, भुञ्जन्तो सुरवरो चेव ॥५७॥

पवणगइविओगे अञ्जणासुन्दरीए, परभवजणियं जं पावियं तिव्वदुक्खं ।
हणुयभवसमूहं जे सुणन्तीह तुट्ठा, विमलकयविहाणा ते हु पावन्ति सोक्खं ॥५८॥

॥ इय पउमचरिए पवणंजयञ्जणासुन्दरीसमागमविहाणो नाम अट्ठारसमो उद्देसओ समत्तो ॥

संचूर्णितश्च शैलः सहसा बालेन पतितमात्रेण । तेनैव श्रीशैलोनाम तस्य कृतं कुमारस्य ॥४९॥
सख्या समं बाला गृहीतसुताऽऽदरेण लीलया । नीता हनुरुहनगरं तत्र प्रमोदः कृतो विपुलः ॥५०॥
ततश्च हनुरुहपुरे येन संवर्धितःस बालः । हनुमानिति तेन नाम द्वितीयमेव प्रकटं जातम् ॥५१॥
एषा ते परिकथिता समकं पुत्रेण मम पुरे बाला । आस्ते महेन्द्रतनया मान्यमनस्त्वं कुरु ॥५२॥
श्रुत्वा वचनमेतच्चलितः पवनञ्जयः परमतुष्टः । विद्याधरैः समकं हनुरुहनगरं समनुप्राप्तः ॥५३॥
विद्याधरैः परमस्तत्र कृतः समागमनानन्दः । बहुखान-पान-भोजन-नट-नाट्यरममाणातिशोभः ॥५४॥
गमयित्वा द्वौ मासौ तत्र गताः खेचरा निजपुराणि । पवनञ्जयोऽप्यास्ते तस्मिन्पुरे ऽञ्जनासहितः ॥५५॥
तत्रैव च हनुमान्संप्राप्तो यौवनं सह कलाभिः । साधितविद्यश्च पुन र्जातो बल-वीर्यसंपन्नः ॥५६॥
पुत्रेण महिलया सहितः पवनञ्जयो हनुरुहे । आस्ते भोगसमृद्धिं भुञ्जन् सुरवर इव ॥५७॥
पवनगतिवियोगे ऽञ्जनासुन्दर्या परभवजनितं यत्प्राप्तं तीव्र दुःखम् ।
हनुमान्भवसमुहं ये श्रुण्वन्तीह तुष्टा विमलकृतविधानास्ते हु प्राप्नुवन्ति सुखम् ॥

॥ इति पद्मचरित्रे पवनञ्जयाञ्जनासुन्दरिसमागमविधानो नामाष्टादशम उद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

१९. वरुणपराजय-रावणरज्जविहाणं

रावणस्य वरुणेन सह सङ्ग्रामः –

अह रावणो वि दीहं, कोहभरुव्वहणदूमियसरीरो । वरुणस्स विग्गहत्थे, मेलेई खेयरे सव्वे ॥१॥

किक्किन्धिपुरनिवासी, पायालङ्कारपुरवरे जे य । रहनेउरवत्थव्वा, सव्वे विज्जाहरा मिलिया ॥२॥

अह रावणेण दूओ, सिग्घं संपेसिओ हणुरुहम्मि । गन्तूण सामिवयणं, कहेइ पडिसूर-पवणाणं ॥३॥

सुणिऊण दूवयणं, गमणसमुच्छाहनिच्छियमईया । हणुयस्स निरूवणं ते, करेन्ति रज्जाभिसेयस्स ॥४॥

जणिओ य तूरसद्दो, पडुपडह-गभीरभेरिनिग्घोसो । मन्ती वि कलसहत्था, हणुयस्स अवट्ठिया पुरओ ॥५॥

परिपुच्छिया य तेणं, साहह किं एरिसं इमं कज्जं ? । मन्तीहि वि परिकहियं, कीरइ रज्जाभिसेओ ते ॥६॥

पवणंजएण भणिओ, पुत्तय ! सद्दाविया दणुवईणं । अम्हेहि सामिकज्जं, [1]लङ्का गन्तूण कायव्वं ॥७॥

अत्थि रसायलनयरे, वरुणो नामेण तस्स पडिसत्तू । पुत्तसयबलसमत्थो, अइचण्डो दुज्जओ समरे ॥८॥

[2]सुणिऊण वयणमेयं, हणुमन्तो भणइ विणयनमियङ्गो । सन्तेण मए तुज्झं, न य जुत्तं रणमुहं गन्तुं ॥९॥

भणिओ पवणगईणं, पुत्तय ! बालो महारणे घोरे । रुट्ठाण भडाण तुमं, अज्ज वि वयणं न पेच्छाहि ॥१०॥

---

१९. वरुणपराजय-रावणराज्यविधानम्

अथ रावणोऽपि दीर्घं क्रोधभरोद्वहनदवितशरीरः । वरुणस्य विग्रहार्थे मेलयति खेचरान् सर्वान् ॥१॥

किष्किन्धिपुरनिवासी पाताललङ्कापुरवरे ये च । रथनूपुरवास्तव्याः सर्वे विद्याधरा मिलिताः ॥२॥

अथ रावणेन दूतः शीघ्रं संप्रेषितो हनुरुहपुरे । गत्वा स्वामिवचनं कथयति प्रतिसूर्य-पवनयोः ॥३॥

श्रुत्वा दूतवचनं गमनसमुत्साहनिश्चितमतिः । हनुमतो निरुपणं तौ कुरुतो राज्याभिषेकस्य ॥४॥

जनितश्च तूर्यशब्दः पटुपटह-गम्भीरभेरिनिर्घोषः । मन्त्रिणोऽपि कलशहस्ता हनुमतोऽवस्थिताः पुरतः ॥५॥

परिपृष्टाश्च तेन कथयत किमेतादृशमिदं कार्यम् ? । मन्त्रिभिरपि परिकथितं क्रियते राज्याभिषेकस्ते ॥६॥

पवनञ्जयेन भणितः पुत्र! शब्दायिता दनुपतिना । अस्माभिस्स्वामिकार्यं लङ्कां गत्वा कर्तव्यम् ॥७॥

अस्ति रसातलनगरे वरुणो नाम्ना तस्य प्रतिशत्रुः । पुत्रशतबलसमर्थोऽति चण्डो दुर्जयः समरे ॥८॥

श्रुत्वा वचनमेतद्धनुमान्भणति विनयनताङ्गः । सति मयि तव न च युक्तं रणमुखं गन्तुम् ॥९॥

भणितः पवनगतिना पुत्र! बालो महारणे घोरे । रुष्टानां भटानां त्वमद्यापि वदनं नापश्यः ॥१०॥

---

१. लंकं-प्रत्य० । २. सोऊण-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणइ तओ सिरिसेलो, किं ताय ! वएण कायरस्स रणे ? । बालो वि हु पञ्चमुहो, मत्तगइन्दे खयं नेइ ॥११॥
वारिज्जन्तो वि बहुं, गमणग्गाहं जया न छड्डेइ । [1]अणुमन्निओ कुमारो, गुरूण ताहे च्चिय पयट्टो ॥१२॥
ण्हाओ [2]कयबलिकम्मो, आपुच्छेऊण गुरुयणं सव्वं । आरुहिय वरविमाणं, चलिओ [3]लङ्कां सह बलेणं ॥१३॥
जलवीइपव्वओवरि, रत्तिं गमिऊण उग्गए सूरे । पेच्छन्तो सलिलनिहिं, पइसइ लङ्कापुरिं हणुओ ॥१४॥
साहणकयपरिहत्थो, सव्वालङ्कारभूसियसरीरो । निसियरजणेण दिट्ठो, हणुमन्तो सुरकुमारो व्व ॥१५॥
एवं दसाणणसभं, हणुओ पविसरइ रयणविच्छुरिओ । सामन्तकयाडोवो, अणेयकुसुमच्चणविहाणो ॥१६॥
मत्तगयलीलगामी, पणमइ लङ्काहिवं पवणपुत्तो । तेण वि संसभमेणं, अब्भुट्ठेऊण उवगूढो ॥१७॥
दिन्नासणे निविट्ठं, पुच्छइ हणुयं दसाणणो कुसलं । कुणइ य सम्माणवरं, अइगरुयं दाणविभवेणं ॥१८॥
एवं समत्थसाहण-सहिओ लङ्काहिवो पुरवरीए । रणपरिहत्थुच्छाहो, विणिग्गओ [4]वरुणपुरहुत्तो ॥१९॥
विज्जाए सायरवरं, भेत्तूण य वरुणसन्तियं नयरं । संपत्तो च्चिय सहसा, सन्नाहकयङ्गरायबलो ॥२०॥
सोऊण रावणं सो, समागयं तत्थ सव्वबलसहिओ । सन्नद्ध-बद्ध-कवओ, विणिग्गओ अहिमुहो वरुणो ॥२१॥
वरुणस्स सुयाण सयं, अब्भिट्टं रक्खसाण संगामे । सर-सत्ति-खग्ग-मोग्गर-आउहविच्छूढघाओहं ॥२२॥
वरुणसुएहि रणमुहे, निद्दयपहरेहि रक्खसाणीयं । भग्गं दट्ठूण सयं, समुट्ठिओ रावणो तुरियं ॥२३॥

भणति ततः श्रीशैलः किं तात ! वयेन कातरस्य रणे ? । बालोऽपि खलु पञ्चमुखो मत्तगजेन्द्रान्क्षयं नयति ॥११॥
वार्यमाणोऽपि बहु गमनाग्रहं यदा न मुञ्चति । अनुमानितः कुमारो गुरुणा तदैव प्रवृत्तः ॥१२॥
स्नातः कृतबलिकर्माऽऽपृच्छय गुरुजनं सर्वम् । आरुह्य वरविमानं चलितो लङ्कां सह बलेन ॥१३॥
जलवीचीपर्वतोपरि रात्रिं गमयित्वोद्गते सूर्ये । प्रेक्षमाणः सलिलनिधिं प्रविशति लङ्कापुरिं हनुमान् ॥१४॥
साधनकृतदक्षः सर्वालङ्कारभूषितशरीरः । निशाचरजनेन दृष्टो हनुमान् सुरकुमार इव ॥१५॥
एवं दशाननसभां हनुमान् प्रविशति रत्नविच्छूरितः । सामन्तकृताटोपोऽनेककुसुमार्चनविधानः ॥१६॥
मत्तगजलीलागामी प्रणमति लङ्काधिपं पवनपुत्रः । तेनापि ससंभ्रमेणाभ्युत्थायोपगूढम् ॥१७॥
दत्तासने निविष्टं पृच्छति हनुमन्तं दशाननो कुशलम् । करोति च सन्मानवरमतिगुरुकं दानविभवेन ॥१८॥
एवं समस्तसाधनसहितो लङ्काधिपः पूरवर्याः । रणपरिपूर्णोत्साहो विनिर्गतो वरुणपुराभिमुखः ॥१९॥
विद्यया सागरवरं भित्वा च वरुणसत्कं नगरम् । संप्राप्त एव सहसा सन्नाहकृताङ्गरागबलः ॥२०॥
श्रुत्वा रावणं स समागतं तत्र सर्वबलसहितः । सन्नद्ध-बद्ध-कवचो विनिर्गतोऽभिमुखो वरुणः ॥२१॥
वरुणस्य सुतानां शतं प्रवृत्तं राक्षसानां संग्रामे । शर-शक्ति-खड्ग-मुद्गरायुधविक्षिप्तघातौघम् ॥२२॥
वरुणसुतै रणमुखे निर्दयप्रहारै राक्षसानीकम् । भग्नं दृष्ट्वा स्वयं समुत्थितो रावणस्त्वरितम् ॥२३॥

---

१. अह मन्निओ कुमारो गुरुहिं-प्रत्य० । २. कयपरिकम्मो-मु० । ३. लंकं-प्रत्य० । ४. वरुणपुराभिमुखम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जुज्झन्तो दहवयणो, वरुणस्स सुएहिं वेढिओ समरे । मेहेहि व दिवसयरो, पाउसकाले समोत्थरिओ ॥२४॥

इन्दइ-विहीसणा वि य, सुहडा तह भाणुकण्णमाईया । चक्कं व समारूढा, वरुणेण भमाडिया सव्वे ॥२५॥

रक्खसबलं विसण्णं, हणुमन्तो पेच्छिऊण परिकुविओ । बाणासणिं मुयन्तो, समुट्ठिओ निययबलसहिओ ॥२६॥

खग्गेण मोग्गरेण य, चक्केण य पवणनन्दणो सुहडे । आहणइ चडुलपसरन्तविक्कमो जह कयन्तो व्व ॥२७॥

जुज्झं काऊण चिरं, गिण्हइ वरुणस्स नन्दणे हणुओ । अह रावणो वि बन्धइ, वरुणं चिय नागपासेहिं ॥२८॥

घेत्तूण पुत्तसहियं, वरुणं आवासिओ वरुज्जाणे । लङ्काहिवो कयत्थो, तत्थाऽऽसीणो ससामन्तो ॥२९॥

विद्धत्थं नयरवरं, रक्खससुहडेहि नायगविहूणं । गहियवरदव्वसारं, बन्दीजणसंकुलारावं ॥३०॥

दिट्ठं रक्खसवइणा, तं नयरं सव्वओ विलुप्पन्तं । सिग्घं दयालुएणं, निवारियं पवरपुरिसेणं ॥३१॥

मुक्को य वरुणराया, सुयसहिओ रावणं पणमिऊणं । हणुयस्स देइ कन्नं, सच्चमई नाम नामेणं ॥३२॥

वत्ते पाणिग्गहणे, वरुणं ठविऊण निययनयरम्मि । रणरसलद्धामरिसो, दहवयणो आगओ लङ्कं ॥३३॥

हणुयस्स रावणेण वि, दिन्ना कन्ना गुणेहि संपुण्णा । धूया चन्दणहाए, अणङ्गकुसुम त्ति नामेणं ॥३४॥

काऊण करग्गहणं, तीए समं कण्णकुण्डले नयरे । भुञ्जइ भोगसमिद्धिं, सिरिसेलो सुरकुमारो व्व ॥३५॥

तत्तो नलेण दिन्ना, कन्ना हरिमालिणि त्ति नामेणं । हणुयस्स किन्नरपुरे, किन्नरकन्नासयं लद्धं ॥३६॥

किक्किन्धिपुराहिवई, दुहियं ताराए तत्थ सुग्गीवो । नामेण पउमरागं, दट्ठुं चिन्तावरो जाओ ॥३७॥

युध्यमानो दशवदनो वरुणस्य सुतै र्वेष्टितः समरे । मेघैरिव दिवसकरः प्रावृट्काले समवस्तृतः ॥२४॥

इन्द्रजिद्विभीषणावपि च सुभटास्तथा भानुकर्णादिकाः । चक्रमिव समारूढा वरुणेन भ्रामिताः सर्वे ॥२५॥

राक्षसबलं विषण्णं हनुमान्दृष्ट्वा परिकुपितः । बाणाशनिं मुञ्चन्समुत्थितो निजबलसहितः ॥२६॥

खड्गेन मुद्गरेण च चक्रेण च पवननन्दनःसुभटान् । आहन्ति चटुलप्रसरद्विक्रमो यथा कृतान्त इव ॥२७॥

युद्धं कृत्वा चिरं गृह्णाति वरुणस्य नन्दनान्हनुमान् । अथ रावणोऽपि बध्नाति वरुणमेव नागपाशैः ॥२८॥

गृहीत्वा पुत्रसहितं वरुणमावासितो वरोद्याने । लङ्काधिपः कृतार्थस्तत्रासीनः ससामन्तः ॥२९॥

विध्वस्तं नगरवरं राक्षससुभटैनार्यकविहीनम् । गृहीतवरद्रव्यसारं बन्दिजनसंकुलारावम् ॥३०॥

दृष्टं राक्षसपतिना तं नगरं सर्वतो विलुपन्तम् । शीघ्रं दयालुना निवारितं प्रवरपुरुषेण ॥३१॥

मुक्तश्च वरुणराजा सुतसहितो रावणं प्रणम्य । हनुमते ददाति कन्यां सत्यमती नाम नाम्ना ॥३२॥

वृत्ते पाणिग्रहणे वरुणं स्थापयित्वा निजनगरे । रणरसलब्धामर्षो दशवदन आगतो लङ्काम् ॥३३॥

हनुमते रावणेनापि दत्ता कन्या गुणैः संपूर्णा । दुहिता चन्द्रनखाया अनङ्गकुसुमेति नाम्ना ॥३४॥

कृत्वाकरग्रहणं तया समं कर्णकुण्डले नगरे । भुनक्ति भोगसमृद्धिं श्रीशैलः सुरकुमार इव ॥३५॥

ततो नलेन दत्ता कन्या हरिमालिनीति नाम्ना । हनुमते किन्नरपुरे किन्नरकन्याशतं लब्धम् ॥३६॥

किष्किन्धिपुराधिपति र्दुहिता तारायास्तत्र सुग्रीवः । नाम्ना पद्मरागां दृष्ट्वा चिन्तातुरो जातः ॥३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीए वरस्स कज्जे, विज्जाहरपत्थिवाण रूवाइं । लिहिऊण आणियाइं, कमेण बाला पलोएइ ॥३८॥

एवं पलोयमाणी, पेच्छइ हणुयस्स सन्तियं रूवं । कुसुमाउहसमसरिसं, तं चेव अवट्ठियं हियए ॥३९॥

मुणिऊण तीए भावं, सुग्गीवो पवणनन्दणं सिग्घं । आणेइ सदूएणं, महया विभवेण साहीणं ॥४०॥

हणुएण वरतणू सा, परिणीया दाण-माण-विभवेहिं । सिरिपुरगओ महप्पा, भुञ्जइ भोगे रइगुणड्ढे ॥४१॥

एवं सहस्समेगं, जायं हणुयस्स पवरमहिलाणं । रूव-गुणसालिणीणं, संपुण्णमियङ्कवयणाणं ॥४२॥

अह रावणो वि रज्जं, कुणइ तिखण्डाहिवो विजियसत्तू ।
सिरि-कित्ति-लच्छिनिलओ, विज्जाहरनमियपयवीढो ॥४३॥

चक्कं सुदरिसणं तं, दिव्वं मज्झण्हकालरविसरिसं । दण्डरयणं पि जायं, भयजणणं सव्वरायाणं ॥४४॥

एवं जिणिन्दवरसासणसुद्धभावा[१], काऊण पुण्णमउलं इह माणुसत्ते ।
ते देवलोगजणियं विमलं सरीरं, पावन्ति उत्तमसुहं च सया समिद्धं ॥४५॥

॥ इय पउमचरिए रावणरज्जविहाणो नाम एगूणवीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

तस्या वरस्य कार्ये विद्याधरपार्थिवानां रुपाणि । लिखित्वाऽऽनीतानि क्रमेण बाला प्रलोकते ॥३८॥

एवं प्रलोकयमाणा पश्यति हनुमतः सत्कं रुपम् । कुसुमायुधसमसदृशं तच्चैवावस्थितं हृदये ॥३९॥

ज्ञात्वा तस्या भावं सुग्रीवः पवननन्दनं शीघ्रम् । आनयतिस्वदूतेन महता विभवेन स्वाधीनम् ॥४०॥

हनुमता वरतनुःसा परिणीता दान-मान-विभवैः । श्रीपुरगतो महात्मा भुनक्ति भोगान् रतिगुणाढ्यान् ॥४१॥

एवं सहस्रमेकं जातं हनुमतः प्रवरमहिलानाम् । रुपगुणशालिनीनां, संपूर्णमृगांकवदनानाम् ॥४२॥

अथ रावणोऽपि राज्यं करोति त्रिखण्डाधिपो विजितशत्रुः । श्रीकीर्तिलक्ष्मीनिलयो विद्याधरनतपादपीठः ॥४३॥

चक्रं सुदर्शनं तद्दिव्यं मध्याह्नकालरविसदृशम् । दण्डरत्नमपि जातं भयजननं सर्वराजाम् ॥४४॥

एवं जिनेन्द्रवरशासनशुद्धभावाः कृत्वा पुण्यमतुलमिह मनुष्यत्वे ।
ते देवलोकजनितं विमलं शरीरं प्राप्नुवन्त्युत्तमसुखं च सदा समृद्धम् ॥४५॥

॥ इति पद्मचरित्रे रावणराज्यविधानो नामैकोनविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. लद्धभावा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२०. तित्थयर-चक्कवट्टि-वलदेवाइभवाइट्ठाणुकित्तणं

तीर्थकरा: तेषां च द्विचरमपूर्वजन्मनगर्य:–

एवं मगहाहिवई, चरियं सोऊण रक्खसिन्दस्स । पुच्छइ गणहरवसहं, जिण-चक्कहराण उप्पत्ती ॥१॥
अट्ठमओ पुण जो सो, बलदेवो तिहुयणम्मि विक्खाओ । वंसे कस्स महायस !, उप्पन्नो किं व से चरियं ? ॥२॥
एवं गणाहिवो सो, जं भणिओ सेणिएण नमिऊणं । तो साहिउं पवत्तो, उसभाईणं जिणवराणं ॥३॥
उसभो अजिओ य जिणो, सुरमहिओ संभवो भवविणासो । अभिणन्दणो य सुमई, पउमसवण्णो सुपासो य ॥४॥
चन्दाभो कुसुमरदो, दसमो पुण सीयलो य सेयंसो । भयवं पि वासुपुज्जो, विमलोऽणन्तो य धम्मो य ॥५॥
सन्ती कुन्थू य अरो, मल्ली मुणिसुव्वओ नमी नेमी । पासो य वद्धमाणो, जस्स इमं वट्टए तित्थं ॥६॥
परलोयम्मि पहाणा, आसि पुरी पुण्डरीगिणी पढमा । तयणन्तरं सुसीमा, खेमपुरी रयणवरचम्पा ॥७॥
उसभाई तित्थगरा, जाव च्चिय वासुपुज्जजिणवसभो । तावेयाउ आसि पुरा रायहाणीओ ॥८॥
एत्तो य महानयरं, रिट्ठपुरं भद्दिलं च विक्खायं । अह पुण्डरिगिणी हवइ सुसीमा महानयरी ॥९॥
खेमा ववगयसोगा, चम्पा नयरी तहेव कोसम्बी । नागपुरं छत्तायारं पुरं रम्मं ॥१०॥

---

२०. तीर्थकर-चक्रवर्त्ति-बलदेवादिभवादिस्थानोत्कीकीर्तनम् ॥

तीर्थकरा: तेषां च द्विचरमपूर्वजन्मनगर्य: -

एवं मगधाधिपतिश्चरित्र श्रुत्वा राक्षसेन्द्रस्य । पृच्छति गणधरवृषभं जिन-चक्रधराणामुत्पत्ति: ॥१॥
अष्टम: पुन र्योऽसौ बलदेवस्त्रिभुवने विख्यात: । वंशकस्य महायश! उत्पन्न: किं वा तस्य चरित्रम् ? ॥२॥
एवं गणाधिप: स यद्भणित: श्रेणिकेन नत्वा । तदा कथयितुं प्रवृत्त ऋषभादीनां जिनवराणाम् ॥३॥
ऋषभोऽजितश्च जिन: सुरमहित: संभवो भवविनाश: । अभिनन्दनश्च सुमति: पद्मसवर्ण: सुपार्श्वश्च ॥४॥
चन्द्राभ: कुसुमरदो दशम:पुन: शीतलश्च श्रेयांस: । भगवानपि वासुपूज्यो विमलोऽनन्तश्च धर्मश्च ॥५॥
शान्ति कुन्थुश्चारो मल्लीमुनिसुव्रतो नमि र्नेमि: । पार्श्वश्च वर्धमानो यस्येदं वर्तते तीर्थम् ॥६॥
परलोके प्रधानाऽऽसीत्पुरी पुण्डरीकिणी पढमा । तदनन्तरं सुसीमा, क्षेमपुरी रत्नवरचम्पा ॥७॥
ऋषभादयस्तीर्थकरा यावदेव वासुपूज्यजिनवृषभ: । तावदेता: पुर्य आसन्पुरा राजधान्य: ॥८॥
इतश्च महानगरं रिष्टपुरं भद्दिलं च विख्यातम् । अथ पुण्डरीकिण्यपि च भवति सुसीमा महानगरी ॥९॥
क्षेमा व्यपगतशोका चम्पा नगरी तथैव कौशाम्बी । नागपुरं साकेता छत्राकारं पुरं रम्यम् ॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेसाण जिणवराणं, अणुपरिवाडीए पुव्वजम्मम्मि । नरवइधम्मपुरीओ, एयाओ सुरपुरिसमाओ ॥११॥

तीर्थकराणां द्विचरमाः पूर्वभवा :—

पढमोऽत्थ वज्जनाभो, बीओ पुण विमलवाहणो होइ । अह विउलवाहणो वि य, महाबलो अइबलो चेव ॥१२॥
अवराइओऽत्थ अन्नो, हवइ तहा नन्दिसेणनामो य । पउमो य महापउमो, एत्तो पउमुत्तरो चेव ॥१३॥
राया पङ्कयगुम्मो, अणुपरिवाडीए नलिणिगुम्मो य । पउमासणो य एत्तो, पउमरहो दढरहो चेव ॥१४॥
मेहरहो सीहरहो, वेसमणो चेव हवइ सिरिधम्मो । सुवइट्ठो सुरजेट्ठी, सिद्धत्थो चेव आणन्दो ॥१५॥
तह चेव सुणन्दो खलु, इमाणि तित्थंकराण पुव्वभवे । नामाणि आसि सेणिय, सिट्ठाइँ मए कमेणं तु ॥१६॥

तीर्थकराणां द्विचरमपूर्वजन्मगुरवः—

पढमो य वज्जसेणो, अरिंदमणो तह सयंपभो चेव । अह विमलवाहणो पुणो, गुरवो सीमंधरो धीरो ॥१७॥
पिहियासवो महप्पा, अरिंदमणो तह जुगंधरो य मुणी । सव्वजणाणन्दयरो, सत्थाओ वज्जदत्तो य ॥१८॥
गुरवो य वज्जनाभो, सव्वसुगुत्तो तहा मुणेयव्वो । चित्तारक्खो अह विमलवाहणो घणरहो चेव ॥१९॥
अह संवरो य एत्तो, साहू वि य संवरो मुणेयव्वो । वरधम्मो य सुनन्दो, नन्दो य [१]वईयसोगो य ॥२०॥
भणिओ य डामरमुणी, पोट्टिल्लो चेव पुव्वजम्मम्मि । तित्थयराणं एए, कमेण गुरवो मुणेयव्वा ॥२१॥

शेषाणां जिनवराणामनुपरिपाट्या पूर्वजन्मनि । नरपति धर्मपूर्य एताः सुरपुरिसमाः ॥११॥

तीर्थकराणां द्विचरमाः पूर्वभवाः -

प्रथमोऽत्र वज्रनाभो द्वितीयः पुन र्विमलवाहनो भवति । अथ विपुलवाहनोऽपि च महाबलोऽतिबल श्चैव ॥१२॥
अपराजितोऽत्रान्यो भवति तथा नन्दिसेननामा च । पद्मश्च महापद्म इतः पद्मोत्तर श्चैव ॥१३॥
राजापङ्कजगुल्मोऽनुपरिपाट्या नलिनिगुल्मश्च । पद्मासनश्चेतः पद्मरथो दृढरथ श्चैव ॥१४॥
मेघरथः सिंहरथो वैश्रमण श्चैव भवति श्रीधर्मः । सुप्रतिष्ठः सुरज्येष्ठः सिद्धार्थ एवानन्दः ॥१५॥
तथैव सुनन्दः खलु इमानि तीर्थकराणां पूर्वभवे । नामान्यासन् श्रेणिक ! शिष्टानि मया क्रमेण तु ॥१६॥

तीर्थकराणां द्विचरमपूर्वजन्मगुरवः -

प्रथमश्च वज्रसेनोऽरिदमनस्तथा स्वयंप्रभ श्चैव । अथ विमलवाहनः पुन र्गुरवः सीमंधरो धीरः ॥१७॥
पिहिताश्रवो महात्माऽरिदमनस्तथा युगंधरश्च मुनिः । सर्वजनानन्दकरः सार्थको वज्रदत्तश्च ॥१८॥
गुरवश्च वज्रनाभः सर्व सुगुप्तस्तथा ज्ञातव्यः । चित्तरक्षोऽथ विमलवाहनः धनरथश्चैव ॥१९॥
अथ संवरश्चेतः साधुरपि च संवरो ज्ञातव्यः । वरधर्मश्च सुनन्दो नन्दश्च व्यतीतशोकश्च ॥२०॥
भणित श्च डामरमुनिः पोट्टिल श्चैव पूर्वजन्मनि । तीर्थकराणामेते क्रमेण गुरवो ज्ञातव्याः ॥२१॥

---

१. अमियसोगो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकराणामुपान्त्यदेवभवाः—

सव्वट्ठं विजयन्तं, गेज्जं वेजयन्तनामं चेव उवरिम-मज्झिम भणिया, गेवेज्जा वेजयन्तं च ॥२२॥

अवराइयं विमाणं, नायव्वं आरणं महाभागं । पुप्फोत्तरं च एत्तो, काविट्ठं अह सहस्सारं ॥२३॥

पुप्फोत्तरं च विजयं, एत्तो अवराइयं वरविमाणं । तह चेव वेजयन्तं, अन्ते पुप्फोत्तरं होइ ॥२४॥

एएसु विमाणेसुं, चइया तित्थंकरा समुप्पन्ना । इह भारहम्मि वासे, सुर-असुरनमंसिया सिद्धा ॥२५॥

तीर्थंकराणां जन्मनगर्यः माता-पितरौः नक्षत्राणि ज्ञानपादपाः निर्वाणस्थानानि च—

नयरी माया य पिया, नक्खत्तं नाणपायवो चेव । निव्वाणगमणठाणं, कहेमि सव्वं जिणवराणं ॥२६॥

साएयं मरुदेवी, नाही तह उत्तरा य आसाढा । वडरुक्खो अट्ठावय, पढमजिणो मङ्गलं दिसउ[१] ॥२७॥

अह कोसला य विजया, जियसत्तू रोहिणी जिणो अजिओ ।
रुक्खो य सत्तवण्णो, सेणिय ! तुह मङ्गलं दिसउ[२] ॥२८॥

सावत्थी सेणा वि य, विजयारी संभवो जिणवरिन्दो । इन्दतरू वरसालो, मगहाहिव ! फुटउ पावं ते[३] ॥२९॥

सिद्धत्था पढमपुरी, रिक्खं तु पुणव्वसू सरलरुक्खो । अह संवरो नरिन्दो, जिणो य अभिणन्दणो पुणउ[३] ४ ॥३०॥

मेहप्पभो पियङ्गू, सुमङ्गला पुरवरी य साएया । रिक्खं मघा य सुमई, मङ्गलमउलं तुह नरिन्द ! ५ ॥३१॥

कोसम्बी य सुसीमा, पियङ्गु चित्ता य पत्थिवो य धरो । पउमप्पभो जिणिन्दो, हवउ सया मङ्गलं तुज्झ६ ॥३२॥

तीर्थंकराणामुपान्त्य देवभवाः -

सर्वार्थं विजयन्तं ग्रैवेयकं वैजयन्तनाम च । उपरिम-मध्यम भणिता ग्रैवेयका वैजयन्तं च ॥२२॥

अपराजितं विमानं ज्ञातव्यमारणं महाभागम् । पुष्पोत्तरं चेतः कापिष्टमथ सहस्रारम् ॥२२॥

पुष्पोत्तरं च विजयमितोऽपराजितं वरविमानम् । तथैव वैजयन्तमन्ते पुष्पोत्तरं भवति ॥२४॥

एतेभ्योविमानेभ्यश्च्युतास्तीर्थंकराः समुत्पन्नाः । इह भरते वर्षे सुराऽसुरनताः सिद्धाः ॥२५॥

तीर्थंकराणां जन्मनगर्यः माता-पितरः नक्षत्राणि ज्ञानपादपाः निर्वाणस्थानानि च-

नगरी माता च पिता नक्षत्रं ज्ञानपादप श्चैव । निर्वाणगमनस्थानं कथयामि सर्वं जिनवराणाम् ॥२६॥

साकेता मरुदेवी नाभिस्तथोत्तराश्चाषाढा । वटवृक्षोऽष्टापदः प्रथमजिनो मङ्गलं दिशतु ॥२७॥

अथ कोशला च विजया जितशत्रू रोहिणी जिनोऽजितः । वृक्षश्च सप्तपर्णः श्रेणिक ! तुभ्यं मङ्गलं दिशतु ॥२८॥

श्रावस्ती सेनाऽपि च विजयारिः संभवो जिनवरेन्द्रः । इन्द्रतरु र्वरसालो मगधाधिप ! मार्ष्टु पापं ते ॥२९॥

सिद्धार्था प्रथमपुरी ऋक्षं तु पुनर्वसुः सरलवृक्षः । अथ संवरो नरेन्द्रो जिनश्चाभिनन्दनो पुनातु ॥३०॥

मेघप्रभः प्रियङ्गुः सुमङ्गला पुरवरी च साकेता । ऋक्षं मघा च सुमति मङ्गलमतुलं तव नरेन्द्र ! ॥३१॥

कौशाम्बी च सुसीमा प्रियङ्गुश्चित्रा च पार्थिवश्च धरः । पद्मप्रभो जिनेन्द्रो भवतु सदा मङ्गलं तव ॥३२॥

१-२. देउ-प्रत्य० । ३. पुनातु ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुपइट्ठो कासिपुरं, पुहइ विसाहा सिरीसरुक्खो य । तित्थंकरो सुपासो, एसो ते मङ्गलं परमं७ ॥३३॥
चन्दाभो चन्दपुरी, महसेणो लक्खमा य अणुराहा । नागदुमो य परमं, मङ्गलमउलं तिहुयणम्मि८ ॥३४॥
कायन्दी सुग्गीवो, रामा मूलं य पुप्फदन्तजिणो । मल्लीदुमो य तुज्झं, सेणिय ! पावं पणासेन्तु९ ॥३५॥
भद्दिलपुरं सुनन्दा, पुव्वासाढा य दढरहो राया । तुह सीयलो जिणिन्दो, निग्गोहदुमो य पावहरो१० ॥३६॥
सीहपुरं विण्हुसिरी, समणो विण्हू य नरवई होइ । सेयंसो तित्थयरो, तिन्दुगरुक्खो सुहं दिसउ११ ॥३७॥
चम्पा पाडलरुक्खो, जया य वसुपुज्जपत्थिवो होइ । भयवं तु वासुपुज्जो, नक्खत्तं सयभिसा [1]पुणउ१२ ॥३८॥
कम्पिल्ला कयधम्मो, सम्मा विमलो य जम्बुरुक्खो य । उत्तरभद्दवया वि य, सेयं कुव्वन्तु ते निययं१३ ॥३९॥
[2]आसत्थो सव्वजसा, नक्खत्तं रेवई अणन्तजिणो । राया य सीहसेणो, साएया ते सुहं दिसउ१४ ॥४०॥
रयणपुरं दहिवण्णो, भाणू धम्मो य सुव्वया जणणी । पुस्सो य हवइ रिक्खं, एए तुह मङ्गलं देन्तु१५ ॥४१॥

अइराणी नागपुरं, भरणी रिक्खं च नन्दिरुक्खो य ।
राया य विस्ससेणो, सन्तिजिणो कुण उ तुह सन्ति१६ ॥४२॥

नागपुरं तिलयसिरी, कुन्थुजिणो कित्तिया य नक्खत्तं । सूरनराहिवसहियाणि तुज्झ पावं पणासन्तु१७ ॥४३॥

मित्ता सुदरिसणो वि य, पढमपुरी अरजिणो य चूयदुमो ।
रिक्खं च रोहिणी तुह, कुणउ सया मङ्गलविहाणं१८ ॥४४॥

सुप्रतिष्ठः काशीपुरं पृथिवी विशाखा शिरिषवृक्षश्च । तीर्थकरः सुपार्श्व एष ते मङ्गलं परमम् ॥३३॥
चन्द्राभश्चन्द्रपुरी महसेनो लक्ष्मणा चानुराधा । नागद्रुमश्च परमं मङ्गलमतुलं त्रिभुवने ॥३४॥
काकन्दी सुग्रीवो रामा मूलं च पुष्पदन्तजिनः । मल्लीद्रुमश्च तव श्रेणिक ! पापं प्रणश्यतु ॥३५॥
भद्रिलपुरं सुनन्दा पूर्वाषाढा च दृढरथो राजा । तव शीतलो जिनेन्द्रो न्यग्रोधद्रुमश्च पापहरः ॥३६॥
सिंहपुरं विष्णुश्रीः श्रवणो विष्णुश्च नरपति र्भवति । श्रेयांसस्तीर्थकरस्तिन्दुकवृक्षः सुखं दिशतु ॥३७॥
चम्पा पाटलवृक्षो जया च वसुपूज्यपार्थिवो भवति । भगवांस्तु वासुपूज्यो नक्षत्रं शतभिषक् पुनातु ॥३८॥
काम्पिल्या कृतवर्मः श्यामा विमलश्च जम्बूवृक्षश्च । उत्तरभाद्रपदाऽपि च श्रेयः कुर्वन्तु ते नित्यम् ॥३९॥
अश्वत्थः सर्वयशा नक्षत्रं रेवती अनन्तजिनः । राजा च सिंहसेनः साकेतं ते सुखं दिशतु ॥४०॥
रत्नपुरं दधिपर्णो भानु र्धर्मश्च सुव्रता जननी। पुष्यश्च भवति ऋक्षमेते तव मङ्गलं ददतु ॥४१॥
अचिराणी नागपुरं भरणि ऋक्षं च नन्दिवृक्षश्च । राजा च विश्वसेनः शान्तिजिनः करोतु तव शान्तिम् ॥४२॥
नागपुरं तिलकश्रीः कुन्थुजिनः कृतिका च नक्षत्रम् । सुरनराधिपसहितानि तव पापं प्रणश्यन्तु ॥४३॥
मित्रा सुदर्शनोऽपि च प्रथमपुर्यरजिनश्च चूतद्रुमः । ऋक्षं च रोहिणी तव करोतु सदा मङ्गलविधानम् ॥४४॥

---

१. पुनातु । २. अश्वत्थः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिहिला कुम्भनरिन्दो य, रिक्खया अस्सिणी जिणो मल्ली ।
नाणदुमो य असोगो, सोगं नासन्तु वो सिग्घं[1] ११ ॥४५॥

पउमावई कुसग्गं, समणो वि हु चम्पओ सुमित्तो य । मुणिसुव्वओ जिणिन्दो, तुह पावमलं पणासेउ२० ॥४६॥

विजओ य मिहिल वप्पा, बउलदुमो अस्सिणी नमिजिणिन्दो ।
मगहाहिवई ! तुज्झं, समागमं देन्तु धम्मस्स२१ ॥४७॥

सोरियपुरं तु एत्तो, समुद्दविजओ सिवा य उज्जेन्तो । चित्ता य रिट्ठनेमी, नरिन्द ! तुह मङ्गलं देन्तु२२ ॥४८॥

वाणारसी विसाहा, पासो वम्मा य आससेणो य । अहिछत्ता बाहिरओ, तुह मङ्गलकारयाणि सया२३ ॥४९॥

सिद्धत्थो कुण्डपुरं, सरलो पियकारिणी य हत्थो य । भयवं वीरजिणिन्दो, देन्तु सया मङ्गलं तुज्झ२४ ॥५०॥

अट्ठावयम्मि उसभो, सिद्धो चम्पाए वासुपुज्जजिणो । पावाए वद्धमाणो, नेमी उज्जेन्तसिहरम्मि ॥५१॥

अवसेसा तित्थयरा, सम्मेए निव्वुया सिवं पत्ता । जो पढइ सुणइ पुरिसो, सो बोहिफलं समज्जेइ ॥५२॥

तीर्थकराणां राज्यर्द्धिः देहवर्णाश्च—

सन्ती कुन्थू य अरो, तित्थयरा चक्कवट्टिणो आसि । सेसा पुण जिणवसभा, हवन्ति सामन्नरायाणो ॥५३॥

चन्दाभो चन्दनिभो, बीओ पुण पुप्फदन्तजिणवसभो । कुसुमपियङ्गुसवण्णो, हवइ सुपासो विगयमोहो ॥५४॥

वरतरुणसालिवण्णो, पासो नागिन्दसंथुओ भयवं । पउमाभोपउमनिभो, वसुपुज्जो किंसुयसुवण्णो ॥५५॥

मिथिला कुम्भनरेन्द्रश्च ऋक्षाऽश्विनी जिनो मल्ली । ज्ञानद्रुमश्चाशोकः शोकं नश्यन्तु वः शीघ्रम् ॥४५॥

पद्मावती कुशाग्रं श्रवणोऽपि हु चम्पकः सुमित्रश्च । मुनिसुव्रतो जिनेन्द्रस्तव पापमलं प्रणश्यतु ॥४६॥

विजयश्च मिथिला वप्रा बकुलद्रुमोऽश्विनी नमिजिनेन्द्रः । मगधाधिपते ! तुभ्यं समागमं ददतु धर्मस्य ॥४७॥

सौरिपुरं त्वितः समुद्रविजयः शिवाचोज्जयन्तः । चित्रा चारिष्टनेमि नरेन्द्र ! तव मङ्गलं ददतु ॥४८॥

वाणारसी विशाखा पार्श्वो वामा चाश्वसेनश्च । अहिच्छत्रा बाह्यस्तव मङ्गलकारणानि सदा ॥४९॥

सिद्धार्थः कुण्डपुरं सरलः प्रियकारिणी च हस्तश्च । भगवान् वीर जिनेन्द्रा ददतु सदा मङ्गलं तुभ्यम् ॥५०॥

अष्टापदे ऋषभः सिद्धश्चम्पायां वासुपूज्य जिनः । पापायां वर्धमानो नेमिरुज्जयन्तशिखरे ॥५१॥

अवशेषास्तीर्थकराः सम्मेते निर्वृत्ताः शिवं प्राप्ताः । यः पठति श्रुणोति पुरुषः स बोधिफलं समर्जयति ॥५२॥

तीर्थकराणां राज्यर्द्धिः देहवर्णाश्च -

शान्तिः कुन्थुश्चारस्तीर्थकराश्चक्रवर्तिन आसन् । शेषा पुनर्जिनवृषा भवन्ति सामान्यराजानः ॥५३॥

चन्द्राभश्चन्द्रनिभो द्वितीयः पुनः पुष्पदन्तजिनवृषभः । कुसुमप्रियङ्गुसवर्णो भवति सुपार्श्वो विगतमोहः ॥५४॥

वरतरुणशालिवर्णः पार्श्वो नागेन्द्र संस्तुतो भगवान् । पद्माभः पद्मनिभो वासुपूज्यः किंशुकसुवर्णः ॥५५॥

---

१. खिप्पं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अञ्जणगिरिसरिसनिभो, हवइ य मुणिसुव्वओ तियसनाहो । बरहिणकण्ठावयवो, नेमिजिणो जायवाणन्दो ॥५६॥
निद्धन्तकणयवण्णा, सेसा तित्थंकरा समक्खाया । मल्ली अरिट्ठनेमी, पासो वीरो य वसुपुज्जो ॥५७॥
एए कुमारसीहा, गेहाओ निग्गया जिणवरिन्दा । सेसा वि हु रायाणो, पुहई भोत्तूण निक्खन्ता ॥५८॥
एए [1]जिणिन्दचन्दा, सुर-नरमहिय-ऽच्चिया निययकालं । पत्ता महाभिसेयं, जम्मणसमए गिरिन्दम्मि ॥५९॥
संपत्ता कल्लाणं, परमपयं सासयं सिवं ठाणं । तिहुयणमङ्गलनिलया, देन्तु [2]गई जिणवरा सव्वे ॥६०॥
आउपमाणं तह अन्तरं च तित्थयर-चक्कवट्टीणं । जो जस्स हवइ तित्थे, बलदेवो चक्कवट्टी वा ॥६१॥
तुज्झ पसाएण अहं, एयं इच्छामि जाणिउं भयवं ! । साहसु फुड-वियडत्थं, जह वत्तं कालसमयम्मि ॥६२॥
एवं च भणियमेत्ते, मगहनरिन्देण गोयमो ताहे । जलहरगम्भीरसरो, कहेइ सव्वं निरवसेसं ॥६३॥
जो वित्थरेण अत्थो, संखाए अवट्ठिओ अहमहन्तो । सो बुहयणेण एत्तो, गहिओ-संखेवओ सव्वो ॥६४॥

पल्योपमसागरोपमोत्सर्पिण्यादिकालस्वरूपम् —

जं जोयणवित्थिण्णं, ओगाढं जोयणं तु वालस्स । एगदिणजायगस्स उ, भरियं वालग्गकोडीणं ॥६५॥
वाससए वाससए, एक्केक्के अवहियम्मि जो कालो । कालेण तेण एवं, हवइ य पलिओवमं एक्कं ॥६६॥
दस कोडाकोडीओ, पल्लाणं सागरं हवइ एक्कं । दसकोडाकोडीओ, उदहीणऽवसप्पिणी हवइ ॥६७॥

अञ्जनगिरिसदृशनिभो भवति च मुनिसुव्रतस्त्रिदशनाथः । बर्हिणकण्डावयवो नेमिजिनो यादवानन्दः ॥५६॥
निर्ध्मातकनकवर्णाः शेषास्तिर्थकराः समाख्याताः । मल्ल्यरिष्टनेमिः पार्श्वो वीरश्च वासुपूज्यः ॥५७॥
एते कुमारसिंहा गृहान्निर्गता जिनवरेन्द्राः । शेषा अपि हु राजानः पृथिवीं भुक्त्वा निष्क्रान्ताः ॥५८॥
एते जिनेन्द्रचन्द्राः सुर-नरमहिताऽऽर्चिता नित्यकालम् । प्राप्ता महाभिषेकं जन्मसमये गिरीन्द्रे ॥५९॥
संप्राप्ताः कल्याणं परमपदं शाश्वतं शिवं स्थानम् । त्रिभुवनमङ्गलनिलया ददतु गतिं जिनवराः सर्वे ॥६०॥
आयुः प्रमाणं तथाऽन्तरं च तीर्थकर-चक्रवर्तीनाम् । यो यस्य भवति तीर्थे बलदेवश्चक्रवर्त्ती वा ॥६१॥
तव प्रासादेनाहमेतदिच्छामि ज्ञातुं भगवन् ! । कथयस्फुटविकटार्थं यथावृत्तं कालसमये ॥६२॥
एवं च भणितमात्रे मगधनरेन्द्रेण गौतमस्तदा । जलधरगम्भीरस्वरः कथयति सर्वं निरवशेषम् ॥६३॥
यो विस्तरेणार्थः संख्ययावस्थितोऽतिमहान् । स बुधजनेनेतो गृहीतः संक्षेपतः सर्वः ॥६४॥

पल्योपमसागरोपमोत्सर्पिण्यादि कालस्वरूपम् -

यद्योजनविस्तीर्णमवगाढं योजनं तु बालस्य । एकदिनजातकस्य तु भृतं बालाग्रकोटीनाम् ॥६५॥
वर्षशते वर्षशते एकैके ऽवहिते यः कालः । कालेन तेनैवं भवति च पल्योपममेकम् ॥६६॥
दश कोटाकोट्यः पल्यानां सागरं भवत्येकम् । दशकोटाकोट्य उदधीनामवसर्पिणी भवति ॥६७॥

---

१. जिणवरचंदा-प्रत्य० । २. गइं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उस्सप्पिणी वि एवं, सरिसा परियत्तदेसभावेणं । जह बहुलसुक्कपक्खे, ओसरइ पवड्ढई चन्दो ॥६८॥

छब्भेया उद्दिट्ठा, कालविभागस्स होन्ति नायव्वा । भरहेवएसु सया, कुणन्ति परियट्टणं एए ॥६९॥

कालो अइसुसमाए, कोडाकोडीउ हवइ चत्तारि । सुसमा पुण तिण्णि भवे, सूसमदुसमा य दो चेव ॥७०॥

एक्का कोडाकोडी, बायालीसं भवे सहस्सेहिं । वासेहि य ऊणो खलु, दूसमसुसमाए कालोउ ॥७१॥

एगवीससहस्सा, कालो च्चिय दूसमाए परिणमइ । अच्चन्तदूसमाए, तावइओ चेव नायव्वो ॥७२॥

तीर्थकराणामन्तराणि—

पन्नाससयसहस्सा, उदहीकोडीण अन्तरं पढमं । बीयं तु हवइ तीसा, तइयं दस होन्ति नायव्वं ॥७३॥

नवनउई य चउत्थं, नउइ सहस्साणि पञ्चमं भणियं । नव चेव सहस्सा पुण, सायरनामाण छट्ठं तु ॥७४॥

नव चेव सया भणिया, सत्तमयं अन्तरं सुयधरेहिं । नउइं पुण अट्ठमयं, नवमं नव चेव नायव्वं ॥७५॥

छावट्ठिसयसहस्सा, छव्वीससहस्स वाससंखाए । उदहिसएण य ऊणा, एगा कोडी य दसमम्मि ॥७६॥

चउपन्नसागराइं, तीसा नव चेव होन्ति चत्तारि । एया अन्तराइं, अणुपरिवाडीए भणियाइं ॥७७॥

तिण्णेव सागराइं, तीसु य भागेसु होन्ति पल्लस्स । ऊणाणि य पन्नरसं, जिणन्तरं होइ नायव्वं ॥७८॥

पल्लद्धं सोलसमं, सत्तरसं अन्तरं चउब्भाओ । पल्लस्स हवइ ऊणो, कोडिसहस्सेण वासाणं ॥७९॥

कोडिसहस्सं वासाण, होइ अट्ठारसन्तरं एत्तो । चउपन्नसयसहस्सा, जिणन्तरं ऊणवीसइमं ॥८०॥

उत्सर्पिण्यप्येवं सदृशा परिवर्तदेशभावेन । यथा बहुलपक्षे ऽपसरति प्रवर्धते चन्द्रः ॥६८॥

षड्भेदा उद्दिष्टाः कालविभागस्य भवन्ति ज्ञातव्याः । भरतैरवतेषु सदा कुर्वन्ति परिवर्तनमेते ॥६९॥

कालोऽतिसुषमायां कोटाकोट्यो भवति चत्वारः । सुषमा पुनस्त्रयोर्भवेत् सुषमदुषमा च द्वावेव ॥७०॥

एका कोटाकोटी द्विचत्वारिंशद्भवेत् सहस्रैः । वर्षैश्चोनः खलु दुषमासुषमायाः कालस्तु ॥७१॥

एकविंशतिसहस्राः काल एव दुषमायां परिणमति । अत्यन्तदुषमायास्तावदेव ज्ञातव्यः ॥७२॥

तीर्थकराणामन्तराणि-

पञ्चाशत्शतसहस्रा उदधिकोटाकोटीनामन्तरं प्रथमम् । द्वितीयं तु भवति त्रिंशत्तृतीयं दश भवन्ति ज्ञातव्यम् ॥७३॥

नवनवतिश्च चतुर्थं नवतिःसहस्राणि पञ्चमं भणितम् । नव एव सहस्राः पुनः सागरनामानां षष्टं तु ॥७४॥

नव चैवशता भणिताः सप्तममन्तरं श्रुतधरैः । नवतिः पुनरष्टमं नवमं नव चैव ज्ञातव्यम् ॥७५॥

षटषष्टीशतसहस्राः षड्विंशतिसहस्रा वर्षसंख्यया । उदधिशतेन चोनैकाकोटिश्च दशमे ॥७६॥

चतुष्पञ्चाशत्सागराणि त्रिंशन्नव चैव भवन्ति चत्वारि । एतान्यन्तराण्यनुपरिपाट्या भणितानि ॥७७॥

त्रिण्येव सागराणि त्रिभिश्चभागैर्भवन्ति पल्यस्य । न्यूनानि च पञ्चदशजिनान्तरं भवति ज्ञातव्यम् ॥७८॥

पल्यादर्धं षोडशं सप्तदशमन्तरं चतुर्भागः । पल्यस्य भवति न्यूनः कोटिसहस्रेण वर्षाणाम् ॥७९॥

कोटिसहस्रं वर्षाणां भवत्यष्टादशान्तरमेतः । चतुष्पञ्चाशत्शतसहस्रा जिनान्तरमेकोनविंशतितमम् ॥८०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छ च्चेव सयसहस्सा, वीसइमं अन्तरं समुद्दिट्ठं । पञ्चेव हवइ लक्खा, जिणन्तरं एगवीसइमं ॥८१॥

पन्नासा सत्त सया, तेयासीई सहस्स बावीसं । अड्डाइज्जा य सया, तेवीसं अन्तरं होइ ॥८२॥

एयावीस सहस्सा, तित्थं वीरस्स कालसंखाए । होही परं तु नियमा, अइदुसमा तत्तिया चेव ॥८३॥

पञ्चमषष्ठारकयोःस्वरूपम् —

परिनिव्वुए जिणिन्दे, वीरे अइसयविवज्जिओ कालो । बल-चक्क-हरिविमुक्को, होही नाणुत्तमविहीणो ॥८४॥

होहिन्ति पुहइपाला, दुट्ठा दुस्सीलनिव्वया पावा । बहुकूडकवडभरिया, नरा य कोहुज्जयमईया ॥८५॥

गोडण्डयसरिसेसुं, नट्ठा सयमेव ते कुहम्मेसु । नासेहिन्ति बहुजणं, कुदिट्ठिसत्थेसु बहुएसु ॥८६॥

अतिविट्ठि अणाविट्ठी, विसमा वि हु विट्ठिसंपया काले । होहिन्ति दुस्समाए, सभावपरिणामजोगेणं ॥८७॥

सत्तेव य रयणीओ, आयपमाणं नराण दुसमाए । हाणी कमेण होही, अन्ते पुण दोण्णि रयणाओ ॥८८॥

वाससयं पुण आउं, दुसमाए आदिमं समुद्दिट्ठं । परिहाइ इह कमेणं, जावं तेवीस वरिसाइं ॥८९॥

अइदुस्समाए होहिइ, आयपमाणं तु दोण्णि रयणी । वरिसाणि वीस आउं, नराण निद्धम्मबुद्धीणं ॥९०॥

अइदुस्समाए अन्ते, एगा रयणी नराण उच्चत्तं । आउं सोलस वरिसाणि, ताण कालाणुभावेणं ॥९१॥

न य पत्थिवा ण भिच्चा, न गिहाणि न उस्सवा न संबन्धा ।
होहिन्ति धम्मरहिया, मणुया य [1]सरिस्सवाहारा ॥९२॥

षडेव शतसहस्रा विंशतितममन्तरं समुदिष्टम् । पञ्चैव भवति लक्षापि जिनान्तरमेकविंशतितमम् ॥८१॥

पञ्चाशत् सप्तशता त्र्यशीति सहस्रं द्वाविंशम् । अर्धतृतीयाश्चशतानि त्रयोविंशतिमन्तरं भवति ॥८२॥

एकविंशः सहस्रास्तीर्थं वीरस्य कालसंख्यया । भविष्यति परं तु नियमाऽतिदुषमा तावच्चैव ॥८३॥

पञ्चमषष्ठारकयोः स्वरूपम् -

परिनिर्वृत्ते जिनेन्द्रे वीरेऽतिशयविवर्जितः कालः । बलचक्रहरिविमुक्तो भविष्यति ज्ञानोत्तमविहीनः ॥८४॥

भविष्यन्ति पृथिवीपाला दुष्टादुःशीलानिर्व्रताः पापाः । बहुकूटकपटभृतो नराश्च क्रोधोद्यतमतयः ॥८५॥

गोदण्डसदृशै र्नष्टा स्वयमेव ते कुधर्मैः । नाशयिष्यन्ति बहुजनं कुदृष्टिशास्त्रैर्बहुभिः ॥८६॥

अतिवृष्टिरनावृष्टि र्विषमा अपि हु वृष्टिसंपदः काले । भविष्यन्ति दुषमायां स्वभावपरिणामयोगेन ॥८७॥

सप्तैव च रत्नय आत्मप्रमाणं नराणां दुषमायाम् । हानिः क्रमेण भविष्यित्यन्ते पुन र्द्वे रत्नी ॥८८॥

वर्षशतं पुनरायु र्दुषमाया आदौ समुदिष्टम् । परिहाणिरिह क्रमेण यावत् त्रयोविंशति र्वर्षाणि ॥८९॥

अतिदुषमायां भविष्यत्यात्मप्रमाणं तु द्वे रत्नी । वर्षाणि विंशत्यायुर्नराणां निर्धर्मबुद्धीनाम् ॥९०॥

अतिदुषमाया अन्त एका रत्नि र्नराणामुच्चत्वम् । आयुःर्षोडश वर्षाणि तेषां कालानुभावेन ॥९१॥

न च पार्थिवा न भृत्या न गृहाणि नोत्सवा न सम्बन्धाः । भविष्यन्ति धर्मरहिता मनुष्याश्च सरीसृपाहाराः ॥९२॥

---

१. सरीसृपाहाराः ।

आउ बलं उस्सेहो, एवं अवसप्पिणीए अवसरइ । वड्डइ य कमेण पुणो, उस्सप्पिणिकालसमयम्मि ॥९३॥

कुलकराणां तीर्थकराणां चोत्सेधा—

एवं जिणन्तराइं, नरवइ कालो य तुज्झ परिकहिओ । एत्तो कमेण निसुणसु, उस्सेहाऽऽउं जिणिन्दाणं ॥९४॥

अट्ठारस तेर अट्ठ य, सयाणि सेसेसु पञ्चधणुवीसं । पडिहायन्तो कमसो, उस्सेहो कुलगराण इमो ॥९५॥

पञ्च सयाणि धणूणं, उस्सेहो आइजिणवरिन्दस्स । अट्ठसु पन्नासा पुण, परिहाणी होइ नियमेणं ॥९६॥

सीयलजिणस्स नउई, भवइ असीया य सत्तरी य सट्ठि त्ति । पन्नासा य कमेणं, उस्सेहो जिणवराणं तु ॥९७॥

अट्ठसु य पञ्चहाणी, नव रयणी सत्त होन्ति रयणीओ । तित्थयराण पमाणं, एयं संखेवओ भणियं ॥९८॥

कुलकराणां तीर्थकराणां चायूंषि—

पल्लस्स अट्ठभागो, तस्स वि य हवेज्ज जो दसमभागो । तं कुलगरस्स आउं, पढमस्स जिणेहि परिकहियं ॥९९॥

एवं दसमो दसमो, भागो अवसरइ आउखन्धस्स । सेसाण कुलगराणं, नाभिस्स य पुव्वकोडीओ ॥१००॥

चुलसीइ सयसहस्सा, पुव्वाणं आउयं तु उसभस्स । बावत्तरी य अजिए, छण्हं पुण दस य परहाणी ॥१०१॥

दोण्णि य एक्कं लक्खं, कमेण दोण्हं जिणाण पुव्वाउं । चुलसीती बावत्तरि, सट्ठी तीसा य दस एक्कं ॥१०२॥

एए हवन्ति लक्खा, वासाणं जिणवराण छण्हं पि । पञ्चाणउइ सहस्सा, चउरासीई य नायव्वा ॥१०३॥

आयु र्बलमुत्सेध एवमवसर्पिण्यामपसरति । वर्धते च क्रमेण पुनरुत्सर्पिणीकालसमये ॥९३॥

कुलकराणां तीर्थकराणां चोत्सेधा -

एवं जिनान्तराणि नरपते ! कालश्च तुभ्यं परिकथितः । इतः क्रमेण निश्रुणूत्सेधाऽऽयुर्जिनेन्द्राणाम् ॥९४॥

अष्टादश त्रयोदशाष्टौ शतानि शेषेषु पञ्चधनुर्विंशः । प्रतिहीयमानक्रमश उत्सेधः कुलकराणामयम् ॥९५॥

पञ्चशतानि धनूनामुत्सेध आदिजिनवरेन्द्रस्य । अष्टसु पञ्चाशत पुनः परिहाणि र्भवति नियमेन ॥९६॥

शीतलजिनस्य नवतिर्भवत्यशीतिश्च सप्ततिः षष्ठिरिति । पञ्चाशच्च क्रमेणोत्सेधो जिनवराणांतु ॥९७॥

अष्टसु च पञ्चहानी नव रत्नय सप्त भवन्ति रत्नयः । तीर्थकराणां प्रमाणमेतत्संक्षेपतो भणितम् ॥९८॥

कुलकराणां तीर्थकराणां चायूंषि -

पल्यस्याष्टमो भागस्तस्यापि च भवेद्यो दशमभागः । तं कुलकरस्यायुः प्रथमस्य जिनैः परिकथितम् ॥९९॥

एवं दशमो दशमो भागोऽपसरत्यायुःस्कन्धस्य । शेषाणां कुलकराणां नाभेश्च पूर्वकोट्यः ॥१००॥

चतुरशीतिः शतसहस्राः पूर्वाणांमायुस्तु ऋषभस्य । द्वासप्ततिश्चाजितस्य षण्णां पुनर्दश च परिहाणिः ॥१०१॥

द्वयेकं लक्षं क्रमेण द्वयो र्जिनयोः पूर्वायुः । चतुरशीति र्द्वासप्ततिः षष्टीत्रिंशच्च दशैकम् ॥१०२॥

एते भवन्ति लक्षाणि वर्षाणां जिनवराणां षण्णामपि । पञ्चनवतिः सहस्राश्चतुरशीतिश्च ज्ञातव्याः ॥१०३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पणपन्ना पणतीसा, दस य सहस्सा सहस्समेगं च । वासाण सयं एत्तो, हवन्ति बावत्तरिं वासा ॥१०४॥

जिनानन्तरे द्वादशचक्रवर्त्तिनः तत्पूर्वभवादि च–

एवं तित्थयराणं, आउं सेणिय ! मए समक्खायं । जो जस्स अन्तरे पुण, चक्कहरो तं इओ सुणसु ॥१०५॥

उसभे णसुमङ्गलाए, जाओ भरहो य पढमचक्कहरो । अह पुण्डरीगिणीए, बाहू सो आसिअन्नभवे ॥१०६॥

जिणवइरसेणपुत्तो, मरिऊणं पत्थिओ य सव्वट्ठं । तत्तो चुओ समाणो, भरहो होऊण सिद्धिगओ१ ॥१०७॥

पुहईपुरम्मि राया, विजओ नामेण जसहरं गुरवं । लहिऊण य निक्खन्तो, गओ य विजयं वरविमाणं ॥१०८॥

चइऊण कोसलो, विजएणं जसमईए जाओ सो । सगरो पुत्तविओगे, काऊण तवं गओ मोक्खं२ ॥१०९॥

अह पुण्डरीगिणीए, ससिप्पभो विमलमुणिवरसयासे । घेत्तूण य जिणदिक्खं, गेविज्जे सुरवरो जाओ ॥११०॥

तत्तो चुओ समाणो, सावत्थीए सुमित्तरायस्स । जाओ य [1]भामिणीए, मघवं नामेण चक्कहरो ॥१११॥

धम्मस्स य सन्तिस्स य, जिणन्तरे भुञ्जिउं भरहवासं । काऊण जिणवरतवं, सणंकुमारं गओ कप्पं३ ॥११२॥

सनत्कुमारचक्रिचरितम्–

एत्तो सणंकुमारो, अइरूवो तिहुयणम्मि विक्खाओ । उप्पन्नो चक्कहरो, तत्थेव जिणन्तरे धीरो ॥११३॥

तो भणइ मगहराया, केण व पुण्णाणुभा[2]वजणिएणं । जाओ सो अइरूवो, कहेहि मे कोउयं भयवं ! ॥११४॥

पञ्चपञ्चाशत्पञ्चत्रिंशद्दश च सहस्राः सहस्रमेकं च । वर्षाणां शतमितो भवन्ति द्वासप्ततिर्वर्षाः ॥१०४॥

जिनान्तरे द्वादशचक्रवर्तिनः तत्पूर्वभवादि च-

एवं तीर्थकराणामायुः श्रेणिक ! मया समाख्यातम् । यो यस्यान्तरे पुनश्चक्रधरस्तमितः श्रुणु ॥१०५॥

ऋषभेण सुमङ्गलायां जातो भरतश्च प्रथमचक्रधरः । अथ पुण्डरीकिण्यां बाहुः स आसीदन्यभवे ॥१०६॥

जिनवज्रसेनपुत्रो मृत्वा प्रस्थितश्च सर्वार्थम् । ततश्च्युतस्सन् भरतो भूत्वा सिद्धिं गतः ॥१०७॥

पृथिवीपुरे राजा विजयो नाम्ना यशोधरगुरुम् । लब्ध्वा च निष्क्रान्तो गतश्च विजयं वरविमानम् ॥१०८॥

च्युत्वा कोशलायां विजयेन यशोमत्यां जातः स । सगरः पुत्रवियोगे कृत्वा तपो गतो मोक्षम् ॥१०९॥

अथ पुण्डरिकिण्यां शशिप्रभो विमलमुनिवरसकाशे । गृहीत्वा च जिनदिक्षां ग्रैवेयके सुरवरो जातः ॥११०॥

ततश्च्युतस्सन् श्रावस्त्यां सुमित्र राज्ञः । जातश्च भामिन्यां मघवा नाम्ना चक्रधरः ॥१११॥

धर्मस्य च शान्तेश्च जिनान्तरे भुक्त्वा भरतवर्षम् । कृत्वा जिनवरतपः सनत्कुमारं गतः कल्पम् ॥११२॥

सनत्कुमारचक्रिचरितम् -

इतः सनत्कुमारोऽतिरुपस्त्रिभुवने विख्यातः । उत्पन्नश्चक्रधरस्तत्रैव जिनान्तरे धीरः ॥११३॥

तदा भणति मगधराजा केन वा पुण्यानुभावजनितेन । जातः सोऽतिरुपः कथय मे कौतुकं भगवन् ! ॥११४॥

---

१. विणीयाए-प्रत्य० । २. भावजोएण-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संखेवेण गणहरो, कहेइ सव्वं पुराणसंबंन्धं । अत्थेत्थ भरहवासे, गामो गोवद्धणो नामं ॥११५॥

सावयकुलसंभूओ, जिणदत्तो नाम गहवई तत्थ । सायारतवं काउं, कालगओ पत्थिओ [1] सुगई ॥११६॥

महिला तस्स विओग, विणयवई जिणहरं अइमहन्तं । कारविय दढचित्ता, पव्वज्जं गिण्हिऊण मया ॥११७॥

नामेण मेहबाहू, तत्थेगो गहवई परिव्वसइ । भद्दो सम्मद्दिट्ठी, धीरो उच्छाहवन्तो य ॥११८॥

दट्ठूण जिणायणे, विणयमईसन्तिए महापूयं । सद्दहिऊण मओ सो, तत्तो जक्खो समुप्पन्नो ॥११९॥

कुणइ य वेयावच्चं, चाउव्वण्णस्स समणसङ्घस्स । जिणसासणाणुरत्तो, विसुद्धसम्मत्तदढभावो ॥१२०॥

तत्तो चुओ समाणो, महापुरे सुप्पभस्स भज्जाए । अह तिलयसुन्दरीए, धम्मरुई नरवई जाओ ॥१२१॥

सुप्पहमुणिस्स सीसो, जाओ वय-समिइ-गुत्तिसंपन्नो । सङ्काइदोसरहिओ, सए वि देहे निरवयक्खो ॥१२२॥

सङ्घस्स भावियमई, वेयावच्चुज्जुओ गुणमहन्तो । काऊण कालधम्मं, माहिन्दे सुरवरो जाओ ॥१२३॥

अमरविमाणाउ चुओ, सहदेवनराहिवस्स महिलाए। जाओ सणंकुमारो, चक्कहरो गयपुरे नयरे ॥१२४॥

सोहम्माहिवईणं, रूवं चिय जस्स वण्णियं सोउं । दो संसयपडिवन्ना, देवा दट्ठूण ओइण्णा ॥१२५॥

दट्ठूण चक्कवट्टिं, देवा जंपन्ति साहु ! साहु ! त्ति । अइसुन्दरं तु रूवं, पसंसियं तुज्झ सक्केणं ॥१२६॥

तो भणइ चक्कवट्टी, जइ देवा ! आगया मए दट्ठुं । एक्कं खणं पडिच्छह, मज्जिय-जिमियं निय[2]च्छेह ॥१२७॥

संक्षेपेण गणधरः कथयति सर्वं पुराणसंबन्धम् । अस्त्यत्र भरतवर्षे ग्रामो गोवर्धनो नाम ॥११५॥

श्रावककुलसंभूतो जिनदत्तो नाम गृहपतिस्तत्र । साकारतपः कृत्वा कालगतः प्रस्थितः सुगतिम् ॥११६॥

महिला तस्य वियोगे विनयवती जिनगृहमतिमहत् । कारयित्वा दृढचित्ता प्रव्रज्यां गृहीत्वा मृता ॥११७॥

नाम्ना मेघबाहुस्तत्रैक गाथापतिः परिवसति । भद्रः सम्यग्दृष्टि र्धीर उत्साहवांश्च ॥११८॥

दृष्ट्वा जिनायतनान् विनयमतिसत्कान् महापूजाम् । श्रद्धाय मृतः स ततो यक्षः समुत्पन्नः ॥११९॥

करोति च वैयावृत्यं चातुर्वर्णस्य श्रमणसङ्घस्य । जिनशासनानुरक्तो विशुद्धसम्यक्त्वदृढभावः ॥१२०॥

ततश्च्युतस्सन् महापुरे सुप्रभस्य भार्यायाम् । अथ तिलकसुन्दर्यां धर्मरुचि र्नरपति र्जातः ॥१२१॥

सुप्रभमुनेः शिष्यो जातो व्रतसमितिगुप्तिसंपन्नः । शङ्कादिदोषरहितः स्वेऽपि देहे निरपेक्षः ॥१२२॥

सङ्घस्य भावितमतिवैयावृत्योद्यतो गुणमहान् । कृत्वा कालधर्मं माहेन्द्रे सुरवरो जातः ॥१२३॥

अमरविमानाच्च्युतः सहदेवनराधिपस्य महिलायाः । जातः सनत्कुमारश्चक्रधरो गजपुरे नगरे ॥१२४॥

सौधर्माधिपतिना रूपमेव यस्य वर्णितं श्रुत्वा । द्वौ संशयप्रतिपन्नौ देवौ दृष्टुमवतीर्णौ ॥१२५॥

दृष्ट्वा चक्रवर्तिनं देवौ जल्पतः साधु साध्विति । अतिसुन्दरं तु रुपं प्रशंसितं तव शक्रेण ॥१२६॥

तदा भणति चक्रवर्ती यदि देवौ ! आगतौ मम दृष्टम् । एकं क्षणं प्रतीक्षेथां मज्जित-जिमितं पश्यतम् ॥१२७॥

---

१. सुगइं-प्रत्य० । २. पश्यत ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण्हाओ कयबलिकम्मो, सव्वालंकारभूसियसरीरो। सीहासणे निविट्ठो, दिट्ठो देवेहि चक्कहरो ॥१२८॥

एत्तो भणन्ति देवा, तुज्झ इमं सुन्दरं परमरूवं। एक्कोऽत्थ नवरि दोसो, जेणं खणभंगुरसहावं ॥१२९॥

जा पढमदरिसणे च्चिय, आसि तुमं जोव्वणाणुरूवसिरी। सा कह खणेण हीणा, सोहा अइतुरियवेगेणं? ॥१३०॥

सोऊण देववयणं, माणुसजम्मं असासयं नाउं। निक्खमइ चक्कवट्टी, कुणइ य घोरं तवोकम्मं ॥१३१॥

अहियासिऊण रोगे, अणेयलद्धी-सुसत्तिसंपन्नो। कालं काऊण तओ, सणंकुमारं गओ सग्गं४ ॥१३२॥

अह पुण्डरीगिणीए, मेहरहो घणरहस्स सीसत्तं। काऊण कालधम्मं, सव्वट्ठे सुरवरो जाओ ॥१३३॥

तत्तो चुओ समाणो, नागपुरे वीससेणमहिलाए। गब्भम्मि सुओ जाओ, सन्ती जीवाण सन्तिकरो ॥१३४॥

भोत्तूण भरहवासं, तित्थं उप्पाइऊण सिद्धिगओ। सोलसमो य जिणाणं, पञ्चमओ चक्कवट्टीणं५ ॥१३५॥

कुन्थू अरो य चक्की, दोण्णि वि तित्थंकरा समुप्पन्ना। हन्तूणं कम्ममलं, सिवमयलमणुत्तरं पत्ता६०७ ॥१३६॥

धम्मस्स य सन्तिस्स य, सणंकुमारो जिणन्तरे आसि। तिण्णि जिणा चक्कहरा, अन्तरमेयं तु नायव्वं ॥१३७॥

धण्णपुरे ए नराहिव !, नराहिवो मुणिविचित्तगुत्तस्स। सीसो होऊण मओ, पत्तो च्चिय देवलोग सो ॥१३८॥

चविऊण विमाणाओ, ईसावइसामियस्स महिलाए। ताराए समुप्पन्नो, पुत्तो सो कत्तविरियस्स ॥१३९॥

नामेण सो सुभूमो, जमदग्गिसुयं रणे परसुरामं। हन्तूण चक्कवट्टी, जाओ रयणाहिवो सूरो ॥१४०॥

स्नातः कृतबलिकर्मा सर्वालङ्कारभूषितशरीरः। सिंहासने निविष्टो दृष्टो देवाभ्यां चक्रधरः ॥१२८॥

इतो भणतो देवौ तवेदं सुन्दरं परमरूपम्। एकोऽत्र नवरं दोषो येन क्षणभङ्गुरस्वभावम् ॥१२९॥

या प्रथमदर्शन एवासीत्तव यौवनुरुपश्रीः। सा कथं क्षणेन हीना शोभाऽतित्वरितवेगेन ? ॥१३०॥

श्रुत्वा देववचनं मनुष्यजन्माशाश्वतं ज्ञात्वा। निष्क्रामति चक्रवर्त्ती करोति च घोरं तपःकर्म ॥१३१॥

अध्यास्य रोगाननेकलब्धिसुशक्तिसंपन्नः। कालं कृत्वा ततः सनत्कुमारं गतः स्वर्गम् ॥१३२॥

अथ पुण्डरीकिण्यां मेघरथो घनरथस्य शिष्यत्वम्। कृत्वा कालधर्मं सर्वार्थे सुरवरो जातः ॥१३३॥

ततश्च्युतस्सन्नागपुरे विश्वसेनमहिलायाः। गर्भे सुतो जातः शान्ति र्जीवानां शान्तिकरः ॥१३४॥

भुक्त्वा भरतवर्षं तीर्थमुत्पाद्य सिद्धिं गतः। षोडशश्चजिनानां पञ्चमश्चक्रवर्तीनाम् ॥१३५॥

कुन्थुररश्च चक्रिणौ द्वावपि तीर्थकरौ समुत्पन्नौ। हत्वा कर्ममलं शिवमचलमनुत्तरं प्राप्तौ ॥१३६॥

धर्मस्य च शान्तेश्च सनत्कुमारो जिनान्तरे आसीत्। त्रयो जिनाश्चक्रधरा अन्तरमेततु ज्ञातव्यम् ॥१३७॥

धन्यपुरे अय नराधिप ! नराधिपो मुनिविचित्रगुप्तस्य। शिष्यो भूत्वा मृतः प्राप्त एव देवलोकं सः ॥१३८॥

च्युत्वा विमानात्श्रावस्तिस्वामिनो महिलायाम्। तारायां समुत्पन्नः पुत्रः स कार्त्तवीर्यस्य ॥१३९॥

नाम्ना स सुभूमो जमदग्निसुतं रणे परशुरामम्। हत्वा चक्रवर्त्ती जातो रत्नाधिपः शूरः ॥१४०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निब्बम्भणा[1] य पुहई, काऊण य विरइवज्जिओ कालं। सत्तमपुढविं पत्तो, अरमल्लि जिणंतरे एसो ॥१४१॥

चिन्तामणि त्ति नामं, नराहिवो वीयसोगनयरीए। लहिऊण सुप्पभगुरुं, पञ्चकप्पे समुप्पन्नो ॥१४२॥

चइऊणं नागपुरे, पउमरहनराहिवस्स महिलाए। जाओ य मऊराए, अह चक्कहरो महापउमो ॥१४३॥

रूवगुणसालिणीओ, दुहियाओ अट्ठ तस्स कन्नाओ। नेच्छन्तिहि भत्तारं, खेयरवसहेहि हरियाओ ॥१४४॥

उवलभिय आणियाओ, पव्वज्जं गेण्हिऊण सव्वाओ। अह पच्छिमम्मि काले, उववन्नाओ य सुरलोए ॥१४५॥

जे वि य ते अट्ठ जणा, ताण विओगे उ खेयरकुमारा। निव्विण्णा पव्वइया, तियसविमाणुत्तमं पत्ता ॥१४६॥

पडिबुद्धो चक्कहरो, दुहियाहेउम्मि जायसंवेगो। पउमस्स देइ रज्जं, निक्खन्तो विण्हुणा समयं ॥१४७॥

समणो वि महापउमो, काऊण तवं महागुणसमिद्धं। पत्तो इसिपब्भारं, अर-मल्लिजिणन्तरे धीरो९ ॥१४८॥

आसी महिन्ददत्तो, विजयपुरे नरवई महिड्ढीओ। नन्दणमुणिस्स सीसो, होऊण गओ य माहिन्दं ॥१४९॥

चइऊण य कम्पिल्ले, हरिकेउनराहिवस्स वप्पाए। जाओ च्चिय हरिसेणो, चक्कहरो पुहइविक्खाओ ॥१५०॥

काऊण महिं सव्वं, जिणचेइयमण्डियं च पव्वइओ। मुणिसुव्वयस्स तित्थे, सिद्धिगओ कम्मपरिमुक्को१० ॥१५१॥

अमियप्पभो नरिन्दो, रायपुरे मुणिसुहम्मसीसत्तं। काऊण बम्भलोयं, पत्तो तव-संजमगुणेणं ॥१५२॥

तत्थ चुओ रायपुरे, जसमइदेवीए नन्दणो जाओ। जयसेणो चक्कहरो, समत्तभरहाहिवो सूरो ॥१५३॥

निर्ब्राह्मणा च पृथिवीं कृत्वा च विरतिवर्जितः कालम्। सप्तमपृथिवीं प्राप्तोऽरमल्लिजिनान्तरे एषः ॥१४१॥

चिन्तामणिरिति नाम नराधिपो वीतशोकानगर्याम्। लब्ध्वा सुप्रभगुरुं पञ्चमकल्पे समुत्पन्नः ॥१४२॥

च्युत्वा नागपुरे पद्मरथनराधिपस्य महिलायाम्। जातश्च मयूरायामथ चक्रधरो महापद्मः ॥१४३॥

रुपगुणशालिन्य दुहितरोऽष्टौ तस्य कन्याः। नेच्छन्ति भर्तारं खेचरवृषभै र्हताः ॥१४४॥

उपलभ्यानीताः प्रव्रज्यां गृहीत्वा सर्वाः। अथ पश्चिमे काले उत्पन्नाश्च देवलोके ॥१४५॥

येऽपि च ते अष्टौ जनास्तेषां वियोगे खेचरकुमाराः। निर्विण्णा प्रव्रजितास्त्रिदशविमानमुत्तमं प्राप्ताः ॥१४६॥

प्रतिबुद्धश्चक्रधरो दुहितृहेतौ जातसंवेगः। पद्माय ददाति राज्यं निष्क्रान्तो विष्णुना समकम् ॥१४७॥

श्रमणोऽपि महापद्मः कृत्वा तपो महागुणसमृद्धम्। प्राप्त इषत्प्राग्भारमरमल्लिजिनान्तरे धीरः ॥१४८॥

आसीन्महेन्द्रदत्तो विजयपुरे नरपति र्महर्द्धिकः। नन्दनमुनेः शिष्योभूत्वा गतश्च माहेन्द्रम् ॥१४९॥

च्युत्वा च काम्पिल्ये हरिकेतु र्नराधिपस्य वप्रायाः। जात एव हरिषेणश्चक्रधरः पृथिवीविख्यातः ॥१५०॥

कृत्वा महीं सर्वां जिनचैत्यमण्डितां च प्रव्रजितः। मुनिसुव्रतस्य तीर्थे सिद्धिगतः कर्मपरिमुक्तः ॥१५१॥

अमितप्रभो नरेन्द्रो गजपुरे मुनिसुधर्मशिष्यत्वम्। कृत्वा ब्रह्मलोकं प्राप्तस्तपःसंयमगुणेन ॥१५२॥

तत्र च्युतो राजपुरे यशोमतीदेव्या नन्दनो जातः। जयसेनश्चक्रधरः समस्तभरताधिपः शूरः ॥१५३॥

---

१. निब्बंभणं च पुहइं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवेगजणियभावो, दिक्खं जिणदेसियं गहेउं जे । कम्मट्ठनिट्ठियट्ठो, नमि-नेमिजिणन्तरे सिद्धो११ ॥१५४॥
वाणारसीए पुव्विं तिलिङ्गसमणस्स पायमूलम्मि । संभूओ पव्वइओ, कुणइ तवं बारसवियप्पं ॥१५५॥
तत्तो समाहिबहुलं, कालं काऊण कमलगुम्मम्मि । जाओ सुरवरवसहो, ललियङ्गय-कुण्डलाभरणो ॥१५६॥
सो तत्थ वरविमाणे, सुरगणियासहगओ महिड्ढीओ । भुञ्जइ मणोभिरामं, विसयसुहं उत्तमगुणोहं ॥१५७॥
चइऊण विमाणाओ, बम्भरहनराहिवस्स महिलाए । जाओ य बम्भदत्तो, कम्पिल्ले पुप्फचूलाए ॥१५८॥
भोत्तूण भरहवासं, काऊण य विरइवज्जिओ कालं । सत्तमखिइं पविट्ठो, जिणन्तरे नेमि-पासाणं१२ ॥१५९॥
एए भरहाहिवई, बारस चक्की मए समक्खाया । सेणिय ! पुण्णविवागं, दावेन्ति जणस्स पच्चक्खं ॥१६०॥

पुण्य-पाप-फलम् -

गिरिसिहरसमेसु नरा, भवणेसु वसन्ति जं सया सुहिया । तं धम्मदुमस्स फलं, सव्वं इह पायडं लोए ॥१६१॥
छिड्डसयमण्डिएसुं, घरेसु धण-धन्नविप्पमुक्केसु । जं परिवसन्ति पुरिसा, तं पावदुमस्स हवइ फलं ॥१६२॥
तुरएसु कुञ्जरेसु य, चलचामरमण्डएसु विविहेसु । वच्चन्ति जं नरिन्दा, तं धम्मदुमस्स हवइ फलं ॥१६३॥
तण्हा-छुहाकिलन्ता, दुखं सी-उण्हपरिगयसरीरा । वच्चन्ति य पाएसुं, तं सव्वं पावरुक्खफलं ॥१६४॥
अट्ठारसगुणकलियं, सोवण्णियभायणेसु वरभत्तं । भुञ्जन्ति जं नरिन्दा, तं सव्वं पुण्णरुक्खफलं ॥१६५॥

संवेगजनितभावो दिक्षां जिनदेशितां गृहीत्वा ये । कर्माष्टनिष्ठितार्थो नमि-नेमिजिनान्तरे सिद्धः ॥१५४॥
वाराणस्यां पूर्वे त्रिलिङ्गश्रमणस्य पादमूले । संभूतः प्रव्रजितः करोति तपो द्वादशविकल्पम् ॥१५५॥
ततः समाधिबहुलं कालं कृत्वा कमलगुल्मे । जातः सुरवरवृषभो ललिताङ्गदकुण्डलाभरणः ॥१५६॥
स तत्र वरविमाने सुरगणिकासहगतो महर्द्धिकः । भुनक्ति मनोभिरामं विषयसुखमुत्तमगुणौघम् ॥१५७॥
च्युत्वा विमानाद्ब्रह्मरथनराधिपस्य महिलायाः । जातश्च ब्रह्मदत्तः काम्पिल्ये पुष्पचूलायाः ॥१५८॥
भुक्त्वा भरतवर्षं कृत्वा च विरतिवर्जितः कालम् । सप्तमक्षितिं प्रविष्टो जिनान्तरे नेमि-पार्श्वयोः ॥१५९॥
एते भरताधिपतयो द्वादशचक्रवर्त्तिनो मया समाख्याताः । श्रेणिक ! पुण्यविपाकं दर्शयन्ति जनस्य प्रत्यक्षम् ॥१६०॥

पुण्य-पाप-फलम् -

गिरिशिखरसमेषु नरा भवनेषु वसन्ति यत्सदा सुखिताः । तद्धर्मद्रुमस्य फलं सर्वमिह प्रकटं लोके ॥१६१॥
छिद्रशतमण्डितेषु गृहेषु धन-धान्य विप्रमुक्तेषु । यत्परिवसन्ति पुरुषास्तत्पापद्रुमस्य भवति फलम् ॥१६२॥
तुरगेषु कुञ्जरेषु च चलच्चामरमण्डितेषु विविधेषु । गच्छन्ति यन्नरेन्द्रास्तद्धर्मद्रुमस्य भवति फलम् ॥१६३॥
तृष्णा-क्षुधाक्लान्ता दुःखं शीतोष्णपरिगतशरीराः । व्रजन्ति च पादेषु तत्सर्वं पापवृक्षफलम् ॥१६४॥
अष्टादशगुणकलितं सौवर्णिकभाजेनषु वरभक्तम् । भुञ्जते यन्नरेन्द्रास्तत्सर्वं पुण्यवृक्षफलम् ॥१६५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रसवज्जियं च भत्तं, [१]घडखप्परथल्लियासु य विदिन्नं । जं भुञ्जन्ति कुभत्तं, तं पावदुमस्स चेव फलं ॥१६६॥

तित्थयर चक्कवट्टी, बलदेवा वासुदेवमाईया । जं होन्ति महापुरिसा, तं धम्मदुमस्स होइ फलं ॥१६७॥

धम्मा-ऽधम्मतरूणं, फलमेयं वण्णियं समासेणं । एत्तो सुणाहि सेणिय !, जम्मं बल-वासुदेवाणं ॥१६८॥

वासुदेवाः तत्सम्बद्धानि स्थानकानि च विविधानि—

नागपुरं साएया, सावत्थी तह य होइ कोसम्बी । पोयणपुर सीहपुरं, सेलपुरं चेव कोसम्बी ॥१६९॥

पुणरवि पोयणपुरं, इमाणि नयराणि वासुदेवाणं । आसी कमेण परभवे, सुरपुरसरिसाइ सव्वाइं ॥१७०॥

पढमो य विस्सभूई, पव्वयओ तह य हवइ धणमित्तो । सागरदत्तो वि तओ, पियमित्तो ललियमित्तो य ॥१७१॥

तह य पुणव्वसुनामो, नवमो उण होइ गङ्गदत्तो उ । आसि मुणी गयजम्मे, सव्वे वि य केसवा एए ॥१७२॥

पढमस्स गवापडणं, जुज्झन्तं महिलियाहरणहेउं । उज्जाणरण्णमरणं, हवइ य वणकीलणं चेव ॥१७३॥

अच्चन्तविसयसङ्गो, तह य विओगो विरूवणा परमा । एयाइ नियाणाइं, केसीणं आसि पुव्वभवे ॥१७४॥

तम्हा सनियाणतवं, मा कुणह खणं पि मूढभावेणं । संसारवड्ढणकरं, आमूलं सव्वदुक्खाणं ॥१७५॥

संभूय संभवो वि य, सुदरिसणो तहय हवइ सेयंसो । अइभूई वसुभूई, तह चेव य घोससेणरिसी ॥१७६॥

एत्तो य परं उयही, दुमसेणो चेव मुणिवरा एए । गुरवो आसि परभवे, कमेण इह वासुदेवाणं ॥१७७॥

रसवर्जितं च भक्तं घटकर्परस्थालिकासु च दत्तम् । यद्भुञ्जते कुभक्तं तत्पापद्रुमस्यैव फलम् ॥१६६॥

तीर्थकरश्चक्रवर्त्ती बलदेवा वासुदेवादिकाः । यद्भवन्ति महापुरुषास्तधर्मद्रुमस्य भवति फलम् ॥१६७॥

धर्माऽधर्मतरूणां फलमेतद्वर्णितं समासेन । इतः श्रुणु श्रेणिक ! जन्म बल-वासुदेवानाम् ॥१६८।

वासुदेवाः तत्सम्बद्धानि स्थानकानि च विविधानि -

नागपुरं साकेता श्रावस्तिस्तथा च भवति कौशाम्बी । पोतनपुरं सिंहपुरं शैलपुरमेव कोशाम्बी ॥१६९॥

पुनरपि च पोतनपुरमिमानि नगराणि वासुदेवानाम् । आसन्क्रमेण परभवे सुरपुर सदृशानि सर्वाणि ॥१७०॥

प्रथमश्च विश्वभूतिः पर्वतकस्तथा च भवति धनमित्रः । सागरदत्तोऽपि ततः प्रियमित्रो ललितमित्रश्च ॥१७१॥

तथा च पूनर्वसु र्नाम नवमः पुनर्भवति गङ्गदत्तस्तु । आसन्मुनिर्गतजन्मनि सर्वेऽपि च केशवा एते ॥१७२॥

प्रथमस्य गौपतनं युध्यमानं महिलाहरणहेतु । उद्यानाख्यमरणं भवति च वनक्रीडनमेव ॥१७३॥

अत्यन्तविषयसङ्गस्तथा च वियोगो विरुपता परमा । एतानि निदानानि केशवानामासन्पूर्वभवे ॥१७॥

तस्मात्सनिदानतपो मा कुरुत क्षणमपि मूढभावेन । संसारवर्धनकरमामूलं सर्वदुःखानाम् ॥१७५॥

सँभूतः संभवोऽपि च सुदर्शनस्तथा च भवति श्रेयांसः । अतिभूतिर्वसूभूतिस्तथैव च घोषसेनर्षिः ॥१७६॥

इतश्च परमुदधिर्द्रुमसेन एव मुनिवरा एते । गुरव आसन् परभवे क्रमेणेह वासुदेवानाम् ॥१७७॥

---

१. घटकर्परस्थालिकासु ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कप्पो य महासुक्को, पाणयकप्पो य अच्चुओ चेव । सहसारो सोधम्मो, माहिन्दो चेव सोधम्मो ॥१७८॥

कप्पो सणंकुमारो, तह य महासुक्कनामहेओ य । एएसु चुया सन्ता, उप्पन्ना केसवा सव्वे ॥१७९॥

पोयणपुर वारिपुरं, महापुरं सन्तिनामनयरं च । चक्कपुरं च कुसग्गं, मिहिला साएय महुरा य ॥१८०॥

एएसु य नयरेसुं, उप्पन्ना केसवा बलसमिद्धा । एत्तो कमेण वोच्छं, पियरो एयाण सव्वाणं ॥१८१॥

पढमो य पयावइ बम्भभूइ एत्तो य रुद्दनामो य । सोमो सिवंकरो वि य, समसुद्धो अग्गिदाणो य ॥१८२॥

दसरहनराहिवो वि य, वसुदेवो पच्छिमो कमेणं तु । एए हवन्ति पियरो, सव्वाण वि वासुदेवाणं ॥१८३॥

पढमा मिगावई माहवी य पुहई तहेव सीया य । अह अम्बिया य लच्छी, केसी वि य केगई चेव ॥१८४॥

तह देवई य एत्तो, इमाउ जणणीउ वासुदेवाणं । महिलाओ च्चिय ताणं, भणामि एत्तो निसामेहि ॥१८५॥

पढमा सयंपभा रुप्पिणी य पभवा मणोहर हवइ । तह य सुनेत्ता अह विमलसुन्दरी चेव नन्दवई ॥१८६॥

एत्तो पहावई रुप्पिणी य गुणरूवजोव्वणधरीओ । आसि महादेवीओ, सव्वाण वि वासुदेवाणं ॥१८७॥

बलदेवाः तत्सम्बद्धानि विविधानि स्थानकानि च–

धवलब्भसण्णियासा, पढमपुरी पुण्डरीगिणी भणिया । पुहई आणन्दपुरी, नन्दपुरी चेव नायव्वा ॥१८८॥

नयरी आसि असोगा, वियपुरं मणहरं सुसीमा य । खेमा वि य नागपुरं, इमाणि रामाण गयजम्मे ॥१८९॥

कल्पश्च महाशुक्रः प्राणातकल्पश्चाच्युत एव । सहस्रारः सौधर्मो माहेन्द्र श्चैव सौधर्मः ॥१७८॥

कल्पः सनत्कुमारस्तथा च महाशुक्रनामधेयश्च । एतेषु च्युतास्सन्त उत्पन्नाः केशवाः सर्वे ॥१७९॥

पोतनपुरं वारिपुरं महापुरं शान्तिनामनगरं च । चक्रपुरं च कुशाग्रं मिथिला साकेतो मथुरा च ॥१८०॥

एतेषु च नगरेषूत्पन्नाः केशवा बलसमृद्धाः । इतः क्रमेण वक्ष्यामि पितरावेतेषां सर्वेषाम् ॥१८१॥

प्रथमश्च प्रजापति ब्रह्मभूतिरितश्च रुद्रनामा च । सोमः शिवंकरोऽपि च समशुद्धोऽग्निदानश्च ॥१८२॥

दशरथनराधिपोऽपि च वसुदेवः पश्चिमः क्रमेण तु । एते भवन्ति पितरः सर्वेषामपि वासुदेवानाम् ॥१८३॥

प्रथमा मृगावती माधवी च पृथिवी तथैव सीता च । अथाम्बिका च लक्ष्मीः केशी अपि च कैकइ चैव ॥१८४॥

तथा देवकी चेत इमा जनन्यो वासुदेवानाम् । महिला एव तेषां भणामीतो निशामय ॥१८५॥

प्रथमा स्वयंप्रभा रुक्मिणी च प्रभवा मनोहर भवति । तथा च सुनेत्राथ विमलसुन्दरी चैव नन्दवती ॥१८६॥

इतः प्रभावती रुक्मिणी च गुणरुपयौवनधारिण्यः । आसन्महादेव्यः सर्वेषामपि वासुदेवानाम् ॥१८७॥

बलदेवाः तत्सम्बद्धानि विविधानि स्थानकानि च-

धवलाभ्रसदृशा प्रथमपुरी पुण्डरीकिणी भणिता । पृथिव्यानन्दपुरी नन्दपुरीचैव ज्ञातव्या ॥१८८॥

नगर्यासीदशोका विजयपुरं मनोहरं सुसीमा च । क्षेमाऽपि च नागपुरमिमानि रामाणां गतजन्मनि ॥१८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुबलो य पवणवेगो, नन्दि सुमित्तो महावलो चेव । पुरिसवसभो य एत्तो, सुदरिसणो होइ नायव्वो ॥१९०॥

समणो वसुंधरो च्चिय, सिरिचन्दो हवइ पच्छिमो सङ्खो । एयाइँ पुव्वजम्मे, बलदेवमुणीण नामाणि ॥१९१॥

अणयारो मुणिवसभो, हवइ तओ समणसीहनामो य । तइओ य सुव्वयरिसी, वसभो य तहा पयपालो ॥१९२॥

अह दमधरो सुधम्मो, सायरघोसो य विद्दुमाभो य । एए आसि परभवे, गुरवो च्चिय सीरधारीणं ॥१९३॥

तिण्णि य अणुत्तराओ, सहसाराओ हवन्ति तिण्णेव । दोण्णि य बम्भाउ चुया, एक्को पुण दसमकप्पाओ ॥१९४॥

एएसु चुया जाया, बलदेवमुणी तवोधरा सव्वे । एत्तो कहेमि सेणिय ! जणणीओ ताण इह जम्मे ॥१९५॥

भद्दा सुभद्दनामा, सुदरिसणा सुप्पभा तहा विजया । अन्ना वि वेजयन्ती, सीला अवराइया चेव ॥१९६॥

सव्वन्ते पुण एत्तो, भणिया वि हु रोहिणी परवरूवा । एयाओ आसि एत्थं, जणणीओ सीरधारीणं ॥१९७॥

सेयंसाइ तिविट्ठू, वंदन्ति य केसवा जिणा पञ्च । पुरिसवरपुण्डरीओ, अर-मल्लिजिणन्तरे आसो ॥१९८॥

मल्लि-मुणिसुव्वयाणं, दत्तो वि य केसवो समक्खाओ । सुव्वय-नमीण मज्झे, केसी पुण लक्खणो हवइ ॥१९९॥

वन्दइ अरिट्ठनेमी, अपच्छिमो केसवो बलसमग्गो । एत्तो पडिसत्तूणं, भणामि नयराणि सव्वाणि ॥२००॥

प्रतिवासुदेवास्तत्सम्बद्धानि विविधानि स्थानकानि च–

अलकापुरि विजयपुरं, नन्दणनयरं हवइ पुहइपुरं । एत्तो य हरिपुरं पुण, सूरपुरं सीहनामं च ॥२०१॥

सुबलश्च पवनवेगो नन्दिः सुमित्रो महाबल श्चैव । पुरुषवृषभश्चेतः सुदर्शनोभवति ज्ञातव्यः ॥१९०॥

श्रमणो वसुंधर एव श्रीचन्द्रो भवति पश्चिमः शङ्खः । एतानि पूर्वभवे बलदेवमुनीनां नामानि ॥१९१॥

अणगारो मुनिवृषभो भवति ततः श्रमणसिंहनाम च । तृतीयश्च सुव्रतर्षिर्वृषभश्च तथा प्रजापालः ॥१९२॥

अथ दमधरः सुधर्मः सागरघोषश्च विद्रुमाभश्च । एत आसन्परभवे गुरव एव सीरधारीणाम् ॥१९३॥

त्रयश्चानुत्तरा सहस्रारा भवन्ति त्रयरेव । द्वौ च ब्रह्माच्च्युत्वैकः पुन र्दशमकल्पात् ॥१९४॥

एतेषु च्युता जाता बलदेवमुनयस्तपोधराः सर्वे । इतः कथयामि श्रेणिक ! जनन्यस्तेषामिह जन्मनि ॥१९५॥

भद्रा सुभद्रानामा सुदर्शना सुप्रभा तथा विजया । अन्यापि वैजयन्ती शीलाऽपराजिता श्चैव ॥१९६॥

सर्वान्ते पुनरितो भणिताऽपि हु रोहिणी प्रवररूपा । एता आसन्नत्र जनन्यः सीरधारीणाम् ॥१९७॥

श्रेयांसादींस्त्रिपृष्ठा वन्दन्ते च केशवा जिनान्पञ्च । पुरुषवरपुण्डरीकोऽरमल्लिजिनान्तरे आसीत् ॥१९८॥

मल्लि-मुनिसुव्रतयोर्दत्तोऽपि च केशवः समाख्यातः । सुव्रत-नम्यो र्मध्ये केशवः पुन र्लक्ष्मणो भवति ॥१९९॥

वन्दत्येरिष्टनेमिमपश्चिमः केशवो बलसमग्रः । इतः प्रतिशत्रूणां भणामि नगराणि सर्वाणि ॥२००॥

प्रतिवासुदेवास्तत्सम्बद्धानि विविधानि स्थानकानि च–

अलकापुरी विजयपुरं नन्दननगरं भवति पृथिवीपुरम् । इतश्च हरिपुरं पुनः सुरपुरं सिंहनाम च ॥२०१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लङ्कापुरी य भणिया, रायगिहं चेव होइ नायव्वं । एयाणि आसि सेणिय ! पुराणि पडिवासुदेवाणं ॥२०२॥

आसग्गीवो तारग, मेरग तहेव य हवइ महुकेडो । हवइ निसुम्भो य वली, पल्हाओ रावणो चेव ॥२०३॥

नवमो य जरासन्धू, एए पडिकेसवा कमेणं तु । इह भारहम्मि वासे, आसी पडिसत्तु केसीणं ॥२०४॥

पढमो सुवण्णकुम्भो, कित्तिधरो तह सुधम्मनामो य । हरिणङ्कुसो य कित्ती, हवइ सुमित्तो भुवणसोहो ॥२०५॥

भणिओ य सुव्वयमुणी, सिद्धत्थो पच्छिमो हवइ एत्तो । बलदेवाणं एए, आसि गुरू इह भवे सव्वे ॥२०६॥

अट्ठेव य बलदेवा, सिवमयलमणुत्तरं गइं पत्ता । एक्को य बम्भलोए, अपच्छिमो चेव उप्पन्नो ॥२०७॥

एवं कम्ममहावणं सुविउलं वाहीलयालिङ्गियं, सव्वं झाणमहाणलेण डहिउं केइत्थ मोक्खं गया ।

अन्ने थोवभवावसेसकलुसा कप्पालएसु ट्ठिया, भव्वा धम्मफलेण होन्ति विमला निच्चं सुहावासया ॥२०८॥

॥ इय पउमचरिए तित्थयराइभवाणुकित्तणो नाम वीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

लङ्कापुरी च भणिता राजगृहं चैव भवति ज्ञातव्यम् । एतान्यासन् श्रेणिक ! पुराणि प्रतिवासुदेवानाम् ॥२०२॥

अश्वग्रीवस्तारको मेरकस्तचैव भवति मधुकटैभः । भवति निःशुम्भश्च बली प्रह्लादो रावण श्चैव ॥२०३॥

नवमश्च जरासंघ एते प्रतिकेशवाः क्रमेण तु । इह भरते वर्षे आसन्प्रतिशत्रवः केशीनाम् ॥२०४॥

प्रथमः सुवर्णकुम्भः कीर्तिधरस्तथा सुधर्मनामा च । हरिणाङ्कुशश्च कीर्त्ति र्भवति सुमित्रो भुवनशोभः ॥२०५॥

भणितश्च सुव्रतमुनिः सिद्धार्थः पश्चिमो भवतीतः । बलदेवानामेत आसन्गुरव इह भवे सर्वे ॥२०६॥

अष्टावेव च बलदेवाः शिवमचलमनुत्तरां गतिं प्राप्ताः । एकश्च ब्रह्मलोकेऽपश्चिमश्चैवोत्पन्नः ॥२०७॥

एवं कर्ममहावनं सुविपुलं व्याधिलताऽऽलिङ्गितं सर्वं ध्यानमहानलेन दग्ध्वा केचिन्मोक्षं गताः ।

अन्ये स्तोकभवावशेषकलुषाः कल्पालयेषु स्थिता भव्या धर्मफलेन भवन्ति विमला नित्यं सुखावासकाः ॥२०८॥

॥ इति पद्मचरित्रे तीर्थकरादिभवानुकीर्त्तनो नाम विंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२१. सुव्वय-वज्जबाहु-कित्तिधरमाहप्पवण्णणं

हरिवंशोत्पत्तिः—

अट्ठमरामस्स तुमं, सेणिय ! निसुणेहि ताव संबन्धं । कुल-वंसनिग्गमं ते, कहेमि सव्वं जहावत्तं ॥१॥

सीयलजिणस्स तित्थे, सुमुहो नामेण आसि महिपालो । कोसम्बीनयरीए, तत्थेव य वीरयकुविन्दो ॥२॥

हरिऊण तस्स महिलं, वणमालं नाम नरवई तत्थ । भुञ्जइ भोगसमिद्धं, रईए समयं अणङ्गो व्व ॥३॥

अह अन्नया नरिन्दो, फासुयदाणं मुणिस्स दाऊणं । असणिहओ उववन्नो, महिलासहिओ य हरिवासे ॥४॥

कन्ताविओयदुहिओ, पोट्ठिल्लमुणिस्स पायमूलम्मि । घेत्तूण य पव्वज्जं, कालगओ सुरवरो जाओ ॥५॥

अवहिविसएण नाउं, देवो हरिवाससंभवं मिहुणं । अवहरिऊण य तुरियं, चम्पानयरम्मि आणेइ ॥६॥

हरिवाससमुप्पन्नो, जेणं हरिऊण आणिओ इहइं । तेणं चिय हरिराया, विक्खाओ तिहुयणे जाओ ॥७॥

जाओ च्चिय तस्स सुओ, महागिरी नाम रूवसंपन्नो । तस्स वि कमेण पुत्तो, उप्पन्नो हिमगिरी नामं ॥८॥

वसुगिरि इन्दगिरी वि य, जाओ च्चिय पत्थिवो रयणमाली । राया विय संभूओ, एत्तो पुण भूयदेवो य ॥९॥

राया महीधरो वि य, नरवसभा एवमाइया बहवे । उप्पन्ना हरिवंसे, वोलीणा दीहकालेणं ॥१०॥

---

२१. सुव्रत-वज्रबाहु-कीर्त्तिधरमाहात्म्यवर्णनम्

हरिवंशोत्पत्तिः -

अष्टम रामस्य त्वं श्रेणिक ! निश्रुणु तावत्संबन्धम् । कुलवंशनिर्गमं ते कथयामि सर्वं यथावृत्तम् ॥१॥

शीतलजिनस्यतीर्थे सुमुखो नाम्नासीन्महिपालः । कौशाम्बीनगर्यां यत्रैव च वीरककुविन्दः ॥२॥

हृत्वा तस्य महिलां वनमालां नाम नरपतिस्तत्र । भुनक्ति भोगसमृद्धं रत्या समकमनङ्ग इव ॥३॥

अथान्यदा नरेन्द्रः प्रासुकदानं मुनेर्दत्वा । अशनिहत उत्पन्नो महिलासहितश्च हरिवर्षे ॥४॥

कान्तावियोगदुःखितः पोट्टिलमुनेः पादमूले । गृहीत्वा च प्रव्रज्यां कालगतः सुरवरो जातः ॥५॥

अवधिविषयेन ज्ञात्वा देवो हरिवर्षसंभवं मिथुनम् । अपहृत्य च त्वरितं चम्पानगरमानयति ॥६॥

हरिवर्षसमुत्पन्नो येन हृत्वाऽऽनीत इह । तेनैव हरिराजा विख्यातस्त्रिभुवने जातः ॥७॥

ज्ञात एव तस्य सुतो महागिरि र्नाम रूपसंपन्नः । तस्यापि क्रमेण पुत्र उत्पन्नो हिमगिरि र्नाम ॥८॥

वसुगिरिरिन्द्रिगिरिरपि च जात एव पार्थिवो रत्नमाली । राजाऽपि च संभूत इतः पुनर्भूतदेवश्च ॥९॥

राजा महीधरोऽपि च नरवृषभा एवमादिका बहवः । उत्पन्ना हरिवंशे व्यतीता दीर्घकालेन ॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुनिसुव्रतजिनचरितम् –

तत्थेव य हरिवंसे, उप्पन्नो पत्थिवो वि हु सुमित्तो । भुञ्जइ कुसग्गनयरं, महिला पउमावई तस्स ॥११॥

अह सा सुहं पसुत्ता, रयणीए पच्छिमम्मि जामम्मि । पेच्छइ चउदस सुमिणे, पसत्थजोगेण कल्लाणी ॥१२॥

गय वसह सीह अभिसेय दाम ससि दिणयरं झयं कुम्भं । पउमसर सागर विमाण-भवण रयणुच्चय सिहिं च ॥१३॥

पडिबुद्धा कमलमुही, चोद्दस सुमिणे कहेइ दइयस्स । तेण वि सा पडिभणिया, होही तुह जिणवरो पुत्तो ॥१४॥

जाव य एसाऽऽलावो, वट्टइ तावं नहाउ सयराहं । पडिया य रयणवुट्ठी, उज्जोवन्ती दस दिसाओ ॥१५॥

तिण्णेव य कोडीओ, अद्धं च दिणे दिणे य रयणाणं । पाडेइ धणयजक्खो, एवं मासा य पन्नरस ॥१६॥

कमलवणवासिणीहिं, देवीहिं सोहिए तओ गब्भे । अवइण्णो कयपुण्णो, कमेण जाओ जिणवरिन्दो ॥१७॥

सो तत्थ जायमेत्तो, सुरेहि नेऊण मन्दरस्सुवरिं । इन्दाइएहि ण्हविओ, विहिणा खीरोदहिजलेणं ॥१८॥

अह तं कयाहिसेयं, सव्वालङ्कारभूसियसरीरं । इन्दाई सुरपवरा, थुणन्ति थुइमङ्गलसएहिं ॥१९॥

अह ते थोऊण गया, विबुहा सेणाणिओ वि जिणचन्दं । ठविऊण जणणिअङ्के, सो वि य देवालयं पत्तो ॥२०॥

गब्भट्ठियस्स जस्स य, जणणी वि हु आसि सुव्वया रज्जे । मुणिसुव्वओ त्ति नामं जिणस्स रइयं गुरुजणेणं ॥२१॥

परिवड्ढिओ कमेणं, रज्जं भोत्तूण सुइरकालम्मि । दट्ठूण सरयमेहं, विलिज्जमाणं च पडिबुद्धो ॥२२॥

मुणिसुव्वयजिणवसभो, पुत्तं ठविऊण सुव्वयं रज्जे । सुरपरिकिण्णो भयवं, पव्वइओ नरवईहि समं ॥२३॥

मुनिसुव्रतजिनचरित्रम् -

तत्रैव च हरिवंश उत्पन्नः पार्थिवोऽपि हु सुमित्रः । भुनक्ति कुशाग्रनगरं महिला पद्मावती तस्य ॥११॥

अथ सा सुखं सुप्ता रजन्यां पश्चिमे यामे । पश्यति चतुर्दशस्वप्नान् प्रशस्तयोगेन कल्याणी ॥१२॥

गजोवृषभः सिंहोऽभिषेकोदामः शशी दिनकरं ध्वजं कुम्भः । पद्मसरः सागरो विमान-भवनो रत्नोच्चयशिखी च ॥१३॥

प्रतिबुद्धा कमलमुखी चतुर्दशस्वप्नान् कथयति दयितस्य । तेनाऽपि सा प्रतिभणिता भविष्यति तव जिनवरः पुत्रः ॥१४॥

यावच्चैष आलापो वर्तते तावन्नभसः शीघ्रम् । पतिता च रत्नवृष्टिरुद्योतयन्ती दश दिशः ॥१५॥

त्रिण्येव कोट्यो ऽर्द्धं च दिने दिने च रत्नानाम् । पातयति धनदयक्ष एवं दिनानि च पञ्चदशः ॥१६॥

कमलवनवासिनिभि र्देविभिः शोधिते ततो गर्भे । अवतीर्णः कृतपुण्यः क्रमेण जातो जिनवरेन्द्रः ॥१७॥

स तत्र जातमात्र सुरैर्नीत्वा मन्दरस्योपरि । इन्द्रादिकैः स्नपितो विधिना क्षीरोदधिजलेन ॥१८॥

अथ तं कृताभिषेकं सर्वालङ्कारभूषितशरीरम् । इन्द्रादय सुरप्रवराः स्तुवन्ति स्तुतिमङ्गलशतैः ॥१९॥

अथ ते स्तुत्वा गता विबुधाः सेनानीको ऽपि जिनचन्द्रम् । स्थापयित्वा जनन्यङ्के सोऽपि च देवालयं प्राप्तः ॥२०॥

गर्भस्थितस्य यस्य च जनन्यपि हु आसीत्सुव्रताराज्ये । मुनिसुव्रत इति नाम जिनस्य रचितं गुरुजनेन ॥२१॥

परिवर्धितः क्रमेण राज्यं भुक्त्वा सुचिरकाले । दृष्ट्वा शरदमेघं विलीयमानं च प्रतिबुद्धः ॥२२॥

मुनिसुव्रतजिनवृषभः पुत्रं स्थापयित्वा सुव्रतं राज्ये । सुरपरिकीर्णो भगवान् प्रव्रजितो नरपतिभिः समम् ॥२३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छट्ठोववासनियमे, रायगिहे वसभदत्तनरवइणा। परमन्नेण य दिन्नं, पारणयं जिणवरिन्दस्स ॥२४॥

पत्तो य वसभदत्तो, पञ्चाइसए जिणप्पहावेणं। सुर-असुरनमियचलणो, विहरइ तित्थंकरो वसुहं ॥२५॥

चम्पयदुमस्स हिट्ठे, एवं घाइक्खएण कम्माणं। झायन्तस्स भगवओ, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥२६॥

अह सुव्वओ वि रज्जं, दाऊण सुयस्स तत्थ दक्खस्स। पव्वइओ चरिय तवं, कालगओ पाविओ सिद्धिं ॥२७॥

तित्थं पवत्तिऊणं, मुणिसुव्वयसामिओ वि गणसहिओ। सम्मेयपव्वओवरि, दुक्खविमोक्खं गओ मोक्खं ॥२८॥

जनकराजोत्पत्तिः-

दक्खस्स पढमपुत्तो, जाओ इलवद्धणो त्ति नामेणं। सिरिवद्धणो कुमारो, तस्स वि य सुओ समुप्पन्नो ॥२९॥

सिरिवक्खो तस्स सुओ, जाओ च्चिय संजयन्तनरवसभो। कुणिमो महारहो वि य, हरिवंसे पत्थिवा बहवे ॥३०॥

कालेण अइक्कन्ता केइत्थ तवेण पाविया सिद्धिं। अन्ने पुण सुरलोए, उप्पन्ना निययजोगेणं ॥३१॥

एवं महन्तकाले, वोलीणेसु य निवेसु बहुएसु। मिहिलाए समुप्पन्नो, वासवकेऊ य हरिवंसे ॥३२॥

महिला तस्स सुरूवा, नामेण इला गुणाहिया लोए। तीए गब्भम्मि सुओ, जाओ जणओ त्ति नामेणं ॥३३॥

जणयस्स पसूई खलु, सेणिय ! कहिया मए समासेणं। निसुणेहि जत्थ वंसे, उप्पन्नो दसरहो राया ॥३४॥

दशरथराजोत्पत्तिः—

गच्छन्ति काल-समया, तप्पन्ति तवं सुउज्जया समणा। विलसन्ति विलयलग्गा, सुस्सन्ति य [1]अकयसुहकम्मा ॥३५॥

षष्ठोपवासनियमे राजगृहे वृषभदत्तनरपतिना। परमान्नेन च दत्तं पारणकं जिनवरेन्द्रस्य ॥२४॥

प्राप्तश्च ऋषभदत्तः पञ्चातिशयान् जिनप्रभावेण। सुरासुरनतचरणो विहरति तीर्थंकरो वसुधाम् ॥२५॥

चम्पकद्रुमस्याध एवं घातिक्षये कर्माणाम्। ध्यायतो भगवतः केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥२६॥

अथ सुव्रतोऽपि राज्यं दत्वा सुतस्य तत्र दक्षस्य। प्रव्रजितश्चरित्वा तपः कालगतः प्राप्तः सिद्धिम् ॥२७॥

तीर्थं प्रवर्त्य मुनिसुव्रतस्वाम्यपि गणसहितः। सम्मेतपर्वतोपरि दुःखविमोक्षं गतो मोक्षम् ॥२८॥

जनकराजोत्पत्तिः -

दक्षस्य प्रथमपुत्रो जात इलावर्धन इति नाम्ना। श्रीवर्धनः कुमारस्तस्यापि च सुतः समुत्पन्नः ॥२९॥

श्रीवक्षास्तस्य सुतो जात एव सञ्जयन्त नरवृषभः। कुणिमो महारथोऽपि च हरिवंशे पार्थिवा बहवः ॥३०॥

कालेनातिक्रान्ताः केचित्तपसा प्राप्ताः सिद्धिम्। अन्ये पुनः सुरलोके उत्पन्ना नित्ययोगेन ॥३१॥

एवं महाकाले व्यतीतेषु च नृपेषु बहुषु। मिथिलायां समुत्पन्नो वासवकेतुश्च हरिवंशे ॥३२॥

महिला तस्य सुरूपा नाम्नेला गुणाधिका लोके। तस्या गर्भे सुतो जातो जनक इति नाम्ना ॥३३॥

जनकस्य प्रसूतिः खलु, श्रेणिक ! कथिता मया समासेन। निश्रुणु यत्र वंश उत्पन्नो दशरथो राजा ॥३४॥

दशरथराजोत्पत्तिः -

गच्छन्ति काल-समयास्तप्यन्ति तपः सूद्यताः श्रमणाः। विलसन्ति विषयलग्नाः शुष्यन्ति चाकृतशुभकर्माणः ॥३५॥

---

१. अकयबलिकम्मा-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणुयत्तन्ति य जीवा, दुक्खाणि सुहाणि जीवलोगम्मि । तेसिं परिवत्तन्ति य, वसणाणि महोच्छवा चेव ॥३६॥

झायन्ति मुणी झाणं, मुक्खा निन्दन्ति रागिणो मत्ता । अभिनन्दन्ति बुहा जे, मुज्झन्ति सुरामिसासत्ता ॥३७॥

गायन्ति विसयमूढा, रोवन्ति य रोगपीडिया जे य । सुहिणो चेव हसन्ति य, किलिसन्तं पेच्छिऊण जणं ॥३८॥

विवदन्ति कलहसीला, वग्गन्ती तह य केवि धावन्ति । लोभवसेण वि केई, संगामं जन्ति तण्हत्ता ॥३९॥

एवं विविहपगारं, अवसप्पइ दियह-कालमाईहिं । चित्तपडो व्व विचितत्तो, खीयइ अवसप्पिणी कालो ॥४०॥

अह एत्तो वीसइमे, जिणन्तरे वट्टमाणसमयम्मि । विजओ नाम नरिन्दो, साएयपुराहिवो जाओ ॥४१॥

तस्स महादेवीए, हिमलूचाए सुया समुप्पन्ना । पढमो य वज्जबाहू, बीओ य पुरंदरो नामं ॥४२॥

[1]तइया पुण नागपुरे, राया बहुवाहणो परिव्वसइ । चूडामणि से भज्जा, दुहिया य मणोहरा होइ ॥४३॥

अह वाहणेण दिन्ना, सा कन्ना विजयपढमपुत्तस्स । गन्तूण वज्जबाहू, परिणेइ पराए पीईए ॥४४॥

वत्तम्मि य वारिज्जे, तं कन्नं उदयसुन्दरो भाया । आढत्तो वि य नेउं, ससुरघरं तेण समसहिओ ॥४५॥

मुनिवरदर्शनम् –

एत्तो वसन्तकाले, वसन्तगिरिमत्थए मुणिवरिन्दो । वोलन्तएण दिट्ठो, झाणत्थो वज्जबाहूणं ॥४६॥

जह जह तस्स समीवं, गिरिस्स अल्लियइ वज्जवरबाहू । तह तह वड्ढइ पीई, कुसुमियवरपायवोहेणं ॥४७॥

अनुभवन्ति च जीवा दुःखानि सुखानि जीवलोके । तस्मिन्परिवर्तन्ते च वस्त्राणि महोत्सव इव ॥३६॥

ध्यायन्ति मुनयो ध्यानं, मुर्खा निन्दन्ति रागिणो मत्ताः । अभिनन्दन्ति बुधा ये मुह्यन्ति सुरामिषासक्ताः ॥३७॥

गायन्ति विषयमूढा रुदन्ति च रोगपीडिता ये च । सुखिनश्चैव हसन्ति च क्लिश्नन्तं दृष्ट्वा जनम् ॥३८॥

विवदन्ति कलहशीला, वल्गन्ते तथा च केऽपि धावन्ति । लोभवशेनाऽपि केऽपि संग्रामं यान्ति तृष्णार्त्ताः ॥३९॥

एवं विविधप्रकारमवसर्पति दिवसकालादिभिः । चित्रपट इव विचित्रः क्षीयते अवसर्पिणी कालः ॥४०॥

अथेतो विंशतितमे जिनान्तरे वर्त्तमानसमये । विजयो नाम नरेन्द्रः साकेतपुराधिपो जातः ॥४१॥

तस्य महादेव्यां हिमचूलायां सुतौ समुत्पन्नौ । प्रथमश्च वज्रबाहु र्द्वितीयश्च पुरंदरो नाम ॥४२॥

तदा पुन र्नागपुरे राजा बहुवाहनः परिवसति । चूडामणी तस्य भार्या दुहिता च मनोहरा भवति ॥४३॥

अथ वाहनेन दत्ता सा कन्या विजयप्रथमपुत्राय । गत्वा वज्रबाहुः परिणयति परया प्रीत्या ॥४४॥

वर्तमाने च वीवाहे ता कन्यामुदयसुन्दरो भ्राता। आरब्धोऽपि च नेतुं श्वसुरगृहे तेन समसहितः ॥४५॥

मुनिवर दर्शनम् -

इतो वसन्तकाले वसन्तगिरिमस्तकं मुनिवरेन्द्रः । व्युत्क्रामता दृष्टो ध्यानस्थो वज्रबाहुणा ॥४६॥

यथा यथा तस्य समीपं गिरेरुपसर्पति वज्रबाहुः । तथा तथा वर्धते प्रीतिः कुसुमितवरपादपौघेन ॥४७॥

---

१. तदा ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्तासोय-हलिद्दुम-वरदाडिम-किंसुएसु दिप्पन्तो । कोइलमुहलुग्गीओ, महुयरझंकारगीयरवो ॥४८॥

वरबउल-तिलय-चम्पय-असोय-पुन्नाय-नायसुसमिद्धो । पाडल-सहयार-ऽज्जुण-कुन्दलयामण्डिउद्देसो ॥४९॥

बहुकुसुमसुरहिकेसर-मयरन्दुद्दामवासियदिसोहो । दाहिणपवणन्दोलिय-नच्चाविज्जन्ततरुनिवहो ॥५०॥

दट्ठूण वज्जबाहू, मुणिवसहं तो मणेण चिन्तेइ । धन्नो एस कयत्थो, जो कुणइ तवं अइमहन्तं ॥५१॥

समसत्तु-मित्तभावो, कञ्चण-तणसरिस विगयपरिसङ्गो । लाभा-ऽलाभे य समो, दुक्खे य सुहे य समचित्तो ॥५२॥

एएण फलं लद्धं, माणुसजम्मस्स ताव निस्सेसं । जो झायइ परमत्थं, एगग्गमणो विगयमोहो ॥५३॥

हा ! कट्ठं चिय पावो, बद्धो हं पावकम्मपासेहिं । अइकढिण-दारुणेहिं, चन्दणरुक्खो व नागेहिं ॥५४॥

मुणिवसभदिन्नदिट्ठी, भणइ य तं उदयसुन्दरो वयणं । किं महसि समणदिक्खं ?, कुमार ! अहियं निरिक्खेसि ॥५५॥

तो भणइ वज्जबाहू, एव इमं जं तुमे समुल्लवियं । उदएण वि पडिभणिओ, तुज्झ सहाओ भविस्से हं ॥५६॥

वीवाहभूसणेहिं, विभूसिओ गयवराउ ओइण्णो । आरुहिऊण गिरिवरे, पणमइ य मुणिं पयत्तेणं ॥५७॥

अह सो नमिऊण मुणी, साहसणत्थं पणट्ठमय-रायं । पुच्छइ संसारठिइं, बन्ध-मोक्खं च जीवस्स ॥५८॥

संसारस्वरूपं बन्धमोक्षस्वरूपं च–

भणइ तओ मुणिवसमो, जीवो जह अट्ठकम्मपडिबद्धो । दुक्खाइँ अणुहवन्तो, परिहिण्डइ दीहसंसारं ॥५९॥

कम्माण उवसमेणं, लहइ जया माणुसत्तणं सारं । तह वि य बन्धवनडिओ, न कुणइ धम्मं विसयमूढो ॥६०॥

रक्ताशोकहारिद्रद्रुम वरदाडिम-किंशुकै र्दीप्यमानः । कोकिलमूखरोद्गीतो मधुकरझंकारगीतरवः ॥४८॥

वरबकुल-तिलक-चम्पकाशोकपुन्नागनागसुसमृद्धः । पाटलसहकारार्जुनकुन्दलतामण्डितोद्देशः ॥४९॥

बहुकुसुमसुरभिकेसरमकरन्दोद्दामवासितदिगोघः । दक्षिणपवनान्दोलितनर्त्तयत्तरुनिवहः ॥५०॥

दृष्ट्वा वज्रबाहु र्मुनिवृषभं तदा मनसा चिन्तयति । धन्य एष कृतार्थो यः करोति तपोऽतिमहत् ॥५१॥

समशत्रुमित्रभावः काञ्चन-तृणसदृशो विगतपरिसङ्गः । लाभाऽलाभे च समो दुःखे च सुखे च समचितः ॥५२॥

एतेन फलं लब्धं मनुष्यजन्मनः तावन्निःशेषम् । यो ध्यायति परमार्थमेकाग्रमना विगतमोहः ॥५३॥

हा ! कष्टमेव पापो बद्धोऽहं पापकर्मपाशैः । अतिकठिन-दारुणैश्चन्दनवृक्ष इव नागैः ॥५४॥

मुनिवृषभदत्तदृष्टि र्भणति च तमुदयसुन्दरो वचनम् । किं काङ्क्षसे श्रमणदिक्षां ? कुमार ! अधिकं निरीक्षसे ॥५५॥

तदा भणति वज्रबाहु एवमिदं यत्त्वया समुल्लापितम् । उदयेनाऽपि प्रतिभणितस्तव सहायो भविष्याम्यहम् ॥५६॥

वीवाहभूषणैर्विभूषितो गजवरादवतीर्णः । आरुह्य गिरिवरं प्रणमति च मुनिं प्रयत्नेन ॥५७॥

अथ स नत्वा मुनिं सुखासनस्थं प्रनष्टमदरागम् । पृच्छति संसारस्थितिं बन्ध-मोक्षं च जीवस्य ॥५८॥

संसारस्वरूपं बन्धमोक्षस्वरूपं च -

भणति ततो मुनिवृषभो जीवो यथाऽष्टकर्मप्रतिबद्धः । दुखान्यनुभवन् परिभ्रमति दीर्घसंसारम् ॥५९॥

कर्माणामुपशमेन लभते यदा मनुष्यत्वं सारम् । तथाऽपि च बान्धवनटितो न करोति धर्मं विषयमूढः ॥६०॥

दुविहो जिणवरधम्मो, सायारो तह हव निरयारो । सायारो गिहिधम्मो, मुणिवरधम्मो [१]निरायारो ॥६१॥
वासयधम्मं काऊणं निच्छिओ अन्तकालसमयम्मि । कालगओ उववज्जइ, सोहम्माईसु सुरपवरो ॥६२॥
देवत्ताउ मणुत्तं, मणुयत्ताओ पुणो वि देवत्तं । गन्तूण सत्तमभवे, पावइ सिद्धिं न संदेहो ॥६३॥
अह पुण जिणवरविहियं, दिक्खं घेत्तूण पवरसद्धाए । हन्तूण य कम्ममलं, पावइ सिद्धिं धुयकिलेसो ॥६४॥
एवं मुणिवरविहियं, सोऊणं नरवरो विगयमोहो । हियय कुणइ दढयरं, पव्वज्जानिच्छिउच्छाहं ॥६५॥
एक्कम्मि वरं जम्मे, दुक्खं अभिभुञ्जिउं समणधम्मे । कम्मट्ठपायववणं, लुणामि तवपरसुघाएहिं ॥६६॥
दट्ठूण वज्जबाहुं, विरत्तभावं मुणिस्स पासत्थं । वरजुवईउ पलावं कुणन्ति समयं नववहूए ॥६७॥
अह उदयसन्दरो तं, विन्नवइ सगग्गरेण कण्ठेणं । परिहासेण महायस !, भणिओ मा एव ववसाहि ॥६८॥
तं भणइ वज्जाबाहू, परिहासेणोसहं नु जह पीयं । सुट्ठु वि उदिण्णसंती, किं न हरइ वेयणं अङ्गे ? ॥६९॥
तो भणइ वज्जबाहू, मुणिवसभं पणमिऊण भावेणं । तुज्झ पसाएण अहं, निक्खमिउं अज्ज इच्छामि ॥७०॥
नाऊण तस्स भावं, साहू गुणसायरो भणइ तुज्झं । धम्मे हवउ अविग्घं, पावसु तव-संजमं विउलं ॥७१॥

वज्रबाहुदीक्षा –

निक्खमइ वज्जबाहू, मुणिवरपासम्मि जायसंवेगो । सुन्दरपमुहेहि समं, छव्वीसाए कुमाराणं ॥७२॥

द्विविधो जिनवरधर्मः साकारस्तथा च भवति निराकारः । साकारो गृहिधर्मो मुनिवरधर्मो निराकारः ॥६१॥
श्रावकधर्मं कृत्वा निष्ठितोऽन्तकालसमये । कालगत उत्पद्यते सौधर्मादिषु सुरप्रवरः ॥६२॥
देवत्वान्मनुष्यत्वं मनुष्यत्वात्पुनरपि देवत्वम् । गत्वा सप्तमभवे प्राप्नोति सिद्धिं न संदेहः ॥६३॥
अथ पुन जिनवरविहितां दिक्षां गृहीत्वा प्रवरश्रद्धया । हत्वा च कर्ममलं प्राप्नोति सिद्धिं धुतक्लेशः ॥६४॥
एवं मुनिवरविहितं श्रुत्वा नरवरो विगतमोहः । हृदयं करोति दृढतरं प्रव्रज्यानिश्चितोत्साहम् ॥६५॥
एकस्मिन्वरं जन्मनि दुःखमभिभुज्य श्रमणधर्मे । कर्माष्टपादपवनं लुनामि तपः परशुघातैः ॥६६॥
दृष्ट्वा वज्रबाहुं विरक्तभावं मुनेः पार्श्वस्थम् । वरयुवतयः प्रलापं कुर्वन्ति समकं नववध्वा ॥६७॥
अथोदयसुन्दरस्तं विज्ञापयति सगद्गदेन कण्ठेन । परिहासेन महायश ! भणितो मैवं व्यवस्य ॥६८॥
तं भणति वज्रबाहुः परिहाषेणौषधं नु यथा पीतम् । सुष्ट्वपि उदीर्णशान्ति कि न हरति वेदनामङ्गे ? ॥६९॥
तदा भणति वज्रबाहु र्मुनिवृषभं प्रणम्य भावेन । तव प्रसादेनाहं निष्क्रमितुमद्येच्छामि ॥७०॥
ज्ञात्वा तस्य भावं साधु र्गुणसागरो भणति तव । धर्मेभवत्वविघ्नं प्राप्नोतु तपः संयमं विपुलम् ॥७१॥

वज्रबाहुदीक्षा –

निष्क्रामति वज्रबाहु र्मुनिवरपार्श्वे जातसंवेगः । सुन्दरप्रमुखैः समं षड्विंशतिः कुमाराणाम् ॥७२॥

---

१. निरगारः श्रमणधर्म इत्यर्थः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोयरनेहेण बहू, भत्तारस्स य विआव्रदुक्खेणं । सा वि तहिं पव्वइया, मणोहरा मुणिसयासम्मि ॥७३॥

सोऊण वज्जबाहू, पव्वइयं विजयपत्थिवो भणइ । तरुणत्ते मज्झ सुओ, कह भोगाणं विरत्तो सो ? ॥७४॥

अहयं पुण नीसत्तो, इन्दियवसगो जराए परिगहिओ । ववगयदप्पुच्छाहो, कं सरणं वो पवज्जामि ? ॥७५॥

पसिढिलचलन्तगत्तो, अहयं पुण कासकुसुमसमकेसो । विवडियदसणसमूहो, तह वि विरायं न गच्छामि ॥७६॥

एवं विजयनरिन्दो, दाऊण पुरंदरस्स रायसिरिं । निक्खन्तो खायजसो, पासे निव्वाणमोहस्स ॥७७॥

कीर्त्तिधरः—

एत्तो पुरंदरस्स वि, पुहईदेवीए कुच्छिसंभूओ। जाओ च्चिय कित्तिधरो, जणम्मि विक्खायकित्तीओ ॥७८॥

राया कुसत्थलपुरे, धूया वि य तस्स नाम सहदेवी । कित्तिधरेण वरतणू, परिणीया सा विभूईए ॥७९॥

खेमंकरस्स पासे निक्खमइ पुरंदरो विगयनेहो । पारंपरागयं सो, कित्तिधरो भुञ्जए रज्जं ॥८०॥

अह अन्नया कयाई, कित्तिधरो आसणे सुहनिसन्नो । पेच्छइ गयणयलत्थं, रविबिम्बं राहुणा गहियं ॥८१॥

चिन्तेऊण पयत्तो, जो गहचक्कं करेइ नित्तेयं । सो दिणयरो असत्तो, तेयं राहुस्स विहडेउं ॥८२॥

एव [1]घणकम्मबद्धो, पुरिसो मरणे उदिण्णसन्तम्मि । वारेऊण असत्तो, अवसेण विवज्जए नियमा ॥८३॥

तम्हा असासयमिणं, माणुसजम्मं असारसुहसङ्गं । मोत्तूण [2]रायलच्छी, जिणवरदिक्खं पवज्जामि ॥८४॥

सोदरस्नेहेन वधू भर्तुश्च वियोगदुःखेन । साऽपि तत्र प्रव्रजिता मनोहरा मुनिसकाशे ॥७३॥

श्रुत्वा वज्रबाहुं प्रव्रजितं विजयपार्थिवो भणति । तरुणत्वे मम सुतः कथं भोगेभ्यो विरक्तः सः ? ॥७४॥

अहं पुनर्निसत्त्व इन्द्रियवशो जरया परिगृहीतः । व्यपगतदर्पोत्साहः कं शरणं वा प्रव्रजामि ॥७५॥

प्रशिथीलचलद्गात्रोऽहं पुनः काशकुसुमसमकेशः । विपतितदशनसमूहस्तथाऽपि विरागं न गच्छामि ॥७६॥

एवं विजयनरेन्द्रो दत्वा पुरंदराय राज्यश्रियम् । निष्क्रान्तः ख्यातयशसः पार्श्वे निर्वाणमोहस्य ॥७७॥

कीर्त्तिधरः-

इतः पुरंदरस्यापि पृथिवीदेव्यः कुक्षिसंभूतः । जात एव कीर्तिधरो जगति विख्यातकीर्त्तिः ॥७८॥

राजा कुशस्थलपुरे दुहिताऽपि च तस्य नामा सहदेवी । कीर्तिधरेण वरतनुः परिणीता सा विभूत्या ॥७९॥

क्षेमंकरस्य पार्श्वे निष्क्रामति पुरंदरो विगतस्नेहः । परंपरागतं सः कीर्तिधरो भुनक्ति राज्यम् ॥८०॥

अथान्यदा कदाचित्कीर्त्तिधर आसने सुखनिषण्णः । पश्यति गगनतलस्थं रविबिम्बं राहुणा गृहीतम् ॥८१॥

चिन्तयितुं प्रवृत्तो यो ग्रहचक्रं करोति निस्तेजः । स दिनकरो ऽशक्तस्तेजा राहुस्य विघटितुम् ॥८२॥

एवं घनकर्मबद्धः पुरुषो मरणे उदीर्णे सति । वारयितुमशक्तोऽवशेन विपद्यते नियमा ॥८३॥

तस्मादशाश्वतमिदं मनुष्यजन्मासारसुखसङ्गम् । त्यक्त्वा राजलक्ष्मीं जिनवरदिक्षां प्रव्रजामि ॥८४॥

---

१. घणकम्मलुद्धो-प्रत्य० । २. रायलच्छि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण वयणमेयं, मन्ती बन्धवजणा य दीणमुहा । जंपन्ति नरवराहिव !, मा ववससु एरिसं कम्मं ॥८५॥

सामिय ! तुमे विहूणा, अवस्स पुइई विणस्सइ वराई । पुहईए विणट्ठाए, धम्मविणासो सया होइ ॥८६॥

धम्मे पणट्ठ सन्ते, किं व न नट्ठं नरिन्द ! सव्वस्सं ? । तम्हा करेहि रज्जं, रक्खसु पुहई पयत्तेणं ॥८७॥

जं एव अमच्चेहिं, भणिओ गेण्हइ अभिग्गहं धीरो । सोऊण सुयं जायं, तो अहयं पव्वइस्सामि ॥८८॥

एवं रायवरसिरिं, भुञ्जन्तस्स य अणेयकालम्मि । जाओ सहदेवीए, गब्भम्मि सुकोसलो पुत्तो ॥८९॥

थोवदिवसाणि बालो, निगूहिओ [1]मन्तिणेहि कुसलेहिं । परिकहिओ च्चिय पुत्तो, एक्केण नरेण रायस्स ॥९०॥

सोऊण सुयं जायं, मउडाइविभूसणं निरवसेसं । तस्स पयच्छइ राया, गामसएणं तु घोसपुरं ॥९१॥

अह एक्कपक्खजायं, ठविऊण सुयं निवो निययरज्जे । पव्वइओ कित्तिधरो, परिचत्तपरिग्गहारम्भो ॥९२॥

घोरं तवं तप्पइ गिम्हकाले, मेहागमे चिट्ठइ छन्नठाणे ।

हेमन्तमासेसु तवोवणत्थो, झाणं पसत्थं विमलं [2]चरेइ ॥९३॥

॥ इय पउमचरिए सुव्वयवज्जबाहुकित्तिधरमाहप्पवण्णणो एक्कवीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

श्रुत्वा वचनमेतन्मन्त्रिणो बान्धवजनाश्च दीनमुखाः । जल्पन्ति नरवराधिप ! मा व्यवस्यैतादृशं कर्म ॥८५॥

स्वामिन् ! त्वया विहीनाऽवश्यं पृथिवी विनश्यति वराकी । पृथिव्यां विनष्टायां धर्मविनाशः सदा भवति ॥८६॥

धर्मे प्रनष्टे सति किं वा न नष्टं नरेन्द्र ! सर्वस्वम् ? । तस्मात्कुरु राज्यं रक्ष पृथिवीं प्रयत्नेन ॥८७॥

यदैवामात्यै र्भणितो गृह्णात्यभिग्रहं धीरः । श्रुत्वा सुतं जातं तदाऽहं प्रव्रजिष्यामि ॥८८॥

एवं राजवरश्रीं भुञ्जतश्चानेककाले । जातः सहदेव्या गर्भे सुकोशलः पुत्रः ॥८९॥

स्तोकदिवसानि बालो निगूहितो मन्त्रिभिः कुशलैः । परिकथित श्चैव पुत्रएकेन नरेण राज्ञः ॥९०॥

श्रुत्वा सुतं जातं मुकुटादिविभूषणं निरवशेषम् । तस्मै प्रयच्छति राजा गामशतेन तु घोषपुरम् ॥९१॥

अथैकपक्षजातं स्थापयित्वा सुतं नृपो निजराज्ये । प्रव्रजितः कीर्त्तिधरः परित्यक्तपरिग्रहारम्भः ॥९२॥

घोरं तपस्तपति ग्रीष्मकाले मेघागमे तिष्ठति छन्नस्थाने ।

हेमन्तमासेषु तपोवनस्थो ध्यानं प्रशस्तं विमलं चरति ॥९३॥

॥ इति पद्मचरित्रे सुव्रतवज्रबाहुकीर्तिधरमाहात्म्यवर्णन एकविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. मन्त्रिभिः । २. धरेइ-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२२. सुकोसलमुणिमाहप्प-दसरहउप्पत्तिवण्णणं

अह एत्तो कित्तिधरो, मुणिवसभो मलविलित्तसव्वङ्गो । मज्झण्हदेसयाले, नयरं पविसरइ भिक्खट्ठं ॥१॥
तं पेच्छिऊण साहुं, जालगवक्खन्तरेण सहदेवी । रुट्ठा पेसेइ नरे, धाडेह इमं पुरवराओ ॥२॥
अन्ने वि लिङ्गिणो जे, ते वि य धाडेह मा चिरावेह । मा धम्मवयणसद्दं, सुणिही पुत्तो महं एसो ॥३॥
एत्थन्तरे य तेहिं, नयराओ धाडिओ मुणिवरिन्दो । अन्ने वि जे पुरत्था, निच्छूढा लिङ्गिणो सव्वे ॥४॥
तं नाऊण मुणिवरं, कित्तिधरं कोसलस्स जा धाई । रुवइ किवालुयहियया, सुमरन्ती सामियगुणोहं ॥५॥
निसुणेऊण रुवन्ती, भणिया य सुकोसलेण केण तुमं । अम्मो परिभूय च्चिय ।, तस्स फुडं निग्गहं काहं ॥६॥
तो भणइ वसन्तलया पुत्तय ! जो सो सिसुं तुमं रज्जे । ठविऊण य पव्वइओ, सो तुज्झ पिया इह पविट्ठो ॥७॥
भिक्खट्ठे विहरन्तो, जणणीए तुज्झ दुट्ठपुरिसेहिं । धाडाविओ य अज्जं, पुत्तय ! तेणं मए रुण्णं ॥८॥
दट्ठूण य पासण्डे, मा निव्वेओ य होहिइ सुयस्स । तेणं चिय नयराओ, निच्छूढा लिङ्गिणो सव्वे ॥९॥
उज्जाण-काणणाइं, पुक्खरिणी-बाहियालिमाईणि । नयरस्सऽब्भिन्तरओ, तुज्झ कयाइं च जणणीए ॥१०॥
अन्ने वि तुज्झ वंसे, पुत्तय ! जे नरवई अइक्कन्ता । ते वि य भोत्तूण महिं, पव्वज्जमुवागया सव्वे ॥११॥
एएण कारणेणं, न देइ नयरस्स निग्गमं तुज्झ । मा निसुणिऊण धम्मं, निक्खमिही जायसंवेगो ॥१२॥

---

२२. सुकोशलमुनि माहात्म्य-दशरथोत्पत्तिवर्णनम्

अथेतः कीर्तिधरो मुनिवृषभो मलविलिप्तसर्वाङ्गः । मध्याह्नदेशकाले नगरं प्रविशति भिक्षार्थम् ॥१॥
तं दृष्ट्वा साधुं जालगवाक्षान्तरेण सहदेवी । रुष्टा प्रेषयति नरान् निस्सारयतेमं पुरवरात् ॥२॥
अन्येऽपि लिङ्गिनो ये तानपि च निस्सारयत मा चिरयत । मा धर्मवचनशब्दं श्रुणुयात्पुत्रो ममैषः ॥३॥
अत्रान्तरे च तैर्नगरान्निस्सारितो मुनिवरेन्द्रः । अन्येऽपि ये पुरस्था निष्काषिता लिङ्गिनः सर्वे ॥४॥
तज्ज्ञात्वा मुनिवरं कीर्तिधरं कोशलस्य या धात्री । रोदिति कृपालुहृदया स्मरन्ती स्वामिगुणौघम् ॥५॥
निश्रुत्य रुदन्तीं भणिता च सुकोशलेन केन त्वम् । अम्बे ! परिभूता एव ! तस्य स्फुटं निग्रहं करिष्यामि ॥६॥
ततो भणति वसन्तलता पुत्र ! यः स शिशुं त्वां राज्ये । स्थापयित्वा च प्रव्रजितः स तव पितेह प्रविष्टः ॥७॥
भिक्षार्थे विहरञ्जनन्या तव दुष्टपुरुषैः । निस्सारितश्चाद्य पुत्र ! तेन मया रुदितम् ॥८॥
दृष्ट्वा च पाखण्डान्मानिर्वेदश्च भवेत्सुतस्य । तेनैव नगरान्निष्काषिता लिङ्गिनः सर्वे ॥९॥
उद्यान-काननानि-पुष्करिणी-वाह्याल्यादिनि । नगरस्याभ्यन्तरतस्तव कृतानि च जनन्या ॥१०॥
अन्येऽपि तव वंशे पुत्र ! ये नरपतयोऽतिक्रान्ताः । तेऽपि च भुक्त्वा महीं प्रव्रज्यामुपागताः सर्वे ॥११॥
एतेन कारणेन न ददाति नगरस्य निर्गमं तव । मा निश्रुत्य धर्मं निष्काम्येज्जातसंवेगः ॥१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण वयणमेयं, सुकोसलो निग्गओ पुरवराओ । पत्तो य पिउसयासं, वन्दइ परमेण विणएणं ॥१३॥
तं वन्दिऊण समणं, उवविट्ठो सुणिय धम्मपरमत्थं । भणइ य सुकोसलो तं, भयवं ! निसुणेहि मे वयणं ॥१४॥
आलित्ते निययघरे, जणओ घेत्तूण पुत्तभण्डाइं । अवहरइ तूरमाणो, सो ताण हियं विचिन्तेन्तो ॥१५॥
मोहग्गिसंपलित्ते, जयलोयघरे मए पमोत्तूणं । निक्खन्तो नाह ! तुमं, न य जुत्तं एरिसं लोए ॥१६॥
तम्हा कुणह पसायं, मोहाणलदीविए सरीरघरे । निक्खममाणस्स महं, हत्थालम्बं पयच्छाहि ॥१७॥
एवं सो अणगारो, चित्तं नाऊण नियपुत्तस्स । ताहे भणइ सुभणिओ, होउ अविग्घं तुहं धम्मे ॥१८॥
वट्टइ एसाऽऽलावो, ताव य भडचडगरेण परिकिण्णा । पत्ता विचित्तमाला, गुरुभारा पणइणी तस्स ॥१९॥
सा भणइ पायपडिया, सामिय ! [1]पुहई ममं च मोत्तूणं । मा ववससु पव्वज्जं, दुच्चरिया [2]मुणिवराणं पि ॥२०॥
[3]संथाविऊण गाढं, सुकोसलो भणइ तुज्झ गब्भम्मि । भद्दे ! होही पुत्तो, सो अहिसित्तो मए रज्जे ॥२१॥
आपुच्छिऊण सव्वं, बन्धुजणं परिजणं च महिलाओ । जिणदिक्खं पडिवन्नो, सुकोसलो पिउसयासम्मि ॥२२॥
अह सो निच्छियहियओ, संवेगपरायणो दढधिईओ । अन्नन्नविहिनिओगं, काऊण तवं समाढत्तो ॥२३॥

विविधानि तपांसि–

रयणावलि मुत्तावलि, कणयावलि [4]कुलिसमज्झ जवमज्झं ।
जिणगुणसंपत्ती वि य, विही य तह सव्वओभद्दा ॥२४॥

श्रुत्वावचनमेतत्सुकोशलो निर्गतः पुरवरात् । प्राप्तश्च पितृसकाशं वन्दते परमेण विनयेन ॥१३॥
तं वन्दित्वा श्रमणमुपविष्टः श्रुत्वा धर्मपरमार्थम् । भणति च सुकोशलस्तं भगवन् ! निश्रुणु मम वचनम् ॥१४॥
आदिप्ते निजगृहे जनको गृहीत्वा पुत्रभाण्डानि । अपहरति त्वरमाणः स तेषां हितं विचिन्तयन् ॥१५॥
मोहाग्निसंप्रदीप्ते जीवलोकगृहे मां प्रमुच्य । निष्क्रान्तो नाथ ! त्वं न च युक्तमेतादृशं लोके ॥१६॥
तस्मात्कुरुत प्रसादं मोहानलदप्ते शरीरगृहे । निष्क्रममाणस्य मम हस्तालम्बनं प्रयच्छ ॥१७॥
एवं सोऽणगारश्चित्तं ज्ञात्वा निजपुत्रस्य । तदा भणति सुभणितो भवत्वविघ्नं तव धर्मे ॥१८॥
वर्तत एष आलापस्तावच्च भटसमूहेन परिकीर्णा । प्राप्ता विचित्रमाला गुरुभारा प्रणयिनी तस्य ॥१९॥
सा भणति पादपतिता स्वामिन् ! पृथिवीं मां च भुक्त्वा । मा व्यवस्य प्रव्रज्यां दुश्चरितां मुनिवराणामपि ॥२०॥
संस्थाप्य गाढं सुकोशलो भणति तव गर्भे । भद्रे ! भविष्यति पुत्रः सोऽभिषिक्तो मया राज्ये ॥२१॥
आपृच्छ्य सर्वं बन्धुजनं परिजनं च महिलाः । जिनदिक्षां प्रतिपन्नः सुकोशलः पितृसकाशे ॥२२॥
अथ स निश्चितहृदयः संवेगपरायणो दृढधृतिः । अन्योन्यविधिनियोगं कर्तुं तपः समारब्धः ॥२३॥

विविधानि तपांसि –

रत्नावलिर्मुक्तावलिः कनकावलिवज्रमध्यंयवमध्यम् । जिनगुणसम्पत्तिरपि च विधिश्च तथा सर्वतोभद्रा ॥२४॥

---

१. पुहइं–प्रत्य० । २. मुणिवईणं पि–प्रत्य० । ३. संठाविऊण–प्रत्य० । ४. वज्रमध्यम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एत्तो तिलोयसारा, मुइङ्गमज्झा पवीलियामज्झा । सीसंकारयलद्धी, दंसणनाणस्स लद्धी य ॥२५॥

अह पञ्चमन्दरा वि य, केसरिकीला चरित्तलद्धी य । परिसहजया य पवयण-माया आइण्णसुहनामा ॥२६॥

पञ्चनमोक्कारविही, तित्थट्ठसुया य सोक्खसंपत्ती । धम्मोवासणलद्धी, तहेव अणुवट्टमाणा य ॥२७॥

एयासु य अन्नासु य, विहीसु दसमाइपक्खमासेसु । बेमासिय तेमासिय, खवेइ छम्मासजोएसु ॥२८॥

ते दो वि पिया-पुत्ता, नव-संजम-नियमसोसियसरीरा । विहरन्ति दढधिईया, गामा-ऽऽगरमण्डियं वसुहं ॥२९॥

ते दो वि पिया-पुत्ता, सहदेवी तत्थ दुक्खिया सन्ती । अट्टज्झाणेण मया, उप्पन्ना कन्दरे वग्घी ॥३०॥

एवं विहरन्ताणं, मुणीण संपत्थिओ जलयकालो । पसरन्तमेहनिवहो, गयणयलोच्छइयसव्वदिसो ॥३१॥

वरिसइ घणो पभूयं, तडिच्छडाडोवभीसणं गयणं । गुलगुलगुलन्तसद्दो, वित्थरइ समन्तओ सहसा ॥३२॥

धाराजज्जरियमही, उम्मग्गपलोट्टसलिलकल्लोला । उब्भिन्नकन्दलदला, मरगयमणिसामला जाया ॥३३॥

एयारिसम्मि काले, जत्थत्थमिया मुणी निओगेणं । चिट्ठन्ति सेलमूले, चाउम्मासेण जोएणं ॥३४॥

एवं उत्तासणए, रण्णे [1]कव्वाय-सत्त-तरुगहणे । फासुयठाणम्मि ठिया, पसत्थझाणुज्जयमईया ॥३५॥

वीरासणजोएणं, काउस्सग्गेण एगपासेणं । उववासेण य नीओ, एक्केक्कं पाउसो कालो ॥३६॥

सरयम्मि समावडिए, कत्तियमासस्स मुणिवरा एत्तो । संपुण्णनियमजोगा, नयरं पविसन्ति भिक्खट्ठा ॥३७॥

लीलाए वच्चमाणा, दिट्ठा वग्घीए तीए मुणिवसहा । रुसिया [2]नक्खेहि मही, विलिहइ [3]नायं विमुञ्चन्ती ॥३८॥

इतस्त्रिलोकसारा मृदङ्गमध्या पिपीलिकामध्या । शीर्षाकारकलब्धि दर्शनज्ञानस्य लब्धिश्च ॥२५॥

अथ पञ्चमन्दराऽपि च केसरिक्रीडा चारित्रलब्धिश्च । परिषहजया च प्रवचनमाताऽऽकीर्णशुभनामा ॥२६॥

पञ्चनमस्कारविधिस्तिर्थार्थश्रुता च सौख्यसंपत्तिः । धर्मोपासनालब्धिस्तथैवानुवर्तमाना च ॥२७॥

एतैश्चान्यैश्च विधिभिर्दशमादिपक्षमासैः । द्विमासिकस्त्रिमासिकः क्षपयति षण्मासयोगैः ॥२८॥

तौ द्वावपि पितापुत्रौ नवसंयमनियमशोषितशरीरौ । विहरतो दृढधृतिकौ गामाऽऽकरमण्डितां वसुधाम् ॥२९॥

सा पुत्र वियोगेन सहदेवी तत्र दुःखिता सती । आर्त्तध्यानेन मृतोत्पन्ना कन्दरे व्याघ्री ॥३०॥

एवं विहरतां मुनीनां संप्रस्थितो जलदकालः । प्रसरन्मेघनिवहो गगनतलोच्छादितसर्वदिग् ॥३१॥

वर्षति घनः प्रभूतं तडिच्छटाटोपभीषणं गगनम् । गुलगुलगुलच्छब्दो विस्तरति समन्ततः सहसा ॥३२॥

धाराजर्जरितमही उन्मार्गपर्यस्तसलिलकल्लोला । उद्भिन्नकन्दलदला मरकतमणिश्यामला जाता ॥३३॥

एतादृशे काले यथास्तमितौ मुनी नियोगेन । तिष्ठतः शैलमूले चातुर्मासेन योगेन ॥३४॥

एवमुत्त्रासनकेऽरण्ये क्रव्यादसत्त्वतरुगहने । प्रासुकस्थाने स्थितौ प्रशस्तध्यानोद्यतमती ॥३५॥

वीरासनयोगेन कायोत्सर्गेणैकपार्श्वेण । उपवासेन च नीत एकैकेन प्रावृट्कालः ॥३६॥

शरदि समापतिते कार्त्तिकमासस्य मुनिवरावितः । संपूर्णनियमयोगौ नगरं प्रविशतो भिक्षार्थौ ॥३७॥

लीलया व्रजन्तौ दृष्टौ व्याघ्र्या तया मुनिवृषभौ । रुष्टा नखैः महीं विलिखति नादं विमुञ्चन्ती ॥३८॥

---

१. क्रव्याद-सत्त्व-तरुगहने । २. नखैः । ३. नादम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह सो सुकोसलमुणी, [1] वग्घी दट्ठुं वहुज्जयमईयं । ताहे वोसिरियतणू, सुक्कज्झाणं [2] समारुहइ ॥३९॥
दाढाकरालवयणा, उप्पइऊणं नहं चलसहावा । पडिया सुकोसलोवरि, विज्जू इव दारुणा वग्घी ॥४०॥
पाडेऊण महियले, मंसं अहिलसइ अत्तणो वयणे । मोडेइ अट्ठियाइं, तोडेइ य ण्हारुसंघाए ॥४१॥
इय पेच्छसु संसारे, सेणिय ! मोहस्स विलिसियं एयं । जणणी खायइ मंसं, जत्थ सुइट्ठस्स पुत्तस्स ॥४२॥
खज्जन्तस्स भगवओ, सुक्कज्झाणावगाहियमणस्स । समणस्स जीवियन्ते, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥४३॥
एवं सहदेवीए, कोसलअङ्गाइँ खायमाणीए । जायं जाईसरणं, पुत्तयदन्ताइँ दट्ठूणं ॥४४॥
सा पच्छयावेणं, तिण्णि य दिवसाइँ अणसणं काउं । उवन्ना दियलोए, वग्घी मरिऊण सोहम्मे ॥४५॥
देवा चउप्पगारा, समागया मुणिवरस्स कुव्वन्ति । निव्वाणगमणमहिमं, नाणाविहगन्धकुसुमेहिं ॥४६॥
कित्तिधरस्स वि एत्तो, समुग्गयं केवलं जगपगासं । महिमकराण य एक्का, जत्ता जाया सुरवराणं ॥४७॥
महिमं काऊण तओ, पणमिय सव्वायरेण तिक्खुत्तं । देवा चउप्पगारा, निययट्ठाणाइँ संपत्ता ॥४८॥
एयं जो सुणइ नरो, भावेण सुकोसलस्स निव्वाणं । सो उवसग्गविमुक्को, लभइ य पुण्णफलं विउलं ॥४९॥

हिरण्यगर्भः—

देवी विचित्तमाला, संपुण्णे तत्थ कालसमयम्मि । पुत्तं चेव पसूया, हिरण्णगब्भं त्ति नामेणं ॥५०॥

अथ स सुकोशलमुनि र्व्याघ्रीं दृष्ट्वा वधोद्यतमतिम् । तदा व्युत्सर्जिततनुः शुक्लध्यानं समारोहति ॥३९॥
दंष्ट्राकरालवदनोत्पत्य नभश्चलत्स्वभावा । पतिता सुकोशलस्योपरि विद्युदिव दारुणा व्याघ्री ॥४०॥
पातयित्वा महीतले मांसमभिलषत्यात्मनो वदने । मोटयत्यस्थिनि त्रोटयति च स्नायुसंघातान् ॥४१॥
इदं पश्य संसारे श्रेणिक ! मोहस्य विलसितमेतत् । जननी खादति मांसं यत्र स्वेष्टस्य पुत्रस्य ॥४२॥
खाद्यमानस्य भगवतः शुक्लध्यानावगाहितमनसः । श्रमणस्य जीवितान्ते केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥४३॥
एवं सहदेव्या कोशलाङ्गानि खादन्त्या जातं जातिस्मरणं पुत्रदन्तानि दृष्ट्वा ॥४४॥
सा पश्चात्तापेन त्रिंश्च च दिवसाननशनं कृत्वा । उत्पन्ना देवलोके व्याघ्री मृत्वा सौधर्मे ॥४५॥
देवाश्चतुष्प्रकाराः समागता मुनिवरस्य कुर्वन्ति । निर्वाणगमनमहिमां नानाविधगन्धकुसुमैः ॥४६॥
कीर्त्तिधरस्यापीतः समुद्गतं केवलं जगत्प्रकाशम् । महिमाकराणां चैका यात्रा जाता सुरवराणाम् ॥४७॥
महिमां कृत्वा ततः प्रणम्य सर्वादरेण त्रिकृत्वः । देवाश्चतुष्प्रकारा निजस्थानानि संप्राप्ताः ॥४८॥
एवं च श्रुणोति नरो भावेन सुकोशलस्य निर्वाणम् । स उपसर्गविमुक्तो लभते च पुण्यफलं विपुलम् ॥४९॥

हिरण्यगर्भः -

देवी विचित्रमाला संपूर्णे तत्र कालसमये । पुत्रमेव प्रसूता हिरण्यगर्भमिति नाम्ना ॥५०॥

---

१. वग्घि-प्रत्य० । २. समारूढो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्तो सरीरविढ्ढिं, कमेण रज्जस्स सामिओ जाओ । हरिवाहणस्स दुहिया, परिणेइ मिगावई कन्नं ॥५१॥
तीए समं रायसिरिं, भुञ्जन्तो अन्नया नरवरिन्दो । भमरनिहकेसमज्झे, पेच्छइ पलियङ्कुरं एक्कं ॥५२॥
अह सोइउं पयत्तो, मच्चूणं पेसिओ इमो दूओ । बल-सत्त-कन्तिरहिओ, होहामि न एत्थ संदेहो ॥५३॥
विसएसु वञ्चिओ हं, कालं अइदारुणं सुहपसत्तो । बन्धवनेहविणडिओ, धम्मधुरं नेव पडिवन्नो ॥५४॥

सिंहिका-नघुषौ—

एवं हिरण्णगब्भो, नघुसकुमारं मिगावईपुत्तं । अहिसिञ्चिऊण रज्जे, निक्खन्तो विमलमुणिपासे ॥५५॥
गब्भत्थे च्चिय असिवं, न घोसियं जस्स जणवए जम्हा । नघुसो त्ति तेण नामं, गुरूहि रइयं सुमणसेहिं ॥५६॥
नघुसो परिट्ठवेउं, निययपुरे सीहियं महादेविं । उत्तरदिसं पयट्टो, जेउं सामन्तसंघाए ॥५७॥
दाहिणदेसाहिवई, नघुसं नाऊण दूरदेसत्थं । घेत्तुं साकेयपुरिं, समागया साहणसमग्गा ॥५८॥
नघुसस्स महादेवी, विणिग्गया सीहिया बलसमग्गा । अह जुज्झिउं पयत्ता, तेहिं समं नरवरिन्देहिं ॥५९॥
निद्दयपहरेहि हया, समरे हन्तूण सीहिया सत्तू । रक्खइ साएयपु[1]री, नियपयावुज्जयमईया ॥६०॥
नघुसो वि उत्तरदिसं, काऊण वसे समागओ नयरिं । [2]सुणिऊण सीहियाए, परक्कमं दारुणं रुट्ठो ॥६१॥
भणइ य अहो अलज्जा, न य कुलवहुयाए एरिसं जुत्तं । अविखण्डियसीलाए, परपुरिसनियत्तचित्ताए ॥६२॥

प्राप्तः शरीरवृद्धिं क्रमेण राज्यस्य स्वामी जातः । हरिवाहनस्य दुहितरं परिणयति मृगावतीं कन्याम् ॥५१॥
तथा समं राज्यश्रियं भुञ्जन्नन्यदा नरवरेन्द्रः । भ्रमरनिभकेशमध्ये पश्यति पलिताङ्कुरमेकम् ॥५२॥
अथ शोचितुं प्रवृत्तो मृत्युना प्रेषितोऽयं दूतः । बल-शक्ति-कान्तिरहितो भविष्यामि नात्र संदेहः ॥५३॥
विषयै र्वञ्चितोऽहं कालमतिदारूणं सुखप्रशक्तः । बान्धवस्नेहविनटितो धर्मधूरां नैव प्रतिपन्नः ॥५४॥

सिंहिका-नधुषौ -

एवं हिरण्यगर्भो नघुषकुमारं मृगावतीपुत्रम् । अभिषिञ्च्य राज्ये निष्क्रान्तो विमलमुनिपार्श्वे ॥५५॥
गर्भस्थ एवाशिवं न घोषितं यस्य जनपदे यस्मात् । नघुष इति तेन नाम गुरुभी रचितं सुमनोभिः ॥५६॥
नघुषः परिस्थाप्य निजपुरे सिंहिंकां महादेवीम् । उत्तरदिशि प्रवृतो जेतुं सामन्तसंघातान् ॥५७॥
दक्षिणदेशाधिपति र्नघुषं ज्ञात्वा दूरदेशस्थम् । ग्रहितुं साकेतपुरिं समागताः साधनसमग्राः ॥५८॥
नघुषस्य महादेवी विनिर्गता सिंहिका बलसमग्रा । अथ योद्धुं प्रवृत्ता तैःसमं नरवरेन्द्रैः ॥५९॥
निर्दयप्रहारै र्हता समरे हत्वा सिंहिका शत्रून् । रक्षति साकेतपुरीं निजप्रतापोद्यतमतिः ॥६०॥
नघुषोऽप्युत्तरदिशां कृत्वा वशे समागतो नगरम् । श्रुत्वा सिंहिकायाः पराक्रमं दारुणं रुष्टः ॥६१॥
भणति चाहो ! अलज्जा न च कुलवध्वा एतादृशं युक्तम् । अविखण्डितशीलायाः परपुरुषनिर्वृतचित्तायाः ॥६२॥

---

१. पुरिं-प्रत्य० । २. सोऊण-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभूया नरवइणा, दोसं काऊण सा महादेवी । अह अन्नया कयाई, नघुसस्स जरो समुप्पन्नो ॥६३॥
[१]मन्ताण ओसहाण य, वेज्जपउत्ताण नेव उवसन्तो । दाहज्जरो महन्तो, अहिययरं वेयणं देइ ॥६४॥
नाऊण तहाभूयं, नराहिवं सीहिया महादेवी । सोयपरिग्गहियमणा, तस्स सयासं समल्लीणा ॥६५॥
सव्वजणस्स समक्खं, उदयं घेत्तूण सीहिया भणइ । मोत्तूण निययदइयं, जइ अन्नो नाऽऽसि मे हियए ॥६६॥
तो नरवइस्स दाहो, उवसमउ जलेण करविमुक्केणं । एवं भणिऊण सित्तो, राया विगयज्जरो जाओ ॥६७॥
उल्हवियसव्वगत्तं, दट्ठूण नराहिवं जणो तुट्ठो । सीलं पसंसमाणो, भणइ अहो ! साहु ! साहु ! त्ति ॥६८॥
देवेहि कुसुमवुट्ठी, मुक्का सुसुयन्धगन्धरिद्धिल्ला । राया वि य परितुट्ठो, सीलं नाऊण महिलाए ॥६९॥
ठविऊण नरवरिन्दो, निययपए [२]सीहिया महादेवी । भोगे भोत्तूण चिरं, संवेगपरायणो जाओ ॥७०॥
नघुसो परिट्ठवेउं, सोदासं सीहियासुयं रज्जे, निक्खन्तो नरवसभो, परिचत्तपरिग्गहारम्भो ॥७१॥

सोदासः—

तीसु वि कालेसु सया, सोदासनराहिवस्स कुलवंसे । न य केणइ परिभुत्तं, मंसं चिय अट्ठ दिवसाइं ॥७२॥
कम्मोदएण सो पुण, तेसु वि दिवसेसु भुञ्जई मंसं । भणइ य सूयारवइं, मंसं आणेहि मे सिग्घं ॥७३॥
तइया पुणो अमारी, वट्टइ अट्ठाहिया जिणवराणं । पिसियस्स अलाभेणं, माणुसमंसं च से दिन्नं ॥७४॥

पराभूता नरपतिना दोषं कृत्वा सा महादेवी । अथान्यदा कदाचिन्नघुषस्य ज्वरः समुत्पन्नः ॥६३॥
मन्त्राणामौषधानां च वैद्यप्रयुक्तानां नैवोपशान्तः । दाहज्वरो महानधिकतरं वेदनां ददाति ॥६४॥
ज्ञात्वा तथाभूतं नराधिपं सिंहिका महादेवी । शोकपरिगृहीतमनास्तस्य सकाशं समालीना ॥६५॥
सर्वजनस्य समक्षमुदकं गृहीत्वा सिंहिका भणति । मुक्त्वा निजदयितं यद्यन्यो नासीन्मे हृदये ॥६६॥
ततो नरपते र्दाह उपशमतु जलेन कर विमुक्तेन । एवं भणित्वा सिक्तो राजा विगतज्वरो जातः ॥६७॥
विध्मापितसर्वगात्रं दृष्ट्वा नराधिपं जनस्तुष्टः । शीलं प्रशंसन् भणत्यहो ! साधु ! साध्विति ॥६८॥
देवैः कुसुमवृष्टि र्मुक्ता सुसुगन्धगन्धर्द्धिवती । राजाऽपि च परितुष्टः शीलं ज्ञात्वा महिलायाः ॥६९॥
स्थापयित्वा नरवरेन्द्रो निजपदे सिंहिकां महादेवीम् । भोगान्भुक्त्वा चिरं संवेगपरायणो जातः ॥७०॥
नघुषः परिस्थाप्य सोदासं सिंहिकासुतं राज्ये । निष्क्रान्तो नरवृषभः परित्यक्तपरिग्रहारम्भः ॥७१॥

सोदासः-

त्रिष्वपि कालेषु सदा सोदास नराधिपस्य कुलवंशे । न च केनपि परिभुक्तं मांसमेवाष्टौ दिवसान् ॥७२॥
कर्मोदयेन स पुनस्तेष्वपि दिवसेषु भुङ्क्ते मांसम् । भणति च सूपकारपतिं मांसमानय मे शीघ्रम् ॥७३॥
तदा पुनरमारी वर्तत अष्टाह्निका जिनवराणाम् । पिशितस्यालाभेन मानुषमांसं च तस्य दत्तम् ॥७४॥

---

१. मंतेहि ओसहेहि य वेज्जपउत्तेहि नेव-प्रत्य० । २. सीहियं महादेवि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणुसमंसपसत्तो, खायन्तो [१]पउरबालए बहवे । [२]सूयारेण समाणं, सुएण निद्धाडिओ राया ॥७५॥
तस्स सुओ गुणकलिओ, कणयाभानन्दणो तहिं नयरे । अहिसित्तो सीहरहो, रज्जे सव्वेहि सुहडेहिं ॥७६॥
सीहस्स जहा मंसं, आहारो तस्स निययकालंपि । तेणं चिय विक्खाओ, पुहईए सीहसोदासो ॥७७॥
पेच्छइ परिब्भमन्तो, दाहिणदेसे सियम्बरं पणओ । तस्स सगासे धम्मं, सुणिऊण तओ समाढत्तो ॥७८॥
अह भणइ मुणिवरिन्दो, निसुणसु धम्मं जिणेहि परिकहियं । जेट्ठो य समणधम्मो, सावयधम्मो य अणुजेट्ठो ॥७९॥
पञ्च य महव्वयाइं, समिईओ चेव पञ्च भणियाओ । तिण्णि य गुत्तिनिओगा, एसो धम्मो मुणिवराणं ॥८०॥
हिंसालियचोरिक्का, परदारपरिग्गहस्स य नियत्ती । तिण्णि य गुणव्वयाइं, महुमंसविवज्जणं भणियं ॥८१॥
भगवं ! गेण्हामि वयं, जं भणसि महामुणी पयत्तेणं । एक्कं पुण हियइट्ठं, नवरि य मंसं न छड्डेमि ॥८२॥

मांसभक्षणविपाकः—

भणिओ तहेव मुणिणा, भुञ्जसि मंसं अयाणओ तं सि । तह पडिहिसि संसारे, तिमिंगिली जह गओ नरयं ॥८३॥
गिद्धा सुणय-सियाला, मंसं खायन्ति असण-तण्हाए । जे वि हु खायन्ति नरा, ते तेहि समा न संदेहो ॥८४॥
जो खाइऊण मंसं, मज्जइ तित्थेसु कुणइ वयनियमं । तं तस्स किलेसयरं, अयालकुसुमं व फलरहियं ॥८५॥
जो भुञ्जइ मूढमई, मंसं चिय सुक्क-रुहिरसंभूयं । सो पावकम्मगरुओ, सुइरं परिभमइ संसारे ॥८६॥
मंसासायणनिरओ, जीवाण वहं करेइ निक्खुत्तं । जीववहम्मि य पावं, पावेण य दोग्गइं जाइ ॥८७॥

मानुषमांसप्रसक्तः खादन्पौरबालान् बहून् । सूपकारेण समकं सुतेन निस्सारिता राजा ॥७५॥
तस्य सुतो गुणकलितः कनकाभानन्दनस्तत्र नगरे । अभिषिक्तः सिंहरथो राज्ये सर्वैः सुभटैः ॥७६॥
सिंहस्य यथा मांसमाहारस्तस्य नित्यकालमपि । तेनैव विख्यातः पृथिव्यां सिंहसोदासः ॥७७॥
पश्यति परिभ्रमन्दक्षिणदेशे श्वेताम्बरं प्रणतः । तस्य सकाशे धर्मं श्रुत्वा ततः समारब्धः ॥७८॥
अथ भणति मुनिवरेन्द्रो निश्रुणु धर्मं जिनैः परिकथितम् । ज्येष्ठश्च श्रमणधर्मः श्रावकधर्मश्चानुज्येष्ठः ॥७९॥
पञ्च च महाव्रतानि समितय एव पञ्च भणिताः । त्रयश्च गुप्तिनियोगाः, एषो धर्मो मुनिवराणाम् ॥८०॥
हिंसालिकचौर्याः परदारपरिग्रहस्य च निर्वृत्तिः । त्रिणि च गुणव्रतानि मधुमांसविवर्जनं भणितम् ॥८१॥
भगवन् ! गृह्णामि व्रतं यद्भणसि महामुने ! प्रयत्नेन । एकं पुनर्हृदयेष्टं नवरि च मांसं न त्यजामि ॥८२॥

मांसभक्षणविपाकः-

भणितस्तथैव मुनिना भुङ्क्ते मांसमजानतस्त्वमसि । तथा पतिष्यसि संसारे तिमिङ्गलो यथा गतो नरकम् ॥८३॥
गृध्राः श्वा-शृगाला मांसं खादन्त्यसनतृष्णया । येऽपि हु खादन्ति नरास्ते तैः समाना न संदेहः ॥८४॥
यो खादित्वा मांसं मज्जति तीर्थेषु करोति व्रतनियमम् । तत्तस्य क्लेशकरमकालकुसुममिव फलरहितम् ॥८५॥
यो भुङ्क्ते मूढमति र्मांसमेव शुक्र-रुधिरसंभूतम् । स पापकर्मगुरुकः सुचिरं परिभ्रमति संसारे ॥८६॥
मांसास्वादननिरतो जीवानां वधकरोति निश्चितम् । जीववधे च पापं पापेन च दुर्गतिं याति ॥८७॥

---

१. पौरबालकान् । २. सूदकारः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जे मारिऊण जीवे, मंसं भुञ्जन्ति जीहदोसेणं । ते अहिवडन्ति नरए, दुक्खसहस्साउले भीमे ॥८८॥

ते तत्थ समुप्पन्ना, नरए बहुवेयणे निययकालं । छिज्जन्ति य भिज्जन्ति य, करवत्त-ऽसिवत्त-जन्तेसु ॥८९॥

सुणिऊण वयणमेयं, मुणिवरविहियं भएण दुक्खाणं । होउं पसन्नहियओ, सोदासो सावओ जाओ ॥९०॥

तत्तो महापुरे वि य, कालगए पत्थिवे सुयविहूणे । गयखन्धसमारूढो, सोदासो पाविओ रज्जं ॥९१॥

पुत्तस्स तेण दूओ, विसज्जिओ कुणह मे लहु पणामं । तेण वि भणिओ दूओ, न तस्स अहयं पणिवयामि ॥९२॥

सोऊण दूयवयणं, सोदासो निग्गओ बलसमग्गो । तस्स विसयं च पत्तो, बन्दियणुग्घुट्ठ जयसद्दो ॥९३॥

सीहरहो वि अहिमुहो, चउरङ्गबलेण तत्थ निग्गन्तुं । आभिट्टो तेण समं, संगामो दारुणो जाओ ॥९४॥

जेऊण सुयं समरे, तस्स य रज्जं महागुणं दाउं । सोदासो पव्वइओ, कुणइ तवं बारसवियप्पं ॥९५॥

सीहरहस्स वि पुत्तो, बम्भरहो नरवई समुप्पन्नो । तस्स वि चउम्मुहो वि य, हेमरहो जसरहो चेव ॥९६॥

पउमरहो य मयरहो ससीरहो रविरहो य मन्धाओ । उदयरहो नरवसहो, वीरसुसेणो य पडिवयणो ॥९७॥

नामेण कमलबन्धू, रविसत्तू तह वसन्ततिलओ य । राया कुबेरदत्तो, कुन्थू सरहो य विरहो य ॥९८॥

रहनिग्घोसो य तहा, मयारिदमणो हिण्णनाभो य । पुञ्जत्थलो य ककुहो, राया रघुसो य नायव्वो ॥९९॥

एवं इक्खागकुले, समइक्कन्तेसु नरवरिन्देसु । साएयपुरवरीए, अणरण्णो पत्थिवो जाओ ॥१००॥

ये मारयित्वा जीवान् मांसं भुञ्जते जीव्हादोषेण । ते ऽधिपतन्ति नरके दुःखसहस्राकुले भीमे ॥८८॥

ते तत्र समुत्पन्ना नरके बहुवेदने नित्यकालम् । छिद्यन्ते च भिद्यन्ते च करपत्रासिपत्रयन्त्रैः ॥८९॥

श्रुत्वा वचनमेतन्मुनिवरविहितं भयेन दुःखानाम् । भूत्वा प्रसन्नहृदयः सोदासः श्रावको जातः ॥९०॥

ततो महापुरेऽपि च कालगते पार्थिवे सुतविहीने । गजस्कन्धमारूढः सोदास प्राप्तः राज्यम् ॥९१॥

पुत्रस्य तेन दूतो विसर्जितः कुरुत मे लघु प्रणामम् । तेनाऽपि भणितो दूत न तस्याहं प्रणिपतामि ॥९२॥

श्रुत्वा दूतवचनं सोदासो निर्गतोबलसमग्रः । तस्य विषयं च प्राप्तो बन्दिजनोद्घुष्टजयशब्दः ॥९३॥

सिंहरथोऽप्यभिमुखश्चतुरङ्गबलेन तत्र निर्गत्य । प्रवृत्तस्तेन समं संग्रामो दारुणो जातः ॥९४॥

जित्वा सुतं समरे तस्य च राज्यं महागुणं दत्वा । सोदासः प्रव्रजितः करोति तपोद्वादशविकल्पम् ॥९५॥

सिंहरथस्यापि पुत्रो ब्रह्मरथो नरपतिः समुत्पन्नः । तस्यापि चतुर्मुखोऽपि च हेमरथो यशोरथ श्चैव ॥९६॥

पद्मरथश्च मृगरथः शशिरथो रविरथश्च मान्धातः । उदयरथो नरवृषभो वीरसुषेणश्च प्रतिवचनः ॥९७॥

नाम्ना कमलबन्धू रविशत्रुस्तथा वसन्ततिलकश्च । राजा कुबेरदत्तः कुन्थु शरभश्च विरहश्च ॥९८॥

रथनिर्घोषश्च तथा मृगारिदमनो हिरण्यनाभश्च । पुञ्जस्थलश्च ककुस्थोराजा रघुश्च ज्ञातव्यः ॥९९॥

एवमिक्ष्वाकुकुले समतिक्रान्तेषु नरेवरेन्द्रेषु । साकेतपुरवर्यामनरण्यः पार्थिवो जातः ॥१००॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दशरथः-

तस्स महादेवीए, पुहईए दो सुया समुप्पन्ना । पढमो य अणन्तरहो, बीओ पुण दसरहो जाओ ॥१०१॥

माहेसरनयरवई, मित्तं सोऊण सहसकिरणं सो । पव्वइओ निव्विण्णो, इमस्स संसारवासस्स ॥१०२॥

अणरण्णो वि नरवई, पुत्तं चिय दसरहं ठविय रज्जे । निक्खमइ सुयसमग्गो पासे मुणिअभयसेणस्स ॥१०३॥

छट्ठऽट्ठम-दुवालसेहि मासऽध्धमासखमणेहिं । काऊण तवमुचारं, अणरण्णो पत्थिओ मोक्खं ॥१०४॥

साहू वि अणन्तरहो, अणन्तबल-विरिय-सत्तिसंपन्नो । संजम-तव-नियम[1]धरो, जत्थत्थमिओ मही भमइ ॥१०५॥

अरुहत्थले नरिन्दो, सुकोसलो तस्स चेव महिलाए । अमयप्पभाए धूया, कन्ना अवराइया नामं ॥१०६॥

सा दसरहस्स दिन्ना, परिणीया तेण वरविभूईए । अह कमलसंकुलपुरे, सुबन्धुतिलओ निवो तत्थ ॥१०७॥

मित्ता य महादेवी, दुहिया चिय केकई ललियरूवा । सा दसरहेण कन्ना, परिणीया नाम सोमित्ती ॥१०८॥

एवं जुवईहि समं, परिभुञ्जइ दसरहो महारज्जं । सम्मत्तभावियमई, देव-गुरूपूयणाभिरओ ॥१०९॥

जे भरहाइनराहिवसूरा, उत्तमसत्ति-सिरीसंपन्ना ।
ते जिणधम्मफलेण महप्पा, होन्ति पुणो विमला-ऽमलभावा ॥११०॥

॥ इय पउमचरिए सुलकोसलमाहप्पजुत्तो दसरहउप्पत्तिभिहाणो नाम बावीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

दशरथः-

तस्य महादेव्याः पृथिव्यां द्वौ सुतौ समुत्पन्नौ । प्रथमश्चानन्तरथो द्वितीयः पुनर्दशरथोजातः ॥१०१॥

माहेश्वरनगरपतिं मित्रं श्रुत्वा सहस्रकिरणं सः । प्रव्रजितो निर्विण्ण एतस्मात् संसारवासात् ॥१०२॥

अनरण्योऽपि नरपतिः पुत्रमेव दशरथं स्थापयित्वा राज्ये । निष्क्रामति सुतसमग्रः पार्श्वे मुन्यभयसेनस्य ॥१०३॥

षष्ठाष्टमदशमद्वादशैः र्मासाद्र्धमासक्षपणैः । कृत्वा तप उदारमनरण्यः प्रस्थितो मोक्षम् ॥१०४॥

साध्वप्यनन्तरथोऽनन्तबल-वीर्यशक्तिसंपन्नः । संयमतपोनियमधरो यथास्तमितो महीं भ्रमति ॥१०५॥

अरुहस्थले नरेन्द्रः सुकोशलस्तस्यैव महिलायाः । अमृतप्रभाया दुहिता कन्याऽपराजिता नाम ॥१०६॥

सा दशरथाय दत्ता परिणीता तेन वरविभूत्या । अथ कमलसंकुलपुरे सुबन्धुतिलको नृपस्तत्र ॥१०७॥

मित्रा च महादेवी दुहितैव कैकयी ललितरुपा । सा दशरथेन कन्या परिणीता नाम सौमित्री ॥१०८॥

एवं युवतिभ्यां समं परिभुनक्ति दशरथो महाराज्यम् । सम्यक्त्वभावितमति र्देवगुरुपूजनाभिरतः ॥१०९॥

ये भरतादिनराधिपशूरा उत्तमशक्ति-श्रीसंपन्नाः । ते जिनधर्मफलेन महात्मानो भवन्ति पुन र्विमलाऽमलभावाः ॥११०॥

॥ इति पद्मचरित्रे सुकोशलमहात्मययुक्तो दशरथोत्पत्यभिधानो नाम द्वाविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. नियमरओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२३. बिहीसणवयणविहाणं

अह अन्नया कयाई, सहाए मज्झम्मि दसरहो राया । चिट्ठइ सुहासणत्थो, ताव च्चिय नारओ पत्तो ॥१॥
अब्भुट्ठिओ य सहसा, नरवइणा आसणे सुहनिसण्णो । परिपुच्छिओ य भयवं !, कत्तो सि तुमं परिब्भमिओ? ॥२॥
दाऊण य आसीसं, भणइ तओ नारओ जिणहराणं । वन्दणनिमित्तहेउं, पुव्वविदेहं गओ अहयं ॥३॥
अह पुण्डरीगिणीए, सीमन्धरजिणवरस्स निक्खमणं । दिट्ठं मए महायस !, सुरअसुरसमाउलं तत्थ ॥४॥
सीमंधरभगवन्तं, नमिऊणं यचेइयाइँ तत्थ पुणो । मन्दरगिरिं गओ हं, पणमामि जिणालए तुट्ठो ॥५॥
सुरगणसेवियसिहरं, काऊण पयाहिणं नगवरिन्दं । तुरियं च पडिनियत्तो, अभिवन्दन्तो जिणहराइं ॥६॥
तो नारहण भणिओ, साएयवई ! सुणेहि मह वयणं । अवसारेसु य लोयं, जेण रहस्सं निवेएमि ॥७॥
ओसारियम्मि लोए, कहेइ तो नारओ नरवइस्स । वन्दणकएण नवरं, तिकूडसिहरं गओ अहयं ॥८॥
तत्थ जिणसन्तिभवणं, अभिवन्देऊण चिट्ठमाणेणं । तुह पुण्णपभावेणं, तं मे अवहारियं वयणं ॥९॥
नेमित्तिएण सिट्ठं, सायरविहिणा उ रावणं समरे । जह दहरहस्स पुत्तो, मारिहिइ न एत्थ संदेहो ॥१०॥
जणयदुहियानिमित्तं, सुणिऊण बिहीसणो भणइ एवं । मारेमि दसरहं तं, जाव [1]सुओ से न संभवइ ॥११॥
अहमवि बिभीसणेणं, भणिओ जाणसि कहिं दसरहो सो? । जणओ य साहसु फुडं, भयवं ! मा कुणह वक्खेवं ॥१२॥
भणिओ बिभीसणो मे, अहयं न सुणेमि ताण उप्पत्ती । दाऊण उत्तरमिणं, इहागओ तुज्झ पासम्मि ॥१३॥

२३. बिभीषणवचनविधानम्

अथान्यदा कदाचित्सभाया मध्ये दशरथो राजा । तिष्ठति सुखासनस्थस्तावदेव नारदः प्राप्तः ॥१॥
अभ्युत्थितश्च सहसा नरपतिनाऽऽसने सुखनिषण्णः । परिपृष्टश्च भगवन् ! कुतोऽसि त्वं परिभ्रान्तः ॥२॥
दत्वा चाशीषं भणति ततो नारदो जिनगृहाणाम् । वन्दननिमित्तहेतु पूर्वविदेहं गतोऽहम् ॥३॥
अथ पुण्डरीकिण्यां सीमंधरजिनवरस्य निष्क्रमणम् । दृष्टं मया महायश ! सुरासुरसमाकुलं तत्र ॥४॥
सीमंधरभगवन्तं नत्वा च चैत्यानि तत्र पुनः । मन्दरगिरिं गतोऽहं प्रणमामि जिनालयांस्तुष्टः ॥५॥
सुरगणसेवितशिखरं कृत्वा प्रदक्षिणां नगवरेन्द्रम् । त्वरितं च प्रतिनिवृत्तो ऽभिवन्दन् जिनगृहाणि ॥६॥
तदा नारदेन भणितः साकेतपते ! श्रृणु मम वचनम् । अपसारय च लोकं येन रहस्यं निवेदयामि ॥७॥
अपसारिते लोके कथयति ततो नारदो नरपतेः । वन्दनकृतेन नवरं त्रिकूटशिखरं गतोऽहम् ॥८॥
तत्र जिनशान्तिभवनमभिवन्द्य तिष्ठता । तव पुण्यप्रभावेन तन्मया ऽवधारितं वचनम् ॥९॥
नैमित्तिकेन शिष्टं सागरविधिना तु रावणं समरे । यथा दशरथस्य पुत्रो मारयिष्यति नात्र संदेहः ॥१०॥
जनकदुहिता निमित्तं, श्रुत्वा बिभीषणो भणत्येवम् । मारयामि दशरथं तं यावत्सुतस्तस्य न संभवति ॥११॥
अहमपि बिभीषणेन भणितो जानासि कुत्र दशरथः सः । जनकश्च कथय स्फुटं भगवन् ! मा कुरु व्याक्षेपम् ॥१२॥
भणितो बिभीषणो मयाहं न श्रृणोमि तयोरुत्पत्तिः । दत्वोत्तरमिममिहागतस्तवपार्श्वे ॥१३॥

१. सुओ नेव संभवइ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं ते परिकहियं, सम्मद्दिट्ठिस्स तुज्झ नेहेणं। ताव करेहि उवायं, जाव य न बिभीसणो एइ ॥१४॥
दाऊण य उवएसं, अइतुरियं नारओ गओ मिहिलं। जणयस्स वि निस्सेसं, कहेइ वत्तं मरणहेउं ॥१५॥
मरणमहब्भयभीओ, नराहिवो दसरहो समप्पेउं। मन्तीण कोस-देसं, विणिग्गओ तत्थ पच्छन्नो ॥१६॥
ताव य मन्तीहि लहुं, लेप्पमयं दसरहस्स पडिबिम्बं। कारावियं मणोज्जं, सत्ततले भवणपासाए ॥१७॥
एसो च्चिय वित्तन्तो जणयस्स वि कारिओ य मन्तीहि। नट्ठा भमन्ति दोण्णि वि, पुहई पच्छन्नरूवधरा ॥१८॥
ताव य बिहीसणेणं, साएयपुरीए पेसिया पुरिसा। हिण्डन्ति गवेसन्ता, नराहिवं दिन्नदिट्ठीया ॥१९॥
रायहरं असमत्था, पविसेउं जाव ते चिरावेन्ति। ताव य साएयपुरिं, बिहीसणो आगओ तुरियं ॥२०॥
तडिविलसिएण सिग्घं, बिहीसणाणत्तियाए भवणवरं। पविसेऊण य छिन्नं, सीसं चिय कित्तिमनिवस्स ॥२१॥
लक्खारसपगलन्तं, सीसं तडिविलसिएण घेत्तूणं। रयणीए सयं दट्ठुं, पुणरवि दावेन्ति सामिस्स ॥२२॥
अन्तेउरे [1]पलावं, सोऊण सिरं महीए मोत्तूण। मणपवणजवणवेओ, बिहीसणो पत्थिओ लङ्कं ॥२३॥
परिवग्गो वि पलावं, काऊणं पेयकम्मकरणिज्जं। दहरहसमूसुयमणो, अच्छइ य दिसिं पलोयन्तो ॥२४॥
एत्तो बिभीसणो वि य, गुरूण सम्माण-दाण-पूयाई। कुणइ पयत्तेणं चिय, आणन्दं हरिसियमईओ ॥२५॥
परभवजणियं जं दुक्कयं सुक्कयं वा, परिणमइ नराणं तं तहा नेव मिच्छं।
इइ मुणिय विसेसं घोरसंसारवासं, कुणह विमलभावं मोक्खमग्गे जिणाणं ॥२६॥

॥ इय पउमचरिए बिहीसणवयणविहाणो नाम तेवीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

एवं ते परिकथितं सम्यग्दृष्टेस्तव स्नेहेन। तावत्कुरूपायं यावच्च न बिभीषण एति ॥१४॥
दत्वा चोपदेशमतित्वरितं नारदो गतो मिथिलाम्। जनकस्यापि निःशेषं कथयति वृत्तं मारणहेतुम् ॥१५॥
मरणमहाभयभीतो नराधिपो दशरथः समर्प्य। मन्त्रिणाम् कोशदेशं विनिर्गतस्तत्र प्रच्छन्नः ॥१६॥
तावच्च मन्त्रिभि र्लघुं लेप्यमयं दशरथस्य प्रतिबिम्बम्। कारितं मनोज्ञं सप्ततले भवनप्रासादे ॥१७॥
एष एव वृत्तान्तो जनकस्यापि कारितश्च मन्त्रिभिः। नष्टौ भ्रमतो द्वावपि पृथिवीं प्रच्छन्नरुपधरौ ॥१८॥
तावच्च बिभीषणेन साकेतपूर्यां प्रेषिताः पुरुषाः। भ्रमन्ति गवेषयन्तो नराधिपं दत्तदृष्टिकाः ॥१९॥
राजगृहमसमर्था प्रवेशितुं यावत्ते चिरायन्ति। तावच्च साकेतपुरिं बिभीषण आगतस्त्वरितम् ॥२०॥
तडिद्विलसितेन शीघ्रं बिभीषणाज्ञया भवनवरम्। प्रविश्य च छिन्नं शीर्षमेव कृत्रिमनृपस्य ॥२१॥
लाक्षारसप्रगलन्तं शीर्षं तडिद्विलसितेन गृहीत्वा। रजन्यां स्वयं दृष्ट्वा पुनरपि दर्शयन्ति स्वामिनः ॥२२॥
अन्तेपुरे प्रलापं श्रुत्वा शिरः मह्यां मुक्त्वा। मनःपवनजवनवेगो बिभीषणः प्रस्थितो लङ्काम् ॥२३॥
परिवर्गोऽपि प्रलापं कृत्वा प्रेतकर्मकरणीयम्। दशरथसमुत्सुकमनस आसते च दिशां प्रलोक्यन् ॥२४॥
इतो बिभीषणोऽपि च गुरूणां सन्मान-दान-पूजादि। करोति प्रयत्नेनैवानन्दं हर्षितमतिः ॥२५॥
परभवजनितं यद्दुष्कृत्यं सुकृतं वा परिणमति नराणां तत्तथा नैव मिथ्याम्।
इति ज्ञात्वा विशेषं घोरसंसारवासं कुरुत विमलभावं मोक्षमार्गे जिनानाम् ॥२६॥

॥ इति पद्मचरित्रे बिभीषणवचनविधानो नाम त्रयोविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. विलावं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२४. केगइपरिणयण-वरसंपायणवण्णणं

तस्स भमन्तस्स तया, जं वत्तं तं सुणेहि मगहवई ! । तं ते कहेमि सव्वं, सुणेहि इह अवहितो होउं ॥१॥
उत्तरदिसाए नयरं, इह कोउयमङ्गलं मणभिरामं । तत्थाऽऽसी नरवसभो, गुणाहिओ सुहमई नामं ॥२॥
महिला से पुहइसिरी, धूया वि य केकई पवरकन्ना । पुत्तो य दोणमेहो, जोव्वणलायण्णपडिपुण्णो ॥३॥
कन्तिपडिपुण्णसोहा, रूवाईसयगुणेहि उववेया । विविहकला-ऽऽगमकुसला, सा कन्ना बुद्धिसारेणं ॥४॥
नट्टं सलक्खणगुणं, गन्धव्वं सरविहत्तिसंजुत्तं । जाणइ आहरणविही, चउव्विहं चेव सविसेसं ॥५॥
विज्जं सभेयभिन्नं, लिविसत्थं सद्दलक्खणं सयलं । गयतुरयलक्खणं चिय, गणियं छन्दं निमित्तं च ॥६॥
आलेक्खं लेप्पमयं, पत्तच्छेज्जं च भोयणविही य । बहुविहरयणविसेसं, कुसुमविसेसं सभेयजुयं ॥७॥
विविहा य गन्धजुत्ती, लोयन्नाणं तहेव सविसेसं । एयासु य अन्नासु य, कलासु कन्ना समुव्वहइ ॥८॥
दट्ठूण नरवरिन्दो, कन्नं नवजोव्वणं विचिन्तेइ । को से वरो णु सरिसो, पुहइयले होहिइ इमाए ? ॥९॥
जो से मणस्स इट्ठो, तं गिण्हउ वा सयंवरा कन्ना । एव भणिऊण सहसा, नराहिवा मेलिया सव्वे ॥१०॥
ते च्चिय तहिं भमन्ता, दसरह-जणया तओ मिलेऊणं । अन्नोन्नमुणियनिहसा, दो वि तहिं चेव संवत्ता ॥११॥

---

२४. कैकेयी परिणयन-वरसंपादनवर्णनम् -

कैकेयी -

तस्य भ्रमतस्तदा यद्वृत्तं तच्छ्रुणु मगधपते ! । तत्त्वां कथयामि सर्वं श्रुण्वेहावहितो भूत्वा ॥१॥
उत्तरदिशि नगरमिह कौतुकमङ्गलं मनोभिरामम् । तत्रासीन्नरवृषभो गुणाधिकः शुभमतिर्नाम ॥२॥
महिला तस्य पृथिवीश्री र्दुहिताऽपि च कैकयीप्रवरकन्या । पुत्रश्च द्रोणमेघो यौवनलावण्यप्रतिपूर्णः ॥३॥
कान्तिप्रतिपूर्णशोभा रुपातिशयगुणैरुपपेता । विविधकलाऽऽगमकुशला सा कन्या बुद्धिसारेण ॥४॥
नृत्यं सलक्षणगुणं गान्धर्वं स्वरविभक्तिसंयुक्तम् । जानात्याभरणविधिं चतुर्विधंचैव सविशेषम् ॥५॥
विद्यां सभेदभिन्नां लिपिशास्त्रं शब्दलक्षणं सकलम् । गजतुरगलक्षणमेव गणितं छन्दं निमित्तं च ॥६॥
आलेख्यं लेप्यमयं पत्रच्छेद्यं च भोजनविधिं च । बहुविधरत्नविशेषं कुसुमविशेषं सभेदयुक्तम् ॥७॥
विविधां च गन्धयुक्तिं लोकज्ञानं तथैव सविशेषम् । एतासु चान्यासु च कलासु कन्या समुद्वहति ॥८॥
दृष्ट्वा नरवरेन्द्रः कन्यां नवयौवनां विचिन्तयति । कस्तस्या वरो नु सदृशः पृथिवीतले भविष्यत्यस्याः ॥९॥
यस्तस्या मनस इष्टस्तं गृह्णातु वा स्वयंवरा कन्या । एवं भणित्वा सहसा नराधिपा मेलिताः सर्वे ॥१०॥
त एव तत्र भ्रमन्तौ दशरथ-जनकौ ततो मीलित्वा । अन्योन्यं ज्ञात्वा निकषा द्वावपि तत्रैव संप्राप्तौ ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मञ्चेसु य उवविट्ठा, हरिवाहणमाइया नरवरिन्दा । सयलपरिवारसहिया, आहरणविभूसियसरीरा ॥१२॥

सा वि तहिं वरकन्ना, सव्वालंकारसुकयनेवच्छा । मङ्गलसओवगीया, रायसमुद्दं समोइण्णा ॥१३॥

पासेसु चामराइं, उवरिं छत्तं समोत्तिओऊलं । पुरओ य महातूरं, वज्जइ घणसरिसनिग्घोसं ॥१४॥

लीलाए संचरन्ती, नियन्ति तं पत्थिवा अणिमिसच्छा । उम्माइया खणेणं, बहवे आयल्लयं पत्ता ॥१५॥

[1]मयहरयदाविए ते, सव्वे वि नराहिवे पलोएउं । बालाए कया माला, सिग्घं कण्ठे दसरहस्स ॥१६॥

आलइयकण्ठमालं, दट्ठूणं दसरहं जणो भणइ । रूवेण अणंसमो, नवरं अणायकुल-वंसो ॥१७॥

केइत्थ नरवरिन्दा, भणन्ति जोगो वरो सुलायण्णो । गहिओ कन्नाए इमो, पुव्वक्कम्माणुजोएणं ॥१८॥

अन्ने भणन्ति रुट्ठा, देसियपुरिसस्स अमुणियकुलस्स । एयस्स हरह कन्नं, सिग्घं चिय मा चिरावेह ॥१९॥

अह ते खणेण सव्वे, सन्नद्धे पेच्छिऊण नरवसभे । तो सुहमई नरिन्दो, वयण जामाउयं भणइ ॥२०॥

जाव य सरेहि समरे, धाडेमि इमे अहं नरवरिन्दे । ताव य कन्नाए समं, पविससु नयरं रहारूढो ॥२१॥

जं एव समालत्तो, भणइ तओ [2]माम ! किं विसण्णो सि ? । थोवन्तरेण पेच्छसु, भज्जन्ते रणमुहे एए ॥२२॥

एव भणिऊण तो सो, सन्नद्धो रहवरं समारूढो । पग्गहकरावलग्गा, धुरासणे केगई तस्स ॥२३॥

जस्स ससिमण्डलनिभं, दीसइ छत्तं भडाण मज्झम्मि । एयस्स तुरियवेयं, वाहेहि रहं विसालच्छि ! ॥२४॥

मञ्चेषु चोपविष्टा हरिवाहनादयो नरवरेन्द्राः । सकलपरिवारसहिता आभरणविभूषितशरीराः ॥१२॥

साऽपि तत्र वरकन्या सर्वालङ्कारसुकृतनेपथ्या । मङ्गलशतोपगीता राजसमुद्रं समवतीर्णा ॥१३॥

पार्श्वयो श्चामराण्युपरि छत्रं समौक्तिकावचूलम् । पुरतश्च महातूर्यं वाद्यते घनसदृशनिर्घोषम् ॥१४॥

लीलया सञ्चरन्ती पश्यन्ति तां पार्थिवा अनिमेषाक्षाः । उन्मादिताः क्षणेन बहव आकुलतां प्राप्ताः ॥१५॥

महत्तरकदर्शितान् तान् सर्वानपि नराधिपान् प्रलोक्य । बालया कृता माला शीघ्रं कण्ठे दशरथस्य ॥१६॥

आरोपितकण्ठमालं दृष्ट्वा दशरथं जनो भणति । रुपेणानङ्गसमो नवरमज्ञातकुलवंशः ॥१७॥

केचिन्नरवरेन्द्रा भणन्ति योग्यो वरः सुलावण्यः । गृहीतः कन्ययायं पूर्वकर्मानुयोगेन ॥१८॥

अन्ये भणन्ति रुष्टा दैशिकपुरुषस्याजातकुलस्य । एतस्य हरत कन्यां शीघ्रमेव मा चिरायत ॥१९॥

अथ तान्क्षणेन सर्वान्सन्नद्धान्दृष्ट्वा नरवृषभान् । तदा शुभमतिर्नरेन्द्रो वचनं जामातरं भणति ॥२०॥

यावच्च शरैः समरे निस्सारयामीमानहं नरवरेन्द्रान् । तावच्च कन्यया समं प्रविश नगरे रथारुढः ॥२१॥

यदेव समालप्तो भणति ततो माम ! किं विषण्णोऽसि ? । स्तोकान्तरेण पश्य भञ्जतो रणमुखे एतान् ॥२२॥

एवं भणित्वा ततः स सन्नद्धो रथवरं समारूढः । प्रग्रहकरावलग्ना धुरासने कैकेयी तस्य ॥२३॥

यस्य शशिमण्डलनिभं दृश्यते छत्रं भटानां मध्ये । एतस्य त्वरितवेगं वाह्य रथं विशालाक्षि ! ॥२४॥

---

१. महत्तरकदर्शितान् । २. सामि ! - प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एव भणियाए सिग्घं, उसियधयदण्डमण्डणाडोवो । तह वाहिओ रहवरो, जह खुहियं रिउबलं सयलं ॥२५॥

जुज्झन्तेण रणमुहे, सरेहि परिहत्थदच्छमुक्केहिं । भग्गा नासन्ति भडा, अन्नन्नं चेव लङ्घन्ता ॥२६॥

हेमप्पभेण सव्वे, नियभडा चोइया पडिणियत्ता । मुञ्चन्ता सरनिवहं, आवडिया दसरहं समरे ॥२७॥

हत्थीसु रहवरेसु य, तुरङ्गजोहेसु वेढिओ समरे । जुज्झइ अविसण्णमणो, मुञ्चन्तो आउहसयाइं ॥२८॥

चउसु वि दिसासु सिग्घं, भमइ च्चिय दसरहो रहारूढो । गयवर-तुरङ्ग-जोहे, घायन्तो सत्थपहरेहिं ॥२९॥

दट्ठूण भउव्विग्गं, सेन्नं हेमप्पभो नरवरिन्दो । पुरओ अवट्ठिओ दसरहस्स परिबद्धतोणीरो ॥३०॥

छिन्नकवया-ऽऽयवत्तो, सरेहि हेमप्पहो कओ विरहो । सिग्घं रणमज्झाओ, सेन्नेण समं समोसरइ ॥३१॥

हेमप्पभम्मि भग्गे, बन्दिजणाइण्णघुट्ठजयसद्दो । कन्नाए समं नयरं, पविसरइ रहेण वीसत्थो ॥३२॥

तो सो पाणिग्गहणं, करेइ विहिणा जणेण परिकिण्णो । कोउयमङ्गलनिलए, परिणीओ दसरहो राया ॥३३॥

परमविभूईए तओ, [1]महिला घेत्तूण सयलपरिवारो । पडियागओ विणीयं, अणरण्णसुओ पहियकित्ती ॥३४॥

मन्ति-भड-पुरजणेणं, ठविओ पुण दसरहो महारज्जे । भुञ्जइ भोगसमिद्धिं, सग्गे वाऽऽखण्डलो मुइओ ॥३५॥

संपत्थिओ य [2]महिलं, जणओ वि ससंभमो दढधिईओ । पुणरवि रज्जाणन्दं, परितुट्ठो कुणइ सविसेसं ॥३६॥

अह केगई कयाई, भणियाअणरण्णपत्थिवसुएणं । भद्दे ! मणस्स इट्ठं, जं मग्गसि तं पणामेमि ॥३७॥

एवं भणितया शीघ्रमोच्छ्रितध्वजदण्डमण्डनाटोपः । तथा वाहितो रथवरो यथा क्षुभितं रिपुबलं सकलम् ॥२५॥

युध्यमानेन रणमुखे शरैः परिपूर्णदक्षमुक्तैः । भग्ना नश्यन्ति भटा अन्योन्यमेव लङ्घन्तः ॥२६॥

हेमप्रभेण सर्वे निजभटाश्चोदिताः प्रतिनिवृत्ताः । मुञ्चन्तः शरनिवहमापतिता दशरथं समरे ॥२७॥

हस्तिभी रथवरैश्च तुरङ्गयोद्धै वेष्टितः समरे । युध्यत्यविषण्णमना मुञ्चन्नायुधशतानि ॥२८॥

चतुर्ष्वपि दिक्षु शीघ्रं भ्रमत्येव दशरथो रथारुढः । गजवर-तुरङ्ग-योधान्घातयन्शस्त्रप्रहारैः ॥२९॥

दृष्ट्वा भयोद्विग्नं सैन्यं हेमप्रभो नरवरेन्द्रः । पुरतोऽवस्थितो दशरथस्य परिबद्धतूणीरः ॥३०॥

छिन्नकवचाऽऽतपत्रः शरैर्हेमप्रभः कृतो विरथः । शीघ्रं रणमध्यात्सैन्येन समं समपसरति ॥३१॥

हेमप्रभे भग्ने बन्दिजनाकीर्णधृष्टजयशब्दः । कन्यया समं नगरं प्रविशति रथेन विश्वस्तः ॥३२॥

ततः स पाणिग्रहणं करोति विधिना जनेन परिकीर्णः । कौतुकमङ्गलनिलये परिणीतो दशरथो राजा ॥३३॥

परमविभूत्या ततो महिलां गृहीत्वा सकलपरिवारः । प्रत्यागतो विनीतामनरण्यसुतः प्रथितकीर्तिः ॥३४॥

मन्त्रि-भट-पुरजनेन स्थापितः पुन र्दशरथो महाराज्ये । भुनक्ति भोगसमृद्धिं स्वर्ग इवाऽऽखण्डलो मुदितः ॥३५॥

संप्रस्थितश्च मिथिलां जनकोऽपि ससंभ्रमो दृढधृतिः । पुनरपि राज्यानन्दं परितुष्टः करोति सविशेषम् ॥३६॥

अथ कैकेयी कदाचिद्भणिताऽनरण्यपार्थिव सुतेन । भद्रे ! मनस इष्टं यन्मार्गयसि तदर्पयामि ॥३७॥

---

१. महिलं-प्रत्य० । २. मिथिलानगरीम् ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जं तइया संगामे, सारच्छगुणेण तोसिओ [१]अहयं । तस्सुवयारस्स फलं, मग्गसु मा णे चिरावेहि ॥३८॥

तो केगईए भणिओ, संपइ नत्थेत्थ कारणं किंचि । काले जत्थ नराहिव !, मग्गिस्सं तत्थ देज्जासु ॥३९॥

वरजुवइसमग्गो तिव्वभोगाणुरत्तो, महुरसरनिणाओ गिज्जमाणो महप्पा ।

भडमउडमऊहालीढपायप्पएसो, रमइ विमलकित्ती सेसकालं नरिन्दो ॥४०॥

॥ इय पउमचरिए केगइवरसंपायणो नाम चउवीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

यत्त्वया संग्रामे सारथ्यगुणेन तोषितोऽहम् । तस्योपकारस्य फलं मार्गय मा चिराय ॥३८॥

तदा कैकेय्या भणितः संप्रति नास्त्यत्र कारणं किञ्चित् । काले यत्र नराधिप ! मार्गयिष्यामि तत्र देयम् ॥३९॥

वरयुवतिसमग्रस्तीव्रभोगानुरक्तो मधुरस्वरनिनादो गीयमानो महात्मा ।

भटमुकुटमयूखालीढपादप्रदेशो रमते विमलकीर्त्तिः शेषकालं नरेन्द्रः ॥४०॥

॥ इति पद्मचरित्रे कैकेयीवरसंपादनो नामचतुर्विंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. सिग्घं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२५. चउभाइविहाणं

अह अन्नया कयाई, देवी अवराइया सुहपसुत्ता । पेच्छइ य पवरसुमिणे, रयणीए पच्छिमे जामे ॥१॥
वरकुसुमकुन्दवण्णं, सीहं सूरं तहेव रयणियरं । दट्ठूण अह विबुद्धा, पइणो सुमिणे परिकहेइ ॥२॥
सोऊण पवरसुमिणे, सत्थत्थविसारओ नरवरिन्दो । भणइ इमे वरपुरिसं, सुन्दरि ! पुत्तं निवेएन्ति ॥३॥
तयणन्तरं सुमित्ता, पेच्छइ सुमिणे निसावसाणम्मि । [१] लच्छो कमलविहत्था, ससि-सूरे किरणपज्जलिए ॥४॥
अत्ताणं अइतुङ्गे, गिरिवरसिहरे अवट्ठिया सन्ती । सायवरपेरन्तं, पेच्छइ पुहइं चिय पसत्थं ॥५॥
सूरुग्गमम्मि तो सा, गन्तूण कहेइ सुविणए पइणो । तेण वि य तीए सिट्ठं, होही पुत्तो तुमं भद्दे ! ॥६॥
अवराइया कयाई, गुरुभारा सोहणे तिहि-मुहुत्ते । पुत्तं चेव पसूया, वियसियवरपउमसरिसमुहं ॥७॥
जम्मूसवो महन्तो, तस्स कओ दसरहेण तुट्ठेणं । नामं च विरइयं से, पउमो पउमुप्पलदलच्छो ॥८॥
तत्तो चेव पसूया, सोमित्ती दारयं परमरूवं । तस्स वि य महाणन्दो, सविसेसो नरवईण कओ ॥९॥
वेरियघरेसु जाया, उप्पाया दारुणा महापावा । बन्धवनयरेसु पुणो, कहेन्ति सुहसंपयं विउलं ॥१०॥
नीलुप्पलदलसामो, जेणं चिय लक्खणेसु उववेओ । तेणं गुणाणुरूवं, छूढं चिय लक्खणो नामं ॥११॥
अह दो वि बालया ते, रिङ्खण-चंकमणयाइ कुणमाणा । वड्ढन्ति लच्छिनिलया, आभरणविभूसियसरीरा ॥१२॥
बहुविहजम्मसिणेहा, अन्नोन्नवसाणुगा वरकुमारा । बन्धवहिययाणन्दा, रक्खिज्जन्ते पयत्तेणं ॥१३॥

२५. चतुर्भ्रातृविधानम्

अथान्दा कदाचिद्देव्यपराजिता सुखप्रसुप्ता । पश्यति च प्रवरस्वप्नान्रजन्यां पश्चिमे यामे ॥१॥
वरकुसुमकुन्दवर्णं सिंह सूर्यं तथैव रजनिकरम् । दृष्ट्वा अथ विबुद्धा पत्युः स्वप्नान्परिकथयति ॥२॥
श्रुत्वा प्रवरस्वप्नान्शास्त्रार्थविशारदो नरवरेन्द्रः । भणतीमे वरपुरुषं सुन्दरि ! पुत्रं निवेदयन्ति ॥३॥
तदनन्तरं सुमित्रा पश्यति स्वप्नान्निशावसाने । लक्ष्मीः कमलविहस्ता शशि-सूर्यौ किरणप्रज्वलितौ ॥४॥
आत्मानमत्युत्तुङ्गे गिरिवरशिखरे ऽवस्थिता सती । सागरवरपर्यन्तं पश्यति पृथिवीमेव प्रशस्ताम् ॥५॥
सूर्योद्गमे तदा सा गत्वा कथयति स्वप्नान् पत्युः । तेनापि च तस्याः शिष्टं भविष्यति पुत्रस्त्वां भद्रे ! ॥६॥
अपराजिता कदाचिद्गुरुभारा शोभने तिथि-मुहूर्ते । पुत्रमेव प्रसूता विकसितवरपद्मसदृशमुखम् ॥७॥
जन्मोत्सवो महांस्तस्य कृतो दशरथेन तुष्टेन । नाम च विरचितं तस्य पद्मः पद्मोत्पलाक्षः ॥८॥
तत एव प्रसूता सौमित्रि र्दारकं परमरुपम् । तस्यापि च महानन्दः सविशेषो नरपतिना कृतः ॥९॥
वैरीगृहेषु जाता उत्पाता दारुणा महापापाः । बान्धवनगरेषु पुनः कथयन्ति सुखसंपद्विपुलम् ॥१०॥
नीलोत्पलदलश्यामो येनैव लक्षणैरुपपेतः । तेन गुणानुरुपं क्षिप्तमेव लक्ष्मणो नाम ॥११॥
अथ द्वावपि बालकौ तौ रिङ्खनचक्रमणादि कुर्वाणौ । वर्धेते लक्ष्मीनिलयावाभरणविभूषितशरीरौ ॥१२॥
बहुविधजन्मस्नेहावन्योन्यवशानुगौ वरकुमारौ । बान्धवहृदयानन्दौ रक्ष्येते प्रयत्नेन ॥१३॥

१. लच्छि कमलविहत्थं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह केगई पसूया, भरहकुमारं तहेव [1]सत्तुघणं । जम्मूसवो महन्तो, ताणं पि कओ नरवईणं ॥१४॥
अह ते कुमारसीहे, चत्तारि वि सत्ति-कन्ति-बलजुत्ते । कलगहण-धारणसहे, दट्ठूण समाउलो राया ॥१५॥
अत्थेत्थ महानयरी, कम्पिल्ला तत्थ भग्गवो नामं । तस्सऽइराणी महिला, पुत्तो वि य अइरकुच्छी सो ॥१६॥
अइलालिओ स [2]दूरं अविणयकारी जणस्स अइवेसो । निद्धाडिओ पुराओ, पियरेणं अयसभीएणं ॥१७॥
दोकप्पडपरिहाणो, पत्तो, रायग्गिहं महानयरं । वइवस्सओ त्ति नामं, तत्थ धणुव्वेयमइकुसलो ॥१८॥
सीससहस्सेणं चिय, परिकिण्णो तस्स चेव पासम्मि । अह सिक्खिओ कमेणं, सव्वाण वि उत्तमो जाओ ॥१९॥
रायगिहसामिओ तं सुणिऊणं चावलक्खमइकुसलं । कारेइ सरक्खेवं, समयं चिय अन्तवासीहिं ॥२०॥
दट्ठूण सरक्खेवं, भणइ निवो अह दुसिक्खिओ तुहयं । सुणिऊण रायवयणं, पुणरवि य गुरुं समल्लीणो ॥२१॥
वइवस्सयस्स [3]दुहिया, काऊण वसे निसासु छिड्डेणं । निग्गन्तूण पलाओ, साएयपुरिं समणुपत्तो ॥२२॥
तो दसरहस्स सव्वं, निययं दावेइ सत्थकुसलत्तं । परितुट्ठो नरवसभो, तस्स कुमारे समप्पेइ ॥२३॥
ईसत्थसन्निहाणं, नियय जं तस्स चावमाईयं । संकन्तं चिय सव्वं, ताणं उदए व्व ससिबिम्बं ॥२४॥
ते तत्थ कुमारवरा, बहुविहविन्नाणलद्धमाहप्पा । जाया विक्खायजसा, चत्तारि वि सायरा चेव ॥२५॥

एवं कलासु [4]कुसला मुणिऊण पुत्ता, विन्नाण-नाण-बल-सत्तिसमत्थचित्ता[5] ।
सम्माण-दाण-विभवेण गुरुस्स तुट्ठो, पूयं करेइ विमलेण मणेण राया ॥२६॥

॥ इय पउमचरिए चउभाइविहाणो नाम पञ्चवीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

अथ कैकयी प्रसूता भरतकुमारं तथैव शत्रुघ्नम् । जन्मोत्सवो महांस्तयोरपि कृतो नरपतिना ॥१४॥
अथ तान् कुमारसिंहांश्चतुरोऽपि शक्ति-कान्ति-बल युक्तान् । कलाग्रहण-धारणसहान् दृष्ट्वा समाकुलो राजा ॥१५॥
अस्त्यत्र महानगरी काम्पिल्या तत्र भार्गवो नाम । तस्याचिरा महिला पुत्रोऽपि चाचिराकुक्षिः सः ॥१६॥
अतिलालितः स दूरमविनयकारी जनस्यातिद्वेष्यः । निष्काषितः पुरात्पित्राऽयशोभीतेन ॥१७॥
द्विकर्पटपरिधानः प्राप्तो राजगृहं महानगरम् । वैवश्वत इति नाम तत्र धनुर्वेदमतिकुशलः ॥१८॥
शिष्यसहस्रेणैव परिकीर्णस्तस्यैव पार्श्वे । अथ शिक्षितः क्रमेण सर्वेषामप्युत्तमो जातः ॥१९॥
राजगृहस्वामी तच्छ्रुत्वा चापलक्ष्यमतिकुशलम् । कारयति शरक्षेपं समकमेवान्तेवासिभिः ॥२०॥
दृष्ट्वा शरक्षेपं भणति नृपो अरे ! दुःशिक्षितस्त्वम् । श्रुत्वा राजवचनं पुनरपि च गुरुं समालीनः ॥२१॥
वैवस्वतस्य दुहितरं कृत्वा वशे निशायां छिद्रेण । निर्गत्य पलायमाणः साकेतपुरिं समनुप्राप्तः ॥२२॥
ततो दशरथस्य सर्वं निजको दर्शयति शस्त्रकुशलताम् । परितुष्टो नरवृषभस्तस्य कुमारान् समर्पयति ॥२३॥
ईष्वस्त्रसन्निधानं निजकं यत्तस्य चापादिकम् । सङ्क्रान्तमेव सर्वं तेषामुदक इव शशिबिम्बम् ॥२४॥
ते तत्र कुमारवरा बहुविधविज्ञानलब्धमाहात्म्याः । जाता विख्यातयशसश्चत्वारोऽपि सागरा इव ॥२५॥
एवं कलासु कुशलाञ्ज्ञात्वा पुत्रान् विज्ञान-ज्ञान-बलशक्तिसमर्थचित्तान् ।
सन्मान-दान-विभवेन गुरोस्तुष्टः पूजां करोति विमलेन मनसा राजा ॥२६॥

॥ इति पद्मचरित्रे चतुर्भ्रातृविधानो नाम पञ्चविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. सत्तुग्घं-प्रत्य० । २. सरोसं-मु० । ३. दुहियं-प्रत्य० । ४. कुसले मुणिऊण पुत्ते-प्रत्य० । ५. चित्ते-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२६. सीया-भामण्डलुप्पत्तिविहाणं

भामण्डलपूर्वभवचरितम् –

एत्तो जणयस्स तुमं, सेणिय ! निसुणेहि ताव संबन्धं । होऊण एगचित्तो, कहेमि सव्वं जहावत्तं ॥१॥
जणयस्स महादेवी, आसि विदेहि त्ति नाम नामेणं । गुरुभारा पसवन्ती, परिवालइ सुखरो तइया ॥२॥
तो भणइ मगहराया, केण निमित्तेण सुरवरो गब्भं । रक्खइ साहेहि पहू !, एयं मे कोउयं परमं ॥३॥
तो भणइ गणाहिवई, राया चक्कद्धओ त्ति नामेणं । सो चक्कपुरनिवासी, भज्जा मणसुन्दरी तस्स ॥४॥
तीए गुणाणुरूवा, धूया अइसुन्दरा गुरुगिहम्मि । सा पढइ अक्खराइं, लेहणिहत्था पयत्तेणं ॥५॥
नरवइपुरोहियसुओ, साहामहिलाए कुच्छिसंभूओ । महुपिङ्गलो त्ति नामं, सो वि तहिं गुरुगिहे पढइ ॥६॥
पढमं चिय आलावो, आलावा रई रईए वीसम्भो । वीसम्भाओ पणओ, पणयाओ वड्ढए पेम्मं ॥७॥
जाए च्चिय सब्भावे, तं कन्नं पिङ्गलो हेरऊणं । अइदुग्गमं सुदूरे, वियब्भनयरं समणुपत्तो ॥८॥
काऊण तत्थ गेहं, मूढो विन्नाण-नाण-धणरहिओ । तण-दारुएहि जीवइ, विक्कन्तो सो तहिं नयरे ॥९॥
तइया तम्मि पुरवरे, पयाससीहस्स पढममहिलाए । पवरावलीए पुत्तो, अह कुण्डलमण्डिओ नामं ॥१०॥

---

२६. सीताभामण्डलोत्पत्ति विधानम् -

भामण्डलपूर्वभव चरित्रम् -

इतो जनकस्य त्वां श्रेणिक ! निश्रुणु तावत्संबंधम् । भूत्वेकाग्रचित्तः कथयामि सर्वं यथावृत्तम् ॥१॥
जनकस्य महेदेव्यासीद्विदेहीति नाम नाम्ना । गुरुभारा प्रसवन्ती परिपालयति सुरवरस्तदा ॥२॥
तदा भणति मगधराजा केननिमित्तेन सुरवरो गर्भम् । रक्षति कथय प्रभो ! एतन्मे कौतुकं परमम् ॥३॥
तदा भणति गणाधिपती राजा चक्रध्वज इति नाम्ना । स चक्रपुरनिवासी भार्या मनःसुन्दरी तस्य ॥४॥
तस्या गुणानुरुपा दुहिताऽतिसुन्दरा गुरुगृहे । सा पठत्यक्षराणि लेखिनीहस्ता प्रयत्नेन ॥५॥
नरपतिपुरोहितसुतः शाखामहिलायाः कुक्षिसंभूतः । मधुपिङ्गल इति नाम सोऽपि तत्र गुरुगृहे पठति ॥६॥
प्रथममेवालाप आलापाद्रती रत्या विश्वासः । विश्वासात्प्रणयः प्रणयाद्ववर्धते प्रेम ॥७॥
जात एव सद्भावे तां कन्यां पिङ्गलो हृत्वा । अतिदुर्गमं सुदूरं विदर्भनगरं समनुप्राप्तः ॥८॥
कृत्वा तत्र गृहं मूढो विज्ञान-ज्ञान-धनरहितः । तृण-दारूभि र्जीवति विक्रीणानः स तत्र नगरे ॥९॥
तदा तस्मिन्पुरवरे प्रकाशसिंहस्य प्रथममहिलायाः । प्रवरावल्याः पुत्रोऽथ कुण्डलमण्डितो नाम ॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो तत्थ निग्गओ च्चिय, विहरन्तो अत्तणो सलीलाए । तं दट्ठूण [1]वरतणू, विद्धो कुसुमाउहसरेहिं ॥११॥

तीए कएण दूई, गूढं संपेसिया नरवईणं । वेयारिऊण बाला, समाणिया नरवईभवणं ॥१२॥

तीए समं नरिन्दो, वरकुण्डलमण्डिओ पवरभोगे । भुञ्जइ गुणाणुरत्तो, रईए समयं अणङ्गो व्व ॥१३॥

महुपिङ्गलो वि एत्तो, [2]अडवीय समागओ नियगेहं । [3]कन्ता अपेच्छमाणो, पडिओ दुक्खण्णवे सहसा ॥१४॥

महिलं गवेसमाणो, रुवइ च्चिय गग्गरेण कण्ठेण । गन्तूण भणइ नरवइ !, केणवि बाला महं हरिया ॥१५॥

भणिओ य सहामज्झे, मन्तीणं सो अणेयबुद्धीणं । अज्जाहि समं बाला, पोयणनयरे मए दिट्ठा ॥१६॥

सो एवभणियमेत्तो, सिग्घं चिय पोयणं गवेसेउं । पडियागओ नरिन्दं, भणइ य [4]कन्ता ममं लहसु ॥१७॥

नरवइआणाए तओ, पुरुसेहि गलग्गहप्पहारेहिं । निद्धाडिओ पुराओ, भमइ महिं दुक्खिओ विमणो ॥१८॥

हिण्डन्तो च्चिय पुहइं, साहुं दट्ठूण अज्जगुत्तं सो । पणमइ कयञ्जलिउडो, सुणइ य धम्मं जिणुद्दिट्ठं ॥१९॥

सोऊण धम्मनिहसं, वइरागुप्पन्नजायसंवेगो । गेण्हइ सङ्गविमुक्कं, पव्वज्जं गुरुसयासम्मि ॥२०॥

गिम्हे आयावेन्तो, चिट्ठइ सिसिरे निसासु एगन्ते । वासारत्तं पि मणी, [5]गमइ सया पव्वयगुहत्थो ॥२१॥

घोरं तवोविहाणं, बारसरूवं मुणी पकुव्वन्तो । सीया-ऽऽयवदुहिओ वि य, कन्तामोहं न छड्डेइ ॥२२॥

तावऽच्छउ संबन्धो, एसो अन्नं सुणेहि मगहवई ! । अन्तरजोयनिबद्धा, ठिया कहा रयणमाल व्व ॥२३॥

स तत्र निर्गत एव विहरन्नात्मनो सलीलया । तां दृष्ट्वा वरतनुं विद्धः कुसुमायुधशरैः ॥११॥

तस्याः कृतेन दूती गूढं संप्रेषिता नरपतिना । विप्रतार्य बाला समानीता नरपतिभवनम् ॥१२॥

तस्याः समं नरेन्द्रो वरकुण्डलमण्डितः प्रवरभोगान् । भुनक्ति गुणानुरक्तो रत्या सममनङ्ग इव ॥१३॥

मधुपिङ्गलोऽपीतो ऽटव्याः समागतो निजगृहम् । कान्तामप्रेक्षमाणो पतितो दुःखार्णवे सहसा ॥१४॥

महिलां गवेषयन्रोदित्येव गद्गदेन कण्ठेन । गत्वा भणति नरपते ! केनापि बाला मम हृता ॥१५॥

भणितश्च सभामध्ये मन्त्रिणा सोऽनेकबुद्धिना । आर्याभिःसमं बाला पोतननगरे मया दृष्टा ॥१६॥

स एवं भणित मात्रः शीघ्रमेव पोतनं गवेषयितुम् । प्रत्यागतो नरेन्द्रं भणति च कान्तां मम लभस्व ॥१७॥

नरपत्याज्ञया ततः पुरुषैर्गलग्रहप्रहारैः । निष्काषितः पुराद्भ्रमति महीं दुःखितो विमनाः ॥१८॥

हिण्डमान एव पृथिव्यां साधुं दृष्ट्वाऽऽर्यगुप्तं स । प्रणमति कृताञ्जलिपुटः श्रृणोति च धर्मं जिनोपदिष्टम् ॥१९॥

श्रुत्वा धर्मनिकषं वैराग्योत्पन्नजातसंवेगः । गृह्णाति सङ्गविमुक्तां प्रव्रज्यां गुरुसकाशे ॥२०॥

ग्रीष्म आतापयंस्तिष्ठति शिशिरे निशास्वेकान्ते । वर्षारात्रमपि मुनिर्गमयति सदा पर्वतगुहास्थः ॥२१॥

घोरं तपोविधानं द्वादशरुपं मुनिः प्रकुर्वन् । शीताऽऽतपदुःखितोऽपि च कान्तामोहं न त्यजति ॥२२॥

तावदास्ता संबन्ध एषोऽन्यं श्रृणु मगधपते ! । अन्तर्योगनिबद्धा स्थिता कथा रत्नमालेव ॥२३॥

---

१. वरतणुं-प्रत्य० । २. कत्थइ य-मु० । ३. कंतं-प्रत्य० । ४. कंतं-प्रत्य० । ५. वसइ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणरण्णे रज्जत्थे, अह कुण्डलमण्डिओ महासुहडो । दुग्गमपुरट्ठिओ सो, देसं सव्वं विणासेइ ॥२४॥
अणरण्णसन्तिए जे, सुहडे मारेइ ते बलुम्मत्तो । निद्दय-निराणुकम्पो, देसविणासं कुणइ सव्वं ॥२५॥
घेत्तूणमचायन्तो, अणरण्णो तं अवट्ठियं विसमे । रत्तिंदिया य निद्दं, न लहइ चिन्तापरिग्गहिओ ॥२६॥
दट्ठूण दुक्खियं तं, अणरण्णं तत्थ भणइ सामन्तो । नामेण बालचंदो, सामिय ! वयणं निसामेहि ॥२७॥
जइ बन्धिऊण समरे, इह कुण्डलमण्डियं न आणेमि । तो एव निग्गओ हं, होहामि इमा पइन्ना मे ॥२८॥
गन्तूण तेण तुरियं, सहसा चउरङ्गबलसमग्गेणं । वीसत्थओ पमाई, अह कुण्डलमण्डिलो बद्धो ॥२९॥
विद्धंसेऊण पुरं, सिग्घं पडियागओ नियं ठाणं । दावेइ बालचन्दो, बद्धं सत्तुं नरिन्दस्स ॥३०॥
तो तेण सुभिच्चेणं, पुहई सत्था कया निरवसेसा । परितुट्ठो अणरण्णो, सम्माणं से तो कुणइ ॥३१॥
मुक्को य बन्धणाओ, अह कुण्डलमण्डिओ परिभमन्तो । दट्ठूण मुणिवरिन्दं, कयविणओ पुच्छे धम्मं ॥३२॥

मांसविरत्युपदेशः, मांसभक्षणे नरकवेदना वर्णनं च–

जो न कुणइ पव्वज्जं, भयवं ! गिहवासपासपडिबद्धो । सो किह संसाराओ, मुच्चिहिइ अणाइमन्ताओ ? ॥३३॥
तो भणइ मुणी धम्मो, जीवदया निग्गहो कसायाणं । एएसु चेव जीवो, मुच्चइ घणकम्मबनधाओ ॥३४॥
हिंसा पुण जीववहो, सो वि य मंसस्स कारणं हवइ । तुहमवि खायसि मंसं, कह बन्धविमोयणं कुणसि ? ॥३५॥
इह खाइऊण मंसं, जिब्भिन्दियवसगओ सरीरट्ठो । मरिऊण वच्चइ नरो, तिव्वमहावेयणे नरए ॥३६॥

अनरण्ये राज्यार्थे ऽथ कुण्डलमण्डितो महासुभटः । दुर्गमपुरस्थितः स देशं सर्वं विनश्यति ॥२४॥
अनरण्यसत्कान्यान् सुभटान् मारयति तान् बलोन्मत्तः । निर्दय-निरणुकम्पो देशविनाशं करोति सर्वम् ॥२५॥
ग्रहितुमशक्नुवननरण्यस्तमवस्थितं विषमे । रात्रिंदिवा च निद्रां न लभते चिन्तापरिगृहीतः ॥२६॥
दृष्ट्वा दुःखितं तमनरण्यं तत्र भणति सामन्तः । नाम्ना बालचद्रः स्वामिन् ! वचनं निशामय ॥२७॥
यदि बद्धवा समरे इह कुण्डलमण्डितं नानयामि । तदैवं निग्रहोऽहं भविष्यामीयं प्रतिज्ञा मे ॥२८॥
गत्वा तेन त्वरितं सहसा चतुरङ्गबलसमग्रेण । विश्वस्तः प्रमाद्यथ कुण्डलमण्डितो बद्धः ॥२९॥
विध्वस्य पुरं शीघ्रं प्रत्यागतो निजं स्थानम् । दर्शयति बालचन्द्रो बद्धं शत्रुं नरेन्द्रस्य ॥३०॥
तदा तेन सुभृत्येन पृथिवी स्वस्था कृता निरवशेषा । परितुष्टोऽनरण्यः सन्मानं तस्य तदा करोति ॥३१॥
मुक्तश्च बन्धनादथ कुण्डलमण्डितः परिभ्रमन् । दृष्ट्वा मुनिवरेन्द्रं कृतविनयः पृच्छति धर्मम् ॥३२॥

मांसविरत्युपदेशः मांसभक्षणे नरकवेदना वर्णनं च-

यो न करोति प्रव्रज्यां भगवन् ! गृहवासपाशप्रतिबद्धः । स कथं संसारान्मोक्ष्यत्यनाद्यनन्तात् ? ॥३३॥
तदा भणति मुनि र्धर्मो जीवदया-निग्रहकषायाणाम् । एतैरेव जीवो मुच्यते घनकर्मबन्धात् ॥३४॥
हिंसा पुन र्जीववधः सोऽपि च मांसस्य कारणे भवति । त्वमपि खादसि मांसं कथं बन्धविमोचनं करोसि ॥३५॥
इह खादित्वा मांसं जीव्हेन्द्रियवशगतः शरीरार्थैः । मृत्वा गच्छति नरस्तीव्रमहावेदने नरके ॥३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण्हाणेण मुण्डणेण य, दाणेणं विविहलिङ्गगहणेणं। मंसासिणस्स भणियं, नत्थि हु साहारणं किंचि ॥३७॥
संसारत्था जीवा, आसि च्चिय बन्धवा परभवेसु। खायन्तएण मंसं, ते सव्वे भक्खिया नवरं ॥३८॥
न य पायवेसु मंसं, उप्पज्जइ नेय धरणिपट्ठम्मि। वज्जेह सुक्क-सोणिय-समुब्भवं पावसंबन्धं ॥३९॥
जलयर-पक्खि-मिया वि य, हन्तूणं जीववल्लहे सत्ते। एएसु हवइ मंसं, दयावरा तं न भुञ्जन्ति ॥४०॥
धण्णेण वड्ढियं चिय, महिसीखीरेण पोसियं देहं। तह वि य खायन्ति नरा, जणणीए अत्तणो मंसं ॥४१॥
इह मन्दरहेट्ठाओ, पुढवी रयणप्पभा मुणेयव्वा। तिसु भागेसु विहत्ता, असीयं जोयणा लक्खं ॥४२॥
तत्थेव भवणवासी, देवा निवसन्ति दोसु भागेसु। तइए पुण नेरइया, हवन्ति बहुवेयणा नियमं ॥४३॥
तत्तो य सक्करा वालुया य पङ्कप्पभा महापुढवी। धूमा तमा तमतमा, इमासु नरया महाघोरा ॥४४॥
नरओ कुम्भीपाओ, वेयरणी कूडसामली हवइ। असिपत्तवणे एत्तो, तत्थेव खुरप्पधाराओ ॥४५॥
दुग्गन्धा दुप्फरिसा, ससि-सूरविवज्जिया तमब्भहिया। एएसु पावकारी, नरएसु हवन्ति नेरइया ॥४६॥
जे एत्थ जीवहया, महु-मंस-सुराइलोलुया पावा। ते हु मया परलोए, हवन्ति नरएसु नेरइया ॥४७॥
केएत्थ धगधगन्ते, नरए डज्झन्ति जलियजालोहे। छिमिछिमिछिमन्तसद्दे, रुहिरवसावट्टणारूवे ॥४८॥
नासन्ति अग्गिभीया, सुतिक्खसूईसु विद्धचलणजुया। वेयरणिजलं दट्ठुं, तिसाभिभूया अहिवडन्ति ॥४९॥
कढकढकढेन्तफरिसं, विलीणतउ-तम्ब-सीसयसरिच्छं। वस-केस-पूय-सोणिय-मीसं खारोदयं दुरभिं ॥५०॥

स्नानेन मुण्डनेन च दानेन विविधलिङ्गग्रहणेन। मांशाशिनो भणितं नास्ति हु साधारणं किञ्चित् ॥३७॥
संसारस्था जीवा आसन्नेव बान्धवाः परभवेषु। खादता मांसं ते सर्वे भक्षिता नवरम् ॥३८॥
न च पादपेषु मांसमुत्पद्यते नैव धरतिपृष्ठे। वर्जयत शुक्र-शोणित समुद्भवं पापसम्बन्धम् ॥३९॥
जलचर-पक्षि-मृगानपि च हत्वा जीववल्लभान्सत्त्वान्। एतेषु भवति मांसं दयापरास्तन्न भुञ्जते ॥४०॥
धान्येन वर्धितमेव महिषीक्षीरेण पोषितं देहम्। तथापि च खादन्ति नरा जनन्या आत्मनो मांसम् ॥४१॥
इह मन्दराधः पृथिवी रत्नप्रभा ज्ञातव्या। त्रिषु भागेषु विभक्ताऽशीति योजना लक्षम् ॥४२॥
तत्रैव भवनवासिनो देवा निवसन्ति द्वयोर्भागयोः। तृतीये पुनर्नारका भवन्ति बहुवेदना नित्यम् ॥४३॥
ततश्च शर्करा वालुका च पङ्कप्रभा महापृथिवी। धूमा तमा तमस्तमैतासु नरका महाघोराः ॥४४॥
नरकः कुम्भीपाको वैतरणी कूटशाल्मली भवति। असिपत्रवना इतस्तत्रैव क्षुरप्रधाराः ॥४५॥
दुर्गन्धा दुस्स्पर्शाः शशि-सूर्य विवर्जितास्तमोऽभ्यधिकाः। एतेषु पापकारिणो नरकेषु भवन्ति नैरयिकाः ॥४६॥
येऽत्र जीववधका मधु-मांस-सुरादिलोलुपाः पापाः। ते हु मृताः परलोके भवन्ति नरकेषु नैरयिकाः ॥४७॥
केचिद्धगधगति नरके दहन्ति ज्वलितज्वालौधे। छम-छम-छमच्छब्दे रुधिरवशावर्तनारुपे ॥४८॥
नश्यन्त्यग्निभीताः सुतीक्ष्णसूचिभि विद्धचरणयुग्माः। वैतरणिजले दृष्ट्वा तृषाभिभूता अभिपतन्ति ॥४९॥
कड-कड-कडत्स्पर्शं विलीनत्रपु-ताम्र-सीसकसदृशम्। वशा-केश-पूत-शोणित-मिश्रं क्षारोदकं दुरभिम् ॥५०॥

Jain Education International	For Personal & Private Use Only	www.jainelibrary.org

चडचडचडं त्ति घेत्तुं, खण्डन्ति य वेढियं महीवट्टे । पाइज्जन्ति रडन्ता, पाणीयं नरयपालेहिं ॥५१॥

खारोदयदद्धङ्गा, मयवेगेणं समुट्ठिया सन्ता । छायं अहिलसमाणा, असिपत्तवणं तओ जन्ति ॥५२॥

खणखणखणन्ति खग्गा, गाढं कणकणकणन्ति सत्तीओ । मडमडमडेन्ति कुन्ता, ताण सरीरे निवडमाणा ॥५३॥

कर-चरण-कण्ण-नासोट्ठ-फुप्फुसा छिन्नभिन्नसव्वङ्गो । लोलन्ति धरणिवट्टे, मेय-वसा-रुहिरविच्छड्डा ॥५४॥

खर-फरुसरज्जुबद्धा, सिग्घं आहिण्डिऊण विरडन्ता । आरुहणोरुहणाइं, कारिज्जन्ते अकयपुण्णा ॥५५॥

पीलिज्जन्ते जन्तेसु केइ कडकडकडेन्ति कावडिया । अवरे मुसुंढि-मोग्गर-चडक्कघाएसु ओसुद्धा ॥५६॥

काएसु य गिद्धेसु य, अवरे चडचडचडाखद्धङ्गा । अणुहोन्ति वेयणाओ, चिट्ठइ नरयाउयं जाव ॥५७॥

एयाणि य अन्नाणि य, दुक्खाणि निरन्तरं[1] अणुहवन्ता । अच्छन्ति दिहकालं, जेहि अधम्मो कओ पुव्विं ॥५८॥

एयं सोऊण तुमं, दुक्खं नरएसु मंससंभूयं । तम्हा वज्जेहि इमं, मंसं दोसाण आमूलं ॥५९॥

जो पुण मंसनिवित्तं, कुणइ नरो सील-दाणरहिओ वि । सो च्चिय सोग्गइगमणं, पावइ नत्थेत्थ संदेहो ॥६०॥

पञ्चाणुव्वयधारी, जो पुण तव-नियम-सीलसंपन्नो । जिणसासणाणुरत्तो, सो देवो होइ सुहनिलओ ॥६१॥

मांसविरतिफलम्—

हवइ अहिंसा मूलं, धम्मस्स जिणुत्तमेहि परिकहियं । सा पुण सुनिम्मलतरी, मंसनिवित्तीए संभवइ ॥६२॥

चटचटचटमिति गृहीत्वा खण्डयन्ति च वेष्टितं महीपृष्टे । पाय्यन्ते रटन्तो जलं नरकपालैः ॥५१॥

क्षारोदकदग्धाङ्गा मृगवेगेन समुत्थिताः सन्तः । छायामभिलषमाणा असिपत्रवनं ततो यान्ति ॥५२॥

खनखनखनन्ति खड्गा गाढं कणकणक्कणन्ति शक्तयः । मड-मडमडन्ति कुंतास्तेषां शरीरे निपतन्तः ॥५३॥

कर-चरण-कर्ण-नासौष्ट-[2]कुक्कुसाश्छिन्नभिन्नसर्वाङ्गाः । लोलन्ति धरणिपृष्ठे मेद-वसारुधिरविच्छर्दाः ॥५४॥

खर-परुषरज्जुबद्धाः शीघ्रमाहिण्डय विरटन्तः । आरोहणावरोहणादि क्रियन्ते अकृतपुण्याः ॥५५॥

पील्यन्ते यन्त्रेषु केऽपि कटकटकटदिति कार्पटिकाः । अपरे [3]मुसुंठि-मुद्गर-[4]चडक्कघातैर्विनाशिताः ॥५६॥

काकैश्च गृध्रैश्चापरे चटचटचटाकखद्धाङ्गाः । अनुभवन्ति वेदनास्तिष्ठन्ति नरकायु र्यावत् ॥५७॥

एतानि चान्यानि च दुःखानि निरन्तरमनुभवन्तः । आसते दीर्घकालं यैरधर्मः कृतः पूर्वे ॥५८॥

एवं श्रुत्वा त्वं दुःखं नरकेषु मांससंभूतम् । तस्माद्वर्जयतेदं मांसं दोषानामामूलम् ॥५९॥

यः पुन मांस निवृत्तिं करोति नरः शील-दानरहितोऽपि । स एव सुगतिगमनं प्राप्नोति नास्त्यत्र संदेहः ॥६०॥

पञ्चाणुव्रतधारी यः पुनस्तपोनियम-शील संपन्नः । जिनशासनानुरक्तः स देवो भवति सुखनिलयः ॥६१॥

मांस विरतिफलम् -

भवत्यहिंसा मूलं धर्मस्य जिनोत्तमैः परिकथितम् । सा पुनः सुनिर्मलतरी मांसनिवृत्या संभवति ॥६२॥

---

१. अणन्तरं-मु० । २. उदरवर्ती अन्त्रविशेषः । ३-४. शस्त्रविशेषः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो वि य सबर-पुलिन्दो, चण्डालो वा दयावरो निययं। महु-मंसनिवित्तीए, सो पावविवज्जिओ होइ ॥६३॥

पावेण वज्जियस्स य, देवत्तं हवइ अह नरिन्दत्तं। सम्मत्तलद्धबुद्धी, कमेण सिद्धिं पि पाविहिए ॥६४॥

एयं साहुवएसं, सोऊणं कुण्डलो य दढसत्तो। पञ्चाणुव्वसहिओ, जाओ महु-मंसविरओ य ॥६५॥

जाओ अणन्नदिट्ठी, साहू नमिऊण निग्गओ तत्तो। परिचिन्तिऊण वच्चइ, अत्थि महं माउलो नियओ ॥६६॥

तस्स पसाएण अहं, सत्तुं जिणिऊण समरमज्झम्मि। निययपुरे बलसहिओ, पुणरवि रज्जं करीहामि ॥६७॥

चिन्तेऊण पयट्टो, एगागी दक्खिणावहं तुरिओ। पन्थपरिस्समदुहिओ, मरणावत्थो तओ जाओ ॥६८॥

जम्मि समए विमुञ्चइ, जीवं इह कुण्डलो तहिं अन्ना। सग्गाउ चुया देवी, अवसाणे आउखन्धस्स ॥६९॥

जणयस्स महिलियाए, गब्भे सम्मुच्छिया विदेहाए। जीवा कम्मवसेणं, दोण्णि वि एक्कोयरम्मि ठिया ॥७०॥

एयन्तरम्मि साहू, कालं काऊण पिङ्गलो सग्गे। जाओ सुरो महप्पा, सुमरइ अन्नं तओ जम्मं ॥७१॥

अवहिविसएण मुणिउं, जणयस्स वरङ्गणाए गब्भम्मि। उववन्नो मह सत्तू, समयं अन्नेण जीवेणं ॥७२॥

सरिऊण विरहदुक्खं, सेणिय ! पुव्वाणुबन्धजोएण। वेरपडिवञ्चणट्ठे, तं गब्भं रक्खई देवो ॥७३॥

नाऊण एवमेयं, दुक्खं चिय न य परस्स कायव्वं। मा पुणरवि अहिययरं, पाविहह परम्परं दुक्खं ॥७४॥

अह सा सुहं पसूया, दुहिया पुत्तं च तत्थ वइदेही। पुव्वभवबद्धवेरो, हरइ सुरो बालयं सिग्घं ॥७५॥

चिन्तेइ तो मणेणं, एयं दढकक्खडे सिलापट्टे। पप्फोडेमि रसन्तं, अह कुण्डलमण्डियं सत्तुं ॥७६॥

योऽपि च शबर-पुलिन्द्रश्चाण्डालो वा दयापरो नित्यम्। मधुमांसनिवृत्या सः पापविवर्जितो भवति ॥६३॥

पापेन वर्जितस्य च देवत्वं भवत्यथ नरेन्द्रत्वम्। सम्यकत्वलब्धबुद्धिः क्रमेण सिद्धिमपि प्राप्स्यति ॥६४॥

एवं साधूपदेशं श्रुत्वा कुण्डलश्च दृढसत्त्वः। पञ्चाणुव्रतसहितो जातो मधुमांसविरतश्च ॥६५॥

जातोऽनन्यदृष्टी साधुं नत्वा निर्गतस्ततः। परिचिन्त्य व्रजत्यस्ति मम मातुलो निजकः ॥६६॥

तस्य प्रसादेनाहं शत्रुं जित्वा समरमध्ये। निजपुरे बलसहितः पुनरपि राज्यं करिष्यामि ॥६७॥

चिन्तयित्वा प्रवृत्त एकाकी दक्षिणापथं त्वरितः। पथपरिश्रमदुःखितो मरणावस्थस्ततो जातः ॥६८॥

यस्मिन्समये विमुचति जीवमिह कुण्डलो तत्रान्या। स्वर्गाच्च्युतादेव्यवसान आयुस्स्कन्धस्य ॥६९॥

जनकस्य महिलाया गर्भे समुच्छितौ विदेहायाः। जीवौ कर्मवशेन द्वावप्येकोदरे स्थितौ ॥७०॥

एतदन्तरे साधुःकालं कृत्वा पिङ्गलः स्वर्गे। जातः सुरो महात्मा स्मरत्यन्यं ततो जन्म ॥७१॥

अवधिविषयेन ज्ञात्वा जनकस्य वराङ्गनाया गर्भे। उत्पन्नो मम शत्रुः सकमन्येन जीवेन ॥७२॥

स्मृत्वा विरहदुःखं श्रेणिक ! पूर्वानुबन्धयोगेन। वेरप्रतिकारार्थे तद्गर्भं रक्षति देवः ॥७३॥

ज्ञात्वैवमेतद्दुःखमेव न च परस्य कर्तव्यम्। मा पुनरप्यधिकतरं प्राप्स्यसि परम्परं दुःखम् ॥७४॥

अथ सा सुखं प्रसूता दुहिता पुत्रं च तत्र वैदेहि। पूर्वभव बद्धवैरो हरति सुरो बालकं शीघ्रम् ॥७५॥

चिन्तयति तदा मनसैनं दृढकर्कशे शिलापट्टे। प्रस्फोटयामि रसन्नथ कुण्डलमण्डितं शत्रुम् ॥७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुणरवि चिन्तेइ सुरो, संसारनिबन्धणं ववसियं मे। कम्मं बहुदुक्खयरं, एयं बालं वहन्तेणं ॥७७॥
साहुपसाएण मए, जिणधम्मस्स य पसङ्गजोगणं। लद्धं मे देवत्तं, पावं न करेमि जाणन्तो ॥७८॥
परिचिन्तिऊण एयं, कुण्डल-वरहारभूसियं काउं। देवो मुञ्चइ बालं, उज्जाणे पत्तलच्छाए ॥७९॥
ताव य सेज्जासु ठिओ, चन्दगई खेयरो निसासमए। [1]चुंपालएण पेच्छइ, निवडन्तं रयणपज्जलियं ॥८०॥
किं एस हुप्पाओ, अहवा सोदामणीए खण्डो व्व ?। सवियक्कमणो गन्तुं, पेच्छइ बालं महियलत्थं ॥८१॥
घेत्तूण बालयं तं, अंसुमईए सुहं पसुत्ताए। सुकुमाल-कोमलङ्गं, जङ्घुद्देसम्मि संठवइ ॥८२॥
पडिबोहिऊण साहइ, सुन्दरि ! पुत्तं तुमं पसूया सि। तीए वि य सो भणिओ, किं वञ्झा पसवई नाह ! ॥८३॥
काऊण य अइहासं, सव्वं साहेइ बालसंबन्धं। तुज्झ इमो पसयच्छी !, होही पुत्तो अपुत्ताए ॥८४॥
भणिऊण एवमेयं, देवी [2]सूयाहरं समल्लीणा। तत्तो पहायसमए, लोयस्स पयासिओ पुत्तो ॥८५॥
जम्मूसवो महन्तो, तस्स कओ चक्कवालनयरम्मि। जह बन्धवा समत्था, लोगो वि य विम्हयं पत्तो ॥८६॥
कुण्डलमाणिक्कसमुज्जलेहि किरणेहि दित्तसव्वङ्गो। तो से गुणाणुरूवं, कयं च भामण्डलो नामं ॥८७॥
देहसुहलालणट्ठे, धाईण समप्पिओ तओ बालो। एत्तो सुणेहि सेणिय !, पुत्तपलावं विदेहाए ॥८८॥
हा पुत्तय ! केण हिओ, मज्झ अपुण्णाए पुव्ववेरीणं ?। दावेऊण वरनिहिं, अच्छीणि पुणो अवहियाणि ॥८९॥
वरकमलकोमलतणू, बालो अविकारिणो अबुद्धीओ। पावेण केण हरिओ, अज्ज महं निरणुकम्पेणं ? ॥९०॥
नूणं कओ विओगो, कस्स वि बालस्स अन्नजम्मम्मि। तस्सेयं कम्मफलं, न बीजरहियं हवइ कज्जं ॥९१॥

पुनरपि चिन्तयति सुरः संसारनिबन्धनं व्यवसितं मया। कर्मबहुदुःखतरमेनं बालं वहता ॥७७॥
साधुप्रसादेन मया जिनधर्मस्य च प्रसङ्गयोगेन। लब्धं मया देवत्वं पापं न करोमि जानन् ॥७८॥
परिचिन्त्यैतत्कुण्डल-वरहारभूषितं कृत्वा। देवो मुञ्चति बालमुद्याने पत्रच्छाये ॥७९॥
तावच्च शय्यासु स्थितश्चन्द्रगतिः खेचरो निशासमये। गवाक्षेन पश्यति निपतन्तं रत्नप्रज्वलितम् ॥८०॥
किमेव महोत्पादोऽथवा सौदमिन्या खण्डो वा ?। सविकल्पमना गत्वा पश्यति बालं महीतलस्थम् ॥८१॥
गृहीत्वा बालकं तमशुमत्यां सुखं प्रसुप्तायाः। सुकुमालकोमलाङ्गं जङ्घोद्देशे संस्थापयति ॥८२॥
प्रतिबोधय्य कथयति सुन्दरि ! पुत्रं त्वं प्रसूताऽसि। तयाऽपि स भणितः किं वन्ध्या प्रसवति नाथ ! ॥८३॥
कृत्वा चातिहास्यं सर्वं कथयति बालसंबन्धम्। तवायम् प्रसन्नाक्षि ! भविष्यति पुत्रोऽपुत्र्यायाः ॥८४॥
भणित्वेवमेतद्देवी प्रसूतिगृहं समालीना। ततः प्रभातसमये लोकस्य प्रकाशितः पुत्रः ॥८५॥
जन्मोत्सवो महांस्तस्य कृतश्चक्रवालनगरे। यथा बान्धवाः समस्ता लोकोऽपि च विस्मयं प्राप्तः ॥८६॥
कुण्डलमाणिक्य समुज्वलैः किरणै र्दिप्तसर्वाङ्गः। तदा तस्य गुणानुरूपं कृतं च भामण्डलो नाम ॥८७॥
देहसुखलालनार्थे धात्रीं समर्पितस्ततो बालः। इतः श्रुणु श्रेणिक ! पुत्रप्रलापं विदेहायाः ॥८८॥
हा पुत्र ! केन हृतो ममापुण्ययाः पूर्ववैरिणा ?। दर्शयित्वा वरनिधिमक्षिणी पुनरपहृते ॥८९॥
वरकमलकोमलतनु र्बालोऽविकार्यबुद्धिकः। पापेन केन हृतोऽद्य मम निरनुकम्पेन ? ॥९०॥
नूनं कृतो वियोगः कस्यापि बालस्यान्यजन्मनि। तस्येदं कर्मफलं न बीजरहितं भवति कार्यम् ॥९१॥

---

१. गवाक्षेण। २. प्रसूतिगृहम्।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवं परिदेवन्ती, जणओ परिसंथवेइ वइदेहिं। मा रोयसु अणुदियहं, पुव्वकयं पावई जीवो ॥९२॥
छड्डुसु सोगसमूहं, लेहं पेसेमि दसरहनिवस्स। सो हं च बालयं तं, अज्जपभूई गवेसामो ॥९३॥
संथाविऊण कन्तं, अणरण्णसुयस्स पेसिओ लेहो। तं सोऊण दसरहो, बालस्स गवेसणं कुणइ ॥९४॥
सिग्घं चारियपुरिसा, जणएण विसज्जिया समन्तेण। बालं गवेसिऊणं, निययपुरिं आगया सव्वे ॥९५॥
साहन्ति कयपणामा, सामि ! न दिट्ठो महिं भमन्तेहिं। केण वि गयणेण हिओ, सामिय ! दिव्वेण पुरिसेणं ॥९६॥
दुसहं हवइ समक्खं, दुक्खं चिय उब्भवे जणवयस्स। गयवेयणं तु पच्छा, जणम्मि एसा सुई भमइ ॥९७॥

सीता—

एवं अणुक्कमेणं, जोव्वण-लायण्ण-कन्तिपडिपुण्णा। सोयस्स मोयणट्ठं, नज्जइ संवड्ढिया सोया ॥९८॥
वरकमलपत्तनयणा, कोमुइरयणियरसरिसमुहसोहा। कुन्ददलसरिसदसणा, दाडिमफुल्लाहरच्छाया ॥९९॥
कोमलबाहालइया, रत्तासोउज्जलाभकरजुयला। करयलसुगेज्झमज्झा, वित्थिण्णनियम्बकरभोरू ॥१००॥
रत्तुप्पलसमचलणा, नहमणिविच्छुरियरकिरिणसंघाया। ओहासिउं व नज्जइ, रयणियरं चेव कन्तीए ॥१०१॥
एरिसरूवावयवा, लक्खणसंपुण्णजोव्वणगुणोहा। जणएण पसन्नेणं, रामस्स निवेइया सीया ॥१०२॥

सुरवरमहिला वा रूव-लावण्णजुत्ता, रमइ परिमिया सा सत्तकन्नासतेहिं।
जणयनरवरिन्दो रामदेवस्स भज्जं, विमलगुणसरंतो तं निरूवेइ सीयं ॥१०३॥

॥ इय पउमचरिए सीया-भामण्डलउप्पत्तिविहाणो नाम छव्वीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

एवं परिदेवन्तीं जनकः परिसंस्थापयति वैदेहीम्। मा रोदीरनुदिवसं पूर्वकृतं प्राप्नोति जीवः ॥९२॥
मुञ्च शोकसमूहं लेखं प्रेषयामि दशरथनृपस्य। सोऽहं च बालकं तमद्यप्रभृति गवेषयामि ॥९३॥
संस्थाप्य कान्तामनरण्यसुतस्य प्रेषितो लेखः। तच्छ्रुत्वा दशरथो बालस्य गवेषणां करोति ॥९४॥
शीघ्रं चरपुरुषा जनकेन विसर्जिताः समन्ततः। बालं गवेषयित्वा निजपुरिमागताः सर्वे ॥९५॥
कथयन्ति कृतप्रणामाः स्वामिन्न दृष्टो महीं भ्रमद्भिः। केनाऽपि गगनेन हृतः स्वामिन्! दिव्येन पुरुषेण ॥९६॥
दुःसहं भवति समक्षं दुःखमेवोद्भवं जनपदस्य। गतवेदनं तु पश्चाज्जने एषा श्रुतिर्भ्रमति ॥९७॥

सीता -

एवमनुक्रमेण यौवनलावण्यकान्ति परिपूर्णा। शोकस्य मोचनार्थं ज्ञायते संवर्धिता सीता ॥९८॥
वरकमलपत्रनयना कौमुदीरजनिकरसदृशमुखशोभा। कुन्ददलसदृशदशना दाडिमपुष्पाधरच्छाया ॥९९॥
कोमलबाहालतिका, रक्ताशोकोज्ज्वलाभकरयुगला। करतलसुग्राह्यमध्या विस्तीर्णनितम्बकरभोरूः ॥१००॥
रक्तोत्पलसमचरणा नभोमणि विच्छूरितकिरणसंघाता। अवभाषितुमिव ज्ञायते रजनिकरमिव कान्त्या ॥१०१॥
एतादृशरूपावयवा लक्षणसंपूर्णयौवनगुणौघा। जनकेन प्रसन्नेन रामस्य निवेदिता सीता ॥१०२॥

सुरवरमहिलेव रुपलावण्ययुक्ता रमते परिमिता सा सप्तकन्याशतैः।
जनकनरवरेन्द्रो रामदेवस्य भार्यां विमलगुणस्मरंस्तां निरुपयति सीताम् ॥१०३॥

॥ इति पद्मचरित्रे सीताभामण्डलोत्पत्तिविधानो नाम षड्विंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२७. रामकयमेच्छपराजयस्स कित्तणं

तो मगहनराहिवई, विम्हियहियओ मुणिं पणमिऊणं । पुच्छइ अणन्नहियओ, कहेहि रामस्स संबन्धं ॥१॥

रामस्स किं व दिट्ठं, माहप्पं जणयनरवरिन्देणं । रूव-गुण-जोव्वणधरी, निरूविया जेण सा सीया ? ॥२॥

अह भणइ गणाहिवई, सेणिय ! निसुणेहि जणयनरवइणा । कज्जेण जेण दुहिया, रामस्स निरूविया सीया ॥३॥

वेयड्ढदाहिणेणं, कइलासगिरिस्स उत्तरदिसाए । देसा हवन्ति बहवे, गामाऽऽगर-नगरपरिपुण्णा ॥४॥

तत्थेव अत्थि देसो, एक्को च्चिय अद्धबब्बरो नामं । निस्संजम-निस्सीलो, बहुमेच्छसमाउलो घोरो ॥५॥

तत्थ य मऊरमाले, नयरे परिवसइ मेच्छजणपउरे । नामेण आयरङ्गो, राया जमसरिसदढसत्तो ॥६॥

कम्बोय-सुय-कवोया, देसा अन्ने य सबरजणपउरा । एएसु जे नरिन्दा, ते पणया आयरङ्गस्स ॥७॥

रामस्य अनार्यैः सह युद्धम्—

अह अन्नया कयाई, देसं जणयस्स बब्बरो राया । उव्वासिउं पयत्तो, चिलायसेन्नेण परिपुण्णो ॥८॥

सोऊण जणयराया, देसं उव्वासियं अणज्जेहिं । पेसेइ तुरियचवलं, पुरिसं चिय दसरहनिवस्स ॥९॥

गन्तूण पणमिऊण य, सव्वं मेच्छागमं परिकहेइ । देसविणासं च पुणो, जं चिय जणएण संदिट्ठं ॥१०॥

---

२७. रामकृतम्लेच्छपराजयस्य कीर्तनम् -

तदा मगधाधिपति र्विस्मितहृदयो मुनिं प्रणम्य । पृच्छत्यनन्यहृदयः कथय रामस्य सम्बन्धम् ॥१॥

रामस्य किं वा दृष्टं माहात्म्यं जनकनरवरेन्द्रेण । रुपगुणयौवनधारी निरुपिता येन सा सीता ? ॥२॥

अथ भणति गणाधिपतिः श्रेणिक ! निश्रृणु जनकनरपतिना । कार्येण येन दुहिता रामस्य निरुपिता सीता ॥३॥

वैताढ्यदक्षिणेन कैलासगिरेरुत्तरदिशि । देशा भवन्ति बहवो ग्रामाऽऽकरनगरपरिपूर्णाः ॥४॥

तत्रैवास्ति देश एकैवादर्धबर्बरो नाम । निस्संयम-निश्शीलो बहुम्लेच्छसमाकुलः घोरः ॥५॥

तत्र च मयूरमाले नगरे परिवसति म्लेच्छजनप्रचूरे । नाम्नाऽऽयरंगो राजा यमसदृशदृढसत्त्वः ॥६॥

कम्बोज-शुक-कपोता देशा अन्याश्च शबरजनप्रचुराः । एतेषु ये नरेन्द्रास्ते प्रणता आयरंगस्य ॥७॥

रामस्यानार्यैः सह युद्धम् -

अथान्यदा कदाचिद्देशं जनकस्य बर्बरो राजा । उद्वासितुं प्रवृत्त श्चिलातसैन्येन परिपूर्णः ॥८॥

श्रुत्वा जनकराजा देशमुद्वासितमनार्यैः । प्रेषयति त्वरितचपलं पुरुषमेव दशरथनृपस्य ॥९॥

गत्वा प्रणम्य च सर्वं म्लेच्छागमं परिकथयति । देशविनाशं च पुनर्यदैव जनकेन संदिष्टम् ॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामिय ! विन्नवइ तुमं, जणओ जणवच्छलो कयपणामो । मह अद्धबब्बरेहिं, सव्वो उव्वासिओ विसओ ॥११॥

[1]सावय समणा य बहू, विद्धत्थाणि य जिणिन्दभवणाणि । एयनिमित्तेण पहू !, एह लहुं रक्खणट्ठाए ॥१२॥

भणिऊण एवमेयं, रामं सद्दाविऊण नरवसभो । सव्वबलसमुदएणं, रज्जं दाउं समाढत्तो ॥१३॥

चामीयरकलसकरा, सूरा पडुपडह-बन्दिघोसेणं । अहिसेयकारणट्ठे, रामस्स अवट्ठिया पुरओ ॥१४॥

दट्ठूण एरिसं सो, आडोवं भणइ राहवो वयणं । किंकारणमिह सुहडा, कलसविहत्था समल्लीणा ? ॥१५॥

तो दसरहो पवुत्तो, पुत्तय ! मेच्छाण आगयं सेन्नं । पुहइं पालेहि तुमं, तस्साहं अहिमुहो जामि ॥१६॥

भणइ विहसन्तवयणो, रामो किं ताय ! पसुसरिच्छाणं । उवरिं जासि महाजस !, पुत्तेण मए सहीणेणं ? ॥१७॥

सोऊण वयणमेयं, हरिसियहियओ नराहिवो भणइ । बालो सि तुमं पुत्तय ! कह मेच्छबलं रणे जिणासि ? ॥१८॥

भणइ पउमो नराहिव !, थोवो च्चिय हुयवहो वणं बहुयं । दहइ य खणेण सव्वं, किं व बहुत्तेण निव्वडई?। ॥१९॥

रामस्स वयणनिहसं, सोऊणं नरवई भणइ एवं । संगामे सुहडजसं, पुत्तय ! पावन्तओ होहि ॥२०॥

काऊण पिउपणामं, दो वि कुमारा महन्तबलसहिया । अह निग्गया पुराओ, जयसद्दुग्घुट्ठतूररवा ॥२१॥

ताव च्चिय पढमयरं, विणिग्गयाणं तु जणयकणयाणं । दो चेव जोयणाइं, उभयबलाणऽन्तरं जायं ॥२२॥

रिवुबलसद्दुक्करिसं, असहन्ता जणयसन्तिया सुहडा । पविसन्ति मेच्छसेन्नं, गह व्व मेहाण संघायं ॥२३॥

स्वामिन् ! विज्ञापयति त्वां जनको जनवत्सलः कृतप्रणामः । ममादर्धबर्बरैः सर्व उद्वासितो विषयः ॥११॥

श्रावका श्रमणाश्च बहवो विध्वस्तानि च जिनेन्द्रभवानि । एतन्निमित्तेन प्रभो ! एत लघुं रक्षणार्थे ॥१२॥

भणित्वेवमेतद्रामं शब्दायित्वा नरवृषभः । सर्वबलसमुदायेन राज्यं दातुं समारब्धः ॥१३॥

चामीकरकलशकराः शूराः पटुपटह-बन्दिघोषेण । अभिषेककारणार्थे रामस्यावस्थिताः पुरतः ॥१४॥

दृष्ट्वेतादृशं स आटोपं भणति राघवो वचनम् । किंकारणमिह सुभटाः कलशविहस्ताः समालीनाः ? ॥१५॥

ततो दशरथः प्रोक्तः पुत्र ! म्लेच्छानामागतं सैन्यम् । पृथिवीं पालय त्वं तस्याहमभिमुखो यामि ॥१६॥

भणति विहसद्वदनो रामः किं तात ! पशुसदृशानाम् । उपरि यासि महायशः ! पुत्रेण मया स्वाधीनेन ? ॥१७॥

श्रुत्वा वचनमेतद्धर्षितहृदयो नराधिपो भणति । बालोऽसि त्वं पुत्र ! कथं म्लेच्छबलं रणे जयसि ॥१८॥

भणति पद्मो नराधिप ! स्तोक एव हुतवहो वनं बहुकम् । दहति च क्षणेन सर्वं किं वा बहुत्वेन निवर्तते ॥१९॥

रामस्य वचननिकषं श्रुत्वा नरपति र्भणत्येवम् । संग्रामे सुभटयशः प्राप्तवान्भव ॥२०॥

कृत्वा पितृप्रणामं द्वावपि कुमारौ महद्बलसहितौ । अथ निर्गतौ पुराज्जयशब्दोघृष्टतूर्यरवौ ॥२१॥

तावदेव प्रथमतरं विनिर्गतानां तु जनककनकानाम् । द्वावेव योजनावुभयबलानामन्तरं जातम् ॥२२॥

रिपुबलशब्दोत्कर्षमसहमाना जनकसत्काः सुभटाः । प्रविशन्ति म्लेच्छसैन्यं ग्रह इव मेघानां संघातम् ॥२३॥

---

१. तावससमणगणाण य बहूविहाण य जिणिन्दभवणाण-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेच्छाण आरियाण य, संगामो दारुणो समावडिओ । अन्नोन्नसत्थघत्तिय-संघट्टुट्ठेन्तजालोहो ॥२४॥
अन्तरिओ च्चिय कणओ, मेच्छेहिं बहलतमसरिच्छेहिं । ताहे जणयनरिन्दो, वाहेइ समन्तसेन्नेणं ॥२५॥
तो बब्बरेहि जणओ, भग्गेहि पुणो पुणो समन्तेहिं । परिवेढिओ खणेणं, सूरो इव मेहनिवहेणं ॥२६॥
एयन्तरम्मि रामो, लक्खणसहिओ बलेण परिपुण्णो । संपत्तो च्चिय सहसा, तं मेच्छबलं अइमहन्तं ॥२७॥
आसासिऊण जणयं, रामो तं मेच्छसुहडसंघायं । पुणसरं पिव हत्थी, कुणइ च्चिय विहयविद्धत्थं ॥२८॥
तह लक्खणो वि बाणे, मुञ्चइ उवरिं अणारियभडाणं । नज्जइ य सायरवरे, वरिसइ मेहो सयरकाले ॥२९॥
निद्दयपहरुम्हवियं, भग्ग चिय मेच्छसाहणं समरे ! तह वि य सोमित्तिसुओ, धावइ मग्गेण बलसहिओ ॥३०॥
दट्ठूण नियससेन्नं, भग्गं चिय लक्खणेण परहुत्तं । सयमेव आयरङ्गो, सुहडेहि समं समुट्ठेइ ॥३१॥
केएत्थ कज्जलाभा, सुयपिच्छसमप्पभा तहिं अन्ने । अवरे तम्बयवण्णा, वामणदेहा चिबिडनासा ॥३२॥
वक्कलपत्तनियच्छा, मणिमयकडिसुत्तयाभरणदेहा । धाऊकयङ्गरागा, विरइसिरिमञ्जरीकुसुमा ॥३३॥
एवंविहेहि समयं, जोहेहिं आयरङ्गनरवसहो । अह लक्खणस्स पुरओ, उवट्ठिओ [1]दप्पियामरिसो ॥३४॥
गय-वसह-सीहचिन्धा, सर-सत्ति-करालकुन्तगहियकरा । जुज्झन्ति मेच्छसुहडा, खोभेन्ता अज्जवबलोहं ॥३५॥
अह लक्खणस्स चावं, दुहाकयं आयरङ्गनरवइणा । जाव य गेण्हइ खग्गं, ताव य विरहो कओ सिग्घं ॥३६॥

म्लेच्छानामार्याणां च संग्रामो दारुणः समापतितः । अन्योन्यशस्त्रगृहीतसंघर्षोत्थितजालौधः ॥२४॥
अन्तरित एव जनको म्लेच्छै र्बहलतमः सदृशैः । तदा जनकनरेन्द्रो वाह्यति सामन्तसैन्येन ॥२५॥
ततो बर्बरै र्जनको भग्नैः पुनः पुनः सामन्तैः । परिवेष्टितः क्षणेन सूर्य इव मेघनिवहेन ॥२६॥
अत्रान्तरे रामो लक्ष्मणसहितो बलेन परिपूर्णः । संप्राप्त एव सहसा तन्म्लेच्छबलमतिमहत् ॥२७॥
आश्वास्य जनकं रामस्तं म्लेच्छसुभटसंघातम् । पद्मसर इव हस्ती करोत्येव विहत-विध्वस्तम् ॥२८॥
तदा लक्ष्मणोऽपि बाणान्मुञ्चत्युपर्यनार्यभटानाम् । ज्ञायते च सागरवरे वर्षति मेघः शरत्काले ॥२९॥
निर्दयप्रहरोष्मापितं भग्नमेव म्लेच्छसाधनं समरे । तथापि च सौमित्रिसुतो धावति मार्गेणबलसहितः ॥३०॥
दृष्ट्वा निजसैन्यं भग्नमेव लक्ष्मणेन पराभूतम् । स्वयमेवायारङ्गः सुभटैः समं समुत्तिष्ठति ॥३१॥
केचित्कज्जलाभा शुकपक्षसमप्रभा तथान्ये । अपरे ताम्रवर्णावामनदेहा श्चिपिटनासाः ॥३२॥
वल्कलपत्रनेपथ्या मणिमयकटिसूत्राभरणदेहाः । धातुकृताङ्गरागा विरचितश्रीमञ्जरिकुसुमाः ॥२३॥
एवंविधैः समं योधैरायरंगनरवृषभः । अथ लक्ष्मणस्य पुरत उपस्थितो दर्पितामर्षः ॥३४॥
गज-वृषभ-सिंहचिन्हाः शरशक्ति-करालकुन्तगृहीतकराः । युध्यन्ते म्लेच्छसुभटाः क्षोभयन्त आर्यबलौघम् ॥३५॥
अथ लक्ष्मणस्य चापं द्विधा कृतमायरङ्गनरपतिना । यावच्च गृह्णाति खड्गं तावच्च विरथः कृतः शीघ्रम् ॥३६॥

---

१. वड्डियामरिसो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण लक्खणं सो, विरहं सयमेव उट्ठिओ रामो । सर-सत्ति-चक्क-मोग्गर-सएसु सेन्नं विवाएन्तो ॥३७॥

रामेण आयरङ्गो, गरुयपहाराहओ कओ विमुहो । नस्सइ विभग्गमाणो, दस वि दिसाओ पलोएन्तो ॥३८॥

हय-विहय-विप्परद्धं, सेन्नं काऊण राहवो समरे । मग्गं अमुञ्चमाणो, नियत्तिओ लक्खणेण तओ ॥३९॥

जाओ य महाणन्दो, पुहई आवासिया भयविमुक्का । वीसज्जिओ य रामो, लद्धजसो पत्थिओ [1] नयरिं ॥४०॥

तं पुरिसयारनिहसं, दट्ठूण नराहिवेण तुट्ठेणं । रामस्स निययधूया, जणएण निरूविया सीया ॥४१॥

एवं मणुस्सो सुकएण पुव्वं, जयं रणे पाइ वीरसत्तो ।
विक्खायकित्ती भुवणे पसिद्धो, ससि व्व रामो विमलप्पभावो ॥४२॥

॥ इय पउमचरिए मेच्छपराजयकित्तणो नाम सत्तावीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

दृष्ट्वा लक्ष्मणं स विरथं स्वयमेवोत्थितो रामः । शर-शक्ति-चक्र-मुद्गर शतैः सैन्यं व्यापादयन् ॥३७॥

रामेणाऽऽयरङ्गो गुरुकप्रहाराहतः कृतो विमुखः । नश्यति विभज्यमानो दशापि दिशः प्रलोकमाणः ॥३८॥

हत-वित-विपीडितं सैन्यं कृत्वा राधवः समरे । मार्गममुञ्चन् निवर्त्तितो लक्ष्मणेन ततः ॥३९॥

जातश्च महानन्दः पृथिव्यावासिता भयविमुक्ता । विसर्जितश्च रामो लब्धयशाः प्रस्थितो नगरीम् ॥४०॥

तं पौरुषकारनिकसं दृष्टवा नराधिपेन तुष्टेन । रामस्य निजदुहिता जनकेन निरुपिता सीता ॥४१॥

एवं मनुष्यः सुकृतेन पूर्वं जयं रणे प्राप्नोति वीरसत्त्वः ।
विख्यातकीर्त्ति र्भुवने प्रसिद्धः शशीव रामो विमलप्रभावः ॥४२॥

॥ इति पद्मचरित्रे म्लेच्छपराजयकीर्त्तनो नाम सप्तविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. नयरं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२८. राम-लक्खण-धणुरयणलाभविहाणं

अह अन्नया कयाई, पुहइ भमन्तेण नारएण सुया । रामस्स पवररूवा, जणएण निरूविया सीया ॥१॥
ताहे नहङ्गणेणं, उप्पइउं नारओ गओ मिहिलं । कन्नालोयणहियओ, सीयाभवणं समल्लीणो ॥२॥
दट्ठूण पविसरन्तं, दीहजडामउडभासुरं सहसा । भयविहलवेविरङ्गी, सीया भवणोयरं लीणा ॥३॥
अणुमग्गेण रियन्तो, रुद्धो नारीहिं दारवालीहिं । कलहन्तो ताहि समं, गहिओ सो रायपुरिसेहिं ॥४॥
जाव य भणन्ति पुरिसा, को एसो ? हणइ मुट्ठिपहरेहिं । ताव भउव्विग्गमणो, उप्पइउं नारओ नट्ठो ॥५॥
कइलासपव्वओवरि, आसत्थो चिन्तिऊण आढत्तो । अह तं पोढकुमारी, वसणसमुद्दे निवाडेमि ॥६॥
परिचिन्तिऊण एवं, सिग्घं रहणेउरं गओ नयरं । ताहे उज्जाणहरे, सीयारूवं पडे लिहइ ॥७॥
ताव च्चिय चन्दगई, कन्नारूवं पडे समालिहियं । दट्ठूण तं विसण्णो, सहसा भामण्डलकुमारो ॥९॥
मुञ्चइ दीहुस्सासे, सोयइ पलवइ य अन्नमन्नाइं । रत्तिं दिया य निद्दं, न लहइ चिन्तापरिग्गहिओ ॥१०॥
सुसुयन्धगच्छमल्लाइयाइँ, आहार-मज्जणविहीओ । नेच्छइ अणन्नहियओ, परिहायइ अङ्गमङ्गेसु ॥११॥
नाऊण तं कुमारं, मयणावत्थं तु नारओ ताहे । अहदेइ दरिसणं चिय, वीसत्थो तस्स गन्तूणं ॥१२॥

---

२८. रामलक्ष्मणधनूरत्नलाभ विधानम् -

अथान्यदाकदाचित्पृथिवीं भ्रमता नारदेन श्रुता । रामस्य प्रवररुपा जनकेन निरुपिता सीता ॥१॥
तदा नभोऽङ्गणेनोत्पत्य नारदो गतो मिथिलाम् । कन्याऽऽलोकनहृदयः सीताभवनं समालीनः ॥२॥
दृष्ट्वा प्रविशन्तं दीर्घजटामुकुटभासुरं सहसा । भयविह्वलवेपिताङ्गी सीता भवनोदरं लीना ॥३॥
अनुमार्गेण यान् रुद्धो नारीभि र्द्वारपालीभिः । कलहयन् ताभिःसमं गृहीतः स राजपुरुषैः ॥४॥
यावच्च भणन्ति पुरुषाः क एषः ? घ्नत मुष्टिप्रहारैः । तावद्भयोद्विग्नमना उत्पत्य नारदो नष्टः ॥५॥
कैलासपर्वतोपर्याश्वस्तश्चिन्तयितुमारब्धः । अहं तां प्रौढकुमारीं व्यसनसमुद्रे निपातयामि ॥६॥
परिचिन्त्यैवं शीघ्रं रथनूपुरं गतो नगरम् । तदोद्यानगृहे सीतारुपं पटे लिखति ॥७॥
तावदेव चन्द्रगतिः समकं भामण्डलेन नगरात् । अथ निर्गतो महात्मा क्रीडनहेतुं तदुद्यानम् ॥८॥
तत्रैव काननगृहे कन्यारूपं पटे समालिखितम् । दृष्ट्वा तद्विषण्णः सहसा भामण्डलकुमारः ॥९॥
मुञ्चति दीर्घोच्छ्वासान् शोचति प्रलपति च । अन्यमन्यानि रात्रिंदिवा च निद्रां न लभते चिन्तापरिगृहीतः ॥१०॥
सुसुगन्धगन्धमाल्यादिन्याहारमज्जनविधीन् । नेच्छत्यन्यहृदयः परिहिणोतित्यङ्गमङ्गेषु ॥११॥
ज्ञात्वा तं कुमारं मदनावस्थं तु नारदस्तदा । अथ ददाति दर्शनमेव विश्वस्तस्तत्र गत्वा ॥१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भामण्डलेण दिट्ठो, तुरियं अब्भुट्ठिओ पणमिऊणं । दिन्नासणोवविट्ठो, भणिओ य मुणी ! निसामेहि ॥१३॥

केण वि उज्जाणहरे, आलिहिया बालिया मणभिरामा । जइ जाणसि भूयत्थं, साहसु कस्सेरिसा धूया ? ॥१४॥

जं एव पुच्छिओ सो, भणइ तओ नारओ पसंसन्तो । अत्थि मिहिलाए राया, जणओ सो कन्दकेउसुओ ॥१५॥

तस्स महिला विदेहा, तीए दुहिया इमा पवरकन्ना । जोव्वणगुणाणुरूवा, सीया नामेण विक्खाया ॥१६॥

अहवा किं परितुट्ठो, पडिरूवं पेच्छिऊण आलेक्खे ? । जे तीए विब्भमगुणा, ते च्चिय को वण्णिउं तरइ ? ॥१७॥

एवं कहिऊण गओ, जहिच्छियं नारओ अइतुरन्तो । भामण्डलो वि दियहा[1], वम्महसरसल्लिओ गमइ ॥१८॥

जइ तं कन्नारयणं, न लहामि कईवएहि दिवसेहिं । तो न य जीवामि फुडं, मयणभुयङ्गेण दट्ठो हं ॥१९॥

सीयारूवविणडियं, पुत्तं नाऊण तत्थ चन्दगई । भामण्डलस्स पासं, समयं कन्ताए संपत्तो ॥२०॥

भणइ तओ चन्दगई, पुत्तय ! मा एव दुक्खिओ होहि । कन्ना वरेमि गन्तुं, जा तुज्झ अवट्ठिया हियए ॥२१॥

संथाविऊण पुत्तं, चन्दगई, भणइ अत्तणो महिलं । विज्जाहर-मणुयाणं, कह संबन्धो इमो होइ ॥२२॥

भूमीगोयरनिलयं, अम्हं न हि जुज्जए तहि गन्तुं । अहवा तेण न दिन्ना, का वयणसिरी तया अम्हं ? ॥२३॥

तम्हा अकालहीणं, कंचि उवायं करेमि भद्दे ! हं । कन्नाए तीए पियरं, एत्थेव ठिओ समाणेमि ॥२४॥

चवलगइनामधेयं, सद्दावेऊण तस्स एयन्ते । सव्वं कहेइ राया, भामण्डलदुक्खमाईयं ॥२५॥

भामण्डलेन दृष्टस्त्वरितमभ्युत्थितः प्रणम्य । दत्तासनोपविष्टो भणितश्च मुने ! निशामय ॥१३॥

केनाप्युद्यानगृह आलिखिता बालिका मनोभिरामा । यदि जानासि भूतार्थं कथय कस्येदृशा दुहिता ? ॥१४॥

यदेवं पृष्टः स भणति ततो नारदः प्रशंसन् । अस्ति मिथिलायां राजा जनकः स इन्द्रकेतुसूतः ॥१५॥

तस्य महिला विदेहा तस्या दुहितेमा प्रवरकन्या । यौवनगुणानुरूपा सीता नाम्ना विख्याता ॥१६॥

अथवा किं परितुष्टः प्रतिरुपं प्रेक्ष्यालेखे ? । ये तस्या विभ्रमगुणास्ते एव को वर्णयितुं तीर्यते ? ॥१७॥

एवं कथयित्वा गतो यथेच्छं नारदोऽतित्वरमाणः । भामण्डलोऽपि दिवसान् कामशरशल्यितो गमयति ॥१८॥

यदि तं कन्यारत्नं न लभे कतिपयै दिवसैः । तदा न च जीवामि स्फुटं मदनभुजङ्गेन दृष्टोऽहम् ॥१९॥

सीतारूपविनटितं पुत्रं ज्ञात्वा तत्र चन्द्रगतिः । भामण्डलस्य पार्श्वं समकं कान्तया संप्राप्तः ॥२०॥

भणति ततश्चन्द्रगति पुत्र ! मैवं दुःखितो भव । कन्यां वरयामि गत्वा या तवावस्थिता हृदये ॥२१॥

संस्थाप्य पुत्रं चन्द्रगति र्भणत्यात्मनो महिलाम् । विद्याधर-मनुष्याणां कथं सम्बन्धोऽयं भवति ॥२२॥

भूमिगोचरनिलयमस्माकं नहि युज्यते तत्र गन्तुम् । अथवा तेन न दत्ता का वचनश्रीस्तदा ऽस्माकम् ॥२३॥

तस्मादकालहीन किंचिदुपायं करोमि भद्रे ! अहम् । कन्यायास्तस्याः पितरमत्रैव स्थितः समानयामि ॥२४॥

चपलगति र्नामधेयं शब्दाय्य तस्यैकान्ते । सर्वं कथयति राजा भामण्डलदुःखादिकम् ॥२५॥

---

१. दियहे-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामियआणाए लहुं, मिहिलानयरिं गओ चवलवेगो । काऊण आसरूवं, वित्तासन्तो भमइ लोयं ॥२६॥
दट्ठूणं नरवरिन्दो, आसं उद्दामयं नयरमज्झे । तो भणइ गेण्हह इमं अदिट्ठपुव्वं महातुरयं ॥२७॥
नरवइवयणेण तओ, गहिओ पुरिसेहि पग्गहकरेहिं । ठविओ य मन्दुराए, कुंकुमचच्चिक्कछुरियङ्गो ॥२८॥
सो तत्थ मासमेगं, अवट्ठिओ ताव तुरियवेगेणं । संपत्तो भणइ निवं, गयवरपयवासिओ एक्को ॥२९॥
सामिय ! सुणेहि दिट्ठो, हत्थी एरावणो व्व रण्णम्मि । थोवन्तरेण पेच्छइ, तं घेप्पन्तं कढिणदप्पं ॥३०॥
सो एव भणियमेत्तो, विणिग्गओ नरवई गयारूढो । पत्तो य तं पएसं, पेच्छइ वरवारणं मत्तं ॥३१॥
दट्ठूण सरिसि दुग्गे, हत्थी तो नरवई भणइ सिग्घं । आणेह किंचि तुरयं, बलपरिहत्थं विलग्गामि ॥३२॥
ताव च्चिय सो तुरओ, उवणीओ कढिणदप्पमाहप्पो । मोत्तूण कुञ्जरवरं, तत्थाऽऽरूढो नरवरिन्दो ॥३३॥
आरूढस्स य तुरओ, उप्पइओ नहयलं चवलवेगो । हाहारवं महल्लं, काऊण भडा गया सपुरं ॥३४॥
तत्तो अणेयदेसा, वोलेऊणं जिणालयासन्ने । पायवसाहाए लहुं, आलग्गो नरवई धणियं ॥३५॥
सो तस्स तरुवराओ, ओइण्णो कञ्चणामयं तुङ्गं । पेच्छइ वरपासायं, उब्भासिन्तं दस दिसाओ ॥३६॥
आयड्ढिऊण खग्गं, विगयभओ गोउरं समल्लीणो । अह पेच्छइ तत्थ पुणो, वावी उज्झाणज्झम्मि ॥३७॥
दिट्ठं जिणिन्दभवणं, नाणाविहमणिमऊहपज्जलियं । इन्दस्स [1]वासगेहं, नज्जइ सग्गाउ अवइण्णं ॥३८॥

स्वाम्याज्ञया लघुं मिथिलानगरीं गतश्चपलवेग: । कृत्वाऽश्वरूपं वित्रासयन् भ्रमति लोकम् ॥२६॥
दृष्ट्वा नरवरेन्द्रोऽश्वमुद्दामं नगर मध्ये । तदा भणति गृह्णतेममदृष्टपूर्वं महातुरगम् ॥२७॥
नरपतिवचनेन ततो गृहीत: पुरुषै: प्रगहकरै: । स्थापितश्च मन्दुरायां कुंकुमचर्चिकलिप्ताङ्ग: ॥२८॥
स तत्र मासमेकमवस्थितस्तावत्त्वरितवेगेन । संप्राप्तो भणति नृपं गजवरपदवासित एक: ॥२९॥
स्वामिन् ! श्रुणु दृष्टो हस्त्यैरावण इवारण्ये । स्तोकान्तरेण पश्य तं गृह्णन्तं कठिनदर्पम् ॥३०॥
स एवं भणितमात्रो विनिर्गतो नरपति र्गजारुढ: । प्रासाश्च तत्प्रदेशं पश्यति वरवारणं मत्तम् ॥३१॥
दृष्ट्वा सरसि दुर्गे हस्तिनं तदा नरपति र्भणति शीघ्रम् । आनयत किंचित्तुरगं बलदक्षं विलग्नामि ॥३२॥
तावदेव स तुरग उपनीत: कठिनदर्पमाहात्म्य: । त्यक्त्वा कुञ्जरवरं तत्राऽऽरुढो नरवरेन्द्र: ॥३३॥
आरुढस्य च तुरग उत्पतितो नभस्तलं चपलवेग: । हाहारवं महत्कृत्वा भटा गता: स्वरुपम् ॥३४॥
ततोऽनेकदेशान् विलङ्घ्य जिनालयासन्ने । पादपशाखायां लघुमालग्नो नरपतिरत्यन्तम् ॥३५॥
स तस्मात्तरुवरादवतीर्ण: काञ्चनमयमुतुङ्गम् । पश्यति वरप्रासादमुद्भाषमाणं दश दिश: ॥३६॥
आकृष्य खड्गं वितयभयो गोपूरं समालीन: । अथ पश्यति तत्र पुन र्वापी उद्यानमध्ये ॥३७॥
दृष्टं जिनेन्द्रभवनं नानाविधमणिमयूखप्रज्वलितम् । इन्द्रस्य वासगृहं ज्ञायते स्वर्गादवतीर्णम् ॥३८॥

१. वासभवणं नज्जइ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब्भन्तरं पविट्ठो, पेच्छइ सीहासणट्ठियं पडिमं । आइगरस्स भगवओ, दीहजडामउडकयसोहं ॥३९॥

रइऊण अञ्जलिउडं, सहसा ओमुच्छिओ समासत्थो । भावेण पययमणसो, करेइ थुइमङ्गलविहाणं ॥४०॥

काऊण य किइकम्मं, उवविट्ठो तत्थ विम्हिओ जणओ । मोत्तूण आसरूवं, चवलगई वि य गओ सपुरं ॥४१॥

नमिऊण सामिचलणे, पत्तो साहेइ [1] अवहियं जणयं । उज्जाणमज्झयारे, ठवियं चिय जिणहरासन्ने ॥४२॥

सोऊण आगयं सो, जणयं विज्जाहराहिवो तुट्ठो । घेत्तूण महापूयं, तं जिणभवणं गओ सिग्घं ॥४३॥

दिव्वविमाणारूढो, दिट्ठो जणएण सुहडपरिकिण्णो । मुणिओ य कओ एसो, इहागओ खेयराहिवई ? ॥४४॥

अमुणियचित्तसहावो, जणओ सीहासणन्तरनिलुक्को । जावच्छइ ताव च्चिय, चन्दगईणं कया पूया ॥४५॥

थुइमङ्गलं च विहिणा, काऊणं तत्थ बारसावत्तं । अह गाइउं पवत्तो, जिणगुण वीणा य घेत्तूणं ॥४६॥

जो तियसाहिवेहि ण्हविओ गिरिमत्थए, किन्नर-सिद्ध-जक्खकयमङ्गलसद्दए ।
जम्म-जरा-विओग-घणकम्मविणासए, पणमह आयरेण सययं उसभजिणिन्दए ॥४७॥

तुहं सयंभू भयवं ! चउम्मुहो, पियामहो विण्हु जिणो तिलोयणो ।
अणन्तसोक्खामलदेहधारिणो, सयंपबुद्धो वरधम्मदेसओ ॥४८॥

पणमह सुर-नर-ससि-रविमहितं, बहुविहगुणसयवरसिरिनिलयं ।
अणुवमअचलियसिवसुहफलयं, जिणवरसुचरिय तुह मम सरणं ॥४९॥

अभ्यन्तरं प्रविष्टः पश्यति सिंहासनस्थितां प्रतिमाम् । आदिकरस्य भगवतो दीर्घजटामुकुटकृतशोभाम् ॥३९॥

रचयित्वाऽजलिपूटं सहसाऽवमूर्च्छितः समाश्वस्थः । भावेन प्रणतमनाः करोति स्तुतिमङ्गलविधानम् ॥४०॥

कृत्वा च कृतिकर्मोपविष्टस्तत्र विस्मितो जनकः । मुक्त्वाश्वरुपं चपलगतिरपि च गतः स्वपुरम् ॥४१॥

नत्वा स्वामिचरणयोः प्राप्तः कथयत्यवितथं जनकम् । उद्यानमध्ये स्थापितमेव जिनगृहासन्ने ॥४२॥

श्रुत्वाऽऽगतं स जनकं विद्याधराधिपस्तुष्टः । गृहीत्वा महापूजां तं जिनभवनं गतः शीघ्रम् ॥४३॥

दिव्यविमानारूढो दृष्टो जनकेन सुभटपरिकीर्णः । मुणितश्च कुत एष इहागतः खेचराधिपतिः ? ॥४४॥

अमुणितचित्तस्वभावो जनकः सिंहासनानन्तर्निलीनः । यावदास्ते तावदेव चन्द्रगतिना कृता पूजा ॥४५॥

स्तुतिमङ्गलं च विधिना कृत्वा तत्र द्वादशावर्तम् । अथ गातुं प्रवृत्तो जिनगुणं वीणां च गृहीत्वा ॥४६॥

यस्त्रिदशाधिपैः स्नापितो गिरिमस्तके, किन्नर-सिद्ध-यक्षकृतमङ्गलशब्दाय ।
जन्म-जरा-वियोग-धनकर्म विनाशाय प्रणमतादरेण सततमृषभजिनेन्द्राय ॥४७॥

त्वं स्वयंभू र्भगवन् ! चतुर्मुखः पितामहो विष्णु र्जिन त्रिलोचनः । अनन्तसौख्यामलदेहधारी स्वयंप्रबुद्धो वरधर्मदेशकः ॥४८॥

प्रणमत सुर-नर-शशि-रविमहितं, बहुविध गुणशतवरश्रीनिलयम् ।
अनुपमाचलितशिवसुखफलकं, जिनवरसुचरितं त्वं मम शरणम् ॥४९॥

---

१. अपहृतसू ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उसभं जियमच्छर-राग-भयं, भय-दोग्गइमग्गपणासयरं ।
करणुज्जयधम्मपहस्स गुरुं, गुरुकम्ममहोयहिसोसणयं ॥५०॥

एवं गायन्तस्स य, सीहासणअन्तराउ निप्फिडिओ । जणओ चन्दगईणं, दिट्ठो य तओ समालत्तो ॥५१॥

भणिओ य साहसु फुडं, को सि तुमं ! भो ! कहिं च वत्थव्वो ? ।
केणेव कारणेणं, अच्छसि एत्थं जिणाययणे ? ॥५२॥

मिहिलापुरीए अहयं, जणओ नामेण इन्दकेउसुओ । एत्थाऽऽणिओ य हरिउं, केण वि मायातुरङ्गेणं ॥५३॥
संभासिय-कयविणया, दोण्णि वि य सुहासणेसु उवविट्ठा । अच्छन्ति पीइपमुहा, वेसम्भसमागयालावा ॥५४॥
नाऊण पत्थिवं सो, चन्दगई भणइ जणय ! नसुणेहि । दुहिया तुज्झ कुमारी, अत्थि त्ति मए सुयं पुव्वं ॥५५॥
सा मह सुयस्स दिज्जउ, कन्ना भामण्डलस्स [1]अणुरूवा । गाढ म्हि अणुग्गहिओ, जणय ! तुमे नत्थि संदेहो ॥५६॥
सो भणइ खेयराहिव ! मह वयणं सुणसु ताव एगमणो । दसरहसुयस्स दिन्ना, सा कन्ना रामदेवस्स ॥५७॥
भणइ तओ चन्दगई, सा कन्ना केण कारणेण तुमे । दसरहसुयस्स दिन्ना ?, एत्थं मे कोउयं परमं ॥५८॥
मिहिलापुरीए देसो, अत्थि ममं धणसमिद्धजणपउरो । सो अद्धबब्बरेहिं, मेच्छेहि विणासिओ सव्वो ॥५९॥
संगामम्मि पवत्ते, मेच्छा रामेण निज्जिया सव्वे । रक्खससमाणसत्ता, देवेहिं जे न जिप्पन्ति ॥६०॥
पुणरवि य महं देसो, सव्वो [2]आवासिओ भयविमुक्को । रामस्स पसाएणं, जाओ धण-रयणपडिपुण्णो ॥६१॥

ऋषभं जितमत्सररागभयं, भयदुर्गतिमार्गप्रणाशकरम् । करणोद्यतधर्मपथस्य गुरुं, गुरुकर्ममहोदधिशोषणकम् ॥५०॥
एवं गायतश्च सिंहासनानन्तरान्निफेटितः । जनकश्चन्द्रगतिना दृष्टश्च ततः समालप्तः ॥५१॥
भणितश्च कथय स्फुट कोऽसित्वं ! भो ! कुत्रश्च वास्तव्यः ? । केनैव कारणेनास्सेऽत्र जिनायतने ? ॥५२॥
मिथिलापूर्यामहं जनको नाम्नेन्द्रकेतुसुतः । अत्रानीतश्च हृत्वा केनापि मायातुरङ्गेन ॥५३॥
संभाषितकृतविनयौ द्वावपि च सुखासनयोरुपविष्टौ । आसाते प्रीतिप्रमुखौ विश्रम्भसमागतालापौ ॥५४॥
ज्ञात्वा पार्थिवं स चन्द्रगति र्भणति जनक ! निश्रुणु । दुहिता तव कुमार्यस्तीति मया श्रुतं पूर्वम् ॥५५॥
सा मम सुताय ददातु कन्या भामण्डलस्यानुरुपा । गाढमस्म्यनुगृहीतो जनक ! त्वया नास्ति संदेहः ॥५६॥
स भणति खेचराधिप ! ममवचनं श्रुणु तावदेकाग्रमनाः । दशरथसुताय दत्ता सा कन्या रामदेवाय ॥५७॥
भणति तत श्चन्द्रगतिः सा कन्या केन कारणेन त्वया । दशरथसुताय दत्ता ? अत्र मे कौतुकं परमम् ॥५८॥
मिथिलापूर्या देशोऽस्ति मम धनसमृद्धजनप्रचुरः । सोऽर्धबर्बरैर्म्लेच्छैर्विनाशितः सर्वः ॥५९॥
संग्रामे प्रवृत्ते म्लेच्छा रामेण निर्जिता सर्वेः । राक्षससमानसत्त्वा देवैर्ये न जीयन्ते ॥६०॥
पुनरपि च मम देशः सर्व आवासितो भयविमुक्तः । रामस्य प्रसादेन जातो धन-रत्नप्रतिपूर्णः ॥६१॥

---

१. अणुसरिसा-प्रत्य० । २. आसासिओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तस्सुवयारस्स मए, सा कन्ना रूव-जोव्वण-गुणोहा। दिन्ना रामस्स फुडं, एयं ते साहियं [1] गुज्झं ॥६२॥

सुणिऊण वयणमेयं, भणन्ति विज्जाहरा परमरुट्ठा। अविसेसो जणय ! तुमं, कज्जा-ऽकज्जं न लक्खेसि ॥६३॥

मेच्छेसु किं न कीरइ ?, पसवसरिच्छेसु हीणसत्तेसु। भग्गेसु तेसु समरे, सुहडाण जओ न निव्वडइ ॥६४॥

कायस्स सुक्करुक्खे, पीई बालस्स विसफले होइ। तह इच्छइ अविसेसो, हीणो हीणेण संजोगो ॥६५॥

परिचयसु कुसंबन्धं, जणय ! तुमं भूमिगोयरेण समं। विज्जाहरेण समयं, करेहि नेहं सययकालं ॥६६॥

देवो व्व संपयाए, चन्दगई खेयराहिवो सूरो। एयस्स देहि कन्नं, का गणणा पायचारेणं ? ॥६७॥

जणएण वि पडिभणिया, किं निन्दह भूमिगोयरे तुब्भे ?। तित्थयर-चक्कवट्टी, हवन्ति मणुया हलधरा य ॥६८॥

भोत्तूण भरहवासं, बहवे इक्खागवंससंभूया। असुर-सुर नमियचलणा सिवमयलमणुत्तरपत्ता ॥६९॥

तत्थेव महावंसे, अणरण्णसुओ सुमङ्गलागब्भे। जाओ पढमपुरीए, नराहिवो दसरहो नामं ॥७०॥

रूव-गुणसालिणीणं, पञ्च सया [2] जस्स पवरजुवईणं। पुत्ता य पउममाई, चत्तारि जणा महासत्ता ॥७१॥

रामस्स विक्कमगुणं, नाऊणं तस्स परमउवयारं। तेण मए नियसुया, निरूविया तस्स वरकन्ना ॥७२॥

विज्जाहरा पवुत्ता, जणय ! तुमं सुणसु निच्छयं अम्हं। गव्वं चिय अइतुङ्गं, रामस्स फुडं समुव्वहसि ॥७३॥

एयं चिय धणुरयणं, वज्जावत्तं सुरेसु कयरक्खं। जइ कुणइ वसे रामो, तो कन्ना गेण्हउ कयत्थो ॥७४॥

तस्योपकारस्य मया सा कन्या रूप-यौवन-गुणौधा। दत्ता रामाय स्फुटमेतत्ते कथितं गुप्तम् ॥६२॥

श्रुत्वा वचनमेतद्भणन्ति विद्याधराः परमरुष्टाः। अविशेषो जनक ! त्वं कार्याऽकार्यं न लक्षयसि ॥६३॥

म्लेच्छैः किं वा क्रियते ? पशुसदृशै र्हीनसत्त्वैः। भग्नैस्तैः समरे सुभटानां यशो न निवर्तते ॥६४॥

काकस्य शुष्कवृक्षे प्रीति र्बालस्य विषफले भवति। तथेच्छत्यविशेषो हीनो हीनेन संयोगः ॥६५॥

परित्यज कुसम्बन्धं जनक ! त्वं भूमिगोचरेण समम्। विद्याधरेण समकं कुरु स्नेहं सततकालम् ॥६६॥

देव इव संपदा चन्द्रगतिः खेचराधिपः शूरः। एतस्मै देहि कन्यां का गणना पादचारेण ? ॥६७॥

जनकेनापि प्रतिभणिताः किं निन्दत भूमिगोचरान्यूयम्। तीर्थकराश्चक्रवर्तिनो भवन्ति मनुष्या हलधराश्च ॥६८॥

भुक्त्वा भरतवर्षं बहव इक्ष्वाकुवंशसंभूताः। असुर-सुरनतचरणाः शिवमचलमनुत्तरं प्राप्ताः ॥६९॥

तत्रैव महावंशे अनरण्यसुतः सुमङ्गलागर्भे। जातः प्रथमपूर्या नराधिपो दशरथो नाम ॥७०॥

रुप-गुणशालिनीनां पञ्चशता यस्य वरयुवतीनाम्। पुत्राश्च पद्मादय श्चत्वारो जना महासत्त्वाः ॥७१॥

रामस्य विक्रमगुणं ज्ञात्वा तस्य परमोपकारम्। तेन मया निजसुता निरुपिता तस्य वरकन्या ॥७२॥

विद्याधराः प्रोक्ताः जनक ! त्वं श्रुणु निश्चयमस्माकम्। गर्वमेवात्युत्तुङ्गं रामस्य स्फुटं समुद्वहसि ॥७३॥

एवमेव धनूरत्नं वज्रावर्तं सुरैः कृतरक्षम्। यदि करोति वशे रामस्तदा कन्यां गृह्णातु कृतार्थः ॥७४॥

---

१. गुत्तं-प्रत्य०। २. तस्स-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह पुण वज्जावत्तं, धणुरयणं अत्तणो वसे रामो । न कुणइ नरवइमज्झे, तो से कन्ना कओ होइ ? ॥७५॥
अह ते खेयरवसहा, जणयं धणुयं च गेण्हिउं तुरिया । मिहिलाभिमुहं चलिया, गओ य सपुरं च चन्दगई ॥७६॥
एत्तो कओवसोहं, जयसद्दुग्घुट्ठमङ्गलरवेणं । पविसइ नियभवणं, जणओ बहुजणवयाइण्णो ॥७७॥
विविहाउहपरिहत्था, विज्जाहरपत्थिवा बलसमिद्धा । आवासिया समन्ता, मिहिलाए बाहिरुद्देसे ॥७८॥
ताव य खेयर[1]वसओ, पणट्ठमाहप्प-दप्प-उच्छाहो । चिन्तेइ जणयराया, दीहुस्सासे विमुञ्चन्तो ॥७९॥
उत्तमनारीहि समं, तत्थ विदेहा गया निवसयासं । उवविट्ठा भणइ पहू !, किं झायसि महिलियं अन्नं ? ॥८०॥
अहवा कहेहि मज्झं, तं विलयं जं मणेण चिन्तेसि । आणेमि तक्खणं चिय, मा एवं दुक्खिओ होह ॥८१॥
जं एव समालत्तो, जणओ तो भणइ अत्तणो कन्तं । अमुणियकज्जा सि तुमं, मह चिन्ताकारणं सुणसु ॥८२॥
मायातुरङ्गमेणं, नीओ हं तेण[2] कल्लि वेयड्ढं । विज्जाहिवेण तत्तो, समयं काऊण परिमुक्को ॥८३॥
वज्जावत्तवरधणुं, जइ काहिइ अत्तणो वसे रामो । ता होही कन्ना ते, न पुणो अन्नेण भेएणं ॥८४॥
तं च अधन्नेण मए, बन्दावत्थेण इच्छियं सव्वं । विज्जाहरेहि धणुयं, इहाऽऽणियं नयरबाहिरओ ॥८५॥
जइ पुण सज्जीवं चिय, पउमो न करेइ तं महाधणुहं । तो खेयरेहि बाला, हिज्जिहिइ न एत्थ संदेहो ॥८६॥
दियहाणि वीस अवही, एयाण मए कया अपुण्णेणं । एत्तो परं तु नियमा, नेहिन्ति बलाधिकयारेणं ॥८७॥

अथ पुन र्वज्रावर्तं धनूरत्नमात्मनो वशे रामः । न करोति नरपतिमध्ये ततस्तस्य कन्या कुतो भवति ? ॥७५॥
अथ ते खेचरवृषभा जनकं धनुष्कं च गृहीत्वा त्वरिताः । मिथिलाभिमुखंचलिता गतश्च स्वपुरं च चन्द्रगतिः ॥७६॥
इतः कृतोपशोभं जयशब्दोद्घुष्टमङ्गलरवेण । प्रविशति निजभवनं जनको बहुजनपदाकीर्णः ॥७७॥
विविधायुधदक्षा विद्याधरपार्थिवा बलसमृद्धाः । आवासिताः समन्तान्मिथिलाया बाहिरुद्देशे ॥७८॥
तावच्च खेचरवशगः प्रनष्टमाहात्म्यदर्पोत्साहः । चिन्तयति जनकराजा दीर्घोच्छ्वासान् विमुञ्चन् ॥७९॥
उत्तमनारिभिः समं तत्र विदेहा गता नृपसकाशम् । उपविष्टा भणति प्रभो ! किं ध्यायसि महिलामन्याम् ॥८०॥
अथवा कथय मम तां वनितां यां मनसा चिन्तयसि । आनयामि तत्क्षणमेव नैवं दुःखितो भव ॥८१॥
यदेवसमालप्तो जनकस्तदा भणत्यात्मनः कान्ताम् । अमुणितकार्याऽसि त्वं मम चिन्ताकारणं श्रुणु ॥८२॥
मायातुरङ्गमेणनीतोऽहं तेन कल्ये वैताढ्यम् । विद्याधिपेन ततः समकं कृत्वा परिमुक्तः ॥८३॥
वज्रावर्त्तवरधणु र्यदि करिष्यत्यात्मनो वशे रामः । तदा भविष्यति कन्या तस्य न पुनरन्येन भेदेन ॥८४॥
तच्चाधन्येन मया बन्धावस्थेनेच्छितं सर्वम् । विद्याधरै र्धनुष्यमिहानीतं नगरबाह्यः ॥८५॥
यदि पुनः सजीवमेव पद्मो न करोति तं महाधनुष्यम् । तदा खेचरै र्बाला हरिष्यते नात्र संदेहः ॥८६॥
दिवसानि विंशतिरवधिरेतेषां मया कृताऽपुण्येन । इतः परंतु नियमा नेष्यन्ति बलाधिकारेण ॥८७॥

---

१. खेचरवशगः । २. तेण तत्थ वेयड्ढं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुणिऊण वयणमेयं, वइदेही सोगपूरियसरीरा । परिदेविउं पयत्ता, नयणजलासित्तथणजुयला ॥८८॥

किं नाम मए सामिय !, दइवस्स कयं अभागधेज्जाए । जेण बहुदुक्खनिलयं, इमं सरीरं विणिम्मवियं ॥८९॥

पुत्तेण न संतुट्ठो, धूयं हरिऊण उज्जओ दइवो । मा मे होही एसा, नेहस्सऽवलम्बणं बाला ॥९०॥

एकस्स जाव अन्तं, न जामि दुक्खस्स पावकम्मा हं । ताव च्चिय गरुययरं, बिइयं तु निरूवियं विहिणा ॥९१॥

रोवन्ती भणइ निवो, भद्दे ! छड्डेहि सोगसंबन्धं । नच्चावेइ समत्थं, लोगं पुव्वक्कयं कम्मं ॥९२॥

संठाविऊण महिलं, जणएण समन्तओ धणुवरस्स । उवसोहिया विसाला, धरणी कयमण्डणाडोवा ॥९३॥

तीए सयंवरत्थे, आहूया नरवई समन्तेणं । सिग्घं साएयपुरी[1], रामस्स वि पेसिओ दूओ ॥९४॥

सोऊण दूयवयणं, पउमो भडचडयरेण महएणं । लक्खण-भरहेहि समं, मिहिलानयरी[2] समणुपत्तो ॥९५॥

माया-वित्तेहि समं, सव्वे वि गया नराहिवा मिहिलिं । सम्माणिया य परमं, जणएण पसन्नहियएणं ॥९६॥

विज्जाहरा य मणुया, सव्वालंकारभूसियसरीरा । रइयासणेसु एत्तो, उवविट्ठा परियणसमग्गा ॥९७॥

तत्तो सा धणुभवणे, सत्तहि कन्नासएहि परिकिण्णा । पेच्छइ नरिन्दवसभे, सीया कयमण्डणाडोवा[3] ॥९८॥

तो कञ्चुई पवुत्तो, बाले ! रामो इमो मणभिरामो । दसरहनिवस्स पुत्तो, देवकुमारोवमसिरीओ ॥९९॥

एयस्स जो समीवे, अणुओ च्चिय लक्खणो महाबाहू । भरहो सत्तुग्घो वि य, दोण्णि वि एए वरकुमारा ॥१००॥

श्रुत्वा वचनमेतद्वैदेही शोकपूरितशरीरा । परिदेवितुं प्रवृत्ता नयनजलासिक्तस्तनयुगला ॥८८॥

किं नाम मया स्वामिन् ! दैवस्य कृतमभागधेयया । येन बहुदुःखनिलयमिदं शरीरं निर्मापितम् ॥८९॥

पुत्रेण न संतुष्टो दुहितरं हर्तुमुद्यतो दैवः । मा मे भविष्यत्येषा स्नेहस्यालम्बनं बाला ॥९०॥

एकस्य यावदन्तं न यामि दुःखस्य पापकर्माऽहम् । तावदेव गुरुतरं द्वितीयं तु निरुपितं विधिना ॥९१॥

रुदन्तीं भणति नृपो भद्रे ! मुञ्च शोकसम्बन्धम् । नर्तयते समस्तं लोकं पूर्वकृतं कर्म ॥९२॥

संस्थाप्य महिलां जनकेन समन्ततो धनुर्वरस्य । उपशोधिता विशाला धरणी कृतमण्डनाटोपा ॥९३॥

तस्याः स्वयंवरार्थे आहूता नरपतयः समन्तेन । शीघ्रं साकेतपुरीं रामस्यापि प्रेषितो दूतः ॥९४॥

श्रुत्वा दूतवचनं पद्मो भटसमूहेन महता । लक्ष्मण भरतैः समं मिथिलानगरीं समनुप्राप्तः ॥९५॥

मातापितृभिः समं सर्वेऽपि गता नराधिपा मिथिलाम् । सन्मानिताश्च परमं जनकेन प्रसन्नहृदयेन ॥९६॥

विद्याधराश्च मनुष्याः सर्वालङ्कारभूषितशरीराः । रचितासनेष्वित उपविष्टाः परिजनसमग्राः ॥९७॥

ततः सा धनुर्भवने सप्तभिः कन्याशतैः परिकीर्णाः । पश्यति नरेन्द्रवृषभान् सीता कृतमण्डनटोपा ॥९८॥

तदा कञ्चुकी प्रोक्तो बाले ! रामोऽयं मनोभिरामः । दशरथनृपस्य पुत्रो देवकुमारोपमश्रीः ॥९९॥

एतस्य यः समीपेऽनुज एव लक्ष्मणो महाबाहुः । भरतः शत्रुघ्नोऽपि च द्वावप्येतौ वरकुमारौ ॥१००॥

---

१. पुरिं-प्रत्य० । २. नयरिं-प्रत्य० । ३. णाडोवा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हरिवाहणो महप्पा, बाले ! मेहप्पहो य चित्तरहो । अह मन्दिरो जओ च्चिय, सिरिकन्तो दुम्मुहो भाणू ॥१०१॥
राया चेव सुभद्दो, बुहो विसालो य सिरिधरो धीरो । अचलो य बन्धुरुद्दो, तह य सिही पत्थिवो सूरो ॥१०२॥
एए अन्ने य बहू, विसुद्धकुलसंभवा नरवरिन्दा । तुज्झ कएण वरतणू, इहाऽऽगया धणुपरिक्खाए ॥१०३॥
मन्तीण समुल्लवियं, धणुवं जो कुणइ एत्थ सज्जीवं । सो होही वरणीओ, कन्नाए नत्थि संदेहो ॥१०४॥
एवं च भणियमेत्ते, कमेण चावस्स अभिमुहा सव्वे । अह ढुक्किउं पवत्ता, निम्मज्जियपरियरावेढा ॥१०५॥
जह जह ढुक्कन्ति भडा, तह तह [1]अग्गी विमुञ्चए धणुयं । विज्जुच्छडासरिच्छं, भीमोरगमुक्कनीसासं ॥१०६॥
केएत्थ अग्गिभीया, करेसु पच्छाइऊण नयणाइं । भज्जन्ति पडिवहेणं, अन्नोन्नं चेव लङ्घन्ता ॥१०७॥
अन्ने पुण दूरत्था, दट्ठूण फुरन्तपन्नयाडोवं । कम्पन्ति चलसरीरा, पणट्ठवाया दिसामूढा ॥१०८॥
पन्नयवायाभिहया, पलासपत्तं व घत्तिया अवरे । मुच्छाविहलसरीरा, केई पुण थम्भिया सुहडा ॥१०९॥
केई भणन्ति ठाणं, जइ वि हु जीवन्तया गमिस्सामो । तो दाणमणेयविहं, दाहामो दीण-किविणाणं ॥११०॥
अन्ने भणन्ति एवं, अम्हे निययासु महिलियासु समं । कालं चिय नेस्सामो, किं वा एयाए रूवाए ? ॥१११॥
अवरे भणन्ति एसा, केण वि माया कया अपुण्णेणं । ठविया य मरणहेउं, बहुयाणं नरवरिन्दाणं ॥११२॥
ताव य चलन्तकुण्डल-मउडा-ऽलंकारभूसियसरीरो । पउमो गयवरगामी, अल्लीणो धणवरन्तेणं ॥११३॥
अह ते महाभुयङ्गा, नियसहावट्ठिया परमसोम्मा । धणुयं पि विगयजालं, गहियं रामेण सहस त्ति ॥११४॥

हरिवाहनो महात्मा बाले ! मेघप्रभश्च चित्ररथः । अथ मन्दिरो जय एव श्रीकान्तो दुर्मुखो भानुः ॥१०१॥
राजैव सुभद्रो बुधो विशालश्च श्रीधरो धीरः । अचलश्च बन्धुरुद्रस्तथा च शिखी पार्थिवः शूरः ॥१०२॥
एत अन्ये च बहवो विशुद्धकुलसंभवा नरवरेन्द्राः । तव कृते वरतनु ! इहागता धनुष्परीक्षायाम् ॥१०३॥
मन्त्रिणा समुल्लपितं धनुष्यं यः करोत्यत्र सजीवम् । स भवति वरणीयः कन्यया नास्ति संदेहः ॥१७४॥
एवं च भणितमात्रे क्रमेण चापस्याभिमुखाः सर्वे । अथ ढोकयितुं प्रवृत्ता निमज्जितपरिकरावेष्टाः ॥१०५॥
यथा यथा ढौकय भटास्तथा तथाग्नि विमुञ्चति धनुः । विद्युच्छटासदृशं भीमोरगमुक्तनिश्वासम् ॥१०६॥
केचिदग्निभीताः करैः प्रच्छाद्य नयने । भज्जन्ति प्रतिपथाऽन्योन्यमेव लङ्घयन्तः ॥१०७॥
अन्ये पुन दुरस्था दृष्ट्वा स्फुरत्पन्नगाटोपम् । कम्पन्ते चलत्शरीराः प्रनष्टवाचो दिङ्मूढाः ॥१०८॥
पन्नगवाताभिहताः पलाशपत्रमिव क्षिप्ता अपरे । मूर्च्छाविह्वलशरीराः केचित्पुनः स्तम्भिताः सुभटाः ॥१०९॥
केचिद्भणन्ति स्थानं यद्यपि हु जीवन्तो गमिष्यामः । तदा दानमनेकविधं दास्यामो दीन-कृपणेभ्यः ॥११०॥
अन्ये भणन्त्येवं वयं निजाभि र्महिलाभिः समम् । कालमेव नेष्यामः किं वानया रुपया ? ॥१११॥
अपरे भणन्त्येषा केनाऽपि माया कृताऽपुण्येन । स्थापिताश्च मरणहेतु बहुन् नखरेन्द्रान् ॥११२॥
तावच्च चलत्कुण्डलमुकुटाऽलङ्कारभूषित शरीरः । पद्मो गजवरगाम्यालीनो धनुर्वरान्तेन ॥११३॥
अथ ते महाभुजङ्गा निजस्वभावस्थिताः परमसौम्याः । धनुष्कमपि विगतज्वालं गृहीतं रामेण सहसेति ॥११४॥

---

१. अग्गि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ठविऊण लोहपीढे, सज्जीवं धणुवरं कयं सिग्घं । ताव च्चिय संजायं, रय-रेणुसमोत्थयं गयणं ॥११५॥

आकम्पिया य सेला, विवरीयं चिय वहन्ति सरियाओ । उक्का-तडिच्छडालं, विद्दुमवण्णं दिसायक्कं ॥११६॥

सव्वत्तो घोररवा, चण्डा निवडन्ति तत्थ निग्घाया । सूरो पणट्ठतेओ, जाओ य जणो भउव्विग्गो ॥११७॥

एयारिसम्मि जाए, पलयावत्ते जए धणुवरं तं । विलएइ पउमनाहो, सव्वनरेन्दाण पच्चक्खं ॥११८॥

एयन्तरम्मि गयणे, देवा मुञ्चन्ति कुसुमवरवासं । साहु त्ति जंपमाणा, जयसद्दुग्घुट्ठतूररवा ॥११९॥

रामेण धणुवरं तं, गाढं अप्फालियं सदप्पेणं । जह बरहिणेहि घुट्ठं, नवपाउसमेहसङ्काए ॥१२०॥

खुहिओ व्व सायरवरो, सो जणनिवहो कमेण आसत्थो । ताव च्चिय पसयच्छी, सीया रामं पलोएइ ॥१२१॥

उल्लसियरोमकूवा, सिणेहसंबन्धजणियपरितोसा । लीलाए संचरन्ती, रामस्स अवट्ठिया पासे ॥१२२॥

ऊयारिऊण धणुयं, पउमो निययासणे सुहनिविट्ठो । सीयाए समं रेहइ, रइसाहीणो अणङ्गो व्व ॥१२३॥

तं लक्खणेण धणुयं, घेत्तूणं वलइयं सहरिसेणं । आयड्ढियं सदप्पं, पक्खुभियसमुद्दनिग्घोसं ॥१२४॥

दट्ठूण विक्कमं ते, सव्वे विज्जाहरा भउव्विग्गा । देन्ति गुणसालिणीओ, अट्ठारग पवरकन्नाओ ॥१२५॥

विज्जाहरेहि सिग्घं, गन्तूणं चक्कवालवरनयरं । वित्तन्ते परिकहिए, चन्दगई दुम्मणो जाओ ॥१२६॥

आलोइऊण भरहो, रामं दढसत्ति-कन्तिपडिपुण्णं । अह सोइउंपयत्तो, तक्खणमेत्तेण पडिबुद्धो ॥१२७॥

गोत्तं पिया य एक्को, एयस्स ममं पि दोण्ह वि जणाणं । नवरं अब्भुयकम्मो, रामो परलोयसुकएणं ॥१२८॥

पउमदलसरिसनयणा पउममुही पउमगब्भसंकासा । पउमस्स इमा भज्जा, जाया निययाणुभावेणं ॥१२९॥

स्थापयित्वा लोहपीठे सजीवं धनुर्वरं कृतं शीघ्रम् । तावदेव संजातं रजोरेणुसमवस्तृणं गगनम् ॥११५॥

आकम्पिताश्च शैला विपरीतमेव वहन्ति सरितः । उल्कातडिच्छटावद् विद्रुमवर्णं दिक्चक्रम् ॥११६॥

सर्वतः घोररवाश्चण्डा निपतन्ति तत्र निर्घाताः । सूर्यः प्रनष्टतेजा जातश्च जनो भयोद्विग्नः ॥११७॥

एतादृशे जाते प्रलयावर्त्ते जगति धनुर्वरं तत् । विलगति पद्मनाभः सर्वनरेन्द्राणां प्रत्यक्षम् ॥११८॥

एतदन्तरे गगने देवा मुञ्चन्ति कुसुमवरवासम् । साध्विति जल्पन्तो जयशब्दोद्धृष्टतूर्यरवाः ॥११९॥

रामेण धनूर्वरं तद्गाढमास्फालितं सदर्पेण । यथा बर्हिणैः धृष्टं नवप्रावृड्मेघशङ्कया ॥१२०॥

क्षुभित इव सागरवरः स जननिवहः क्रमेणाश्वास्तः । तावदेव प्रसन्नाक्षिः सीता रामं प्रलोकते ॥१२१॥

उल्लसितरोमकूपा स्नेहसंबन्धजनितपरितोषा । लीलया संचरन्ती रामस्यावस्थिता पार्श्वे ॥१२२॥

उत्तार्य धनुष्कं पद्मो निजासने सुखनिविष्टः । सीतया समं राजते रतिस्वाधीनोऽनङ्ग इव ॥१२३॥

तल्लक्ष्मणेन धनुष्कं गृहीत्वा वलयितं सहर्षेण । आकृष्टं सदर्पं प्रक्षुभितसमुद्रनिर्घोषम् ॥१२४॥

दृष्ट्वा विक्रमं ते सर्वे विद्याधरा भयोर्द्विग्नः । ददति गुणशालिन्योऽष्टादश प्रवरकन्याः ॥१२५॥

विद्याधरैः शीघ्रं गत्वा चक्रवालनगरम् । वृतान्ते परिकथिते चन्द्रगति र्दुमनाजातः ॥१२६॥

आलोक्य भरतो रामं दृढशक्ति-कान्ति प्रतिपूर्णम् । अथ शोचितुं प्रवृत्तस्तत्क्षणमेव प्रतिबुद्धः ॥१२७॥

गोत्रं पिता चैक एतस्य ममापि द्वयोरपि जनयोः । नवरमद्भूतकर्मा रामः परलोकसुकृतेन ॥१२८॥

पद्मदलसदृशनयना पद्ममुखी पद्मगर्भसंकाशा । पद्मस्येमा भार्या जाता निजानुभावेन ॥१२९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वकला-ऽऽगमकुसला, विमणं नाऊण केगई पुत्तं । दइयस्स साहइ फुडं, भरहकुमारस्स सब्भावं ॥१३०॥
भरहस्स मए सामिय !, मुणियं सोगाउरं मणं गाढं । तह तं करेहि सिग्घं, जह निव्वेयं न य उवेइ ॥१३१॥
अत्थि जणयस्स भाया, कणओ नामेण एत्थ मिहिलाए । जाया य सुप्पभाए, तेण सुभद्दा पवरकन्ना ॥१३२॥
सिग्घं सयंवरा सा, घोसाविज्जउ नरिन्दमज्झम्मि । जाव न गच्छइ भरहो, अज्जं चिय परमनिव्वेयं ॥१३३॥
भणिऊण एवमेयं, सा वत्ता दसरहेण कणयस्स । कहिया य निरवसेसा, तेण वि य पडिच्छिया आणा ॥१३४॥
कणएण तत्थ तुरियं, सव्वे वि नराहिवा समाहूया। जे वि य गया निवेसं, ते वि तहिं चेवमल्लीणा ॥१३५॥
उवविट्ठेसु कमेणं, कणयसुया तत्थ आगया कन्ना । परिहरिऊण नरेन्दे, वरेइ भरहं सुभद्दा वि ॥१३६॥
अच्चन्तविसमभावं, सेणिय ! पेच्छसु खलाण कम्माणं । पडिबुद्धो चिय भरहो, [1]भज्जाए विमोहिओ पच्छा ॥१३७॥
जंपन्ति एक्कमेक्कं, विलक्खवयणा नराहिवा सव्वे । जा जस्स पुव्वविहिया, भज्जा सा तस्स उवणमइ ॥१३८॥
रामेण तओ सीया, परिणीया संपयाए परमाए । भरहेण वि कणयसुया, तेणेव नियोगकरणेणं ॥१३९॥
सव्वे काऊण तहिं, वीवाहमहुस्सवं नरवरेन्दा । नियपुराणि कमेणं, संपत्ता साहणसमग्गा ॥१४०॥

दसरहस्स सुया बलदप्पिया, नववहूहि समं [2]जणसेविया ।
पविसरन्ति कमेण सुकोसलं, विमलकित्तिधरा पुरिसोत्तमा ॥१४१॥

॥ इय पउमचरिए रामलक्खणधणुरयणलाभविहाणो नाम अट्ठावीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

सर्वकलाऽऽगमकुशला विमनसं ज्ञात्वा कैकयी पुत्रम् । दयितस्य कथयति स्फुटं भरतकुमारस्य सद्भावम् ॥१३०॥
भरतस्य मया स्वामिन् ! ज्ञातं शोकातुरं मनोगाढम् । तथा तत्कुरु शीघ्रं यथा निर्वेदं न चोपैति ॥१३१॥
अस्ति जनकस्य भ्राता कनको नाम्नात्र मिथिलायाम् । जाता च सुप्रभायास्तेन सुभद्रा वरकन्या ॥१३२॥
शीघ्रं स्वयंवरा सा घोषयतु नरेन्द्रमध्ये । यावन्न गच्छति भरतोऽद्यैव परमनिर्वेदम् ॥१३३॥
भणित्वैवमेतत्सा वार्ता दशरथेन कनकस्य । कथिता च निरवशेषा तेनापि च प्रतीच्छिताऽऽज्ञा ॥१३४॥
कनकेन तत्र त्वरितं सर्वेऽपि नराधिपाः समाहूताः । येऽपि च गता निवेशं तेऽपि तत्रैव समालीनाः ॥१३५॥
उपस्थितेषु क्रमेण कनकसुता तत्रागता कन्या । परिहृत्य नरेन्द्रान्वरति भरतं सुभद्राऽपि ॥१३६॥
अत्यन्तं विषमभावं श्रेणिक ! पश्य खलानां कर्मणाम् । प्रतिबुद्ध एव भरतो भार्यया विमोहितः पश्चात् ॥१३७॥
जल्पन्त्येकैकं विलक्षवदना नराधिपा सर्वे । या यस्य पूर्वविहिता भार्या सा तस्योपनमति ॥१३८॥
रामेण ततः सीता परिणीता संपदा परमया । भरतेनापि कनकसुता तेनैव नियोगकरणेन ॥१३९॥
सर्वे कृत्वा तत्र वीवाहमहोत्सवं नरवरेन्द्राः । निजपुराणि क्रमेण संप्राप्ताः साधनसमग्राः ॥१४०॥
दशरथस्य सुता बलदर्पिता नववधूभिः समं जनसेविताः ॥
प्रविशन्ति क्रमेण सुकोशलं विमलकीर्तिधराः पुरुषोत्तमाः ॥१४१॥

॥ इति पद्मचरित्रे राम-लक्ष्मणधनूरत्नलाभविधानो नामाष्टाविंशतितम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. भद्दाए-प्रत्य० । २. कयसोहिया-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

२९. दसरहवइराग-सव्वभूयसरणमुणिआगमणं

एत्तो च्चिय आसाढे, राया धवलट्ठमीपभीतीए । जिणचेइयाण महिमं, काऊण तओ समाढत्तो ॥१॥

सम्मज्जिओवलित्ता, जिणहरभूमी करन्ति केएत्थ । रङ्गावलनियोगं, चुण्णेणं पञ्चवण्णेणं ॥२॥

केई पुण वरकुसुमे, गहिऊणं तोरणेसु माला ओ। विरयन्ति य भत्तीओ, विचित्तधाऊरसेणं तु ॥३॥

सव्वम्मि सुपडिउत्ते, सुयसहिओ नरवई जिणिन्दाणं । ण्हवणं करेइ विहिणा, पडुपडह-मुइङ्गसद्दालं ॥४॥

दिवसाणि अट्ठ राया, पोसहिओ जिणवराण वरपूयं । काऊण भत्तमन्तो, संथुणइ परेण विणएणं ॥५॥

तं ण्हवणसन्तिसलिलं, नरवइणा पेसियं सभज्जाणं । तरुणविलयाहि नेउं, छूढं चिय उत्तमङ्गेसु ॥६॥

कञ्चुइहत्थावगयं, जाव य गन्धोदयं चिरावेइ । ताव य वरग्गमहिसी, पत्ता कोवं च सोगं च ॥७॥

चिन्तेऊण पवत्ता, एयाओ नरवईण महिलाओ । सम्माणियाउ न य हं, एत्तो जिणसन्तिसलिलेणं ॥८॥

दइयस्स को व दोसो ?, पुव्विं न उवज्जियं मए सुकयं । तेणं चिय पम्हुट्ठा, जुवतीणं मज्झयारम्मि ॥९॥

अवमाणजलणदड्ढं, एयं मे यावपूरियं हिययं । मरणेण उवसमिज्जइ, कत्तो पुण अन्नभेदेणं ? ॥१०॥

भण्डारियं विसाहं, सद्दावेऊण भणइ ससिवयणा । एयं न कस्स वि तुमे, संपइ वत्थुं कहेयव्वं ॥११॥

अब्भिन्तरं पविट्ठा, मरणे उच्छाहनिच्छियमईया । कण्ठकरगहियवत्था, ताव च्चिय नरवई पत्तो ॥१२॥

---

२९. दशरथवैराग्यसर्वभूतशरणमुन्यागमनम्

इत एवाषाढे राजा धवलाष्टमीप्रभूत्याम् । जिनचैत्यानां महिमानं कर्तुं ततः समारब्धः ॥१॥

समर्जितोपलिप्तां जिनगृहभूमिं कुर्वन्ति केचित् । रङ्गावलिनियोगं चूर्णेन पञ्चवर्णेन ॥२॥

केचित्पुन र्वरकुसुमान् गृहीत्वा तोरणेषु मालाः । विरचयन्ति च भक्तिर्विचित्रधातुरसेन तु ॥३॥

सर्वस्मिन्सुप्रयुक्ते सुतसहितो नरपतिर्जिनेन्द्राणाम् । स्नपनं करोति विधिना पटुपटह-मृदंग-शब्दवत् ॥४॥

दिवसाण्यष्टौ राजा पौषधिको जिनवराणां वरपूजाम् । कृत्वा भक्तिमान्संस्तौति परेण विनयेन ॥५॥

तत्स्नापनशान्तिसलिलं नरपतिना प्रेषितं स्वभार्याणाम् । तरुणवनिताभिर्नीत्वा क्षिप्तमेवोत्तमाङ्गेषु ॥६॥

कञ्चुकिहस्तावगतं यावच्च गन्धोदकं चिरायति । तावच्च वराग्रमहिषी प्राप्ता कोपं च शोकं च ॥७॥

चिन्तयितुं प्रवृत्तैता नरपतिना महिलाः । सन्मानिता न चाहमितो जिनशान्तिसलिलेन ॥८॥

दयितस्य को वा दोषः ? पूर्वं नोपार्जितं मया सुकृतम् । तेनैव विस्मृता युवतीनां मध्ये ॥९॥

अपमानज्वलनदग्धमेतन्मे पापपूरितं हृदयम् । मरणेनोपशाम्यते कुतःपुरन्यभेदेन ? ॥१०॥

भाण्डारिकं विशाखं शब्दायित्वा भणति शशिवदना । एवं न कस्यापि त्वया संप्रति वस्तु कथयितव्यम् ॥११॥

अभ्यंतरं प्रविष्टा मरणे उत्साहनिश्चितमतिका । कण्ठकरगृहीतवस्त्रा तावदेव नरपतिः प्राप्तः ॥१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पेसजणस्स नरिन्दो, सद्दं निसुणेइ तत्थ अइकलुणं । हा देवि ! किमारद्धं, जीवन्तयरं इमं कम्मं ? ॥१३॥

घेत्तूण पत्थिवेणं, निययङ्कनिवेसिया समालत्ता । कीस अकज्जे सुन्दरि !, मरणुच्छाहा तुमं जाया ? ॥१४॥

सा भणइ सामिय ! तुमे, सव्वाण वि महिलियाण सन्तिजलं । संपेसियं महायस !, तस्साहं वञ्चिया नवरं ॥१५॥

अवमाणदूमिएणं, किं कीरइ पणइणीण जीएणं । तुङ्गकुलजाइयाणं ?, वरं खु मरणं सुहावेइ ॥१६॥

जाव य सा भणइ इमं, ताव च्चिय कञ्चुई समणुपत्तो । एवं समुल्लवन्तो, तुज्झ जलं पेसियं [1]पहुणा ॥१७॥

सा कञ्चुइणा मुद्धा, अहिसित्ता तेण सन्तिसलिलेणं । निव्ववियमाणसग्गी, पसन्नहियया तओ जाया ॥१८॥

ताव य नराहिवेणं, भणिओ च्चिय कञ्चुई सरोसेणं । न य आगओ सि सिग्घं, को वक्खेवो तुहं आसि ? ॥१९॥

ता कञ्चुई पवुत्तो, भएण अहियं चलन्तसव्वङ्गो । सामिय ! न य वक्खेवो, अत्थि महं कोइ जियलोए ॥२०॥

एयं जराए अङ्गं, मज्झ कयं विगयदप्पउच्छाहं । तूरन्तस्स वि धणियं, न वहइ परिजुण्णसगडं व ॥२१॥

जे आसि मज्झ नयणा, सामिय ! पढमं विपारदिट्ठिल्ला । ते वि य न दीहपेही, संपइ जाया कुमित्त व्व ॥२२॥

कण्णा वि पढम वयणं, निसुणन्ता मम्मणं पि उल्लावं । ते सुमहयं पि सद्दं, न सुणन्ति पहू ! दुपुत्त व्व ॥२३॥

जे वि महं आसि पुरा, दन्ता वरकुडयकुसुमसंकासा । ते वि जरवड्ढइकया, पडिया अरय व्व तुम्बाओ ॥२४॥

आसि च्चिय पढमयरं, हत्था दढचावकड्ढणसमत्था । ते वि य गय व्व कवलं, मुहाउ दुक्खेहि ढोयन्ति ॥२५॥

प्रेष्यजनस्य नरेन्द्रः शब्दं निश्रुणोति तत्रातिकरुणम् । हे देवि ! किमारब्धं जीवान्तकरमिदं कर्म ? ॥१३॥

गृहीत्वा पार्थिवेन निजाङ्कनिवेशिता समालप्ता । कथमकार्ये सुन्दरि ! मरणोत्साहा त्वं जाता ? ॥१४॥

सा भणति स्वामिन् ! त्वया सर्वेषामपि महिलानां शान्तिजलम् । संप्रेषितं महायशः ! तस्याहं वञ्चिता नवरम् ॥१५॥

अपमानदावितेन किं क्रियते प्रणयिनीनां जीवितेन । तुङ्गकुलजातिकानां ? वरं खलु मरणं सुखायति ॥१६॥

यावच्च सा भणतीदं तावदेव कञ्चुकी समनुप्राप्तः । एवं समुल्लपन् तव जलं प्रेषितं प्रभुणा ॥१७॥

सा कञ्चुकिना मुग्धाभिषिक्ता तेन शान्तिजलेन । निर्वापितमानसाग्निः प्रसन्नहृदया ततो जाता ॥१८॥

तावच्च नराधिपेन भणित एव कञ्चुकी सरोषेण । न चागतोऽसि शीघ्रं को व्याक्षेपस्तवासीत् ॥१९॥

ततः कञ्चुकी प्रोक्तो भयेनाधिकं चलत्सर्वाङ्गः । स्वामिन् ! न च व्याक्षेपोऽस्ति मम कोऽपि जीवलोके ॥२०॥

एतज्जरयाङ्गं मम कृतं विगतदर्पोत्साहम् । त्वरमानस्योऽप्यत्यन्तं न वहति परिजीर्णशकटमिव ॥२१॥

ये आस्तां मम नयने स्वामिन् ! प्रथमं विकारदृष्टी । तेऽपि च न दीर्घप्रेक्षी संप्रति जाते कुमित्र इव ॥२२॥

कर्णा अपि प्रथमं वचनं निश्रुण्वन्तौ मन्मनमप्युल्लापम् । तौ सुमहान्तमपि शब्दं न श्रुणुतः प्रभो ! दुष्पुत्र इव ॥२३॥

येऽपि ममासन् पुरा दन्ता वरकुटजकुसुम संकाशाः । तेऽपि जरावार्धकिकृता पतिता अरका इव तुम्बात् ॥२४॥

आस्तामेव प्रथमतरं हस्तौ दृढचापकर्षणसमर्थौ । तावपि च गज इव कवलं मुखे दुःखैः ढोकयतः ॥२५॥

---

१. पइणा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जङ्घाओ वि य मज्झं, आसि पुरा चलण-गमणदच्छाओ । नाह ! अणायत्ताओ, संपइ जह दुट्ठमहिलाओ ॥२६॥

नवरं चिय हियइट्ठा, दइया विव नरवई महं लट्ठी । जा कुणइ अवट्ठम्भं, घुलन्त-विवडन्तदेहस्स ॥२७॥

तूरन्तस्स य अङ्गं, कम्पइ बहुला हवन्ति नीसासा । खेओ य समुप्पज्जइ, गई वि मन्दं समुव्वहइ ॥२८॥

कत्तो च्चिय वक्खेवो ?, सामिय ! अहयं जराए परिगहिओ । आणाए तुज्झ एन्तो, इमाए वेलाए संपत्तो ॥२९॥

सुणिऊण तस्स वयणं, राया चिन्तेइ अद्धुवं देहं । तडिविलसियं व नज्जइ, खणेण जीयं पि नासेइ ॥३०॥

देहस्स कए पुरिसा, कुणन्ति पावं परिग्गहासत्ता । विसयविसमोहियमई, धम्मं दूरेण वज्जेन्ति ॥३१॥

पुण्णेण परिग्गहिया, ते पुरिसा जे गिहं पयहिऊणं । धम्मचरणोवदेसं, कुणन्ति निच्चं दढधिईया ॥३२॥

कइया हं विसयसुहं, मोत्तूण परिग्गहं च निस्सङ्गो । काहामि जिणतवं चिय, दुक्खक्खयकारणट्ठाए ॥३३॥

भुत्तं चिय विसयसुहं, पुहई परिपालिया चिरं कालं । जणिया य पवरपुत्ता, अन्नं किं वा पडिक्खामि ? ॥३४॥

परिचिन्तिऊण एयं, राया पुव्विं कयस्स अवसाणे । धम्माणुरागरत्तो, भोगेसु अणायरं कुणइ ॥३५॥

कस्स वि कालस्स तओ, विहरन्तो सुमहएण सङ्घेणं । पत्तो सएयपुरिं, मुणिवसभो सव्वसत्तहिओ ॥३६॥

पन्थायवपरिसमियं, सङ्घं ठविऊण [1]सरसिउद्देसं । पविसरइ अप्पदसमो, महिन्दउदयं वरुज्जाणं ॥३७॥

तस-पाण-जन्तुरहिए, सिलायले समयले मणभिरामे । नागद्दुमस्स हेट्ठे, चउनाणी तत्थ उवविट्ठो ॥३८॥

जङ्घे अपि ममास्तां पुरा चलनगमनदक्षे । नाथ ! अनायत्ते संप्रति यथा दुष्टमहिला ॥२६॥

नवरमेव हृदयेष्टा दयितेव नरपति ! मम यष्टिः । या करोत्यिवष्टम्भं कम्पमानविपतद्देहस्य ॥२७॥

त्वरमानस्यश्चाङ्गं कम्पते बहुला भवन्ति निश्वासाः । स्वेदश्च समुत्पद्यते गतिरपि मन्दं समुद्वहति ॥२८॥

कुत एव व्याक्षेपः ? स्वामिन्नहं जरया परिगृहीतः । आज्ञया तवायानस्यां वेलायां संप्राप्तः ॥२९॥

श्रुत्वा तस्य वचनं राजा चिन्तयत्यध्रुवं देहम् । तडिद्विलसितमिव ज्ञायते क्षणेन जीवितमपि नश्यति ॥३०॥

देहस्य कृते पुरुषाः कुर्वन्ति पापं परिग्रहासक्ताः । विषयविषमोहितमतयो धर्मं दूरेण वर्जयन्ति ॥३१॥

पुण्येन परिगृहीतास्ते पुरुषा ये गृहं प्रहाय । धर्मचरणोपदेशं कुर्वन्ति नित्यं दृढधृतयः ॥३२॥

कदा ऽहं विषयसुखं मुक्त्वा परिग्रहं च निःसङ्गः । करिष्यामि जिनतप एव दुःखक्षयकारणार्थाय ॥३३॥

भुक्तमेव विषयसुखं पृथिवी परिपालिता चिरंकालम् । जनिताश्च प्रवरपुत्रा अन्यत् किं वा प्रतीक्षे ? ॥३४॥

परिचिन्त्यैतद्राजा पूर्वकृतस्यावसाने । धर्मानुरागरक्तो भोगेष्वनादरं करोति ॥३५॥

कस्यापि कालस्य ततो विहरन्सुमहता सङ्घेन । प्राप्तः साकेतपुरिं मुनिवृषभः सर्वसत्त्वहितः ॥३६॥

पथातपपरिश्रान्तं संघं स्थापयित्वा सरसुद्देशम् । प्रविशत्यात्मदशमो महेन्द्रोदयं वरोद्यानम् ॥३७॥

त्रस-प्राण-जन्तुरहिते शिलातले समतले मनोभिरामे । नागद्रुमस्याधश्चतुर्ज्ञानी तत्रोपविष्टः ॥३८॥

---

१. सरसिउद्देसं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केई गुहानिवासी, पब्भारेसु य अवट्ठिया समणा । गिरिकन्दरेसु अन्ने, समासिया चेइयहरेसु ॥३९॥

सो सव्वभूयसरणो, चाउव्वण्णेण समणसङ्घेणं । तत्थेव गमइ मासं, ताव च्चिय पाउसो पत्तो ॥४०॥

गज्जन्ति घणा गरुयं, पाडिच्छडाडोवभासुरं गयणं । धारासयजज्जरिया, नवसासससमाउला पुहई ॥४१॥

परिवड्ढन्ति नदीओ, जाया पहियाण दुग्गमा पन्था । ऊसुगमणाओ एत्तो, गयवइयाओ विसूरेन्ति ॥४२॥

झज्झ त्ति निज्झराणं, बप्पीहय-दद्दुराण मोराणं । सद्दो पवित्थरन्तो, वारणलीलं विलम्बेइ ॥४३॥

एयारिसम्मि काले, समणा सज्झाय-झाण-तवनिरया । अच्छन्ति महासत्ता, दुक्खविमोक्खं विचिन्तेन्ता ॥४४॥

अह अन्नया नरिन्दो, पभायसमये भडेहि परिकिण्णो । वच्चइ उज्जाणवरं, मुणिवन्दणभत्तिराएणं ॥४५॥

संपत्तो य दसरहो, अहिवन्देऊण भावओ साहू । तत्थेव य उवविट्ठो, सुणेइ सिद्धन्तसंबन्धं ॥४६॥

लोगो दव्वाणि तहा, खेत्तविभागो य कालसब्भावो । कुलगरपरम्परा वि य, नरेन्दवंसा अणेगविहा ॥४७॥

[1]सुणिऊण पणमिऊण य, मुणिवसहं नरवई पहट्ठमणो । पविसइ नियय[2]नयरी, गमेइ कालं जहिच्छाए ॥४८॥

एवं राया मुणिगुणकहासत्तचित्तो महप्पा, पूया-दाणं विणयपणओ देइ सव्वायरेणं ।
सेविज्जन्तो गमइ दियहे दिव्वनारीजणेणं, पुव्वोवत्तं विमलहियओ भुञ्जई देहसोक्खं ॥४९॥

॥ इय पउमचरिए दसरहवइरागसव्वभूयसरणागमो नाम एगूणतीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

केऽपि गुफानिवासिनः प्राग्भारेषु चावस्थिताः श्रमणाः । गिरिकन्दरेष्वन्ये समाश्रिताश्चैत्यगृहेषु ॥३९॥

स सर्वभूतशरणश्चतुवर्णेन श्रमणसङ्घेन । तत्रैव गमयति मासं तावदेव प्रावृट् प्राप्तः ॥४०॥

गर्जन्ति घना गुरुकं, तडिच्छटाटोपभासुरं गगनम् । धाराशतजर्जरिता नवशस्यसमाकुला पृथिवी ॥४१॥

परिवर्धन्ते नद्यो जाता पथिकानां दुर्गमाः पन्थानः । उत्सुकमनस इतो गतपतिकाः खिद्यन्ते ॥४२॥

झर्झर इति निर्झराणां चातक-दुर्दुराणां मयूराणाम् । शब्दः प्रविस्तरन् वारणलीलां विडम्बयति ॥४३॥

एतादृशे काले श्रमणाः स्वाध्याय-ध्यान-तपोनिरताः । आसते महासत्त्वा दुःखविमोक्षं विचिन्तयन्तः ॥४४॥

अथान्यदा नरेन्द्रः प्रभातसमये भटैः परिकीर्णः । व्रजत्युद्यानवरं मुनिवन्दनभक्तिरागेण ॥४५॥

संप्राप्तश्च दशरथोऽभिवन्द्य भावात्साधुंस्तत्रैव चोपविष्टः श्रुणोति सिद्धान्तसम्बन्धम् ॥३६॥

लोको द्रव्याणि तथा क्षेत्रविभागश्च कालसद्भावः । कुलकरपरम्पराऽपि च नरेन्द्रवंशा अनेकविधाः ॥४७॥

श्रुत्वा प्रणम्य च मुनिवृषभं प्रहृष्टमनाः । प्रविशति निजनगरीं गमयति कालं यथेच्छया ॥४८॥

एवं राजा मुनिगुणकथासक्तचित्तो महात्मा पूजा-दानं विनयप्रणतो ददाति सर्वादरेण ।
सेव्यमानो गमयति दिवसान् दिव्यनारीजनेन पूर्वोपेतं विमलहृदयो भुनक्ति देहसौख्यम् ॥४९॥

॥ इति पद्मचरित्रे दशरथवैराग्य-सर्वभूत-शरणागमो नामैकोनत्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. सुणिऊण-प्रत्य० । २. नयरि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३०. भामण्डलसंगमविहाणं

घणगरुयगज्जियरवो, कालो च्चिय पाउस वइक्कन्तो । उद्दण्डपुण्डरीओ, संपइ सरओ समणुपत्तो ॥१॥

ववगयघणसेवालं, ससिहंसं धवलतारयाकुमुयं[१] । लोगस्स कुणइ पीई, नभसलिलं पेच्छिउं सरए ॥२॥

चक्काय-हंस-सारस-अन्नोन्नरसन्तकयसमालावा । निप्फण्णसव्वसस्सा, अहियं चिय रेहए वसुहा ॥३॥

भामण्डलस्स एवं, सीयाचिन्ताए गहियहिययस्स । सरओ च्चिय वोलीणो, मयणमहाजलणतवियस्स ॥४॥

अह अन्नया कुमारो, [२]लज्जा मोत्तूण पिउसगासम्मि । सीयाए कारणट्ठे, भणइ वसन्तद्धयं मित्तं ॥५॥

मा कुणसु दीहसुत्तं, परकज्जं सीयलं परिगणेन्तो । मयणसमुद्दविवडियं, सुपुरिस ! तं मे न उक्खिवसि ॥६॥

एवं समुल्लवन्तं, भणइ कुमारं महद्धओ वयणं । निसुणेहि कहिज्जन्तं, सम्बन्धं तीए कन्नाए ॥७॥

जणओ कुमार ! अम्हे, एत्थाऽऽणेऊण मग्गिओ कन्नं । तेणं पि एवं भणियं, रामस्स मए पढमदिन्ना ॥८॥

पुणरवि कहइ मित्तो, सव्वं धणुयाइयं जहावत्तं । रामेण निवइमज्झे, सीया विभवेण परिणीया ॥९॥

नीया साएयं[३]पुरी, रामेण महाबलेण सा कन्ना । इन्दो वि पुव्वविहियं कुमार ! न य अन्नहा कुणइ ॥१०॥

सुणिऊण वयणमेयं, रुट्ठो भामण्डलो भणइ एवं । विज्जाहरत्तणं मे, निरत्थयं तीए रहियस्स ॥११॥

---

३०. भामण्डलसंगमविधानम्

घनगुरुकगर्जितरवः काल एव प्रावृट् व्यतिक्रान्तः । उद्दण्डपुण्डरिकः संप्रति शरत् समनुप्राप्तः ॥१॥

व्यपगतघनशेवालं शशिहंसं धवलतारकाकुमुदम् । लोकस्य करोति प्रीति नभः सलिलं दृष्ट्वा शरदि ॥२॥

चक्रवाक्-हंस-सारसान्योन्यरसन्कृतसमालापा । निष्पन्नसर्वशस्याऽधिकमेव राजते वसुधा ॥३॥

भामण्डलस्येवं सीताचिन्तया गृहीतहृदयस्य । शरदेव व्यतितो मदनमहाज्वलनतप्तस्य ॥४॥

अथान्यदा कुमारो लज्जां मुक्त्वा पितृसकाशे । सीतायाः कारणार्थे भणति वसन्तध्वजं मित्रम् ॥५॥

मा कुरु दीर्घसूत्रं परकार्यं शीतलं परिगणयन् । मदनसमुद्रविपतितं सत्पुरुष ! त्वं मे नोत्क्षिपसि ॥६॥

एवं समुल्लपन्तं भणति कुमारं महाध्वजो वचनम् । निश्रुणु कथ्यमानं संबन्धं तस्याः कन्यायाः ॥७॥

जनकः कुमार ! अस्माभिरत्रानीय मार्गितः कन्याम् । तेनाप्येवं भणितं रामाय मया प्रथमदत्ता ॥८॥

पुनरपि कथयति मित्रं सर्वं धनुष्यादिकं यथावृत्तम् । रामेण नृपतिमध्ये सीता विभवेन परिणीता ॥९॥

नीता साकेतपुरीं रामेण महाबलेन सा कन्या । इन्द्रोऽपि पूर्वविहितं कुमार ! न चान्यथा करोति ॥१०॥

श्रुत्वा वचनमेतद्रुष्टो भामण्डलो भणत्येवम् । विद्याधरत्वं मे निरर्थकं तस्या रहितस्य ॥११॥

---

१. कुसुम-मु० । २. लज्जं-प्रत्य० । ३. पुरिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एव भणिऊण तो सो, सन्नद्धो निययसाहणसमग्गो । अह जाइउप्पयंतो, साएयपुरिं सवडहुत्तो ॥१२॥

तं पेच्छिऊण सहसा, वियब्भनयरं नहेण वच्चन्तो । संभरियपुव्वजम्मो, मुच्छावसविम्भलो जाओ ॥१३॥

नीओ य नियय‍भवणं, भडेहि अहियं समाउलमणेहिं । चन्दणजलोल्लियङ्गो, पडिबुद्धो तक्खणं चेव ॥१४॥

भणिओ चन्दगईणं, पुत्तय ! किं कारणं गओ मुच्छं ? । एयं कहेहि मज्झं, मयणावत्थं पमोत्तूणं ॥१५॥

लज्जाओणमियसिरो, भणइ भामण्डलो विरुद्धं मे । परिचिन्तियं महाजस ! घणमोहपसङ्गजोएणं ॥१६॥

जीसे पडम्मि रूवं, आलिहियं नारएण निक्खुत्तं । सा मज्झ नियय[1]बहिणी, एक्कोयरगब्भसंभूया ॥१७॥

भामण्डलपूर्वभवः —

भणइ पुणो चन्दगई, पुत्तय ! साहेहि परिफुडं एयं । कह तुज्झ नियय‍बहिणी सा कन्ना ? कस्स वा दुहिया ? ॥१८॥

सो भणइ ताय ! निसुणसु, मह चरियं पुव्व जम्मसंबन्धं । अत्थि वियब्भा नयरी, महिन्दागिरिसंक[2]डे दुग्गे ॥१९॥

तत्थाहं आसि पुरा, अह कुण्डलमण्डिओ नरवरेन्दो । भज्जा विप्पस्स हिया, तया मए कामवसएणं ॥२०॥

अणरण्णनरवईणं, बद्धो हं छुट्टिऊण हिण्डन्तो । पेच्छामि तत्थ समणं, तवलच्छिविभूसियसरीरं ॥२१॥

तस्समणपायमूले, धम्मं सुणिऊण भावियमणेणं । गहियं अणामिसवयं, सद्धम्मे मन्दसत्तेणं ॥२२॥

जिणवरधम्मस्स इमं, माहप्पं एरिसं अहो लोए । घणपावकम्मकारी, तह वि अहं दुग्गइं न गओ ॥२३॥

एवं भणित्वा तदा सः सन्नद्धो निजसाधनसमग्रः । अथ यात्युत्पतन् साकेतपुरीमभिमुखः ॥१२॥

तं प्रेक्ष्य सहसा विदर्भनगरं नभसागच्छन् । संभृतपूर्वजन्मा मुर्च्छावशविह्वलो जातः ॥१३॥

नीतश्च निजभवनं भटैरधिकं समाकुलमनोभिः । चन्दनजलोपलिप्ताङ्गः प्रतिबुद्धस्तत्क्षणमेव ॥१४॥

भणित श्चन्द्रगतिना पुत्र ! किं कारणं गतो मूर्च्छाम् ? । एतत्कथय मम मदनावस्थं प्रमुच्य ॥१५॥

लज्जावनतशरीरो भणति भामण्डलो विरुद्धं मे । परिचिन्तितं महायशः ! घनमोहप्रसङ्गयोगेन ॥१६॥

यस्याः पटे रुपमालिखितं नारदेन निश्चितम् । सा मम निजभगिन्येकोदरगर्भसम्भूता ॥१७॥

भामण्डलपूर्वभवः -

भणति पुनश्चन्द्रगतिः पुत्र ! कथय परिस्फुटमेतत् । कथं तव निजभगिनी सा कन्या ? कस्य वा दुहिता ? ॥१८॥

स भणति तात ! निश्रुणु मम चरित्रं पूर्वजन्मसम्बन्धम् । अस्ति विदर्भा नगरी महेन्द्रगिरिसंकटे दुर्गे ॥१९॥

तत्राहमासीत्पुराऽथ कुण्डलमण्डितो नरवरेन्द्रः । भार्या विप्रस्य हृता तदा मया कामवशेन ॥२०॥

अनरण्यनरपतिना बद्धोऽहं छुटित्वा हिण्डमानः । पश्यामि तत्र श्रमणं तपोलक्ष्मीविभूषितशरीरम् ॥२१॥

तच्छ्रमणपादमूले धर्मं श्रुत्वा भावितमनसा । गृहीतमनामिषव्रतं सद्धर्मे मन्दसत्त्वेन ॥२२॥

जिनवरधर्मस्येदं माहात्म्यमिदृशमहो ! लोके । घनपापकर्मकारी तथाप्यहं दुर्गतिं न गतः ॥२३॥

---

१. भइणी-प्रत्य० । २. संकुले-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नियमेण संजमेण य, अणन्नदिट्ठित्तणेण मरिऊणं । जाओ य विदेहाए, समयं अन्नेण जीवेणं ॥२४॥
जस्स मए सा महिला, गहिया सो सुरवरो समुप्पन्नो । तेणाहं अवहरिओ, मुक्को मणिकुण्डले दाउं ॥२५॥
निवडन्तो ताय ! तुमे, दिट्ठो घेत्तूण आणिओ इहइं । परिवड्ढिओ कमेणं, पत्तो विज्जाहरत्तं च ॥२६॥
सुणिऊण पगयमेयं, चन्दगई सह जणेण विम्हइओ । धिद्धिक्कारमुहरवो, संसारठिइं विनिन्देइ ॥२७॥
दाऊण नियरज्जं, पुत्तस्स गओ सपरियणाइण्णो । मुणिसव्वभूयसरणं, राया संसारपरिभीओ ॥२८॥
दिट्ठो महिन्दउदए, उज्जाणे वन्दिओ समणसीहो । भणिओ य मज्झ वयणं, भयवं ! निसुणेहि एगमणो ॥२९॥
तुज्झ पसाएण अहं, जिणदिक्खं गेण्हिऊण कयनियमो । इच्छामि विणिग्गन्तुं, इमाउ भवपञ्जरघराओ ॥३०॥
भणिओ य एवमेयं, मुणिणा वच्छल्लभावहियएणं । भामण्डलेण वि तओ, निक्खमणमहो कओ विउलो ॥३१॥
जणमहारायसुओ, जयउ पहामण्डलो वरकुमारो । बन्दिजणुग्घदुट्ठरवो, वित्थरिऊणं समाढत्तो ॥३२॥
भवणे विमुक्कनिद्दा, सीया आयण्णिऊण तं सद्दं । चिन्तेइ कोवि अन्नो, जणओ जस्सेस पुत्तवरो ॥३३॥
सूयाहरम्मि जो सो, मह भाया अवहिओ वइरिएणं । कम्मस्स उवसमेणं, किं व इहं सो समल्लीणो ? ॥३४॥
तो जणयरायदुहिया, रोवन्ती भणइ राघवो वयणं । नट्ठं हियं च भद्दे ! न सोइयव्वं बुहजणेणं ॥३५॥
एवं पभायसमए, उच्चलिओ दसरहो मुणिसयासं । जवउ-बल-पुत्तसहिओ, कमेण पत्तो तमुज्जाणं ॥३६॥
पेच्छइ य तत्थ राया, सेन्नं विज्जाहराण वित्थिण्णं । उवसोहिया य भूमी, धय-तोरण-वेजयन्तीहिं ॥३७॥

नियमेन संयमेन चानन्यदृष्टित्वेन मृत्वा । जातश्च विदेहायां समकमन्येन जीवेन ॥२४॥
यस्य मया सा महिला गृहीता स सुरवरः समुत्पन्नः । तेनाहमपहृतो मुक्तो मणिकुण्डलौ दत्वा ॥२५॥
निपतंस्तात ! त्वया दृष्टो गृहीत्वाऽऽनीत इह । परिवर्धितः क्रमेण प्राप्तो विद्याधरत्वं च ॥२६॥
श्रुत्वा प्रकटमेतच्चन्द्रगतिः सह जनेन विस्मितः । धिग्धिक्कारमुखरवः संसारस्थितिं विनिन्दति ॥२७॥
दत्वा निजराज्यं पुत्रस्य गतः सपरिजनाकीर्णः । मुनिसर्वभूतशरणं राजा संसारपरिभीतः ॥२८॥
दृष्टो महेन्द्रोदय उद्याने वन्दितः श्रमणसिंहः । भणितश्च मम वचनं भगवन् ! निश्रुण्वेकाग्रमनाः ॥२९॥
तव प्रसादेनाऽहं जिनदिक्षां गृहीतुं कृतनियमः । इच्छामि विनिर्गन्तुमस्माद्भवपञ्जरगृहात् ॥३०॥
भणितश्चैवमेतन्मुनिना वात्सल्यभावहृदयेन । भामण्डलेनाऽपि ततो निष्क्रमणमहः कृतो विपुलः ॥३१॥
जनकमहाराजसुतो जयतु प्रभामण्डलो वरकुमारः । बन्दिजनोद्घुष्टरवो विस्तर्तुं समारब्धः ॥३२॥
भवने विमुक्तनिद्रा सीताऽऽकर्ण्य तच्छब्दम् । चिन्तयति कोऽप्यन्यो जनको यस्यैष पुत्रवरः ॥३३॥
सूतागृहे यः स मम भ्राताऽपहृतो वैरिणा । कर्मण उपशमेन किं वेह स समालीनः ? ॥३४॥
तदा जनकराजदुहितरं रुदन्तीं भणति राघवो वचनम् । नष्टं हृतं च भद्रे ! न शोचितव्यं बुधजनेन ॥३५॥
एवं प्रभातसमय उच्चलितो दशरथो मुनिसकाशम् । युवति-बल-पुत्रसहितःक्रमेण प्राप्तस्तदुद्यानम् ॥३६॥
पश्यति च तत्र राजा सैन्यं विद्याधराणां विस्तीर्णम् । उपशोधिता च भूमि र्ध्वज-तोरण-वैजयन्तिभिः ॥३७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं वन्दिउण साहुं, उवविट्ठो दसरहो सह बलेणं । भामण्डलो वि [1]एत्तो, चिट्ठइ मुणिपायमूलत्थो ॥३८॥
विज्जाहरा य मणुया, आसन्ने मुणिवरा जणियतोसा । निसुणन्ति तग्गयमणा, गुरुवयणविणिग्गयं धम्मं ॥३९॥
सायारमणायारं, सुद्धं बहुभेय-पज्जयं धम्मं । भवियसुहुप्पायणयं, अभव्वजीवाण भयजणणं ॥४०॥
सम्मद्दंसणजुत्ता, तव-नियमरया विसुद्धदढभावा । देहे य निरवयक्खा, समणा पावन्ति सिद्धिगइं ॥४१॥
जे वि य गिहधम्मरया, पूया-दाणाइसीलसंपन्ना । सङ्काइदोसरहिया, होहिन्ति सुरा महिड्ढीया ॥४२॥
एवं बहुप्पयारं, जिणवरधम्मं विहीए काऊणं । लभिहिन्ति देवलोए, ठाणाणि जहाणुरूवाणि ॥४३॥
जे पुण अभव्वजीवा, जिणवयणपरम्मुहा कुदिट्ठीया । ते नरयतिरियदुक्खं, अणुहोन्ति अणन्तयं कालं ॥४४॥
एवं मुणिवरविहियं, धम्मं सोऊण दसरहो भणइ । केण निभेण विउद्धो, चन्दगई खेयराहिवई ? ॥४५॥
संसारम्मि अणन्ते, जीवो कम्मावसेण हिण्डन्तो । गहिओ चन्दगईणं, बालो [2]वरकुण्डलाभरणो ॥४६॥
संवड्ढिओ कमेणं, एसो भामण्डलो वरकुमारो । जणयतणयाए रूवं, दट्ठुं मयणाउरो जाओ ॥४७॥
सरिओ य पुव्वजम्मो, [3]मुच्छा गन्तुं पुणो वि आसत्थो । परिपुच्छिओ कुमारे, चन्दगईणं तओ भणइ ॥४८॥
अत्थेत्थ भरहवासे, वियब्भनयरं सुदुग्गपायारं । तत्थाहं आसि निवो, वरकुण्डलमंडिओ नामं ॥४९॥
विप्पस्स मए भज्जा, हरिया बद्धो य बालचन्देणं । मुक्को मुणिवरपासे, गेण्हामि अणामिसं च वयं ॥५०॥

तं वन्दित्वा साधुमुपविष्टो दशरथः सहबलेन । भामण्डलोऽपीतस्तिष्ठति मुनिपादमूलस्थः ॥३८॥
विद्याधराश्च मनुष्या आसन्ने मुनिवरा जनिततोषाः । निश्रुण्वन्ति तद्गतमनसो गुरुवदनविनिर्गतं धर्मम् ॥३९॥
साकारमनाकारं शुद्धं बहुभेद-पर्यायं धर्मम् । भाविकसुखोत्पादनकमभव्यजीवानां भयजननम् ॥४०॥
सम्यग्दर्शनयुक्तास्तपोनियमरता विशुद्धदृढभावाः । देहे च निरपेक्षाः श्रमणाः प्राप्नुवन्ति सिद्धिगतिम् ॥४१॥
ये अपि च गृहधर्मरताः पूजादानादिशीलसंपन्नाः । शङ्कादिदोषरहिता भवन्ति सुरा महर्द्धिकाः ॥४२॥
एवं बहुप्रकारं जिनवरधर्मविधिना कृत्वा । लप्स्यन्ते देवलोके स्थानानि यथानुरूपाणि ॥४३॥
ये पुनरभव्यजीवा जिनवचनपराङ्मुखाः कुदृष्टयः । ते नरकतिर्यग्दुखमनुभवन्त्यनन्तं कालम् ॥४४॥
एवं मुनिवरविहितं धर्मं श्रुत्वा दशरथो भणति । केन निभेन विबुद्धश्चन्द्रगतिः खेचराधिपतिः ? ॥४५॥
संसारेऽनन्ते जीवः कर्मवशेन हिण्डमानः । गृहीतश्चन्द्रगतिना बालो वरकुण्डलाभरणः ॥४६॥
संवर्धितः क्रमेणैष भामण्डलो वरकुमारः । जनकतनयाया रुपं दृष्टवा मदनातुरो जातः ॥४७॥
स्मृत्वा पूर्वजन्म मूर्च्छां गत्वा पुनराप्याश्वस्तः । परिपृष्टः कुमारश्चन्द्रगतिना ततो भणति ॥४८॥
अस्त्यत्रभरतवर्षे विदर्भनगरं सुदुर्गप्राकारम् । तत्राऽहमासीन्नृपो वरकुण्डलमण्डितो नाम ॥४९॥
विप्रस्य मया भार्या हृता बद्धश्च बालचन्द्रेण । मुक्तो मुनिवरपार्श्वे गृह्णाम्यनामिषं च व्रतम् ॥५०॥

---

१. एत्तो-प्रत्य० । २. कयकुण्ड-मुना० । ३. मुच्छं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालं काऊण तओ, जणयस्स पियाए गब्भसंभूओ। जाओ बालाए समं, जिणवरधम्माणुभावेणं ॥५१॥
महिलाविओगदुहिओ, विप्पो वि य पिङ्गलो तवं काउं। उववन्नो पढमयरं, देवो संभरइ पुव्वभवं ॥५२॥
तो जायमेत्तओ हं, घेत्तूणं तेण वेरियसुरेणं। मुक्को य धरणिवट्टे, पुणरवि य तुमे घरं नीओ ॥५३॥
परिवड्ढिओ कमेणं, जाओ विज्जाहरो तुह गुणेणं। ओमुच्छिएण सहसा, अन्नभवो मे तओ सरिओ ॥५४॥
माया मे वइदेही, जणओ य पिया न एत्थ संदेहो। सा वि य मज्झ नराहिव ! सिया एक्कोयरा बहिणी ॥५५॥
सुणीऊण पगयमेयं, सव्वे विज्जाहरा सुविम्हइया। चन्दगई वि नरिन्दो, पव्वइओ जायसंवेगो ॥५६॥
एत्थन्तरे मुणिन्दं, पुच्छइ भामण्डलो मह सिणेहं। अहियं वहइ महायस ! चन्दगई केण कज्जेणं ? ॥५७॥
अंसुमईए महायस ! समप्पिओ वा अहं तओ पढमं। तत्थेव खेयरपुरे, जम्माणन्दो कओ परमो ॥५८॥

चन्द्रगति-भामण्डलपूर्वभवसम्बन्धः —

तो सव्वभूयसरणो, भणइ य भामण्डलं सुणसु एत्तो। [1]माया-वित्तजुवलयं जं आसि परब्भवे तुज्झं ॥५९॥
विप्पो दारुग्गामे, विमुची नामेण गेहिणी तस्स। अणुकोसा अइभूई, पुत्तो सुण्हा य से सरसा ॥६०॥
अह अन्नया कयाई, विप्पो सरसं नईए दट्ठूणं। अवहरइ मयणमूढो, [2]कयाणनामो महापावो ॥६१॥
एत्तो सो अइभूई, कन्तासोगाउरो महिं सयलं। परिभमइ गवेसन्तो, ताव य से लूडियं गेहं ॥६२॥

कालं कृत्वा ततो जनकस्य प्रियाया गर्भसंभूतः। जातो बालायाः समं जिनवरधर्मानुभावेन ॥५१॥
महिलावियोगदुःखितो विप्रोऽपि च पिङ्गलस्तपः कृत्वा। उत्पन्नः प्रथमतरं देवः स्मरति पूर्वभवम् ॥५२॥
तदा जातमात्रकोऽहं गृहीत्वा तेन वैरिसुरेण। मुक्तश्च धरणिपृष्टे पुनरपि च त्वया गृहं नीतः ॥५३॥
परिवर्धितः क्रमेण जातो विद्याधरस्तव गुणेन। उन्मथितेन सहसाऽन्यभवो मे ततः स्मृतः ॥५४॥
माता मे वैदेही जनकश्च पिता नात्र संदेहः। साऽपि च मम नराधिप ! सीतैकोदरा भगिनी ॥५५॥
श्रुत्वा प्रगटमेतत्सर्वे विद्याधराः सुविस्मिताः। चन्द्रगतिरपि नरेन्द्रः प्रव्रजितो जातसंवेगः ॥५६॥
अत्रान्तरे मुनीन्द्रं पृच्छति भामण्डलो मयि स्नेहम्। अधिकं वहति महायशः ! चन्द्रगतिः केन कारणेन ? ॥५७॥
अंशुमत्या महायशः ! समर्पितो वाऽहं ततः प्रथमतरम्। तत्रैव खेचरपुरे जन्मानन्दः कृतः परमः ॥५८॥

चन्द्रगतिः भामण्डलपूर्वभवसम्बन्धः -

तदा सर्वभूतशरणो भणति च भामण्डलं श्रुण्वितः। मातापितृयुगलकं यदासीत्परभवे तव ॥५९॥
विप्रो दारुग्रामे विमुचि नाम्ना गृहिणी तस्य। अनुकोशाऽतिभूतिः पुत्रः स्नुषा च तस्याः सरसा ॥६०॥
अथान्यदा कदाचिद्विप्रो सरसां नद्यां दृष्ट्वा। अपहरति मदनमूढः कयाणो नामा महापापः ॥६१॥
इतः सोऽतिभूतिः कान्ताशोकातुरो महीं सकलाम्। परिभ्रमति गवेषयंस्तावच्च तस्य लुप्तं गृहम् ॥६२॥

---

१. मातापितृयुगलकम्। २. जुयलयं-प्रत्य०। ३. धणदत्तसुओ कयाणो य-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विमुची वि य पढमयरं, हिण्डइ देसं तु दक्खिणाकङ्खी । सुणिऊण गेहभङ्गं, पुत्तस्स तओ पडियित्तो ॥६३॥
चीरम्बरपरिहिणिं, अणुकोसं पेच्छिऊण अइदुहियं । संथावेइ य विमुची, तीए समं मेइणी भमइ ॥६४॥
पेच्छइ य सच्चरिपुरे, अवहिसमग्गं मुणिं विगयमोहं । सुण्हा-सुयसोगेण य, निव्वेयं चेव पडिवन्नो ॥६५॥
दट्ठूण साहुरिद्धिं, संसारठिइं च तत्थ निसुणेउं । संवेगजणियकरणो, विमुची दिक्खं समणुपत्तो ॥६६॥
सा वि तहिं अणुकोसा, पासे अज्जाए कमलकन्ताए । संजमतवनियमधरी, जाया समणी समियपावा ॥६७॥
अह ताणि दो वि मरिउं, तव-नियमगुणेण देवलोगम्मि । निच्चालोयमणहरं गया य लोगान्तियं ठाणं ॥६८॥
अइभूइ कयनियाणो वि य, निस्सीलो निद्दओ करिय कालं । हिण्डेइ चाउरङ्गे, दुग्गइभवसंकडे भीमे ॥६९॥
सरसा वि य पव्वज्जं, काऊण तवं समाहिणा, मरिउं । उववन्ना कयपुण्णा, देवी चित्तुस्सवा नामं ॥७०॥
कम्मस्स उवसमेणं, होऊण कमेण तो कयाणो वि । जाओ य पिङ्गलो सो, पुत्तो च्चिय धूमकेउस्स ॥७१॥
अइभूई वि भमन्तो, संसारे हसपोयओ जाओ । सेणेसु खज्जमाणो, पडिओ जिणचेइयासन्ने ॥७२॥
सोऊण नमोक्कारं, कीरन्तं साहवेण कालगओ । दसवरिससहस्साऊ, नगोतरे किन्नरो जाओ ॥७३॥
चुइओ वियब्भनयरे, अह कुण्डलमण्डिओ समुप्पन्नो । अवहरइ पिङ्गलस्स उ, [1]कन्ता मयणाउरो तत्तो ॥७४॥
जो आसि पुरा विमुची, सो एसो चन्दविक्कमो राया । जा वि य सा अणुकोसा, सा [2]अंसुमई इहं जाया ॥७५॥

विमुचिरपि च प्रथमतरं भ्रमति देशं तु दक्षिणाकाङ्क्षी । श्रुत्वा गृहभङ्गं पुत्रस्य ततः प्रतिनिवृत्तः ॥६३॥
चीराम्बरपरिधानामनुकोशां दृष्ट्वाऽतिदुःखिताम् । संस्थापयति च विमुचिस्तस्याः समं मेदिनीं भ्रमति ॥६४॥
पश्यति च सत्यारिपुरेऽवधिसमग्रं मुनिं विगतमोहम् । स्नुषा-सुत शोकेन च निर्वेदमेव प्रतिपन्नः ॥६५॥
दृष्ट्वा साध्वर्द्धिं संसारस्थितिं च तत्र निश्रुत्य । संवेगजनितकरणो विमुचि दिक्षां समनुप्राप्तः ॥६६॥
साऽपि तत्रानुकोशा पार्श्वे आर्यायाः कमलकान्तायाः । संयमतपोनियमधरी जाता श्रमणी समितपापा ॥६७॥
अथ तौ द्वावपि मृत्वा तपोनियमगुणेन देवलोके । नित्यालोकमनोहरं गतौ च लोकान्तिकं स्थानम् ॥६८॥
अतिभूतिः कृतनिदाणोऽपि च निःशीलो निर्दयः कृत्वा कालम् । हिण्डते चातुरङ्गे दुर्गतिभवसंकटे भीमे ॥६९॥
सरसाऽपि च प्रव्रज्यां कृत्वा तपः समाधिना मृत्वा । उत्पन्ना कृतपुण्या देवी चित्रोत्सवा नामा ॥७०॥
कर्मण उपशमेन भूत्वा क्रमेण तदा कयाणोऽपि । जातश्च पिङ्गलः सः पुत्र श्चैव धूमकेतोः ॥७१॥
अतिभूतिरपि भ्रमन्संसारे हंसपोतको जातः । श्येनैः खाद्यमानः पतितो जिनचैत्यासन्नम् ॥७२॥
श्रुत्वा नमस्कारं कुर्वन्तं साधुना कालगतः । दशवर्षसहस्रायु र्नगोत्तरे किन्नरो जातः ॥७३॥
च्युतो विदर्भनगरे ऽथ कुण्डलमण्डितः समुत्पन्नः । अपहरति पिङ्गलस्य तु कान्ता मदनातुरस्ततः ॥७४॥
य आसीत्पुरा विमुचिः स एष चन्द्रविक्रमो राजा । याऽपि च साऽनुकोशा सांऽशुमतीह जाता ॥७५॥

---

१. कन्तं-प्रत्य० । २. पुप्फवई मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो चेव कयाणो खलु, सरसा हरिऊण भमइ संसारे। महिपिङ्गलो त्ति समणो, जाओ पुण सुरवरो मरिउं ॥७६॥
जो वि य सो अइभूई, सो हु तुमं कुण्डलो समुप्पन्नो। एतो ते संबन्धो, परभवजणियस्स कम्मस्स ॥७७॥
एयं चिय वित्तन्तं, सव्वं सुणिऊण दसरहो राया। भामण्डलं कुमारं, अवगूहइ तिव्वनेहेण ॥७८॥
तं पेच्छिऊण सिया, सहोयरं जायबन्धवसिणेहा। पगलन्तअंसुनिवहा, रुयइ च्चिय महुरसद्देण ॥७९॥
चिरकालदरिसणुस्सुय-हियया आलिङ्गिउं समासत्था। सीया वि य कमलमुही, परिओसुब्भिन्नरोमञ्ची ॥८०॥
रामेण लक्खणेण य, अन्नेण पि सेसबन्धवजणेणं। आलिङ्गिओ कुमारो, गरुयसिणेहाणुरागेणं ॥८१॥
तं पणमिऊण समणं, विज्जाहर-भूमिगोयरा सव्वे। हय-गय-जोहसमग्गा साएयपुरिं पविसरन्ति ॥८२॥
भामण्डलेण समयं, संमन्तेऊण दसरहो लेहं। पेसेइ खेयरवरं, आसेण समं पवणवेगं ॥८३॥
गन्तूण पणमिऊण य, पवणगईणं नराहिवो जणओ। वद्धाविओ य सहसा, पुत्तस्स समागमेणं तु ॥८४॥
लेहं समप्पियं सो जणओ सुणिऊण तस्स परितुट्ठो। देइ निययङ्गलग्गं, आहरणविहिं निरवसेसं ॥८५॥
लेहत्थमुणियसारो, सपरियणो नरवई सभज्जाओ। अभिणन्दिओ सुदूरं, कयकोउयमङ्गलरवेणं ॥८६॥
विज्जाहरसाहीणं, भज्जाए समं नराहिवो तुरियं। आरुहिऊण खणेणं, साएयपुरिं सममुपत्तो ॥८७॥
दट्ठूण नियपुत्तं, आलिङ्गिऊण रुयइ नरवसभो। अइदीहवियोगाणल-तविओ पगलन्तनयणजुओ ॥८८॥
रुइऊण समासत्थो, पुत्तं परिमुसइ अङ्गमङ्गेसु। हियएण जायहरिसो, चन्दणफरिसोवमं महइ ॥८९॥

यश्चैव कयाणः खलु सरसां हत्वा भ्रमति संसारे। मधुपिङ्गल इति श्रमणो जातः पुनः सुरवरो मृत्वा ॥७६॥
योऽपि च सोऽतिभूतिः स हु त्वं कुण्डलः समुत्पन्नः। एष तव सम्बन्धः परभवजनितस्य कर्मणः ॥७७॥
एवमेव वृत्तान्तं सर्वं श्रुत्वा दशरथो राजा। भामण्डलं कुमारमवगूहति तीव्रस्नेहेन ॥७८॥
तं दृष्ट्वा सीता सहोदरं जातबन्धुस्नेहा। प्रगलदश्रुनिवहा रोदित्येव मधुरशब्देन ॥७९॥
चिरकालदर्शनोत्सुकहृदयाऽऽलिङ्ग्य समाश्वस्ता। सीताऽपि च कमलमुखी परितोषोद्भिन्नरोमाञ्ची ॥८०॥
रामेण लक्ष्मणेन चान्येनाऽपि शेषबन्धुजनेन। आलिङ्गितः कुमारो गुरुकस्नेहानुरागेण ॥८१॥
तं प्रणम्य श्रमणं विद्याधर-भूमिगोचराः सर्वे। हय-गज-योधसमग्राः साकेतपुरिं प्रविशन्ति ॥८२॥
भामण्डलेन समकं सन्मन्त्र्य दशरथो लेखम्। प्रेषयति खेचरवरमश्वेन समं पवनवेगम् ॥८३॥
गत्वा प्रणम्य च पवनगतिना नराधिपो जनकः। वर्धापितश्च सहसा पुत्रस्य समागमेनं तु ॥८४॥
लेखं समर्पितं स जनकः श्रुत्वा तस्य परितुष्टः। ददाति निजाङ्गलग्नमाभरणविधिं निरवशेषम् ॥८५॥
लेखस्थमुणितसारः सपरिजनो नरपतिः सभार्याकः। अभिनन्दितः सुदूरं कृतकौतुकमङ्गलरवेण ॥८६॥
विद्याधरस्वाधीनं भार्यायाः समं नराधिपस्त्वरितम्। आरुह्य क्षणेन साकेतपुरिं समनुप्राप्तः ॥८७॥
दृष्ट्वा निजपुत्रमालिङ्ग्य रोदिति नरवृषभः। अतिदीर्घवियोगानलतप्तः प्रगलन्नयनयुग्मः ॥८८॥
रोदित्वा समाश्वस्तः पुत्रं परिमृशत्यङ्गमङ्गेषु। हृदयेन जातहर्षश्चन्दनस्पर्शोपमं काङ्क्षते ॥८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दट्ठूण सुयं जणणी, [1]मुच्छं गन्तूण तत्थ पडिबुद्धा । रुयइ कलुणं मयच्छी, चिरदंसणलद्धजीयासा ॥९०॥
जत्तो पभूइ पुत्तय ! केण वि बालत्तणम्मि अवहरिओ । तत्तो इमं सरीरं, दड्ढं चिन्तग्गिणा मज्झं ॥९१॥
तुह दरिसणोदएणं, विज्झवियं एत्थ नत्थि संदेहो । परितोससमूसवियं, अज्जप्पभिइं महं हिययं ॥९२॥
धन्ना सा [2]अंसुमई, जीए अङ्गाणि बालभावम्मि । परिचुम्बियाणि पुत्तय ! कीलणरयणेणुमइलाइं ॥९३॥
फुसिऊण नयणजुयलं, थणेसु खीरं तओ हरिसियङ्गी । अभिणन्दिया विदेहा, समगामे नियपुत्तस्स ॥९४॥
कुणइ जणओ महन्तं, पुत्तनिमित्तं समागमाणन्दं । जिणचेउयपूयत्थं, ण्हवणविहिं चेव सविसेसं ॥९५॥
भामण्डलेण भणिओ, रामो अच्चन्तबन्धवो तुहयं । सीया न गच्छइ पहू, जह उव्वेयं पयणुयं पि ॥९६॥
संभासिऊण सव्वे, जणयं मिहिलापुरिं विसज्जेउ । पियरं घेतूण गओ, नियय भामण्डलो ठाणं ॥९७॥
एवं सेणिय ! पेच्छ धम्मनिहसं तुङ्गं पुरा सेवियं, जाओ नेहनिरन्तरोच्छ्रयमणो [3]बन्धू पहामण्डलो ।
वज्जावत्तधणुं वसम्मि ठवियं सीया य से गेहिणी, रामस्सऽब्भुयकारणस्स विमलो भन्तो जसो मेइणी[4] ॥९८॥

॥ इय पउमचरिए भामण्डलसंगमविहाणो नाम तीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

दृष्ट्वा सुतं जननी मुर्च्छां गत्वा तत्र प्रतिबुद्धा । रोदिति करुणं मृगाक्षिश्चिरदर्शनलब्धजीविताशा ॥९०॥
यतः प्रभृति पुत्र ! केनापि बालत्वेऽपहृतः । तत इदं शरीरं दग्धं चिन्ताग्निना मम ॥९१॥
तव दर्शनोदयेन विध्यापितमत्र नास्ति संदेहः । परितोषसमुच्छ्रितमद्यप्रभृति मम हृदयम् ॥९२॥
धन्या सांशुमती ययाङ्गानि बालभावे । परिचुम्बितानि पुत्र ! क्रीडन्नजोरेणुमलिनानि ॥९३॥
स्पृष्ट्वा नयनयुगलं स्तनयोः क्षीरं ततो हर्षिताङ्गी । अभिनन्दिता विदेहा समागमे निजपुत्रस्य ॥९४॥
करोति जनको महान्तं पुत्रनिमित्तं समागमानन्दम् । जिनचैत्यपूजार्थं स्नपनविधिं चैव सविशेषम् ॥९५॥
भामण्डलेन भणितो रामोऽत्यन्तबन्धवस्तव । सीता न गच्छति प्रभो ! यथोद्वेगं प्रतनुकमपि ॥९६॥
संभाष्य सर्वाञ्जनकं मिथिलापुरीं विसर्ज्य । पितरं गृहीत्वा गतो निजकं भामण्डलः स्थानम् ॥९७॥
एवं श्रेणिक ! पश्य धर्मनिकषं तुङ्गं पुरा सेवितम् । जातः स्नेहनिरन्तरोच्छ्रयमना बन्धुः प्रभामण्डलः ।
वज्रावर्तधनु र्वशे स्थापितं सीता च तस्य गृहिणी रामस्याऽभ्युदयकारणस्य विमलं भ्रान्तं यशो मेदिनीम् ॥९८॥

॥ इति पद्मचरित्रे भामण्डलसंगमविधानो नाम त्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. मुच्छं-प्रत्य० । २. सा पुप्फवई-मु० । ३. बन्धू य भामण्डलो-प्रत्य० । ४. भेइणिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३१. दसरहपवज्जानिच्छयविहाणं

पुच्छइ मगहनरेन्दो, गणाहिवं दसरहो महारिद्धिं। केण व कएण पत्तो ? एयं साहेहि मे भयवं ! ॥१॥
तो भणइ इन्दभूई, सेणिय ! निसुणेहि दसरहो राया। मुणिसव्वभूयसरणं, पुच्छि नियय भवसमूहं ॥२॥
जं एव नरवईणं, अप्पहियं पुच्छिओए समणिसीहो। तो साहिउं पवत्तो, परभवपरियट्टणं बहुसो ॥३॥

दशरथपूर्वभवः—

तो भणइ दसरह ! तुमं, मिच्छत्तेणं तु भमिय संसारे। सेणापुरम्मि नयरे, अत्थि च्चिय भावणो नामं ॥४॥
भज्जा य दीविया से, तीए उवत्थी सुया समुप्पन्ना। सा मिच्छत्तमइलिया, साहूण अवण्णवादी उ ॥५॥
मरिऊण उवत्थी सा, भमिय चिरं नरय-तिरियजोणीसु। कम्मपरिणिज्जराए, कमेण पुण्णस्स उदएणं ॥६॥
जाओ च्चिय अङ्गपुरे, धरणेणं नयणसुन्दरीपुत्तो। बहुबन्धवो सुरूवो, नामेणं भद्दवरुणो त्ति ॥७॥
दाऊण भावसुद्धं, फासुयदाणं मुणिस्स कालगओ। धाइयसण्डम्मि तओ, उत्तरकुरुवे समुप्पन्नो ॥८॥
भोत्तूण मिहुणसोक्खं, कालगओ सुरवरो समुप्पन्नो। चइऊण पुक्खलाए, नयरीए नन्दिघोसस्स ॥९॥
जाओ च्चिय भज्जाए, पुहईए नन्दिबद्धणो नामं। अह अन्नया नरेन्दो, पडिबुद्धो नन्दिघोसो उ ॥१०॥

---

३१. दशरथप्रव्रज्यानिश्चयविधानम्

पृच्छति नरेन्द्रो गणाधिपं दशरथमहर्द्धिम्। केन वा कृतेन प्राप्तः ? एतत्कथय मे भगवन् ! ॥१॥
तदा भणतीन्द्रभूतिः श्रेणिक ! निश्रुणु दशरथो राजा। मुनिसर्वभूतशरणं पृच्छति निजकं भवसमूहम् ॥२॥
यदेव नरपतिनाऽऽत्महितं पृष्टः श्रमणसिंहः। तदा कथयितुं प्रवृत्तः परभवपर्यटनं बहुशः ॥३॥

दशरथपूर्वभवः -

ततो भणति दशरथ ! त्वं मिथ्यात्वेन तु भ्रान्त्वा। संसारे सेनापुरे नगरे अस्तिचैव भावनो नाम ॥४॥
भार्या च दीपिका तस्य तस्यारुपस्थी सुता समुत्पन्ना। सा मिथ्यात्वमलिना साधूनामवर्णवादी तु ॥५॥
मृत्वोपस्थी सा भ्रान्त्वा चिरं नरकतिर्यग्योनिषु। कर्मपरिनिर्जरायाः क्रमेण पुण्यस्योदयेन ॥६॥
जातश्चैवाङ्गपुरे धरणेन नयनसुन्दरीपुत्रः। बहुबान्धवः सुरुपो नाम्ना भद्रवरुण इति ॥७॥
दत्वा भावशुद्धं प्रासुकदानं मुनये कालगतः। घातकीखण्डे तत उत्तरकुरावुत्पन्नः ॥८॥
भुक्त्वा मिथुनसुखं कालगतः सुरवरः समुत्पन्नः। च्युत्वा पुष्कलायां नगर्यां नन्दिघोषस्य ॥९॥
जातश्चैव भार्यायां पृथिव्यां नन्दिवर्धनो नाम। अथान्यदा नरेन्द्रः प्रतिबुद्धो नन्दिघोषस्तु ॥१०॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारभउव्विग्गो, ठविऊणं नन्दिवद्धणं रज्जे । निक्खमइ नन्दिघोसो, पासम्मि जसोहरमुणिस्स ॥११॥
काऊण तवमुयारं, कालगओ सुरवरो समुप्पन्नो। अह नन्दिवद्धणो विय, सागारतवं कुणइ धीरो ॥१२॥
भोत्तूण [1]पुव्वकोडिं, रज्जं सण्णासणेण कालगओ । विमलामलबोंदिधरो, पञ्चमकप्पे सुरो जाओ ॥१३॥
तत्तो चुओ समाणो, अवरविदेहे नगम्मि वेयड्ढे । उत्तरवरसेढीए, विक्खाओ ससिपुरे राया ॥१४॥
नामेण रयणमाली, तस्स पियाए य कुच्छिसंभूओ । विज्जुलयाए पुत्तो, जाओ सूरंजयकुमारो ॥१५॥
कोहाणलविज्जाए, डहिउमणो रिउपुरं रहारूढो । वच्चन्तो च्चिय भणिओ, गयणलत्थेण देवेणं ॥१७॥
भो रयणमालिनरवइ ! मा ववससु एरिसं महापावं । निसुणेहि मज्झ वयणं, कहेमि तुह पुव्व संबन्धं ॥१८॥
इह भारहम्मि वरिसे, गन्धारे आसि भूरिणो नामं । दट्ठूण कमलगब्भं, साहुं तो गेण्हए नियमं ॥१९॥
न करेमि पुणो पावं, भणइ तओ एरिसं वयं मज्झं । पञ्चपलिओवमाइं, सग्गे अज्जेइ देवाउं ॥२०॥
उवमच्चुनामधेयो, तत्थेव पुरोहिओ वसइ पावो । तस्सुवएसेण वयं, मुञ्चइ भूरी अकयपुण्णो ॥२१॥
खन्देण हिंसिओ सो, पुरोहिओ गयवरो समुप्पन्नो । जुज्झे जज्जरियतणू, लहइ च्चिय कण्णजावं सो ॥२२॥
कालगओ गन्धारे, तत्थेव उ भूरिणस्स उप्पन्नो । जोयणगन्धाए सुओ, अरिहसणो नाम नामेणं ॥२३॥
दट्ठूण कमलगब्भं, पुव्वभवं सुमरिऊण पव्वइओ । कालगओ उप्पन्नो, सहसारे सुरवरो अहयं ॥२४॥

संसारभयोद्विग्नः स्थापयित्वा नन्दिवर्धनं राज्ये । निष्क्रामति नन्दिघोषः पार्श्वे यशोधरमुनेः ॥११॥
कृत्वा तप उदारं कालगतः सुरवरः समुत्पन्नः । अथ नन्दिवर्धनोऽपिच साकारं तपः करोति धीरः ॥१२॥
भुक्त्वा पूर्वकोटिं राज्यं संन्यासेन कालगतः । विमलामलबोंदिधरः पञ्चमकल्पे सुरो जातः ॥१३॥
ततश्च्युतस्सन्नपरविदेहे नगे वैताढ्ये । उत्तरवरश्रेणौ विख्यातः शशिपुरे राजा ॥१४॥
नाम्ना रत्नमाली तस्य प्रियायाश्च कुक्षिसंभूतः । विद्युल्लतायाः पुत्रो जातः सूरंजयकुमारः ॥१५॥
अथ विग्रहेण चलितः सिंहपुरं रत्नमाली सबलः । सन्नद्धबद्ध-कवचो यत्र च स वज्रवरनयनः ॥१६॥
क्रोधानलविद्यया दग्धुमना रिपुपुरं रथारुढः । व्रजन्नेव भणितो गगनतलस्थेन देवेन ॥१७॥
भो रत्नमालिनरपते ! मा व्यवसयैतादृशं महापापम् । निःश्रुणु मम वचनं कथयामि तव पूर्वसम्बन्धम् ॥१८॥
इह भरते वर्षे गन्धारे आसीद्भूरिणो नाम । दृष्ट्वा कमलगर्भं साधुं तदा गृह्णाति नियमम् ॥१९॥
न करोमि पुनः पापं भणति ते इदृशं व्रतं मम । पञ्चपल्योपमानि स्वर्गेऽर्जयति देवायुः ॥२०॥
उपमृत्युनामधेयस्तत्रैव पुरोहितो वसति पापः । तस्योपदेशेन व्रतं मुञ्चति भूर्यकृतपुण्यः ॥२१॥
स्कन्देन हिंसितः स पुरोहितो गजवरः समुत्पन्नः । युद्धे जर्जरिततनुर्लभते चैव कर्णजापं सः ॥२२॥
कालगतो गन्धारे तत्रैव तु भूरिण उत्पन्नः । योजनगन्धायाः सुतोऽरिहसनो नाम नाम्ना ॥२३॥
दृष्ट्वा कमलगर्भं पूर्वभवं स्मृत्वा प्रव्रजितः । कालगत उत्पन्नः सहस्रारकल्पे सुरवरोऽहम् ॥२४॥

---

१. पुव्वकोडी-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो हु तुमं जो भूरी, कालं काऊण दण्डगारण्णे । जाओ दगकित्तिधरो, दवेण दड्ढो मओ त्तो ॥२५॥

पावपसङ्गेण गओ, बीयं चिय सक्करप्पभं पुढविं । तत्थ मए नेहेणं, नरए पडिबोहिओ गन्तुं ॥२६॥

तत्तो च्चिय नरयाओ, कालेणुव्वट्टिओ रयणमाली । जाओ तुमं महायस, राया विज्जाहराहिवई ॥२७॥

जो आसि पुरा भूरी, सो हु तुमं रयणमालिणो जाओ । जो वि य आसुवमच्चू, पुरोहिओ सो अहं देवो ॥२८॥

किं ते नऽणुहूयाइं, दुक्खाइं नरय-तिरियजोणीसु । जेणेरिसं अकज्जं, करेसि घणरागदोसेणं ॥२९॥

सुणिऊण देववयणं, संवेगपरायणो नरवरेन्दो । कुलणन्दणं ठवेई, रज्जे सूरंजयस्स सुयं ॥३०॥

सूरंजएण समयं, आयरियं तिलयसुन्दरं सरणं । पत्तो य रयणमाली, दिक्खं जिणदेसियं धीरो ॥३१॥

सूरंजओ महन्तं, काऊण तवं गओ महासुक्कं । चविओ अणरण्णसुओ, जाओ च्चिय दसरहो सि तुमं ॥३२॥

नरवइ थोवेण तुमं, पुण्णेण उवत्थिमाइसु भवेसु । वडबीयं पिव विड्ढिं, पत्तो सुहकम्मउदएणं ॥३३॥

जो आसि नन्दिघोसो, तुज्झ पिया नन्दिवद्धणस्स पुरा । सो हं गेवेज्जचुओ, जाओ मुणिसव्वभूयहिओ ॥३४॥

जे वि य ते दोण्णि जणा, भूरी-उवमच्चुनामधेयाऽऽसि । ते चेव जणय-कणया, इह तुज्झ वसाणुगा जाया ॥३५॥

संसारम्मि य घोरे, अणेयभवसयसहस्ससंबन्धे । उव्वट्टण-परियट्टण, करेन्तिजीवा सकम्मेहिं ॥३६॥

एवं मुणिवरभणियं, सुणिऊणं दसरहो भउव्विग्गो । अह संजमाभिलासी, जाओ च्चिय तक्खणं चेव ॥३७॥

सव्वायरेण चलणे, गुरुस्स नमिऊण दसरहो राया । पविसइ निययनयरिं, साएयं [1]जण-धणाइण्णं ॥३८॥

स हु त्वं यो भूरी कालं कृत्वा दण्डकारण्ये । जातो दककीर्तिधरो दवेन दग्धो मृतश्तदा ॥२५॥

पापप्रसङ्गेन गतो द्वितीयामेव शर्कराप्रभां पृथिवीम् । तत्र मया स्नेहेन नरके प्रतिबोधितो गत्वा ॥२६॥

तत एव नरकात् कालेनोद्वर्त्तितो रत्नमाली । जातस्त्वं महायशः ! राजा विद्याधराधिपतिः ॥२७॥

य आसीत्पुरा भूरी स हु त्वं रत्नमाली जातः । योऽपि चासीदुपमृत्युः पुरोहितः सोऽहं देवः ॥२८॥

किं त्वया नानुभूतानि दुःखानि नरक-तिर्यग्योनिषु । येनैतादृशमकार्यं करोषि घनरागदोषेण ॥२९॥

श्रुत्वा देववचनं संवेगपरायणो नरवरेन्द्रः । कुलनन्दनं स्थापयति राज्ये सूरंजयस्य सुतम् ॥३०॥

सूरंजयेन समकमाचार्यतिलकसुन्दरं शरणम् । प्राप्तश्च रत्नमाली दिक्षां जिनदेशितां धीरः ॥३१॥

सूरंजयो महत्कृत्वातपो गतो महाशुक्रम् । च्युतोऽनरण्यसुतो जात एव दशरथोऽसि त्वम् ॥३२॥

नरपते ! स्तोकेन त्वं पुण्येनोपास्त्यादिषु भवेषु । वटबीजमिव वृद्धिं प्राप्तः शुभकर्मोदयेन ॥३३॥

य आसीन्नन्दिघोषस्तव पिता नन्दिवर्धनस्य पुरा । सोऽहं ग्रैवेयकच्युतो जातो मुनिसर्वभूतहितः ॥३४॥

यावपि च तौ द्वौ जनौ भूरि-उपमृत्यू नामधेयौ स्तः । तो चैव जनक-कनकाविह तव वशानुगौ जातौ ॥३५॥

संसारे च घोरेऽनेकभवशतसहस्रसम्बन्धे । उद्वर्तन-परिवर्तनं कुर्वन्ति जीवाः स्वकर्मभिः ॥३६॥

एवं मुनिवरभणितं श्रुत्वा दशरथो भयोद्विग्नः । अथ संयमाभिलाषी जातश्चैव तत्क्षणमेव ॥३७॥

सर्वादरेण चरणयो गुरोर्नत्वा दशरथो राजा । प्रविशति निजनगरीं साकेतां जन-घनाकीर्णाम् ॥३८॥

---

१. धण-कणाइण्णं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिन्तेइ तो मणेणं, रज्जं दाऊण पउमनाभस्स । तो सव्वसङ्गरहिओ, मुत्तिसुहं चेव पत्थेमो ॥३९॥

मेरु व्व धीरगरुओ, रामो तिसमुद्दमेहलं पुहइं । पालेऊण समत्थो, परिकिण्णो बन्धवजणेणं ॥४०॥

हेमन्तवर्णनम् –

चिन्तावरस्स एवं, नरेन्दवसभस्स रज्जविमुहस्स । अभिलङ्घिओ य सरओ, हेमन्तो चेव संपत्तो ॥४१॥

हेमन्तवायविहवो, लोगो परिफुडियअहर-कर-चरणो । रयरेणुपडलछन्नो, ससी व मन्दच्छविं वहइ ॥४२॥

आकुञ्चियकर-गीवा, पुरिसा सीएण फुडियसव्वङ्गा । सुमरन्ति अग्गिनिवहं, दीणा वि य मन्दपाउरणा ॥४३॥

आवडियदसणवीणा, दारु-तणाजीवया थरथरेन्ता । दारिद्दसमभिभूया, गमेन्ति कालं अकयपुण्णा ॥४४॥

पासायतलत्था वि य, अन्ने पुण गीय-वाइयरवेणं । वरवत्थपाउयङ्गा, कालागरुधूवसुसुयन्धा ॥४५॥

भुञ्जन्ति सया रसियं, आहारं कणयभायणविदिन्नं । कुंकुमकयङ्गरागा अक्खीणधणा सुकयपुण्णा ॥४६॥

कलमहुभासिणीहिं, संगयवरचारुवेसरूवाहिं । तरुणविलयाहि समयं, कीलन्ति चिरं सुकयपुण्णा ॥४७॥

धम्मेण लहइ जीवो, सुर-माणुसविविहभोगसामिद्धिं । नरय-तिरिक्खेसु पुणो, पावइ दुक्खं अहम्मेणं ॥४८॥

एव सुणिऊण राया, कम्मविवागं जणस्स सयलस्स । संसारगमणभीओ, इच्छइ घेत्तूण पव्वज्जं ॥४९॥

सद्दाविया य सिग्घं, सामन्ता आगया समन्तिजणा । काऊण सिरपणामं, उवविट्ठा आसणवरेसु ॥५०॥

सामिय ! देहाऽऽणत्तिं, किं करणिज्जं ? भडेहि संलवियं । भणिया य दसरहेणं, पव्वज्जं गिण्हिमो अज्जं ॥५१॥

चिन्तयति तदा मनसा राज्यं दत्वा पद्मनाभस्य । ततः सर्वसङ्गरहितो मुक्तिसुखमेव प्रार्थयामि ॥३९॥

मेरुरिव धीरगुरुको रामस्त्रिसमुद्रमेखलां पृथिवीम् । पालयितुं समर्थं परिकीर्णो बान्धवजनेन ॥४०॥

हेमन्तवर्णनम् -

चिन्तापरस्यैवं नरेन्द्रवृषभस्य राज्यविमुखस्य । अभिलङ्घितश्च शरद्धेमन्तश्चैव संप्राप्तः ॥४१॥

हेमन्तवातविभवो लोकः परिस्फुटिताधर-कर-चरणः । रजोरेणुपटलच्छन्नः शशीव मन्दच्छविं वहति ॥४२॥

आकुञ्चितकरग्रीवाः पुरुषाः शीतेन स्फुटितसर्वाङ्गाः । स्मरन्त्यग्निनिवहं दीना अपि च मन्दप्रावरणाः ॥४३॥

आपतितदशनवीणादारुतृणाजीवकाथरथरन्तः । दारिद्र्यसमभिभूता गमयन्ति कालमकृतपुण्याः ॥४४॥

प्रासादतलस्था अपि चान्ये पुन गीतवादितरवेण । वरवस्त्रप्रावृताङ्गाः कालागरुधूपसुसुगन्धाः ॥४५॥

भुञ्जते सदा रसिकमाहारं कनकभाजनवितीर्णम् । कुंकुमकृताङ्गरागा अक्षीणधनाः सुकृतपुण्याः ॥४६॥

कलमधुरभाषिणिभिः संगतवरचारूवेशरूपाभिः । तरुणवनिताभिः समकं क्रीडन्ति चिरं सुकृतपुण्याः ॥४७॥

धर्मेण लभते जीवः सुर-मनुष्यविविधभोगसमृद्धिम् । नरक-तिर्यक्षु पुनः प्राप्नोति दुःखमधर्मेण ॥४८॥

एवं श्रुत्वा राजा कर्मविपाकं जनस्य सकलस्य । संसारगमनभीत इच्छति ग्रहितुं प्रव्रज्याम् ॥४९॥

शब्दिताश्च शीघ्रं सामन्ता आगता समन्त्रिजनाः । कृत्वा शिरः प्रणाममुपविष्ट्य आसनवरेषु ॥५०॥

स्वामिन् ! देह्याज्ञेति किं कर्त्तव्यं ? भटैः संलप्तम् । भणिता च दशरथेन प्रव्रज्यां गृह्णाम्यद्यः ॥५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह तं भणन्ति मन्ती, सामिय ! किं अज्ज कारणं जायं। धणसयलजुवइवग्गं, जेण तुमं ववसिओ मोत्तुं ? ॥५२॥
तो भणइ नरवरेन्दो, पच्चक्खं तो जयं निरवसेसं। सुक्कं व तणमसारं, डज्झइ मरणग्गिणा [1] धणियं ॥५३॥
भवियाण जं सुगिज्झं, अग्गिज्झं अभवियाण जीवाणं। तियसाण पत्थणिज्जं, सिवगमणसुहावहं धम्मं ॥५४॥
तं अज्ज मुणिसयासे, धम्मं सुणिऊण जायसंवेगो। संसारभवसमुद्दं, इच्छामि अहं समुत्तरिउं ॥५५॥
अहिसिञ्चह मे पुत्तं, पढमं चिय रज्जपालणसमत्थं। पव्वज्जामि अविग्घं, जेणाहं अज्ज वीसत्थो ॥५६॥
सुणिऊण वयणमेयं, पव्वज्जानिच्छियं नरवरिन्दं। सुहडा-ऽमच्च-पुरोहिय, पडिया सोयण्णवे सहसा ॥५७॥
नाऊण निच्छियमई, दिक्खाभिमुहं नराहिवं एत्तो। अन्तेउरजुवइजणो, सव्वो रुविउं समाढत्तो ॥५८॥
दट्ठूण तारिसं चिय, पियरं भरहो खणेण पडिबुद्धो। चिन्तेइ नेहबन्धो, दुच्छेज्जो जीवलोगम्मि ॥५९॥
तायस्स किं व कीरइ, पव्वज्जाववसियस्स पुहईए ?। पुत्तं ठवेइ रज्जे, जेणं चिय पालणट्ठाए ॥६०॥
आसन्नेण किमेत्थं, इमेण खणभङ्गुरेण देहेणं। दूरट्ठिएसु अहियं, काऽवत्था बन्धवेसु भवे ? ॥६१॥
एक्कोऽत्थ एस जीवो, दुहपायवसंकुले भवारण्णे। भमइ च्चिय मोहन्धो, पुणरवि तत्थेव तत्थेव ॥६२॥
तो सव्वकलाकुसला, भरहं नाऊण तत्थ पडिबुद्धं। सोगसमुत्थयहियया, परिचिन्तेइ केगई देवी ॥६३॥

भरतस्य राज्यं रामस्य च वनवासः—

न य मे पई न पुत्तो, दोण्णि वि दिक्खाभिलासिणो जाया। चिन्तेमि तं उवायं, जेण सुयं वो नियत्तेमि ॥६४॥

अथ तं भणन्ति मन्त्रिणः स्वामिन् ! किमद्य कारणं जातम्। धनसकलयुवतिवर्गं येन त्वं व्यवसितमोक्तुम् ? ॥५२॥
तदा भणति नरवरेन्द्रः प्रत्यक्षं वो जगन्निरवशेषम्। शुष्कमिव तृणमसारं दह्यते मरणाग्निनात्यन्तम् ॥५३॥
भव्यानां यत्सुग्राह्यमग्राह्यमभव्यानां जीवानाम्। त्रिदशानां प्रार्थनीयं शिवगमनसुखावहं धर्मम् ॥५४॥
तमद्य मुनिसकाशे धर्मं श्रुत्वा जातसंवेगः। संसारभवसमुद्रमिच्छाम्यहं समुत्तरितुम् ॥५५॥
अभिषिञ्चत मम पुत्रं प्रथममेव राज्यपालनसमर्थम्। प्रव्रज्याम्यविघ्नं येनाहमद्य विश्वस्तः ॥५६॥
श्रुत्वा वचनमेतत्प्रव्रज्यानिश्चितं नरवरेन्द्रम्। सुभटामात्यपुरोहिताः पतिताः शोकार्णवे सहसा ॥५७॥
ज्ञात्वा निश्चितमतिं दिक्षाभिमुखं नराधिपमितः। अन्तःपुरयुवतिजनः सर्वो रोदितुं समारब्धः ॥५८॥
दृष्ट्वा तादृशमेव पितरं भरतः क्षणेन प्रतिबुद्धः। चिन्तयति स्नेहबन्धो दुच्छेद्यो जीवलोके ॥५९॥
तातस्य किं वा क्रियते प्रव्रज्याव्यवसितस्य पृथिव्या ?। पुत्रं स्थापयति राज्ये येनैव पालनार्थे ॥६०॥
आसन्नेन किमर्थमनेन क्षणभङ्गुरेण देहेन। दुरस्थितेष्वधिकं काऽवस्था बान्धवेषु भवेत् ? ॥६१॥
एकोऽत्रैष जीवो दुःखपादपसंकुले भवारण्ये। भ्रमत्येव मोहान्धः पुनरपि तत्रैव तत्रैव ॥६२॥
तदा सर्वकलाकुशला भरतं ज्ञात्वा तत्र प्रतिबुद्धम्। शोकसमवस्तृतहृदयाः परिचिन्तयति कैकयी देवी ॥६३॥

भरतस्य राज्यं रामस्य च वनवासः -

न च मे पति र्न पुत्रो द्वावपि दिक्षाभिलाषिणौ जातौ। चिन्तयामि तदुपायं येन सुतं वा निवर्तयामि ॥६४॥

---

१. निययं-मु०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो सा विणओवगया, भणइ निवं केगई महादेवी । तं मे वरं पयच्छसु, जो भणिओ सुहडसामक्खं ॥६५॥
भणइ तओ नरवसभो, दिक्खं मोत्तूण जं पिए भणसि । तं अज्ज तुज्झ सुन्दरि ! सव्वं संपाडइस्सामि ॥६६॥
सुणिऊण वयणमेयं, रोवन्ती केगई भणइ कन्तं । दढनेहबन्धणं चिय, विरागखग्गेण छिन्नं ते ॥६७॥
एसा दुद्धरचरिया, उवइट्ठा जिणवरेहि सव्वेहिं । कह अज्ज तक्खणं चिय, उप्पन्ना संजमे बुद्धी ? ॥६८॥
सुरवइसमेसु सामिय ! निययं भोगेसु लालियं देहं । खर-फरुस-कक्कसयरे, कह अरिहसि परिसहे जेउं ? ॥६९॥
चलणङ्गुलीए भूमिं, विलिहन्ती केगई समुल्लवइ । पुत्तस्स मज्झ सामिय ! देहि समत्थं इमं रज्जं ॥७०॥
तो दसरहो पवुत्तो, सुन्दरि ! पुत्तस्स तुज्झ रज्जं ते । दिन्नं मए समत्थं, गेण्हसु मा णे चिरावेहि ॥७१॥
तो दसरहेण सिग्घं, पउमो सोमित्तिणा समं पुत्तो । वाहरिओ वसहगई, समागओ कयपणामो य ॥७२॥
वच्छ ! महासंगामे, सारत्थं केगईए मज्झ कयं । तुट्ठेण वरो दिन्नो, सव्वनरेन्दाण पच्चक्खं ॥७३॥
तो केगईए रज्जं, पुत्तस्स विमग्गियं इमं सयलं । किं वा करेमि वच्छय ! पडिओ चिन्तासमुद्दे हं ॥७४॥
भरहो गिण्हइ दिक्खं, तस्स विओगम्मि केगई मरइ । अहमवि य निच्छएणं, होहामि जए अलियवाई ॥७५॥
तो भणइ पउमनाहो, ताय ! तुमं रक्ख अत्तणो वयणं । न य भोगकारणं मे, तुज्झ अकित्तीए लोगम्मि ॥७६॥
जाएण सुएण पहू ! चिन्तेयव्वं हियं निययकालं । जेण पिया न य सोगं, गच्छइ एक्कं पि य मुहुत्तं ॥७७॥
जाव च्चिय एस कहा, वट्टइ परिसाणुरञ्जणी ताव । पत्तो भरहकुमारो, संवेगमणो पिउसगासं ॥७८॥

तदा सा विनयोपगता भणति नृपं कैकयी महादेवी । तन्मे वरं प्रयच्छ यो भणितः सुभटसमक्षम् ॥६५॥
भणति ततो नरवृषभो दिक्षां मुक्त्वा यत्प्रियो भणसि । तमद्य तव सुन्दरि ! सर्वं संपादयिष्यामि ॥६६॥
श्रुत्वा वचनमेतद्रुदन्ती कैकयी भणति कान्तम् । दृढस्नेहबन्धनमेव विरागखड्गेन छिन्नं ते ॥६७॥
एषा दुर्धरचर्योपदिष्या जिनवरैः सर्वैः । कथमद्य तत्क्षणमेवोत्पन्ना संयमे बुद्धिः ? ॥६८॥
सुरपतिसमैः स्वामिन्नित्यं भोगै र्लालितं देहम् । खर-परुष-कर्कशतरान्कथमर्हसि परिषहान् जेतुम् ? ॥६९॥
चरणाङ्गुल्या भूमिं विलिखन्ती कैकयी समुल्लपति । पुत्राय मम स्वामिन्देहि समस्तमिदं राज्यम् ॥७०॥
तदा दशरथः प्रोक्तः सुन्दरि ! पुत्राय तव राज्यं ते । दत्तं मया समस्तं गृहाण मा चिराय ॥७१॥
ततो दशरथेन शीघ्रं पद्मः सौमित्रिणा समं पुत्रः । व्याहृतो वृषभगतिः समागतः कृतप्रणामश्च ॥७२॥
वत्स ! महासंग्रामे सारथ्यं केकय्या मम कृतम् । तुष्टेन वरो दत्तः सर्वनरेन्द्राणां प्रत्यक्षम् ॥७३॥
तदा कैकय्या राज्यं पुत्रस्य विमार्गितमिदं सकलम् । किं वा करोमि वत्सक ! पतितश्चिन्तासमुद्रेऽहम् ॥७४॥
भरतो गृह्णाति दिक्षां तस्य वियोगे कैकयी म्रियते । अहमपि च निश्चयेन भविष्यामि जगत्यलीकवादी ॥७५॥
ततो भणति पद्मनाभस्तात ! त्वं रक्षात्मनो वचनम् । न च भोगकारणं मे तवाकीर्त्या लोके ॥७६॥
योग्येन सुतेन प्रभो ! चिन्तितव्यं हितं नित्यकालम् । येन पिता न शोकं गच्छत्येकमपि च मुहूर्तम् ॥७७॥
यावदेवैषा कथा वर्तते पर्षदनुरञ्जनी तावत् । प्राप्तो भरतकुमारः संवेगमनाः पितृसकाशम् ॥७८॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणिओ य दसरहेणं, वच्छ ! तुमं होहि रज्जसाहारो । अहयं पुण निस्सङ्गो, जिणवरदिक्खं पवज्जामि ॥७९॥
सो भणइ नत्थि कज्जं, रज्जेण महं करेमि पव्वज्जं । मा तिव्वदुक्खपउरे, ताय ! भमिस्सामि संसारे ॥८०॥
अणुभवसु पुत्त ! सोक्खं, सारं माणुस्सयस्स जम्मस्स । ता पच्छिमम्मि काले, जिणवरदिक्खं करेज्जासि ॥८१॥
पुणरवि एव पवुत्तो, भरहो किं ताय मोहसि अकज्जे ? । न य बाल-विद्ध-तरुणं, मच्चू पडिवालई कोई ॥८२॥
गेहासमे वि धम्मो, पुत्त ! महागुणकरो समक्खाओ । तम्हा गिहिधम्मरओ, होहि तुमं सयलरज्जवई ॥८३॥
जइ लहइ मुत्तिसोक्खं, पुरिसो गिहधम्मसंठिओ सन्तो । तो कीस मुञ्चसि तुमं, गेहं संसारपरिभीओ ? ॥८४॥
मोत्तूण सयणवग्गं, धण-धन्नं मायरं च पियरं च । सुह-दुक्खं वेयन्तो, एगागी हिण्डई जीवो ॥८५॥
सुणिऊण पुत्तवयणं, परितुट्ठो दसरहो भणइ एवं । साहु त्ति साहु अहियं, पडिबुद्धो भवियसद्दूलो ॥८६॥
तह वि तुमे मह वयणं, पुत्तय ! कायव्वयं अविमणेणं । निसुणेहि कहिज्जन्तं, भूयत्थं सारसब्भावं ॥८७॥
सारत्थतोसिएणं, संगामे जो वरो मए दिन्नो । सो अज्ज तुज्झ पुत्तय ! जणणीए मग्गिओ इहइं ॥८८॥
रज्जे ठवेहि पुत्तं, भणिओ हं केगईए देवीए । तो अणुपालेहि तुमं, सयलसमत्थं इमं वसुहं ॥८९॥
पउमो वि तं कुमारं, हत्थे घेत्तूण भणइ नेहेणं । निक्कण्टयमणुकूलं, करेहि रज्जं सुचिरकालं ॥९०॥
तायस्स विमलकित्ती, करेहि परिपालणं च जणणीए । भरहेण य पडिभणिओ, न य तुज्झ वइक्कमं काहं ॥९१॥
अडविनईसु गिरीसु य, तत्थाऽऽवासं करेमि एगन्ते । जह मे न मुणइ कोई, कुणसु य रज्जं सुचिरकालं ॥९२॥

भणितश्च दशरथेन वत्स ! त्वं भव राज्यस्याधारः । अहं पुनर्निःसङ्गो जिनवरदिक्षां प्रव्रजामि ॥७९॥
स भणति नास्ति कार्यं राज्येन मम करोमि प्रव्रज्याम् । मा तीव्रदुःखप्रचुरे तात ! भ्रमिष्यामि संसारे ॥८०॥
अनुभव पुत्र ! सुखं सारं मनुष्यस्य जन्मनः । ततः पश्चिमे काले जिनवरदीक्षां कुर्याः ॥८१॥
पुनरप्येवं प्रोक्तो भरतः किं तात ! मोहयत्यकार्ये ? । न च बाल-वृद्ध-तरुणं मृत्युः प्रतिपालयति कोऽपि ॥८२॥
गृहाश्रमेऽपि धर्मः पुत्र ! महागुणकरः समाख्यातः । तस्माद्गृहधर्मरतो भव त्वं सकलराज्यपतिः ॥८३॥
यदि लभते मुक्तिसुखं पुरुषो गृहधर्मसंस्थितः सन् । तदा कथं मुञ्चसि त्वं गृहं संसारपरिभीतः ? ॥८४॥
मुक्त्वा स्वजनवर्गं धन-धान्यं मातरं च पितरं च । सुख दुःखं वेदयन्नेकाकी हिण्डते जीवः ॥८५॥
श्रुत्वा पुत्रवचनं परितुष्ठो दशरथो भणत्येवम् । साध्विति साध्वधिकं प्रतिबुद्धो भविकशार्दुलः ॥८६॥
तथापि त्वया मम वचनं पुत्र ! कर्त्तव्यमविमनसा । निश्रुणु कथयन्तं भूतार्थं सारसद्भावम् ॥८७॥
सारथ्यतोषितेन संग्रामे यो वरो मया दत्तः । सोऽद्य तव पुत्र ! जनन्या मार्गित इदानीम् ॥८८॥
राज्ये स्थापय पुत्रं भणितोऽहं कैकय्या देव्या । ततोऽनुपालय त्वं सकलसमस्तामिमां वसुधाम् ॥८९॥
पद्मोऽपि तं कुमारं हस्ते गृहीत्वा भणति स्नेहेन । निष्कण्टकमनुकूलं कुरु राज्यं सुचिरकालम् ॥९०॥
तातस्य विमलकीर्त्तिः कुरु परिपालनं च जनन्याः । भरतेन च प्रतिभणितो न च तव व्यतीक्रमं करिष्यामि ॥९१॥
अटवीनदीषु गिरिषु च तत्रावासं करोम्येकान्ते । यथा मे न जानाति कोऽपि कुरुष्व च राज्यं सुचिरकालम् ॥९२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणिऊण वयणमेयं, पणमिय पिउपायपङ्कज सिरसा । रामो वरगयगामी, विणिग्गओ रायपरिसाओ ॥९३॥
एत्थन्तरम्मि [1]मुच्छा, राया गन्तूण तत्थ पडिबुद्धो । नज्जइ आलेक्खगओ, अणिमिसनयणो पलोएइ ॥९४॥
गन्तूण नियय[2]जणणी, आउच्छइ राहवो कयपणामो । अम्मो ! वच्चामि अहं, दूरपवासं खमेज्जासु ॥९५॥
सुणिऊण वयणमेयं, सहसा तो मुच्छिऊण पडिबुद्धा । भणइ सुयं रोवन्ती, पुत्तय !किं मे परिच्चयसि ? ॥९६॥
कह कह वि [3]अणाहाए, लद्धो सि मणोरहेहि बहुएहिं । होहिसि पुत्ताऽऽलम्बो, पारोहो चेव साहाए ॥९७॥
भरहस्स मही दिन्ना, ताएणं केगईवरनिमित्तं । सन्तेण मए नेच्छइ, एस कुमारो महिं भोत्तुं ॥७८॥
दिक्खाभिमुहो राया, पुत्तय ! दूरं तुमं पि वच्चिहिसि । पइ-पुत्तविरहिया इह, कं सरणमहं पवज्जामि ? ॥९९॥
विज्झगिरिमत्थए वा, मलए वा सायरस्स वाऽऽसन्ने । काऊण पइट्ठाणं, तुज्झ फुडं आगमिस्से हं ॥१००॥
जणणीए सिरपणामं, काऊणं सेसमाइवग्गस्स । पुणरवि य नरवरिन्दं, पणमइ रामो गमणसज्जो ॥१०१॥
आपुच्छिया य सव्वे, पुरोहिया-ऽमच्च-बन्धवा सुहडा । रह-गय-तुरङ्गमा वि य, पलोइया निद्धदिट्ठीए ॥१०२॥
चाउव्वण्णं च जणं, आपुच्छेऊण निग्गओ रामो । वइदेही वि य ससुरं, पणमइ परमेण विणएणं ॥१०३॥
सव्वाण सासुयाणं, काऊणं चलणवन्दणं सीया । सहियायणं च नियय, आपुच्छिय निग्गया एत्तो ॥१०४॥
गन्तूण समाढत्तं, रामं दट्ठूण लक्खणो रुट्ठो । ताएण अयसबहुलं, कह एयं पत्थियं कज्जं ? ॥१०५॥

भणित्वा वचनमेतत्प्रणम्य पितृपादपङ्कजे शिरसा । रामो वरगजगामी विनिर्गतो राजपर्षदः ॥९३॥
अत्रान्तरे मूर्च्छां राजा गत्वा तत्र प्रतिबुद्धः । ज्ञायत आलेखगतोऽनिमिषनयनः प्रलोकयति ॥९४॥
गत्वा निजजननीमापृच्छति राघवः कृतप्रणामः । मात ! व्रजाम्यहं दूरप्रवासं क्षमस्व ॥९५॥
श्रुत्वा वचनमेतत्सहसा तो मूर्च्छित्वा प्रतिबुद्धा । भणति सुतं रुदन्ती पुत्र ! किं मां परित्यजसि ? ॥९६॥
कथंकथमप्यनाथया लब्धोऽसि मनोरथैर्बहुभिः । भविष्यसि पुत्राऽलम्बनः प्ररोह इव शाखायाः ॥९७॥
भरताय मही दत्ता तातेन कैकयीवरनिमित्तम् । सता मया नेच्छत्येष कुमारो महीं भोक्तुम् ॥९८॥
दिक्षाभिमुखो राजा पुत्र ! दूरं त्वमपि गमिष्यसि । पति-पुत्रविरहितेह कं शरणमहं प्रपद्ये ? ॥९९॥
विंध्यगिरिमस्तके वा मलये वा सागरस्य वाऽऽसन्ने । कृत्वा प्रतिष्ठानं तव स्फुटमागमस्याम्यहम् ॥१००॥
जनन्याः शिरःप्रणामं कृत्वा शेषमातृवर्गस्य । पुनरपि च नरवरेन्द्रं प्रणमति रामो गमनसज्जः ॥१०१॥
आपृष्टश्च सर्वे पुरोहिताऽमात्यबान्धवाः सुभटाः । रथ-गज-तुरङ्गमा अपि च प्रलोकिताः स्निग्धदृष्ट्या ॥१०२॥
चातुर्वर्णं च जनमापृच्छ्य निर्गतो रामः । वेदैह्यापि च श्वसुरं प्रणमति परमेण विनयेन ॥१०३॥
सर्वासां श्वश्रूणां कृत्वा चरणवन्दनं सीता । सखीजनं च निजकमापृच्छ्य निर्गतेतः ॥१०४॥
गंतुं समारब्धं रामं दृष्टवा लक्ष्मणो रुष्टः । तातेनाऽयशोबहुलं कथमेतत्प्रस्थितं कार्यम् ? ॥१०५॥

---

१. मुच्छं-प्रत्य० । २. जणणिं-प्रत्य० । ३. अहन्नाए-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एत्थ नरिन्दाण जए, परिवाडीआगयं हवइ रज्जं । विवरीयं चिय रइयं, ताएण अदीहपेहीणं ॥१०६॥

रामस्स को गुणाणं, अन्तं पावेज्ज धीरगरुयस्स ? । लोभेण जस्स रहियं, चित्तं चिय मुणिवरस्सेव ॥१०७॥

अहवा रज्जधुरधरं, सव्वं फेडेमि अज्ज भरहस्स । ठावेमि कुलाणीए, पुहइवइं आसणे रामं ॥१०८॥

एएण किं व मज्झं, हवइ वियारेण ववसिएणऽज्जं ? । नवरं पुण तच्चत्थं, ताओ जेट्ठो य जाणन्ति ॥१०९॥

कोवं च उवसमेउं, पणमिय पियरं परेण विणएणं । आपुच्छइ दढचित्तो, सोमित्ती अत्तणो [1]जणणी ॥११०॥

संभासिऊण भिच्चे, वज्जावत्तं च धणुवरं घेत्तुं । घणपीइसंपउत्तो, पउमसयासं समल्लीणो ॥१११॥

पियरेण बन्धवेहि य, सामन्तसएसु [2]परिमिया सन्ता । रायभवणाओ एत्तो, विणिग्गया सुरकुमार व्व ॥११२॥

सुयसोगतावियाओ, धरणियलोसित्तअंसुनिवहाओ । कह कह वि पणमिऊणं, नियत्तियाओ य जणणीओ ॥११३॥

काऊण सिरपणामं, नियत्तिओ दसरहो य रामेणं । सहवड्डिया य बन्धू, कलुणपलावं च कुणमाणा ॥११४॥

जंपन्ति एक्कमेक्कं, एस पुरी जइ वि [3]जणवयाइण्णा । जाया रामविओगे, दीसइ विज्झाडवी चेव ॥११५॥

लोगो वि उस्सुगमणो, जंपइ धन्ना इमा जणयधूया । जा वच्चइ परदेसं, रामेण समं महामहिला ॥११६॥

नयणजलसित्तगत्तं, पेच्छह जणणिं इमं पमोत्तूणं । चलिओ रामेण समं, एसो च्चिय लक्खणकुमारो ॥११७॥

तेसु कुमारेसु समं, सामन्तजणेण वच्चमाणेणं । सुन्ना साएयपुरी, जाया छणवज्जिया तइया ॥११८॥

अत्र नरेन्द्राणां जगति परिपाट्यागतं भवति राज्यम् । विपरितमेव रचितं तातेनादीर्घप्रेक्षिणा ॥१०६॥

रामस्य को गुणानामन्तं प्राप्नुयाद् धीर गुरुकस्य ? । लोभेन यस्य रहितं चित्तमेव मुनिवरस्येव ॥१०७॥

अथवा राज्यधुरंधरं सर्वं स्फोट्याम्यद्य भरतस्य । स्थापयामि कुलानीते पृथिवीपतिमासने रामम् ॥१०८॥

एतेन किं वा मम भवति विचारेण व्यसितेनाद्य ? । नवरं पुनस्तथ्यार्थं तातो ज्येष्टश्च जानाति ॥१०९॥

कोपमुपशम्य प्रणम्य पितरं परेण विनयेन । आपृच्छति दृढचित्तः सौमित्र्यात्मनो जननीम् ॥११०॥

संभाष्य भृत्यान्वज्रावर्त्तं च धनुर्वरं गृहीत्वा । घनप्रीतिसंप्रयुक्तः पद्मसकाशं समालीनः ॥१११॥

पित्रा बान्धवैश्च सामन्तशतैः परिमितौ सन्तौ । राजभवनादितो विनिर्गतौ सुरकुमाराविव ॥११२॥

सुतशोकतप्ता धरणितलाबसिक्तांशुनिवहाः । कथं कथमपि प्रणम्य निवर्त्तिताश्च जनन्यः ॥११३॥

कृत्वा शिरः प्रणामं निवर्त्तितो दशरथश्च रामेण । सहवर्धिताश्च बान्धवः करुणप्रलापं च क्रियमाणाः ॥११४॥

जल्पन्त्येकैकमेषा पुरी यद्यपि जनपदाकीर्णा । जाता रामवियोगे दृश्यते विन्ध्याटवीव ॥११५॥

लोकोऽप्युत्सुकमना जल्पति धन्येमा जनकसुता । या व्रजति परदेशं रामेण समं महामहिला ॥११६॥

नयनजलसिक्तगात्रां पश्यत जननीमिमां प्रमुच्य । चलितो रामेण सममेष एव लक्ष्मणकुमारः ॥११७॥

तयोः कुमारयोः समं सामन्तजनेन गच्छता । शून्या साकेतपुरी जाता क्षणवर्जिता तदा ॥११८॥

---

१. जणणिं-प्रत्य० । २. परिवृता इत्यर्थः । ३. धणकणाइण्णा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न नियत्तइ नयरजणो, धाडिज्जन्तो वि दण्डपुरिसेहिं । ताव य दिवसवसाणे, सूरो अत्थं समल्लीणो ॥११९॥
नयरीए मज्झयारे, दिट्ठं चिय जिणहरं मणभिरामं । हरिसियरोमञ्चइया, तत्थ पविट्ठा परमतुट्ठा ॥१२०॥
थोऊण अच्चिऊण य, जिणपडिमाओ परेण भावेणं । तत्थेव सन्निविट्ठा, समयं चिय जणसमूहेणं ॥१२१॥
ते तत्थ वरकुमारा, वसिया सोऊण ताण जणणीहिं । आगन्तूण जिणहरे, दोहिं वि पुत्ता समागूढा ॥१२२॥
सव्वाण वि सुद्धीणं, मणसुद्धी चेव उत्तमा लोए । आलिङ्गइ भत्तारं, भावेणऽन्नेण पुत्तं च ॥१२३॥
पुत्तेहि समं ताओ, सम्मन्तेऊण पडिणियत्ताओ । डोलावियहियायाओ, [1]दइयसमीवं उवगयाओ ॥१२४॥
नमिऊण य भत्तारं, भणन्ति रामं ससीय-सोमित्तिं । पल्लट्टेहि महायस ! मा उव्वेक्खं कुणसु धीर ? ॥१२५॥
तो भणइ दसरहनिवो, न य मे इह अत्थि किंचि सायत्तं । जं जस्स पुव्वविहियं, तं तस्स नरस्स उवणमइ ॥१२६॥
ववगयरज्जभरो हं, विरओ पावस्स संजमाभिमुहो । न य नज्जइ कं वेलं, मुणिवरचरियं पवज्जामि ॥१२७॥

एवं नरिन्दो जिणसासणुज्जओ, अहो य राओ य सिवाभिलासिणो ।
सुहं पबुद्धो मिह भव्वकेसरी, विमुत्तिमग्गे विमले सुहालए ॥१२८॥

॥ इय पउमचरिए दसरहपव्वज्जानिच्छयविहाणो नाम एक्कतीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

न निवर्तते नगरजनो निसार्यमाणोऽपि दण्डपुरुषैः । तावच्च दिवसावसाने सूर्योऽस्तं समालीनः ॥११९॥
नगर्यां मध्ये दृष्टमेव जिनगृहं मनोभिरामम् । हर्षितरोमाञ्चितास्तत्र प्रविष्टाः परमतुष्टाः ॥१२०॥
स्तुत्वा अर्चित्वा च जिनप्रतिमाः परेण भावेन । तत्रैव सन्निविष्टाः समकमेव जनसमूहेन ॥१२१॥
तौ तत्र वरकुमारावुषितौ श्रुत्वा तयो र्जननीभिः । आगत्य जिनगृहे द्वावपि पुत्रौ समालिङ्गितौ ॥१२२॥
सर्वासामपि शुद्धीनां मनःशुद्धिरेवोत्तमा लोके । आलिङ्गति भर्तारं भावेनान्येन पुत्रं च ॥१२३॥
पुत्रैः समं ताः सम्मन्त्र्य प्रतिनिवृत्ताः । दोलायितहृदया दयितसमीपमुपागताः ॥१२४॥
नत्वा च भर्तारं भणन्ति रामं ससीत-सौमित्रिम् । पर्यस्य महायशः ! मोपेक्षां कुरु धीर ? ॥१२५॥
तदा भणति दशरथनृपो न च ममेहास्ति किंचित्स्वायत्तम् । यद्यस्य पूर्वविहितं तत्तस्य नरस्योपनमति ।१२६॥
व्यपगतराज्यभारोऽहं विरतः पापात् संयमाभिमुखः । न च ज्ञायते कां वेलां मुनिवरचरित्रं प्रव्रजामि ॥१२७॥

एवं नरेन्द्रो जिनशासनोद्यतोऽहश्च रात्रिं च शिवाभिलाषी ॥
सुखं प्रबुद्ध इह भव्यकेसरी विमुक्तिमार्गे विमले सुखालये ॥१२८॥

॥ इति पद्मचरित्रे दशरथप्रव्रज्यानिश्चयविधानो नामैकत्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. पईसमीवं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३२. दसरहपवज्जज्जा-रामनिग्गमण-भरहरज्जविहाणं

अह तत्थ जिणायतणे, निद्दं गमिऊण अड्ढरत्तम्मि । लोगे सुत्तपसुत्ते, नीसंचारे विगयसद्दे ॥१॥

घेत्तुं धणुवररयणं, सीयासहिया जिणं [1]नमंसित्ता । सणियं विणिग्गया ते, दो चेव जणं पलोयन्ता ॥२॥

को वेत्थ सुरयखीणो, गाढं उवगूहिउं सुवइ कन्तं । पुव्वं कयावराहो, अन्नो महिलं पसाएइ ॥३॥

अवरो पुण परगेहिं, गन्तूणं कुञ्चिएसु अङ्गेसु । उव्वासइ मज्जारं, जालगवक्खन्तरे धुत्तो ॥४॥

अन्नो सुन्नायतणे, संकेय[2]यदिन्नकन्नसब्भावो । अहियं आकुलियमणो, कुणइ निविट्ठुट्ठियं पुरिसो ॥५॥

एवं चिय सुणमाणा, पेच्छन्ता जणवयस्स विणियोगं । अह निग्गया पुरीओ, सणियं ते गूढदारेणं ॥६॥

अवरदिसं वच्चन्ता, दिट्ठा सुहडेहि मग्गमाणेहिं । गन्तूण पणमिया ते, भावेण ससेन्नसहिएहिं ॥७॥

सीहा सहावमन्थरगईए, सणियं तु तत्थ नरवसहा । गाऊयमेत्तठाणं, वच्चन्ति सुहं बलसमग्गा ॥८॥

गामेसु पट्टणेसु य, पूइज्जन्ता जणेण बहुएणं । पेच्छन्ति वच्चमाणा, खेड-मडम्बा-ऽऽगरं वसुहं ॥९॥

अह ते कमेण पत्ता, हरि-गय-रुरु-चमर-सरहसद्दालं । घणपायवसंछन्नं, अडविं चिय पारियत्तस्स ॥१०॥

[3]पेच्छन्ति तत्थ भीमा, बहुगाहसमाउला जलसमिद्धा । गम्भीरा नाम नदी, कल्लोलुच्छलियसंघाया ॥११॥

---

३२. दशरथ प्रव्रज्या-रामनिर्गमन-भरतराज्यविधानम्

अथ तत्र जिनायतने निद्रां गमयित्वाऽर्धरात्रे । लोके सुप्तप्रसुप्ते निःसंचारे विगतशब्दे ॥१॥

गृहीत्वा धनुर्वररत्नं सीतासहितौ जिनं नत्वा । शनैर्विनिर्गतौ तौ द्वावेव जनं प्रलोकमानौ ॥२॥

को वात्र सुरतक्षीणो गाढमालिङ्ग्य शेते कान्तम् । पूर्वं कृतापराधोऽन्यो महिलां प्रसादयति ॥३॥

अपरः पुनः परगृहं गत्वा कुञ्चितैरङ्गैः । उद्वासयति मार्जारं जालगवाक्षान्तरे धूर्तः ॥४॥

अन्यः शून्यायतने संकेतकदत्तकन्यासद्भावः । अधिकमाकुलितमनाः करोति निविष्टोत्थितं पुरुषः ॥५॥

एवमेव श्रृण्वन्तौ पश्यन्तौ जनपदस्य विनिर्गतम् । अथ निर्गतौ पुराच्छनैस्तौ गुप्तद्वारेण ॥६॥

अपरदिग्व्रजन्तौ दृष्टौः सुभटैर्मार्ग्यमाणैः । गत्वा प्रणमितौ तौ भावेन ससैन्यसहितैः ॥७॥

सिंहौ स्वभावमन्थरगत्या शनैस्तु तत्र नरवृषभौ । गव्युतिमात्रस्थानं गच्छतः सुखं बलसमग्रौ ॥८॥

ग्रामेषु पत्तनेषु च पूज्यमानौ जनेन बहुना । पश्यन्तौ व्रजन्तौ खेट-मडम्बाऽऽकारां वसुधाम् ॥९॥

अथ तौ क्रमेण प्राप्तौ हरि-गज-रुरु-चमर-शरभशब्दालाम् । घनपादपसंच्छन्नामटवीमेव पारियात्रस्य ॥१०॥

पश्यतस्तत्र भीमां बहुग्राहसमाकुलां जलसमृद्धाम् । गम्भीरां नामा नदीं कल्लोलोच्छलितसंघाताम् ॥११॥

---

१. नमेऊण-प्रत्य० । २. संकेयट्ठाणदिन्नसब्भावो-प्रत्य० । ३. पेच्छन्ति तत्थ भीमं बहुगाहसमाउलं जलसमिद्धं । गंभीरं नाम नइं कल्लोलुच्छलियसंघायं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तो राघवेण भणिया, सुहडा सव्वे वि साहणसमग्गा । तुम्हे नियत्तियव्वं, एयं रण्णं महाभीमं ॥१२॥

ताएण भरहसामी, ठविओ रज्जम्मि सयलपुहईए । गच्छामि दक्खिणपहं, अवस्स तुब्भे नियत्तेह ॥१३॥

अह ते भणन्ति सुहडा, सामि ! तुमे विरहियाण किं अम्हं । रज्जेण साहणेण य, विविहेण य देहसोक्खेणं ? ॥१४॥

सीह-ऽच्छभल्ल-चित्तय-घणपायव-गिरिविराउले रण्णे । समयं तुमे वसामो, कुणसु दयं असरणाणऽम्हं ॥१५॥

आउच्छिऊण सुहडे, सीयं भुयावगूहियं काउं । रामो उत्तरइ नइं, गम्भीरं लक्खणसमग्गो ॥१६॥

रामं सलक्खणं ते, परतीरावट्ठियं पलोएउं । हाहारवं करेन्ता, सव्वे वि भडा पडिनियत्ता ॥१७॥

तेहि नियत्तेहि तहिं, दिट्ठं चिय जिणहरं महातुङ्गं । समणेहि संपरिवुडं, तत्थ पविट्ठा सुहडसीहा ॥१८॥

काऊण नमोक्कारं, जिणपडिमाणं विसुद्धभावेणं । पणमन्ति मुणिवरिन्दे, अणुपरिवाडीए तिविहेणं ॥१९॥

पुच्छन्ति साहवं ते, भयवं ! संसारसायरं भीमं । उत्तारेहि महायस ! अम्हे जिणधम्मपोएणं ॥२०॥

तो साहवेण धम्मो, कहिओ संखेवओ जिणुद्दिट्ठो । जह तक्खणेण जाया, संवेगपरायणा बहवे ॥२१॥

निद्दड्ढो विजओ वि य, मेहकुमारो तहेव रणलोलो । नागदमणो य [1]वीरो, सढो य सत्तूदमधरो य ॥२२॥

तह कङ्कडो विणोदो, सव्वो पियवद्धमो कढोरो य । एवंविहा नरेन्दा, निग्गन्थसि[2]रिं समणुपत्ता ॥२३॥

अन्ने पुण गिहधम्मं, घेत्तूण नराहिवा विसयहुत्ता । पत्ता साएयपुरी, भरहस्स फुडं निवेएन्ति ॥२४॥

तदा राघवेन भणिताः सुभटाः सर्वेऽपि साधनसमग्राः । युष्माभि र्निवर्त्तितव्यमेतदरण्यं महाभीमम् ॥१२॥

तातेन भरतस्वामी स्थापितो राज्ये सकलपृथिव्याः । गच्छामि दक्षिणपथमवश्यं यूयं निवर्तध्वम् ॥१३॥

अथ ते भणन्ति सुभटाः स्वामिंस्त्वया विरहितानां किमस्माकम् । राज्येन साधनेन च विविधेन च देहसुखेन ? ॥१४॥

सिंहाच्छभल्लचित्रकघनपादपगिरिविराकुलेऽरण्ये । समकं त्वया वसामः कुरु दयामशरणानामस्माकम् ॥१५॥

आपृच्छ्य सुभटान् सीतां भुजालिङ्गनं कृत्वा । राम उत्तरति नदीं गम्भीरां लक्ष्मणसमग्रः ॥१६॥

रामं सलक्ष्मणं ते परतीरावस्थितं प्रलोक्य । हाहारवं कुर्वन्तः सर्वेऽपि भटाः प्रतिनिवृत्ताः ॥१७॥

तैर्निवर्तमानैस्तत्र दृष्टमेव जिनगृहं महातुङ्गम् । श्रमणैः संपरिवृत्तं तत्र प्रविष्टाः सुभटसिंहाः ॥१८॥

कृत्वा नमस्कारं जिनप्रतिमानां विशुद्धभावेन । प्रणमन्ति मुनिवरेन्द्राननुपरिपाट्या त्रिविधेन ॥१९॥

पृच्छन्ति साधूंस्ते भगवन् ! संसारसागरं भीमम् । उत्तारय महायशः ! अस्माञ्जिनधर्मपोतेन ॥२०॥

तदा साधुना धर्मः कथितः संक्षेपतो जिनोदिष्टः । यथा तत्क्षणेन जाताः संवेगपरायणा बहवः ॥२१॥

निर्दग्धो विजयोऽपि च मेघकुमारस्तथैव रणलोलः । नागदमनश्च वीरः शठश्च शत्रुदमोधरश्च ॥२२॥

तथा कङ्कटो विनोदः सर्वः प्रियवर्द्धनः कठोरश्च । एवंविधा नरेन्द्रा निग्रंथश्रियं समनुप्राप्ताः ॥२३॥

अन्ये पुन गृहिधर्मं गृहीत्वा नराधिपा विषयाभिमुखाः । प्राप्ताः साकेतपुरीं भरतस्य स्फुटं निवेदयन्ति ॥२४॥

---

१. धीरो-प्रत्य० । २. सिरिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीया-लक्खणसहिओ, न नियत्तो राघवो गओ रण्णं। सोऊण वयणमेयं, भरहो अइदुक्खिओ जाओ ॥२५॥

तो दसरहो वि राया, पुत्तविओए अईवसंविग्गो। ठावेइ तक्खणं चिय, विसए रज्जहिवं भरहं ॥२६॥

संवेगजणियकरणो, भडाण बावत्तरीए समसहिओ। दिक्खं गओ नरिन्दो, पासे च्चिय भूयसरणस्स ॥२७॥

दशरथप्रव्रज्या—

तत्थ वि एगविहारी, अणरण्णसुओ तवं पकुव्वन्तो। मणसा दूमियहियओ, पुत्तसिणेहं समुव्वहइ ॥२८॥

अह अन्नया कयाई, धीरो आरुहिय सुहयरं झाणं। चिन्तेइ तो मणेणं, नेहो च्चिय बन्धणं गाढं ॥२९॥

धण-सयण-पुत्त-दारा, जे अन्नभवेसु आसि णेगविहा। ते कत्थ गयाऽणाईसंसारे परिभमन्तस्स ॥३०॥

परिभुत्तं विसयसुहं, सुरलोए वरविमाणवसहीसु। नरयाणलदाहा चिय, संपत्ता भोगहेउम्मि ॥३१॥

अन्नोन्नभक्खणं पुण, तिरिक्खजोणीसु समणुभूयं मे।
पुढवि-जल-जलण-मारुय भणिओ य वणस्सईसु चिरं ॥३२॥

मणुयत्तणे वि भोगा, भुत्ता संजोय-विप्पओगा य। बहुरोग-सोगमाई, बन्धवनेहाणुरत्तेणं ॥३३॥

तम्हा पुत्तसिणेहं, एयं छड्डेमि दोसआमूलं। मुणिवरदिट्ठेण पुणो, झाणेण मणं विसोहेमि ॥३४॥

विविहं तवं करेन्तो, अहियासेन्तो परीसहे सव्वे। दसरहमुणी महप्पा, विहरइ एगन्तदेसेसु ॥३५॥

पुत्तेसु परविदेसं, गतेसु अवराइया य सोमित्ती। भत्तारे पव्वइए, सोगसमुद्दम्मि पडियाओ ॥३६॥

सीता-लक्ष्मणसहितो न निवृत्तो राघवो गतोऽरण्यम्। श्रुत्वा वचनमेद्भरतोऽतिदुःखितो जातः ॥२५॥

तदा दशरथोऽपि राजा पुत्रवियोगेऽतिवसंविग्नः। स्थापयति तत्क्षणमेव विषये राज्याधिपं भरतम् ॥२६॥

संवेगजनितकरणो भटानां द्वासप्ततिभिः समसहितः। दिक्षां गतो नरेन्द्रः पार्श्व एव भूतशरणस्य ॥२७॥

दशरथ प्रव्रज्या –

तत्राप्येकविहार्यनरण्यसुतस्तपः प्रकुर्वन्। मनसा दवितहृदयः पुत्र स्नेहं समुद्वहति ॥२८॥

अथान्यदा कदाचिद्धीर आरुह्य शुभतरं ध्यानम्। चिन्तयति तदा मनसा स्नेह एव बन्धनं गाढम् ॥२९॥

धन-स्वजन-पुत्र-दारा येऽन्यभवेष्वासन्ननेकविधाः। ते कुत्रगता अनादिसंसारे परिभ्रमता ॥३०॥

परिभुक्तं विषयसुखं सुरलोके वरविमानवसतिषु। नरकानलदाहा अपि च संप्राप्ता भोगहेतौ ॥३१॥

अन्योन्यभक्षणं पुनस्तिर्यग्योनिषु समनुभूतं मे। पृथिवी-जल-ज्वलन-मारुतभ्रान्तश्च वनस्पतिषु चिरम् ॥३२॥

मनुष्यत्वेऽपि भोगा भुक्ताः संयोग-विप्रयोगाश्च। बहुरोगशोकादयो बान्धवस्नेहानुरक्तेन ॥३३॥

तस्मात्पुत्रस्नेहमेतत्मुञ्चामि दोषामूलम्। मुनिवरदृष्टेन पुनर्ध्यानेन मनो विशोधयामि ॥३४॥

विविधं तपः कुर्वन्नध्यासन् परिषहान्सर्वान्। दशरथमुनि र्महात्मा विहरत्येकान्तदेशेषु ॥३५॥

पुत्रेषु परविदेशं गतेष्वपराजिता च सौमित्री। भर्त्तरि प्रव्रजिते शोकसमुद्रे पतिते ॥३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुयसोगदुक्खियाओ, ताओ दट्ठूण केगई देवी । तो भणइ निययपुत्तं, वयणमिणं मे निसामेहि ॥३७॥
निक्कण्टयमणुकूलं, पुत्त ! तुमे पावियं महारज्जं । पउमेण लक्खणेण य, रहियं न उ सोहए एयं ॥३८॥
ताणं चिय जणणीओ, पुत्तविओगम्मि जायदुक्खाओ । काहिन्ति मा हु कालं, आणेहि लहुं वरकुमारे ॥३९॥
जणणीए वयणमेयं, सुणिऊण तुरंगमं समारूढो । तूरन्तो च्चिय भरहो, ताणं अणुमग्गओ लग्गो ॥४०॥
इय दिट्ठा वि य समयं, महिलाए ते कुमारवरसीहा । पुच्छन्तो पहियजणं, वच्चइ भरहो पवणवेगो ॥४१॥
अह ते नईए तीरे, वीसममाणा महावणे भीमे । सीयाए समं पेच्छइ, भरहो पासत्थवरधणुया ॥४२॥
बहुयदिवसेसु देसो, जो वोलीणो कुमारसीहेहिं । सो भरहेण पवन्नो, दिवसेहिं छहि अयत्तेणं ॥४३॥
सो चक्खुगोयराओ, तुरगं मोत्तूण केकईपुत्तो । चलणेसु पउमणाहं, पणमिय मुच्छं समणुपत्तो ॥४४॥
पडिबोहिओ य भरहो, रामेणालिङ्गिओ सिणेहेणं । सीयाए लक्खणेण य, [1]बाढं संभासिओ विहिणा ॥४५॥
भरहो नमियसरीरो, काऊण सिरञ्जलिं भणइ रामं । रज्जं करेहि सुपुरिस ! सयलं आणागुणविसालं ॥४६॥
अहयं धरेमि छत्तं, चामरधारो य हवइ सत्तुंजो । लच्छीहरो य मन्ती, तुज्झऽन्नं सुविहियं किं वा ? ॥४७॥
जाव इमो आलावो, वट्टइ तावं रहेण तूरन्ती । तं चेव समुद्देसं, संपत्ता केगई देवी ॥४८॥
ओयरिय रहवराओ, पउमं आलिङ्गिऊण रोवन्ती । संभासेइ कमेणं, सीयासहियं च सोमित्तिं ॥४९॥
तो केकई पवुत्ता, पुत्त, ! विणीयापुरिम्मि वच्चामो । रज्जं करेहि निययं, भरहो वि य सिक्खणीओ ते ॥५०॥

सुतशोकदु:खिते ते दृष्ट्वा कैकयी देवी । तदा भणति निजपुत्रं वचनमिदं मे निशामय ॥३७॥
निष्कण्टकमनुकूलं पुत्र ! त्वया प्राप्तं महाराज्यम् । पद्मेन लक्ष्मणेन च रहितं न तु शोभत एतत् ॥३८॥
तयोरेव जनन्यौ पुत्रवियोगे जातदु:खे । करिष्यतो मा हु कालमानय लघुं वरकुमारौ ॥३९॥
जनन्या वचनमेतच्छ्रुत्वा तुरंगमं समारुढः । त्वरमाणैव भरतस्तयोरनुमार्गतो लग्नः ॥४०॥
इति दृष्टावपि च समकं महिलया तौ कुमारवरसिंहौ । पृच्छन्पथिकजनं व्रजति भरतः पवनवेगः ॥४१॥
अथ तौ नद्या तीरे विश्राम्यन्तौ महावने भीमे । सीतया समं पश्यति भरतः पार्श्वस्थवरधनुष्यौ ॥४२॥
बहुदिवसै र्देशो यो व्यतीतः कुमारसिंहाभ्याम् । स भरतेन प्रपन्नो दिवसैः षडिभरयत्नेन ॥४३॥
स चक्षुर्गोचरात्तुरगं मुक्त्वा कैकयीपुत्रः । चरणयोः पद्मनाभं प्रणम्य मूर्च्छां समनुप्राप्तः ॥४४॥
प्रतिबोधितश्च भरतो रामेणालिङ्गितः स्नेहेन । सीतया लक्ष्मणेन चात्यन्तं संभाषितो विधिना ॥४५॥
भरतो नतशरीरः कृत्वा शिरोऽञ्जलिं भणति रामम् । राज्यं कुरु सत्पुरुष ! सकलमाज्ञागुणविशालम् ॥४६॥
अहं धरेमि छत्रं चामरधरश्च भवति शत्रुघ्नः । लक्ष्मीधरश्च मन्त्री तवान्यं सुविहितं किं वा ? ॥४७॥
यावदयमालापो वर्त्तते तावद्रयेन त्वरथे माणा । तमेव समुद्देशं संप्राप्ता कैकयी देवी ॥४८॥
अवतीर्य रथवरात्पद्ममालिङ्ग्य रुदन्ती । संभाषते क्रमेण सीतासहितं च सौमित्रिम् ॥४९॥
तदा कैकयी प्रोक्ता पुत्र ! विनितापूर्यां व्रजामः । राज्यं कुरु निजकं भरतोऽपि च शिक्षणीयस्तव: ॥५०॥

---

१. गाढं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

महिला सहावचवला, अदीहपेही सढाय माइल्ला । तं मे खमाहि पुत्तय ! जं पडिकूलं कयं तुज्झ ॥५१॥

तो भणइ पउमणाहो, अम्मो ! किं खत्तिया अलियवाई । होन्ति महाकुलजाया ? तम्हा भरहो कुणउ रज्जं ॥५२॥

तत्थेव काणणवणे, पच्चक्खं सव्वनरवरिन्दाणं । भरहं ठवेइ रज्जे, रामो सोमित्तिणा सहिओ ॥५३॥

नमिऊण केगईए, भुयासु उवगूहिउं भरहसामिं । अह ते सीयासहिया, संभासिय सव्वसामन्ते ॥५४॥

दक्खिणदेसाभिमुहा, चलिया भरहो वि निययपुरहुत्तो । पत्तो करेइ रज्जं, इन्दो जह देवनयरीए ॥५५॥

सो एरिसम्मि रज्जे, न करेइ धिइं खणं पि सोएणं । नवरं पुण अङ्गसुहं, हवइ च्चिय जिणपणामेणं ॥५६॥

भरहो जिणिन्दभवणं, वन्दणहेउं गओ सपरिवारो । थोऊण पेच्छइ [1]मुणी, नामेण जुतिं सह गणेणं ॥५७॥

भरहो नमिऊण [2]मुणी, तस्स य पुरओ अभिग्गहं धीरो । गेण्हइ रामदरिसणे, पव्वज्जा हं करिस्सामि ॥५८॥

भरहेण धम्मनिहसं, समणो परिपुच्छिओ भणइ एवं । जाव य न एइ रामो, ताव गिहत्थो कुणसु धम्मं ॥५९॥

विविधव्रतनियमजिनपूजादानादीनां फलम्—

अच्चन्तदुद्धरधरा, चरिया निग्गन्थमहरिसीणं तु । परिकम्मविसुद्धस्स उ, होही सुहसाहणा नियमा ॥६०॥

रयणद्दीवम्मि गओ, गेण्हइ एक्कं पि जो महारयणं । तं तस्स इहाणीयं, महग्घमोल्लं हवइ लोए ॥६१॥

जिणधम्मरयणदीवे, जइ नियममणिं [3]लएइ एक्कं पि । तं तस्स अणग्घेयं, होही पुण्णं परभवम्मि ॥६२॥

महिला स्वभावचपलाऽदीर्घप्रेक्षिणी शठा च मायावती । तन्मे क्षमस्व पुत्र ! यत्प्रतिकूलं कृतं तव ॥५१॥

तदा भणति पद्मनाभोऽम्बे ! किं क्षत्रिया अलिकवादिनः । भवन्ति महाकुलजाताः ? तस्माद्भरतः करोतु राज्यम् ॥५२॥

तत्रैव काननवने प्रत्यक्षं सर्वनरेन्द्राणाम् । भरतं स्थापयति राज्ये रामः सौमित्रिणा सहितः ॥५३॥

नत्वा कैकयीं भुजाभ्यालिङ्ग्य भरतस्वामिनम् । अथ तौ सीतासहितौ संभाष्य सर्वसामन्तान् ॥५४॥

दक्षिणदेशाभिमुखौ चलितौ भरतोऽपि निजपुराभिमुखः । प्राप्तः करोति राज्यमिन्द्रो यथा देवनगर्याम् ॥५५॥

स एतादृशे राज्ये न करोति धृतिं क्षणमपि शोकेन । नवरं पुनरङ्गसुखं भवत्येव जिनप्रणामेन ॥५६॥

भरतो जिनेन्द्रभवनं वन्दनहेतु गतः सपरिवारः । स्तुत्वा पश्यति मुनिं नाम्ना द्युतिं सह गणेन ॥५७॥

भरतो नत्वा मुनिं तस्य च पुरतोऽभिग्रहं धीरः । गृह्णाति रामदर्शने प्रव्रज्यामहं करिष्यामि ॥५८॥

भरतेन धर्मनिकषः श्रमणः परिपृष्टो भणत्येवम् । यावच्चनैति रामस्तावद्गृहस्थः कुरु धर्मम् ॥५९॥

विविधव्रतनियमजिनपूजादानादीनां फलम् -

अत्यन्तदुर्धरधरा चर्या निर्ग्रन्थमहर्षीणां तु । परिकर्मविशुद्धस्य तु भवति सुखसाधना नियमा ॥६०॥

रत्नद्वीपे गतो गृह्णात्येकमपि यो महारत्नम् । तत्तस्येहानीतं महार्घ्यमूल्यं भवति लोके ॥६१॥

जिनधर्मरत्नद्वीपे यदि नियममणिं लभत एकमपि । तत्तस्यानर्घ्येयं भवति पुण्यं परभवे ॥६२॥

---

१. मुणिं नामेण जुइं-प्रत्य० । २. मुणिं-प्रत्य० । ३. लहेइ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पढममहिंसारयणं, गेण्हेउं जो जिणं समच्चेइ । सो भुञ्जइ सुरलोए, इन्दियसोक्खं अणोवमियं ॥६३॥

सच्चव्वयनियमधरो, जो पूयइ जिणवरं पयत्तेणं । सो होइ महुरवयणो भुञ्जइ य परंपरसुहाइं ॥६४॥

परिहरिऊण अदत्तं, जो जिणनाहस्स कुणइ वरपूयं । सो नवनिहीण सामी, होही मणि-रयणपुण्णाणं ॥६५॥

परनारीसु पसङ्गं, न कुणइ जो जिणमयासिओ पुरिसो । सो पावइ सोहग्गं, नयणाणन्दो वरतणूणं ॥६६॥

संतोसवयामूलं, धारइ य जिणिन्दवयणकयभावो । सो विविहधणसमिद्धो, होइ नरो सव्वजणपुज्जो ॥६७॥

आहारपयाणेणं, जायइ भोगस्स आलओ निययं । जइ वि य जाइ विएसं, तहवि य सोक्खं हवइ तस्स ॥६८॥

अभयपयाणेण नरो, जायइ भयवज्जिओ निरोगो य । नाणस्स यदाणेणं, सव्वकलापारओ होइ ॥६९॥

आहारवज्जणं जो, करेइ रयणीसु जिणमयाभिमुहो । आरम्भपवत्तो वि य, लहइ नरो सो वि सुगइपहं ॥७०॥

अरहन्तनमोक्कारं, तिण्णि वि काले करेइ जो पुरिसो । तस्स बहुयं वि पावं, नासइ वरसुद्धभावस्स ॥७१॥

जल-थलयसुरहिनिम्मलकुसुमेसु य जो जिणं समच्चेइ । सो दिव्वविमाणठिओ, कीलइ पवरच्छराहि समं ॥७२॥

भावकुसुमेसु नियं, विमलेसु जिणं समच्चए जो उ । सो होइ सुन्दरतणू, लोए पूयारिहो पुरिसो ॥७३॥

धूयं अगरु-तुरुक्कं, कुंकुम-वरचन्दणं जिणवरस्स । [1]जो देइ भावियमई, सो सुरहिसुरो समुब्भवइ ॥७४॥

जो जिणभवणे दीवं, देइ नरो तिव्वभावसंजुत्तो । सो दिणयरसमतेओ, देवो उप्पज्जइ विमाणे ॥७५॥

प्रथममहिंसा रत्नं गृहीत्वा यो जिनं समर्च्यति । स भुनक्ति सुरलोक इन्द्रियसुखमनोपमितम् ॥६३॥

सत्यव्रतनियमधरो यः पूजयति जिनवरं प्रयत्नेन । स भवति मधुरवचनो भुनक्ति च परंपरसुखानि ॥६४॥

परिहृत्यादत्तं यो जिननाथस्य करोति वरपूजाम् । स नवनिधीनां स्वामी भवति मणि-रत्नपूर्णानाम् ॥६५॥

परनारिभिः प्रसङ्गं न करोति यो जिनमताश्रितः पुरुषः । प्राप्नोति सौभाग्यं नयनानन्दो वरतनूनाम् ॥६६॥

संतोषव्रतामूलं धारयति च जिनेन्द्रवचनकृतभावः । स विविधधनसमृद्धो भवति नरः सर्वजनपूज्यः ॥६७॥

आहारप्रदानेन जायते भोगस्यालयो नित्यम् । यद्यपि च याति विदेशं तथापि च सौख्यं भवति तस्य ॥६८॥

अभयप्रदानेन नरो जायते भयवर्जितो निरोगश्च । ज्ञानस्य च दानेन सर्वकलापारगो भवति ॥६९॥

आहारवर्जनं यः करोति रजनीषु जिनमताभिमुखः । आरम्भप्रवृत्तोऽपि लभते नरः सोऽपि सुगतिपथम् ॥७०॥

अर्हन् नमस्कारं त्रिष्वपि कालेषु करोति यः पुरुषः । तस्य बहुकमपि पापं नश्यति वरशुद्धभावस्य ॥७१॥

जल-स्थलसुरभिनिर्मलकुसुमै र्यो जिनं समर्चयति । स दिव्यविमानस्थितः क्रीडति प्रवराप्सरोभिः समम् ॥७२॥

भावकुसुमै र्नित्यं विमलै र्जिनं समर्चयति यस्तु । स भवति सुन्दरतनु र्लोके पूजार्हः पुरुषः ॥७३॥

धूपमगरु-तुरुष्कं, कुंकुमवरचन्दनं जिनवरस्य । यो ददाति भावितमतिः स सुराधिसुरः समुद्भवति ॥७४॥

यो जिनभवने दीपं ददाति नरस्तीव्रभावसंयुक्तः । स दिनकरसमतेजा देव उत्पद्यते विमाने ॥७५॥

---

१. दिव्वामलहारधरो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

छत्तं चमर-[1] पडाया, दप्पण-लम्बूसया वियाणं च। जो देइ जिणाययणे, सो परमसिरिं समुव्वहइ ॥७६॥

गन्धेहि जिणवरतणू[2], जो हु समालभइ भावियमईओ। सो सुरभिगन्धपउरे, रमइ विमाणे सुचिरकालं ॥७७॥

काऊण जिणवराणं, अभिसेयं सुरहिगन्धसलिलेणं। सो पावइ अभिसेयं, उप्पज्जइ जत्थ जत्थ नरो ॥७८॥

खीरेण जोऽभिसेयं, कुणइ जिणिन्दस्स भत्तिराएणं। सो खीरविमलधवले, रमइ विमाणे सुचिरकालं ॥७९॥

दहिकुम्भेसु जिणं जो, ण्हवेइ दहिकोट्टिमे सुरविमाणे। उप्पज्जइ लच्छिधरो, देवो दिव्वेण रूवेणं ॥८०॥

एत्तो घियाभिसेयं, जो कुणइ जिणेसरस्स पययमणो। सो होइ सुरहिदेहो, सुरपवरो वरविमाणम्मि ॥८१॥

अभिसेयपभावेणं, बहवे सुव्वन्तिऽणन्तविरियाई। लद्धाहिसेयरिद्धी, सुरवरसोक्खं अणुहवन्ति ॥८२॥

भत्तीए निवेयणयं, बलिं च जो जिणहरे पउञ्जेइ। परमविभूई[3] पावइ, आरोग्गं चेव सो पुरिसो ॥८३॥

गन्धव्व-तूर-नट्टं, जो कुणइ महुस्सवं जिणायतणे। सो वरविमाणवासे, पावइ परमुस्सवं देवो ॥८४॥

जो जिणवराण भवणं, कुणइ जहाविहवसारसंजुत्तं। सो पावइ परमसुहं, सुरगणअभिणन्दिओ सुइरं ॥८५॥

जिणपडिमा[4] कुणइ नरो, जो दढधम्मो अणन्नदिट्ठीओ। सो सुर-माणुसभोगे, भोत्तूण सिवं पि पाउणइ ॥८६॥

काऊण एवमाई, धम्मं जिणदेसियं सुरविमाणे। उप्पज्जिऊण चविओ, चक्कहरत्तं पुणो लहइ ॥८७॥

पुणरवि काऊण तवं, पावइ सिद्धिं विमुक्ककम्मरओ। एत्तो सुणसु विभत्तिं, जिणवन्दणभत्तिरायस्स ॥८८॥

छत्र-चामर-पताका-दर्पण-लम्बुषकान् विमानं च। यो ददाति जिनायतने स परमश्रियं समुद्वहति ॥७६॥

गन्धै र्जिनवरतनुं यो हु समालभते भावितमतिः। स सुरभिगन्धप्रचुरे रमते विमाने सुचिरकालम् ॥७७॥

कृत्वा जिनवराणामभिषेकं सुरभिगन्धसलिलेन। स प्राप्नोत्यभिषेकमुत्पद्यते यत्र यत्र नरः ॥७८॥

क्षीरेण योऽभिषेकं करोति जिनेन्द्रस्य भक्तिरागेण। स क्षीरविमलधवले रमते विमाने सुचिरकालम् ॥७९॥

दधिकुम्भै र्जिनं यः स्नापयति दधिकुट्टिमे सुरविमाने। उत्पद्यते लक्ष्मीधरो देवो दिव्येन रूपेण ॥८०॥

इतो घृताभिषेकं यः करोति जिनेश्वरस्य प्रयतमनाः। स भवति सुरभिदेहः सुरप्रवरो वरविमाने ॥८१॥

अभिषेकप्रभावेण बहवः श्रूयन्तेऽनन्तवीर्यादयः। लब्धाभिषेकर्द्धयः सुरवरसौख्यमनुभवन्ति ॥८२॥

भक्त्या नैवेद्यं बलिं च यो जिनगृहे प्रयुञ्जति। परमविभूतिं प्राप्नोत्यारोग्यं चैव स पुरुषः ॥८३॥

गान्धर्व-तूर्य-नाट्यं यः करोति महोत्सवं जिनायतने। स वरविमानवासे प्राप्नोति परमोत्सवं देवः ॥८४॥

यो जिनवराणां भवनं करोति यथाविभवसारसंयुक्तम्। स प्राप्नोति परमसुखं सुरगणाभिनन्दितः सुचिरम् ॥८५॥

जिनप्रतिमां करोति नरो यो दृढधर्मोऽनन्यदृष्टिकः। स सुर-मनुष्यभोगान्भुक्त्वा शिवमपि प्राप्नोति ॥८६॥

कृत्वेवमादि धर्मं जिनदेशितं सुरविमाने। उत्पद्य च्युतश्चक्रधरत्वं पुनर्लभते ॥८७॥

पुनरपि कृत्वा तपः प्राप्नोति सिद्धिं विमुक्तकर्मरजाः। इतः श्रुणु विभक्तिं जिनवन्दनभक्तिरागस्य ॥८८॥

---

१. पडायं दप्पण लम्बूसयं-प्रत्य०। २. तणुं-प्रत्य०। ३. बिभूइं-प्रत्य०। ४. पडिमं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मणसा होइ चउत्थं, छट्ठफलं उट्ठियस्स संभवइ । गमणस्स उ आरम्भे, हवइ फलं अट्ठमोवासे ॥८९॥
गमणे दसमं तु भवे, तह चेव दुवालसं गए किंचि । मज्झे पक्खोवासं, मासोवासं तु दिट्ठेणं ॥९०॥
संपत्तो जिणभवणं, लहई यछम्मासियं फलं पुरिसो । संवच्छरियं तु फलं दारुद्देसे ठिओ लहइ ॥९१॥
पयक्खिण्णे लहइ य, वरिससयफलं जिणे तओ दिट्ठे । पावइ वरिससहस्सं, अणन्तपुण्णं जिणथुईए ॥९२॥
जिणवन्दणभत्तीए, न हु अन्नो अत्थि उत्तमो धम्मो । तम्हा करेहि [१]भत्ती, भरह ! तुमं जिणवरेन्दाणं ॥९३॥
पच्छा निग्गन्थरिसी, भविऊण सिवं पि जाहिसि कयत्थो । भरहो मुणिस्स पासे, सायारं गेण्हई धम्मं ॥९४॥
दरिसणविसुद्धभावो, साहुपयाणुज्जओ विणीओ य । जुवइसयद्धेण समं, करेइ रज्जं गुणविसालं ॥९५॥
एवंविहे वि रज्जे, नियएण उवेइ भोगमणुबन्धं । चिन्तेइ तग्गयमणो, कइया दिक्खं पवज्जे हं ? ॥९६॥

एवं तु राया भरहो विणीओ, जिणिन्दनिग्गन्थकहाभिसत्तो ।
सकम्मविद्धंसणहेउभूयं, करेइ चित्तं विमलं विसुद्धं ॥९७॥

॥ इय पउमचरिए दसरहपव्वज्जारामनिग्गमणभरहरज्जविहाणो नाम बत्तीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

मनसा भवति चतुर्थं षष्टफलमुत्थितस्य संभवति । गमनस्य त्वारम्भे भवति फलमष्टमोपवासम् ॥८९॥
गमने दशमं तु भवेत्तथैव द्वादशं गते किंचित् । मध्ये पक्षोपवासं मासोपवासं तु दृष्टेन ॥९०॥
संप्राप्तो जिनभवनं लभते च षण्मासिकं फलं पुरुषः । सांवत्सरिकं तु फलं द्वारोद्देशे स्थितो लभते ॥९१॥
प्रदक्षिणायां लभते च वर्षशतफलं जिने ततो दृष्टे । प्राप्नोति वर्षसहस्रमनन्तपुण्यं जिनस्तुत्या ॥९२॥
जिनवन्दनभक्त्या न खल्वन्याऽस्त्युत्तमो धर्मः । तस्मात्कुरु भक्तिं भरत ! त्वं जिनवरेन्द्राणाम् ॥९३॥
पश्चान्निग्रन्थर्षि भूत्वा शिवमपि यास्यसि कृतार्थः । भरतो मुनेः पार्श्वे साकारं गृह्णाति धर्मम् ॥९४॥
दर्शनविशुद्धभावः साधुप्रदानोद्यतो विनीतश्च । युवतिशतार्द्धेन समं करोति राज्यं गुणविशालम् ॥९५॥
एवं विधेऽपि राज्ये निजकेनोपैति भोगमनुबन्धम् । चिन्तयति तद्गतमनाः कदा दिक्षां प्रव्रजाम्यहम् ॥९६॥

एवं तु राजा भरतो विनीतो जिनेन्द्रनिर्ग्रन्थकथाभिसक्तः ।
स्वकर्मविध्वंसनहेतुभूतं करोति चित्तं विमलं विशुद्धम् ॥९७॥

॥ इति पद्मचरित्रे दशरथप्रव्रज्या रामनिर्गमनभरतराज्यविधानो नाम द्वात्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. भत्ति-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३३. वज्जयण्णउवक्खाणं

तत्तो ते दो वि जणा, सीयासहिया कमेण वच्चन्ता । पत्ता य तावसकुलं, वक्कल-जडधारिणो जत्थ ॥१॥
नाणासंगहियफलं, अकिट्ठधण्णेण रुद्धपहमग्गं । उम्बर-फणस-वडाणं, समिहासंघायकयपुञ्जं ॥२॥
पविसन्ति तावसकुलं, आसण-विणओवयारकुसलेहिं। संभासिया य पयया, सव्वेहिं वितावसगणेहिं ॥३॥
वसिऊण तत्थ रयणी, पुणरवि वच्चन्ति अडविपहमग्गं । दूरुन्नयसिहरोहं, पेच्छन्ति उ चित्तकूडं ते ॥४॥
नाणाविहदुमछन्नं, नाणाविहसावयाण आवासं । नाणापक्खिसमिद्धं, गिरिनइयारुद्धसंचारं ॥५॥
कत्थइ सीहविदारित-गयवररुहिरच्छडारुणं भीमं । कत्थइ सरभुत्तासिय-हत्थिउलविभग्गतरुनिवहं ॥६॥
कत्थइ वराह-केसरिदढदप्पावडियजुज्झसंघट्टं । कत्थइ कढिणोरत्थल-वग्घचवेडाहयं महिसं ॥७॥
वाणरबुक्काररवं, कत्थइ किलिकिलिकिलन्तपक्खिगणं । कत्थइ सीहभयद्दुय-हरिणपलायन्तसंघायं ॥८॥
कत्थइ मत्तमहागय-गण्डालीणालिगुमगुमायन्तं । एयारिसविणिओगं, पेच्छन्ति य चित्तकूडं ते ॥९॥
नाणातरुब्भवाइं, नाणाविहसुरहिगन्धकलियाइं । खायन्ति जहिच्छाए, फलाइं वरसाउकलियाइं ॥१०॥
लीलाए वच्चमाणा, चउसु वि मासेसु साइरेगेसु । पत्ता अवन्तिविसयं, काणण-वणमण्डियं रम्मं ॥११॥
जण-धणसमाउलं ते, केत्तियमेत्तं पि वोलिया विसयं । अन्नं पुण उद्देसं, पेच्छन्ति जणुज्झियं सहसा ॥१२॥

---

३३. वज्रकर्णोपाख्यानम्

ततस्तौ द्वावपि जनौ सीतासहितौ क्रमेण व्रजन्तौ । प्राप्तौ च तापसकुलं वल्कल-जटाधारिणो यत्र ॥१॥
नानासंगृहीतफलमकृष्टधान्येन रुद्धपथमार्गम् । उदुम्बर-पनस-वटानां समिध-संघातकृतपुञ्जम् ॥२॥
प्रविशतस्तापसकुलमासनविनयोपचारकुशलैः । संभाषितौ च प्रयतौ सर्वैरपितापसगणैः ॥३॥
उषित्वा तत्र रजनीं पुनरपि व्रजतौऽटवीं पथमार्गम् । दूरोन्नतशिखरौघं पश्यतस्तु चित्रकूटं तौ ॥४॥
नानाविधद्रुमच्छन्नं नानाविधश्वापदानामावासम् । नानापक्षिसमृद्धं गिरिनदीकारुद्धसञ्चारम् ॥५॥
कुत्रचित्सिंहविदारितगजवररुधिरच्छटारुणं भीमम् । कुत्रचिच्छरभोत्त्रासितहस्तिकुलविभग्नतरुनिवहम् ॥६॥
कुत्रचिद्वराहकेसरिदृढदर्पापतितयुद्धसंघट्टम् । कुत्रचित्कठिनोरःस्थलव्याघ्रचपेटाहतं महिषम् ॥७॥
वानरगर्जनारवं कुत्रचित्किलकिलकिलत्पक्षिगणम् । कुत्रचित्सिंहभयोपद्रुतहरिणपलायमानत्संघातम् ॥८॥
कुत्रचिन्मत्तमहागजगण्डालीनालि गुमगुमायन्तम् । एतादृशविनियोगं पश्यन्तश्च चित्रकूटं तौ ॥९॥
नानातरूद्भवानि नानाविधसुरभिगन्धकलितानि । खादतो यथेच्छया फलानि वरस्वादुकलितानि ॥१०॥
लीलया व्रजन्तौ चतुर्ष्वपि मासेषु सातिरेकेषु । प्राप्ताववन्तिविषयं काननवनमण्डितं रम्यम् ॥११॥
जन-धन समाकुलं तौ किंचिन्मात्रमपि व्यतीतौ विषयम् । अन्यं पुनरुद्देशं पश्यतो जनोज्झितं सहसा ॥१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वडपायवस्स हेट्ठे, उवविट्ठाऽऽसासिया य वीसन्ता । भणिओ य राघवेणं, लक्खण ! देसो इमो विजणो ॥१३॥
सासा अकिट्ठजाया, उज्जाणदुमा य फलभरोणमिया । पुण्डुच्छुवाडपउरा, गामा वि य पट्टणायारा ॥१४॥
दीसन्ति सरा विउला, अछिन्नपउमुप्पला य पक्खीसु । सयडेसु भण्डएसु य, भग्गेसु विसंठुला पन्था ॥१५॥
चणय-तिल-मुग्ग-मासा, विक्खिरिया तन्दुला य णेगविहा । दीसन्ति बहुदेसे, जिण्णा य जरग्गवा पडिया ॥१६॥
भणिओ य राघवेणं, सोमित्ती पट्टणं व गामं वा । लक्खेहि समब्भासे, परिसमिया दारुणं सीया ॥१७॥
तो लक्खणो वलग्गो, नग्गोहं दीहविडववित्थारं । रामेण पुच्छिओ सो, किं पेच्छसि एत्थ सोमित्ति ? ॥१८॥
सो भणइ देव वियडं, रूवं पेच्छामि पव्वयसरिच्छं । सत्ततलधवलएसु य, पासायसएसु संकिण्णं ॥१९॥
आरामुज्जाणेहि य, तलायसहसेहि वेढियं सयलं । धण-जणवयपरिहीणं, दीसइ नयरं इमं वियडं ॥२०॥
एक्कं पेच्छामि पहू ! पुरिसं अइचवलतुरियगइगमणं । भणिओ य राघवेणं, आणेहि इमं मह समीवं ॥२१॥
ओयरिय पायवाओ, सोमित्ती तेण आणिओ पुरिसो । रामस्स चलणजुयलं, नमिऊण ठिओ समब्भासे ॥२२॥
तं भणइ पउमणाहो, भद्द ! कुओ आगमो सि ? किं देसो । विजणो धणेण रहिओ ? साहसु एयं फुडं मज्झं ॥२३॥
सो भणइ सिरीगुत्तो, अहयं तु कुडुम्बिओ य वइएसो । एत्थागओ महाजस ! भणामि जं तं निसामेहि ॥२४॥
सीहोदरो त्ति नामं, उज्जेणीसामिओ नरवरेन्दो । तस्स इह वज्जयण्णो, दसउरनयराहिवो भिच्चो ॥२५॥
मोत्तूण तिहुयणगुरुं, निग्गन्था साहवो य नाणधरा । अन्नस्स नमोक्कारं, न कुणइ सो चेव पुरिसस्स ॥२६॥

वटपादपस्याध उपविष्टावाश्वासितौ च विश्रान्तौ । भणितश्च राघवेन लक्ष्मण ! देशोऽयं विजनः ॥१३॥
शस्या अकृष्टजाता उद्यानद्रुमाश्च फलभारावनताः । पुण्ड्रेक्षुवाटप्रचुरा ग्रामा अपि च पत्तनाकाराः ॥१४॥
दृश्यन्ते सरांसि विपुलान्यच्छिन्नपद्मोत्पलानि च पक्षिभिः । शकटैर्भाण्डैश्च भग्नैर्विसंस्थुला पन्थानः ॥१५॥
चनक-तिल-मुद्ग-माषा विकीर्णास्तन्दुलाश्चानेकविधाः । दृश्यन्ते बहूद्देशे जिर्णाश्च जरद्गावः पतिताः ॥१६॥
भणितश्च राघवेन सौमित्रे ! पत्तनं वा ग्रामं वा । लक्ष समभ्यासे परिश्रान्ता दारुणं सीता ॥१७॥
तदा लक्ष्मणो विलग्नो न्यग्रोधं दीर्घविटपविस्तारम् । रामेण पृष्टः स किं पश्यस्यत्र सौमित्रे ? ॥१८॥
स भणति देव ! विकटं रुपं पश्यामि पर्वत सदृशम् । सप्ततलधवलैश्च प्रासादशतैः सङ्कीर्णम् ॥१९॥
आरामोद्यानैश्च तडागसहस्रै र्वेष्टितं सकलम् । धन-जनपदपरिहीणं दृश्यते नगरमिदं विकटम् ॥२०॥
एकं पश्यामि प्रभो ! पुरुषमतिचपलत्वरितगमनम् । भणितश्च राघवेनानयेमं मम समीपम् ॥२१॥
अवतीर्य पादपात्सौमित्रिस्तेनानीतः पुरुषः । रामस्य चरणयुगलं नत्वा स्थितः समभ्यासे ॥२२॥
तं भणति पद्मनाभो भद्र ! कुत आगतोऽसि ? किं देशः । विजनो धनेन रहितः ? कथयेतत्स्फुटं मम ॥२३॥
स भणति श्रीगुप्तोऽहं तु कुटुम्बिकश्च वैदेशी । अत्रागतो महायशः ! भणामि यत्तन्निशामय ॥२४॥
सिंहोदर इति नामोज्जयिनीस्वामी नरवरेन्द्रः । तस्येह वज्रकर्णो दशपुरनगराधिपो भृत्यः ॥२५॥
मुक्त्वा त्रिभुवनगुरुं निर्ग्रन्थान्साधुंश्च ज्ञानधरान् । अन्यस्य नमस्कारं न करोति स एव पुरुषस्य ॥२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निग्गन्थपसाएणं, सम्मत्तं वज्जकण्णनरवइणा । पत्तं जगविक्खायं, किं न सुयं देव ! तुम्हेहिं ? ॥२७॥
भणिओ य लक्खणेणं, केणोवाएण तेण सम्मत्तं । लद्धं ? कहेहि एत्तो, वायं मे कोउयं परमं ॥२८॥

वज्रकर्णराजकथा—

एत्तो कहेइ पहिओ, देव ! निसामेहि तस्स साहूणं । दिन्नो जहोवएसो, पढमं सम्मत्तर[1]हियस्स ॥२९॥
अह वज्जकण्णराया, पारद्धीफन्दिओ परिभमन्तो । पेच्छइ मन्दारण्णे, नि[2]ग्गन्थं साहवं एक्कं ॥३०॥
गिम्हे सिलायलत्थो, सूरायवसोसिएसु अङ्गेसु । सीहो व्व भयविमुक्को, समत्तनियमो दढधिईओ ॥३१॥
वरतुरयसमारूढो, कयन्तसरिसो अणाइमिच्छत्तो । गन्तूण भणइ साहुं, किं एत्थं कुणसि आरण्णे ? ॥३२॥
तो भणइ समणसीहो, एत्थ हियं अत्तणो विचिन्तेन्तो । अच्छामि रण्णमज्झे, दुक्खविमोक्खं च कुणमाणो ॥३३॥
पुणरवि भणइ नरेन्दो, एवावत्थस्स भोगरहियस्स । थोवं पि नत्थि सोक्खं, किं अप्पहियं तुमं साहू !? ॥३४॥
विसयपसङ्गाभिमुहं, नाऊण सुभासियं भणइ साहू । जं पुच्छसि अप्पहियं, तं ते सव्वं निवेदेमि ॥३५॥
जे विसएसु पसत्ता, ते अप्पसुहेण वञ्चिया मूढा । भमिहिन्ति भवसमुद्दे, दुक्खसहस्साइं पावन्ता ॥३६॥
हन्तूण विविहसत्ते, इमस्स देहस्स पोसणट्ठाए । आयसपिण्डो व्व जले, जाहिसि नरए निरभिरामे ॥३७॥
नूणं तुमे नराहिव ! न य विन्नायाओ सत्त पुढवीओ । बहुनरयसंकुलाओ, घोराणलपज्जलन्तीओ ॥३८॥

निर्ग्रन्थप्रासादेन सम्यक्त्वं वज्रकर्णनरपतिना । प्राप्तं जगद्विख्यातं किं न श्रुतं देव ! युस्मद्भिः ? ॥२७॥
भणितश्च लक्ष्मणेन केनोपायेन तेन सम्यक्त्वम् । लब्धं ? कथयेतो जातं मे कौतुकं परमम् ॥२८॥

वज्रकर्णराजकथा-

इतः कथयति पथिको देव ! निशामय तस्य साधुना । दत्तो यथोपदेशः प्रथमं सम्यक्त्वरहितस्य ॥२९॥
अथ वज्रकर्णराजा पापर्द्धिस्पन्दितः परिभ्रमन् । पश्यति मन्दारण्ये निर्ग्रन्थं साधुमेकम् ॥३०॥
ग्रीष्मे शीलातलस्थः सूर्यातपशोषितेष्वङ्गेषु । सिंह इव भयविमुक्तः सम्यक्त्वनियमो दृढधृतिः ॥३१॥
वरतुरगसमारूढः कृतान्तसदृशोऽनादिमिथ्यात्वः । गत्वा भणति साधुं किमत्र करोष्यरण्ये ? ॥३२॥
तदा भणति श्रमणसिंहोऽत्र हितमात्मनो विचिन्तयन् । आसेऽरण्यमध्ये दुःखविमोक्षं च कुर्वाणः ॥३३॥
पुनरपि भणति नरेन्द्र एतदवस्थस्य भोगरहितस्य । स्तोकमपि नास्ति सुखं किमात्महितं तव साधो ! ॥३४॥
विषयाप्रसङ्गाभिमुखं ज्ञात्वा सुभाषितं भणति साधुः । यत्पृच्छस्यात्महितं तत्ते सर्वं निवेदयामि ॥३५॥
ये विषयेषु प्रसक्तास्तेऽल्पसुखेन वञ्चिता मूढाः । भ्रमन्ति भवसमुद्रे दुःखशतसहस्राणि प्राप्नुवन्तः ॥३६॥
हत्वा विविधसत्त्वान्नस्य देहस्य पोषणार्थे । अयः पिण्डमिव जले यासि नरके निरभिरामे ॥३७॥
नूनं त्वया नराधिप ! न च विज्ञाताः सप्त पृथिव्यः । बहुनरकसंकुलाः घोरानलप्रज्वलन्त्यः ॥३८॥

---

१. रयणस्स-मु० । २. अणगारं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दुग्गन्धा दुप्फरिसा, नरया ससि-सूरवज्जिया दीणा पुंडयाय कूडसामलि करपत्तऽसिवत्त जन्ताइं ॥३९॥
एएसु पावकम्मा पक्खिता जीवहिंसया दीणा । चक्खुनिमिसं पि सोक्खं, न लहन्ति लभन्ति दुक्खाइं ॥४०॥
ते एरिसं महन्तं, दुक्खं पावन्ति विसयसुहलोला । ताणं चिय अप्पहियं, केरिसयं होइ पुरिसाणं ? ॥४१॥
किम्पागफलसरिच्छं, विसयसुहं अप्पसोक्ख-बहुदुक्खं । अहियं वज्जेहि इमं, करेहि जं तुज्झ अप्पहियं ॥४२॥
तेहि कयं अप्पहियं, जहि उ गहिया महव्वया पञ्च । अहवाऽणुव्वयनिरया, सेसा दुक्खाणि पावन्ति ॥४३॥
धम्मं काऊण इहं, पाविहिसि सुरालए परमसोक्खं । दुक्खं अणुहवसि चिरं, नरयम्मि गओ अहम्मेणं ॥४४॥
एए मया अणाहा, निच्चुव्विग्गा भउद्दुया रण्णे । मा हणसु रसासत्तो, हिंसं तिविहेण वज्जेहि ॥४५॥
एएसु य अन्नेसु य, उवएससएसु बोहिओ जाहे । ताहे तुरङ्गमाओ, ओयरिउं पणमई साहुं ॥४६॥
तो भणइ कयत्थोऽहं, विमुक्कपावो न एत्थ संदेहो । जो सुर-नरसंपुज्जं, साहुस्स समागमं पत्तो ॥४७॥
निग्गन्थाण महायस ! दुक्करचरिया अहं पुण असत्तो । पञ्चाणुव्वयधारी, गिहत्थधम्मे अभिरमामो ॥४८॥
एवं गिहत्थधम्मं, घेत्तूण नराहिवो समुल्लवइ । जिणसाहवे पमोत्तुं, अन्नस्स सिरं न नामेमि ॥४९॥
अह पीइवद्धणं सो, साहुं पूएइ परमभावेणं । उववासं चिय गिण्हइ, राया उल्लसियरोमञ्चो ॥५०॥
उववासियस्स साहू, कहेइ परमं हियं निययकालं । जं काऊण गिहत्था, भविया मुंचन्ति दुक्खाणं ॥५१॥
सागार-निरगारं, चारित्तं दुविहमेव उवइट्ठं । सालम्बणं गिहत्था, करन्ति साहू निरालम्बं ॥५२॥

दुर्गन्धा दुस्स्पर्शा नरकाः शशि-सूर्यवर्जिता नित्यम् । पुटपाक-कूटशाल्मलि-करपत्रासिपत्रयन्त्राणि ॥३९॥
एतेषु पापकर्माणः प्रक्षिप्ता जीवहिंसका दीनाः । चक्षुर्निमेषमपि सुखं न लभन्ते लभन्ते दुःखानि ॥४०॥
त एतादृशं महद्दुःखं प्राप्नुवन्ति विषयसुखलोलाः । तेषामेवात्महितं कीदृशं भवति पुरुषाणाम् ? ॥४१॥
किम्पाकफलसदृशं विषयसुखमल्पसुख-बहुदुःखम् । अधिकं वर्जयेदं कुरु यत्तवात्महितम् ॥४२॥
तैः कृतमात्महितं यैस्तु गृहीता महाव्रताः पञ्च । अथवाणुव्रतनिरताः शेषा दुःखानि प्राप्नुवन्ति ॥४३॥
धर्मं कृत्वेह प्राप्स्यसि सुरालये परमसुखम् । दुःखमनुभवसि चिरं नरके गतोऽधर्मेण ॥४४॥
एते मृगा अनाथा नित्योद्विग्ना भयोपद्रुता अरण्ये । मा हण रसासक्तो हिंसां त्रिविधेन वर्जय ॥४५॥
एतैश्चान्यैश्चोपदेशशतै र्बोधितो यदा । तदा तुरङ्गमादवतीर्य प्रणमति साधुम् ॥४६॥
तदा भणति कृतार्थोऽहं विमुक्तपापो नात्र संदेहः । यः सुर-नरसंपूज्यं साधोःसमागमं प्राप्तः ॥४७॥
निर्ग्रन्थानां महायशः ! दुष्करचर्याहं पुनरसक्तः । पञ्चाणुव्रतधारी गृहस्थधर्मेऽभिरमे ॥४८॥
एवं गृहस्थधर्मं गृहीत्वा नराधिपः समुल्लपति । जिनसाधून्प्रमुञ्च्यान्यस्य शिरो न नमामि ॥४९॥
अथ प्रीतिवर्धनं स साधुं पूजयति परमभावेन । उपवासमेव गृह्णाति राजोल्लसितरोमाञ्चः ॥५०॥
उपवासितस्य साधुः कथयति परमं हितं नित्यकालम् । यत्कृत्वा गृहस्था भविका मुञ्चन्ति दुःखात् ॥५१॥
साकार-निराकारं चारित्रं द्विविधमेवोपदिष्टम् । सालम्बनं गृहस्था कुर्वन्ति साधवो निरालम्बनम् ॥५२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्च य अणुव्वयाइं, सिक्खाओ तह य होन्ति चत्तारि। तिण्णि य गुणव्वयाइं, जिणिन्द[१] पूया य उवइट्ठा ॥५३॥

तो वज्जकण्णराया, जिणधम्मं गेण्हिऊण भावेणं। पविसइ नियनयरं, बहुजणपरिवारिओ तुट्ठो ॥५४॥

गमिऊण रयणिसमयं, मज्जियजिमिओ मणेण चिन्तिए। सीहोयरस्स विणयं, कह तस्स फुडं करिस्से हं? ॥५५॥

चिन्तेंतेण सुमरियं, कणयमयं मुद्दियं इहऽङ्गुट्ठे। कारेमि रयणचित्तं, सुव्वयजिणबिम्बसन्निहियं ॥५६॥

सा नरवईण मुद्दा, कारावेऊण दाहिणङ्गुट्ठे। आविद्धा राएणं, हरिसवसुल्लसियगत्तेणं ॥५७॥

सीहोयरस्स पुरओ, काऊणऽङ्गुट्ठयं नियसीसे। पणमइ जिणिन्दपडिमं, ससंभमो लोगमज्झम्मि ॥५८॥

परिसुणिय कारणेणं, केणवि वइरीण साहिए सन्ते। दसउरवइस्स रुट्ठो, गाढं सीहोयरो राया ॥५९॥

तो सव्वबलसमग्गो, माणी सन्नद्धबद्धतोणीरो। चलिओ दसउरनयरं, उवरिं चिय वज्जकण्णस्स ॥६०॥

ताव च्चिय तुरियगई, वेणुलयागहियकरयलो पुरिसो। गन्तूण वज्जकण्णं, भणइ तओ मे निसामेहि ॥६१॥

अणमोक्कारस्स पहू! रुट्ठो सीहोयरो सह बलेणं। आगच्छइ तूरन्तो, तुज्झ वहत्थं सवडहुत्तो ॥६२॥

एवं नराहिवो सो, केण वि तुह वेरिएण अक्खाए। अवसेण इहाऽऽगच्छि, करेहि हियइच्छियं जं ते ॥६३॥

तो भणइ वज्जकण्णो, को सि तुमं? कत्थ देसवत्थव्वो?। कह वा नरेन्दमन्तो, एसो ते जाणिओ? भणह ॥६४॥

सो भणइ कुन्दनयरे, नामेणं सद्दसंगमो वणिओ। जउणा तस्स वरतणू, पुत्तो वि य विज्जुङ्गो हं ॥६५॥

पञ्च चाणुव्रतानि शिक्षास्तथा च भवन्ति चत्वारि। त्रिणि च गुणव्रतानि जिनेन्द्रपूजा चोपदिष्टाः ॥५३॥

ततो वज्रकर्णराजा जिनधर्मं गृहीत्वा भावेन। प्रविशति निजनगरं बहुजनपरिवारितस्तुष्टः ॥५४॥

गमयित्वा रजनीसमयं मज्जितजिमितो मनसा चिन्तयति। सिंहोदरस्य विनयं कथं तस्य स्फुटं करिष्येऽहम्? ॥५५॥

चिन्तयता स्मृतं कनकमयां मुद्रिकामिहाङ्गुष्ठे। कारयामि रत्नचित्रां सुव्रतजिनबिम्बसहिताम् ॥५६॥

सा नरपतिना मुद्रा कारयित्वा दक्षिणाङ्गुष्टे। आविद्धा राज्ञा हर्षवसोल्लसितगात्रेण ॥५७॥

सिंहोदरस्य पुरतः कृत्वाऽऽगुष्ठं निजशीर्षे। प्रणमति जिनेन्द्रप्रतिमां ससंभ्रमो लोकमध्ये ॥५८॥

परिश्रुत्य कारणेन केनापि वैरिणा कथिते सति। दशपुरपत्यू रुष्टो गाढं सिंहोदरो राजा ॥५९॥

तदा सर्वबलसमग्रो मानी सन्नद्धबद्धतूणीरः। चलितो दशपुरनगरमुपर्येव वज्रकर्णस्य ॥६०॥

तावदेव त्वरितगति र्वेणुलतागृहीतकरतलः पुरुषः। गत्वा वज्रकर्णं भणति ततो मे निशामय ॥६१॥

अनमस्कारस्य प्रभो! रुष्टः सिंहोदरः सह बलेन। आगच्छति त्वरमाणस्तव वधार्थमभिमुखः ॥६२॥

एवं नराधिपः स केनापि तव वैरिणाऽऽख्याते। अवश्येनेहागच्छति कुरु हृदयेच्छितं यत्ते ॥६३॥

तदा भणति वज्रकर्णः कोऽसि त्वं? कुत्र देश वास्तव्यः?। कथं वा नरेन्द्रमन्त्र एष त्वया ज्ञानितः? भण ॥६४॥

स भणति कुन्दनगरे नाम्ना शब्दसंगमो वणिक्। यमुना तस्य वरतनुः पुत्रोऽपि च विद्युदंगो ऽहम् ॥६५॥

---

१. वन्दणपूया-मु०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पत्तो य जोव्वणसिरी[1], उज्जेणी आगओ वणिज्जेणं । दट्ठूण अणङ्गलया[2], वेसा आयल्लयं पत्तो ॥६६॥
वसिओ य एगरत्तिं, तीए समं तिव्वनेहराएणं । कढिणयरं चिय बद्धो, हरिणो जह वाउराए व्व ॥६७॥
जणएण मज्झ नियय, समज्जियं जं धणं असंखेज्जं । तं छम्मासेण पहू ! विणासियं मे दुपुत्तेणं ॥६८॥
जह कमले व्व महुयरो, आसत्तो तह य कामरायचित्तो । महिलाणुरागरत्तो, किं न कुणइ साहसं पुरिसो ? ॥६९॥
अह सा सहीए पुरओ, निन्दन्ती निययकुण्डलं मुणिया । एएण असारेणं, किं कीरइ कण्णभारेणं ? ॥७०॥
भणइ य अहो ! कयत्था, धन्ना सा सिरिधरा महादेवी । उत्तमरयणाइद्धं, सोहइ मणिकुण्डलं कण्णे ॥७१॥
अहयं कुण्डलचोरो, रायहरं पत्थिओ निसि पओसे । सीहोयरं सुया मे, पुच्छन्ती सिरिहरा देवी ॥७२॥
नरवइ ! न लहसि निद्दं, किं उव्विग्गो सि दारुणं अज्जं ? । सो भणइ मज्झ निद्दा, कत्तो चिन्ताउलमणस्स? ॥७३॥
मह विणयपराहुत्तो, न मारिओ जाव सुन्दरी ! दुट्ठो । दसउरनयराहिवई, ताव कओ मे हवइ निद्दा ? ॥७४॥
सुणिऊण वयणमेयं, तो हं मोत्तूण चोरियं तुरिओ । एत्थाऽऽगओ नराहिव ! तुज्झ रहस्सं परिकहेउं ॥७५॥
जाव च्चिय उल्लावो, एसो वट्टइ सभाए मज्झम्मि । ताव च्चिय बलसहिओ, पत्तो सीहोयरो राया ॥७६॥
सो गेण्हिउं असत्तो, तं नयरं विसमदुग्ग-पायारं । परिवेढिऊण सयलं, पुरिसं पेसेइ तूरन्तं ॥७७॥
गन्तूण वज्जयण्णं, सुणिट्ठुरं भणइ सामिवयणेणं । मुणिउच्छाहियहियओ, जिणवरगव्वं समुव्वहसि ॥७८॥

प्राप्तश्च यौवनश्रियमुज्जैणिमागतो वाणिज्येन । दृष्ट्वाऽनङ्गलतां वेश्यामाकूलतां प्राप्तः ॥६६॥
उषितश्चैकरात्रिं तस्याः समं तीव्रस्नेहरागेण । कठिनतरमेव बद्धो हरिणो यथा वागुरयेव ॥६७॥
जनकेन मम निजकं समर्जितं यद्धनमसंख्येयम् । तत्षण्मासेन प्रभो ! विनाशितं मया दुष्पुत्रेण ॥६८॥
यथा कमल इव मधुकर आसक्तस्तथा च कामगतचित्तः । महिलानुरागरतः किं न करोति साहसं पुरुषः ? ॥६९॥
अथ सा सख्याः पुरतो निन्दन्ती निजककुण्डलं मुणिता । एतेनासारेण किं क्रियते कर्णभारेण ? ॥७०॥
भणति चाहो ! कृतार्था धन्याः सा श्रीधरा महादेवी । उत्तमरत्नादिद्धं शोभते मणिकुण्डलं कर्णे ॥७१॥
अहं कुण्डलचौरो राजगृहं प्रस्थितो निशि प्रदोषे । सिंहोदरं श्रुता मे पृच्छन्ती श्रीधरा देवी ॥७२॥
नरपते ! न लभसे निद्रां किमुद्विग्नोऽसि दारुणमद्य ? । स भणति मम निद्रा कुतश्चिन्ताकुलमनसः ? ॥७३॥
मम विनयपराङ्मुखो न मारितो यावत्सुन्दरि ! दुष्टः । दशपुरनगराधिपतिस्तावत्कुतो मे भवति निद्रा ? ॥७४॥
श्रुत्वा वचनमेतत्तदाऽहं मुक्त्वा चौरिकं त्वरितः । अत्राऽऽगतो नराधिप ! तव रहस्यं परिकथयितुम् ॥७५॥
यावदेवोल्लाप एष वर्तते सभाया मध्ये । तावदेव बलसहितः प्राप्त सिंहोदरो राजा ॥७६॥
सो ग्रहितुमशक्तस्तन्नगरं विषमदुर्गप्रकारम् । परिवेष्टय सकलं पुरुषं प्रैषयति त्वरमाणम् ॥७३॥
गत्वा वज्रकर्णं सुनिष्ठुरं भणति स्वामिवचनेन । मुन्युत्साहितहृदयो जिनवरगर्वं समुद्वहसि ॥७८॥

---

१. सिरिं उज्जेणिं-प्रत्य० । २. लयं वेसं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिन्नं मए पहुत्तं, भुञ्जसि विसयं जिणं नमंसेसि । मायाए ववहरन्तो, कह मज्झं नि[१]व्वुई कुणसि ? ॥७९॥
जइ मज्झ चलणजुयलं, न नमसि रे वज्जयण्ण ! आगन्तुं । तो निच्छएण तुज्झं, न य जीयं नेय रज्जं ते ॥८०॥
तो भणइ वज्जयण्णो, मह विसयं साहणं पुरं कोसं । सव्वं च गेण्हउ इमं, धम्मद्दारं च मे देउ ॥८१॥
एसा मए पइन्ना, आरूढा साहुसन्नियासम्मि । एयं ते परिकहियं, अमओ हं न य विमुञ्चामि ॥८२॥
गन्तूण तत्थ दूओ, सव्वं सीहोयरस्स साहेइ । रुट्ठो रोहेइ पुरं, विसयं च इमं विणासेइ ॥८३॥
एवं ते परिकहियं, देसविणासस्स कारणं सव्वं । एत्तो गच्छामि अहं, सुन्नागारं इमं गामं ॥८४॥
डज्झन्तम्मि य विसए, मज्झ वि नियय कुडीरयं दड्ढं । भज्जाए पेसिओ हं, घडपिढराणं इहं देव ! ॥८५॥
एवं चिय परिकहिए, दट्ठूणऽइदुक्खियं दयावन्नो । पउमो देइ महग्घं, निययं कडिसुत्तयं तस्स ॥८६॥
पणिवइऊण गओ सो, नियघरं देसिओ अइतुरन्तो । पउमो वि भणइ एत्तो, लक्खण ! वयणं सुणसु मज्झं ॥८७॥
जाव च्चिय न य सूरो, सुदुस्सहो होइ गिम्हकालम्मि । ताव इमस्स समीवं, पुरस्स [२]भूमिं पगच्छामो ॥८८॥
अह ते कमेण पत्ता, दसङ्गनयरस्स बाहिरुद्देसे । चन्दप्पहस्स भवणं, थोऊण अवट्ठिया तत्थ ॥८९॥
पन्थपरिस्सम[३]खीणा, सीया दट्ठूण लक्खणो सिग्घं । पविसरइ दसउरं सो, अणुणाओ दारपालेहिं ॥९०॥
दिट्ठो य वज्जयण्णो, तेण वि संभासिओ निविट्ठो य । भुञ्जावेहि लहुं चिय, एवं भणिओ य सूयारो ॥९१॥
तो जंपइ सोमित्ती, मज्झ गुरू जिणहरे सह पियाए । चिट्ठइ तम्मि अभुत्ते, न य हं भुञ्जामि आहारं ॥९२॥

दत्तं मया प्रभुत्वं भुनक्षि विषयं जिनं नमसि । मायया व्यवहरन् कथं मम निवृत्तिं करोषि ? ॥७९॥
यदि मम चरणयुगलं न नमसि रे वज्रकर्ण ! आगत्य । तदा निश्चयेन तव न च जीवितं नैव राज्यं ते ॥८०॥
तदा भणति वज्रकर्णो मम विषयं साधनं पुरं कोशम् । सर्वं च गृह्णात्विदं धर्मद्वारं च मम ददातु ॥८१॥
एषा मया प्रतिज्ञाऽऽरूढा साधुसन्निकर्षे । एतत्ते परिकथितममृतोऽहं न च विमुञ्चामि ॥८२॥
गत्वा तत्र दूतः सर्वं सिंहोदरस्य कथयति । रुष्टो रुणद्धि पुरं विषयं चेदं विनश्यति ॥८३॥
एवं ते परिकथितं देशविनाशस्य कारणं सर्वम् । इतो गच्छाम्यहं शून्यागारमिमं ग्रामम् ॥८४॥
दह्यमाने च विषये ममापि निजं कुटिरकं दग्धम् । भार्यया प्रेषितोऽहं घटपीठराणामिह देव ! ॥८५॥
एवमेव परिकथिते दृष्ट्वातिदुःखितं दयापन्नः । पद्मो ददाति महर्घ्यं निजकं कटिसूत्रकं तस्मै ॥८६॥
प्रणिपत्य गतः स निजगृहं दैशिकोऽतित्वरमाणः । पद्मोऽपि भणतीतो लक्ष्मण ! वचनं श्रृणु मम ॥८७॥
यावदेव न सूर्यः सुदुःसहो भवति ग्रीष्मकाले । तावदस्य समीपं पुरस्य भूमिं प्रगच्छामः ॥८८॥
अथ ते क्रमेण प्राप्ता, दशाङ्गनगरस्य बहिरुद्याने । चन्द्रप्रभस्य भवनं स्तुत्वाऽवस्थितास्तत्र ॥८९॥
पथपरिश्रमक्षीणां सीतां दृष्ट्वा लक्ष्मणः शीघ्रम् । प्रविशति दशपुरं सोऽनुज्ञातो द्वारपालैः ॥९०॥
दृष्टश्च वज्रकर्णस्तेनापि संभाषितो निविष्टश्च । भोजय लघ्वेवैवं एवं भणितश्च सूपकारः ॥९१॥
तदा जल्पति सौमित्रि र्मम गुरु र्जिनगृहे सहप्रियया । तिष्ठति तस्मिन्नभुक्ते न चाहं भुञ्ज आहारम् ॥९२॥

---

१. निव्वुइं-प्रत्य० । २. भूमीए ग-मु० । ३. खीणं सीयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भणिओ सूयारवई, नरवइणा अन्न-पाणमाईयं । एयस्स तुमं नियय, देसहि तुरन्तो वराहारं ॥९३॥
तं लक्खणेण नीयं, भुत्तं चिय भोयणं जहिच्छाए । सव्वगुणेहि वि पुण्णं, अमयं व तणू सुहावेइ ॥९४॥
तो भणइ पउमणाहो, पेच्छसु सोमित्ति ! वज्जयण्णेणं । अमुणियगुणेण अम्हं, ववहरियं एरिसं कज्जं ॥९५॥
जिणसासणाणुरत्तो, अणन्नदिट्ठी दसङ्गनयरवई । जइ पाविही विणासं, धिरत्थु तो अम्ह जीएणं ॥९६॥
गन्तूण लक्खण ! तुमं, सीहोयरपत्थिवं भणसु एवं । [१]पीईं करेहि सिग्घं, समयं चिय वज्जयण्णेणं ॥९७॥
जं आणवेसि भणिऊण लक्खणो अइगओ पवणवेगो । सिविरं चिय संपत्तो, कमेण पविसरइ रायहरं ॥९८॥
अत्थाणिमण्डवत्थं, जंपइ सीहोयरं मइपगब्भो । भरहेण अहं दूओ, विसज्जिओ तुज्झ पसम्मि ॥९९॥
आणवइ तुमं भरहो, समुद्दपेरन्तवसुमईनाहो । जह मा कुणसु विरोहं, समयं चिय वज्जयण्णेणं ॥१००॥
सीहोयरो पवुत्तो, किं गुणदोसे न याणई भरहो । जइ विणयमइगयाणं, भिच्चाण पहू पसज्जन्ति ॥१०१॥
मह एस वज्जयण्णो, विणयपराहुत्तमाणिओ मुइओ । एयस्स परमुवायं, करेमि किं तुज्झ तत्तीए ? ॥१०२॥
भणइ तओ सोमित्ती, किं ते बहुएहि जंपियव्वेहिं ? । एयस्स खमसु सव्वं, सीहोयर ! मज्झ वयणेणं ॥१०३॥
सोऊण वयणेयं, भणइ य सीहोयरो परमरुट्ठो । जो तस्स वहइ पक्खं, सो वि मए चेव हन्तव्वो ॥१०४॥
पुणरवि भणइ कुमारो, मह वयणं सुणसु सव्वसंखेवं । संधिं व कुणसु अज्जं, मरणं व लहुं पडिच्छाहि ॥१०५॥
एवं च भणियमेत्ते, संखुहिया सयलपत्थिवत्थाणी । नाणाचेट्ठाउलिया, नाणादुव्वयणकल्लोला ॥१०६॥

भणितः सूपकारपति र्नरपतिनाऽन्नपानादिकम् । एतस्यै त्वं निजकं देहि त्वरमाणोन्वराहारम् ॥९३॥
तं लक्ष्मणेन नीतं भुक्तमेव भोजनं यथेच्छया । सर्वगुणैरपि पूर्णममृतमिव तनुः सुखायति ॥९४॥
ततो भणति पद्मनाभः पश्य सौमित्रे ! वज्रकर्णेन । अज्ञातगुणेनास्माकं व्यवहरितमेवेदृशं कार्यम् ॥९५॥
जिनशासनानुरक्तोऽनन्यदृष्टि र्दशाङ्गनरपतिः । यदि प्राप्स्यति विनाशं धिगस्तु तदास्मज्जीवितेन ॥९६॥
गत्वा लक्ष्मण ! त्वं सिंहोदरपार्थिवं भणैवम् । प्रीतिं कुरु शीघ्रं समकमेव वज्रकर्णेन ॥९७॥
यदाज्ञापयसि भणित्वा लक्ष्मणोऽतिगतः पवनवेगः । शिबिरमेव संप्राप्तः क्रमेण प्रविशति राजगृहम् ॥९८॥
आस्थानमण्डपस्थं जल्पति सिंहोदरं मतिप्रगल्भः । भरतेनाहं दूतो विसर्जितस्तव पार्श्वे ॥९९॥
आज्ञापयति त्वां भरतः समुद्रपर्यन्तवसुमतिनाथः । यथा मा कुरु विरोधं समकमेव वज्रकर्णेन ॥१००॥
सिंहोदरः प्रोक्तः किं गुणदोषान्नजानति भरतः । यदि विनयमतिगतानां भृत्यानां प्रभुः प्रसीदन्ति ॥१०१॥
ममैष वज्रकर्णो विनयपराङ्मुखमानितो मुदितः । एतस्य परमोपायं करोमि किं तव चिन्तया ? ॥१०२॥
भणति ततः सौमित्रिः किं तव बहुभिर्जल्पितव्यैः । एतस्य क्षमस्व सर्वं सिंहोदर ! मम वचनेन ॥१०३॥
श्रुत्वा वचनमेतद्भणति च सिंहोदरः परमरुष्टः । यस्तस्य वहति पक्षं सोऽपि मयेव हन्तव्यः ॥१०४॥
पुनरपि भणति कुमारो मम वचनं श्रुणु सर्वसंक्षेपम् । संधिं वा कुरुष्वाद्य मरणं वा लघु प्रतीच्छ ॥१०५॥
एवं च भणितमात्रे संक्षुब्धा सकलपार्थिवास्थानी । नानाचेष्ट्यकूलिता नानादुर्वचनकल्लोलाः ॥१०६॥

---

१. पीइं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केइ भडा सहस त्ति य, उक्कड्डेऊण तत्थ छुरियाओ । सिग्घं चिय संपत्ता, तस्स वहत्थुज्जयमईया ॥१०७॥
तंवेढिउं पवत्ता, मसगा इव पव्वयं समन्तेणं । अह सो भउज्झियमणो, जुज्झइ समयं रिउभडेहिं ॥१०८॥
करयलघायाहि भडा, केएत्थाऽऽहणइ चलणपहरेहिं । जङ्घाबलेण केई, केई पाडइ भुयबलेणं ॥१०९॥
जोहेण हणइ जोहं, पण्हिपहारेण कुणइ निज्जीवं । अन्नं विदिन्नपट्ठिं, वज्जइ य अहोमुहं पडियं ॥११०॥
एवं सा भडपरिसा, भग्गा दट्ठूण उट्ठिओ राया । सीहोयरो तुरन्तो, मत्तमहागयवरारूढो ॥१११॥
तुरय-रह-कुञ्जरेसुय, अन्नेसु भडेसु बद्धकवएसु । वेढेइ लक्खणं सो, मेहो व्व रविं जलयकाले ॥११२॥
दट्ठूण आवयन्तं, रिउसेन्नं सव्वओ समन्तेणं । सोमित्ती गयखम्भं, उम्मूलेऊण अब्भिट्ठो ॥११३॥
गय-तुरय-दप्पियभडे, पहणइ परिहत्थदच्छउच्छाहो । चक्कं व समाइद्धं, तं रिउसेन्नं भमाडेइ ॥११४॥
हयमाणवहियजोहं, भग्गं तं रिउबलं पलोएइ । दसउरनयराहिवई, जणसहिओ गोउरनिविट्ठो ॥११५॥
साहु त्ति साहु लोगो, जंपइ एक्केणिमेण वीरेणं । भग्गं सुहडाणीयं, सीहेण व मयकुलं सयलं ॥११६॥
भग्गा भणन्ति सुहडा, किं एसो दाणवो सुरो कालो ? । एक्को जोहेइ बलं, समरसमत्थो महापुरिसो ॥११७॥
भयविहलवेविरङ्गं, गन्तुं सीहोयरं रहारूढं । उप्पइऊणाऽऽयड्ढइ, धरणियलत्थं कुणइ वीरो ॥११८॥
निययंसुयगलगहियं, पुरओ काऊण जह य बलिवद्दं । पउमस्स सन्निगासं, सोमित्ती नेइ तूरन्तो ॥११९॥
सीहोयरमहिलाओ, जंपन्ति विमुक्कनयणसलिलाओ । पइभिक्खं देहि पहू ! अम्हं सरणं असरणाणं ॥१२०॥
सो भणइ रुक्खसण्डं, जं पेच्छह अम्ह सुविउलं पुरओ । उल्लम्बेमि हणेउं, एयं सीहोयरं सिग्घं ॥१२१॥

केऽपि भटा: सहसेति चावकृष्य तत्र छूरिका: । शीघ्रमेव संप्राप्तास्तस्य वधार्थोद्यतमतय: ॥१०७॥
तं वेष्टयितुं प्राप्ता मशका इव पर्वतं समन्तत: । अथ स भयोज्झितमना युध्यते समं रिपुभटै: ॥१०८॥
करतलधातैर्भटा: कतिपया आहन्यन्ते चरणप्रहारै: । जङ्घाबलेन केऽपि केऽपि पात्यन्ते भूजाबलेन ॥१०९॥
योधेन हन्ति योधं पार्ष्णिप्रहारेण करोति निर्जीवम् । अन्यं विदत्तपृष्टिं व्रजति चाधोमुखं पतितम् ॥११०॥
एवं सा भटपर्षद् भग्ना दृष्ट्वोत्थितो राजा । सिंहोदरस्त्वरन्माणमत्तमहागजवरारुढ: ॥१११॥
तुरग-रथ-कुञ्जरैश्चान्यैर्भटैर्बद्धकवचै: । वेष्टयति लक्ष्मणं स मेघ इव रविं जलदकाले ॥११२॥
दृष्ट्वाऽऽपतद्रिपुसैन्यं सर्वत: समन्तत: । सौमित्रि र्गजस्तम्भमुन्मूल्य प्रवृत्त: ॥११३॥
गज-तुरग-दर्पितभटान्प्रहन्ति परिपूर्णदक्षोत्साह: । चक्रमिव समाविद्धं तं रिपुसैन्यं भ्रामयति ॥११४॥
हतमानवधितयोधं भग्नं तं रिपुबलं प्रलोकते । दशपुरनगराधिपतिर्जनसहितो गोपूरनिविष्ट: ॥११५॥
साध्विति साधु लोको जल्पति एकेनानेन वीरेण । भग्नं सुभटानीकं सिंहेनेव मृगकुलं सकलम् ॥११६॥
भग्ना भणन्ति सुभटा: किमेष दानव: सुर: काल: ? । एको युध्यते बलं समरसमर्थो महापुरुष: ॥११७॥
भयविव्हलवेपिताङ्गं गत्वा सिंहोदरं रथारुढम् । उत्पत्याकृषति धरणितलस्थं करोति वीर: ॥११८॥
निजांशुकगलगृहीतं पुरत: कृत्वा यथा च बलीवर्दम् । पद्मस्य सकाशं सौमित्रि र्नयति त्वरमाण: ॥११९॥
सिंहोदरमहिला जल्पन्ति विमुक्तनयनसलिला: । पतिभिक्षां देहि प्रभो ! अस्माकं शरणमशरणानाम् ॥१२०॥
स भणति वृक्षषण्डं यत्पश्यतास्मत्सुविपुलं पुरत: । उल्लम्बयामि हत्वैनं सिंहोदरं शीघ्रम् ॥१२१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो ताण रुयन्तीणं, नीओ सीहोयरो गुरुसमीवं । कहिओ य लक्खणेणं, एस पहू ! वज्जकण्णरिऊ ॥१२२॥
सीहोयरो पणामं, काऊणं भणइ पउमणाहं सो । न य हं जाणामि फुडं, को सि तुमं देव ! एत्थाऽऽओ ? ॥१२३॥
जं आणवेसि सामिय ! सव्वं पि करेमि तुज्झ भिच्चो हं । भणिओ य कुणसु-संधिं, समयं चिय वज्जकण्णेणं ॥१२४॥
ताव च्चिय आहूओ, हिएण पुरिसेण दसउराहिवई । सिग्घं च समणुपत्तो, पयाहिणं कुणइ जिणभवणे ॥१२५॥
चन्दप्पहस्स पडिमं, थोऊणं राघवं सुहासीणं । संभासेइ पहट्ठो, सीयं च ससंभमसिणेहं ॥१२६॥
देहाइकुसलपुव्वं, परिपुच्छेऊण तत्थ उवविट्ठो । कुसलेण भद्द ! तुज्झं, अम्ह वि कुसलं भणइ रामो ॥१२७॥
वट्टइ जावुल्लावो, समागओ ताव विज्जुयङ्गो वि । पउमं सीयाए समं, पणमिय तत्थेव उवविट्ठो ॥१२८॥
रामेण वज्जयण्णो, भणिओ साहु त्ति जिणमए दिट्ठी । गिरिरायचूलिया इव, न कम्पिया कुसुइवातेणं ॥१२९॥
नमिऊण जिणवरिन्दं, भवोहमहणं तिलोगपरिमहियं । कह अन्नो पणमिज्जइ, इमेण वरउत्तिमङ्गेणं ? ॥१३०॥
तो भणइ वज्जकण्णो, अवसीयन्तस्स वसणपडियस्स । पुण्णेहि मज्झ सुपुरिस ! जाओ च्चिय बन्धवो तुहयं ॥१३१॥
भणिओ य वज्जयण्णो, रामकणिट्ठेण जं तुमे इट्ठं । तं अज्ज भणसु सिग्घं, सव्वं संपाडइस्सामि ॥१३२॥
तो भणइ तणाईण वि, पीडं नेच्छामि सव्वजीवाणं । मह वयणेण महाजस ! मुञ्चसु सीहोयरं एयं ॥१३३॥
एवं भणिए जणेणं, उग्घुट्ठं साहु साहु साहु त्ति । सीहोयरो य मुक्को, वयणेणं वज्जयण्णस्स ॥१३४॥
पीई कया य दोण्ह वि, समयसमावन्नपणयपमुहाणं । निययनयरीए अद्धं, तस्स य सीहोदरो देइ ॥१३५॥
आसाण गयवराणं, कुणइ हिरण्णस्स समविभागेणं । सीहोयरो य तट्ठो, देइ च्चिय वज्जकणस्स ॥१३६॥

स तासां रुदन्तीनां नीतः सिंहोदरो गुरुसमीपम् । कथितश्च लक्ष्मणेनैष प्रभो ! वज्रकर्णरिपुः ॥१२२॥
सिंहोदरः प्रणामं कृत्वा भणति पद्मनाभं सः । न चाहं जानामि स्फुटं कोऽसि त्वं देव ! अत्रागतः ॥१२३॥
यदाज्ञापयसि स्वामिन् ! सर्वमपि करोमि तव भृत्योऽहम् । भणितश्च कुरु संधिं, समकमेव वज्रकर्णेन ॥१२४॥
तावदेवाहुतो हितेन पुरुषेण दशपुराधिपतिः । शीघ्रं च समनुप्राप्तः प्रदक्षिणां करोति जिनभवने ॥१२५॥
चन्द्रप्रभस्य प्रतिमां स्तुत्वा राघवं सुखासीनम् । संभाषते प्रहृष्टः सीतां च ससंभ्रमस्नेहम् ॥१२६॥
देहादिकुशलपूर्वं परिपृच्छ्य तत्रोपविष्टः । कुशलेन भद्र ! तवास्माकमपि कुशलं भणति रामः ॥१२७॥
वर्तते यावदुल्लापः समागतस्तावद्विद्युदङ्गोऽपि । पद्मं सीतया समं प्रणम्य तत्रैवोपविष्टः ॥१२८॥
रामेण वज्रकर्णो भणितः साध्विति जिनमते दृष्टिः । गिरिराजचूलिकेव न कम्पिता कुश्रुतिवादेन ॥१२९॥
नत्वा जिनवरेन्द्रं भवौधमथनं त्रिलोकपरिमहितम् । कथमन्यः प्रणम्यते अनेन वरोत्तमाङ्गेन ? ॥१३०॥थ
ततो भणति वज्रकर्णो ऽवसीदतो व्यसनपतितस्य । पुण्यैर्मम सुपुरुष ! जात एव बन्धुस्त्वम् ॥१३१॥
भणितश्च वज्रकर्णो रामकनिष्ठेन यत्तवेष्टम् । तदद्य भण शीघ्रं सर्वं संपादयिष्यामि ॥१३२॥
तदा भणति तृणादीनामपि पीडां नेच्छामि सर्वजीवानाम् । मम वचनेन महायशः ! मुञ्च सिंहोदरमेनम् ॥१३३॥
एवं भणिते जनेनोद्घुष्टं साधु साधु साध्विति । सिंहोदरश्च मुक्तो वचनेन वज्रकर्णस्य ॥१३४॥
प्रीतिः कृत्वा च द्वयोरपि समयसमापन्नप्रणतप्रमुखयोः । निजनगर्या अर्धं तस्य च सिंहोदरो ददाति ॥१३५॥
अश्वानां गजवराणां करोति हिरण्यस्य समविभागेन । सिंहोदरश्च तुष्टो ददात्येव वज्रकर्णाय ॥१३६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जिणधम्मपभावेणं, तत्थ गयाणं च कुण्डलं दिव्वं । सीहोयरेण दिन्नं, तुट्ठेणं विज्जुयङ्गस्स ॥१३७॥
तो दसउराहिवेणं, दुहियाओ ताण अट्ठ दिन्नाओ । आभरणभूसियाओ, सिग्घं पुरओ य ठवियाओ ॥१३८॥
सीहोयरमाईहिं, अन्नेहि वि पत्थिवेहि कन्नाणं । थणजहणसालिणीणं, सयाणि तिण्णेव दिन्नाइं ॥१३९॥
तो लक्खणो पवुत्तो, न य महिलासंगहेण मे कज्जं । जाव य न भुयबलेणं, समज्जियं अत्तणो रज्जं ॥१४०॥
भरहस्स सयलदेसं, मोत्तूणं मलयपव्वए अम्हे । काऊण पइट्ठाणं, निययपुरं आगमिस्सामो ॥१४१॥
एयाण अहं तइया, पाणिग्गहणं करेमि कन्नाणं । भणियं च एवमेयं, सव्वेहि वि नरवरिन्देहिं ॥१४२॥
सुणिऊण वयणमेयं, तत्थ विसण्णाओ रायधूयाओ । घणविरहजलावत्ते, सोगसमुद्दम्मि पडियाओ ॥१४३॥
एवं ते नरवसभा, विमणओ गेण्हिऊण धूयाओ । निययधराणि उवगया, दसरहपुत्ते पणमिऊणं ॥१४४॥
तत्थेव जिणहरे ते, रत्तिं गमिऊण अरुणवेलाए । पुणरवि पहं पवन्ना, वच्चन्ति सुहं जहिच्छाए ॥१४५॥
चेइयहरं पभाए, सुन्नं दट्ठूण जणवओ सव्वो । घरवावारविमुक्को, जाओ च्चिय ताण सोगेणं ॥१४६॥
वज्जकण्णेण[1] समयं, जाया सीहोयरस्स वरपीई । सम्माण-दाण-गमणाइएसु परिवड्ढियसिणेहा ॥१४७॥
एवं ते मन्दमन्दां दसरहतणया [2]मेइणी संचरन्ता, नाणागन्धाइपुण्णे तरुणतरुफले भुञ्जमाणा पभूए ।
पत्ता ते कूववद्दं बहुभवण-महावप्प-वावीसमिद्धं, उज्जाणे सन्निविट्ठा विमलकुसुमिए मत्तभिङ्गाणुगीए ॥१४८॥

॥ इय पउमचरिए वज्जयण्णउवक्खाणो नाम तेत्तीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

जिनधर्मप्रभावेन तत्र गतानां च कुण्डलं दिव्यम् । सिंहोदरेण दत्तं तुष्टेन विद्युदङ्गस्य ॥१३७॥
ततो दशपुराधिपेन दुहितरस्तयोरष्टौदत्ताः । आभरणभूषिताः शीघ्रं पुरतश्च स्थापिताः ॥१३८॥
सिंहोदरादिभिरन्यैरपि पार्थिवैः कन्यानाम् । स्तनजघनशालिनीनां शतानि त्रिण्येव दत्तानि ॥१३९॥
ततो लक्ष्मणः प्रोक्तो न च महिलासंग्रहेण मे कार्यम् । यावच्च न भुजबलेन समर्जितमात्मनो राज्यम् ॥१४०॥
भरतस्य सकलदेशं मुक्त्वा मलयपर्वते वयम् । कृत्वा प्रतिष्ठानं निजपुरमागमिष्यामः ॥१४१॥
एतेषामहं तदा पाणिग्रहणं करोमि कन्यानाम् । भणितं चैवमेतत्सर्वैरपि नरवरेन्द्रैः ॥१४२॥
श्रुत्वा वचनमेतत्तत्र विषण्णा राजदुहितरः । घनविरहजलावर्त्ते शोकसमुद्रे पतिताः ॥१४३॥
एवं ते नरवृषभा विमनसो गृहीत्वा दुहितॄन् । निजगृहाण्युपगता दशरथपुत्रौ प्रणम्य ॥१४४॥
तत्रैव जिनगृहे तौ रात्रिं गमयित्वारुणवेलायाम् । पुनरपि पथं प्रपन्नौ व्रजन्तौ सुखं यथेच्छया ॥१४५॥
चैत्यगृहं प्रभाते शून्यं दृष्ट्वा जनपदः सर्वः । गृहव्यापारविमुक्तो जात एव तयोः शोकेन ॥१४६॥
वज्रकर्णेन समं जाता सिंहोदरस्य वरप्रीतिः । सन्मान-दान-गमनादिभिः परिवर्धितस्नेहा ॥१४७॥
एवं तौ मन्दमन्दं दशरथतनयौ मेदिनीं संचरन्तौ । नानागन्धादिपूर्णानि तरुणतरुफलानि भुञ्जमानौ प्रभूतानि ।
प्राप्तौ तौ कुपपद्रं बहुभवन-महावप्र-वापी समृद्धमुद्याने सन्निविष्टौ विमलकुसुमिते मत्तभृङ्गानुगीते ॥१४८॥

॥ इति पद्मचरित्रे वज्रकर्णोपाख्यानो नाम त्रयत्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

१. सवणेण-प्रत्य० । २. मेइणिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३४. सीहोदर-रुद्दभूइ-वालिखिल्लोवक्खाणाणि

ताणं चिय उज्जाणे, अच्छन्ताणं तिसाभिभूयाणं । सलिलत्थी तूरन्तो, सोमित्ती सरवरं पत्तो ॥१॥

ताव च्चिय नयराओ, रायसुओ आगओ सरवरं तं । कीलइ जणेण समयं, नामं कल्लाणमालो त्ति ॥२॥

पेच्छइ तीरावत्थं, सरस्स सो लक्खणं ललियरूवं । पेसेइ तस्स पुरिसं, वम्महसरताडियसरीरो ॥३॥

गन्तूण पणमिऊण य, भणइ पहू ! एह अणुवरोहेणं । तुह दरिसणुस्सवसुहं, नरिन्दपुत्तो इहं महइ ॥४॥

परिचिन्तिऊण को वि हु, दोसो संपत्थिओ य सोमित्ती । कोमलकरग्गगहिओ, भवणं चिय पेसिओ तेणं ॥५॥

एक्कासणे निविट्ठो, पुच्छइ सो लक्खणं कओ सि तुमं । एत्थाऽऽगओ महाजस !?, किं नामं ते परिकहेहि ? ॥६॥

सो भणइ विप्प[1]उत्तो, मह भाया चिट्ठए वरुज्जाणे । [2]जावय न तस्स उदयं, वच्चामि तओ कहिस्से हं ॥७॥

तो भणइ नराहिवई, [3]एत्थं चिय भोयणं बहुवियप्पं । उवसाहियं मणोज्जं, आणिज्जउ सो इहं चेव ॥८॥

वीसज्जिओ तुरन्तो, पडिहारो काणणे सुहनिविट्ठं । दट्ठूण पउमनाहं, कुणइ पणामं ससीयस्स ॥९॥

भणइ य तो पडिहारो, सहोयरो देव ! तुज्झ वरभवणे । चिट्ठइ विसज्जिओ हं, नयराहिवईण पासं ते ॥१०॥

सामिय! कुणसु पसायं, पविससु नयराहिवस्स वरभवणं । वयणेण तस्स चलिओ, सीयाए समं पउमनाहो ॥११॥

---

३४. सिंहोदर-रुद्रभूति-वालिखिल्लोपाख्यानानि

तेषामेवोद्यान आसीनानां तृषाभिभूतानाम् । सलिलार्थी त्वरमाणःसौमित्रिः सरोवरं प्राप्तः ॥१॥

तावदेव नगराद्राजसुत आगतः सरोवरं तम् । क्रीडति जनेन समकं नाम कल्याणमाल इति ॥२॥

पश्यति तीरावस्थं सरसः स लक्ष्मणं ललितरुपम् । प्रेषयति तस्य पुरुषं कामशरताडितशरीरः ॥३॥

गत्वा प्रणम्य च भणति प्रभो ! एह्यनुपरोधेन । तव दर्शनोत्सवसुखं नरेन्द्रपुत्र इह काङ्क्षते ॥४॥

परिचिन्त्य न कोऽपि खलु दोषः संप्रस्थितश्च सौमित्रिः । कोमलकरगृहीतो भवनमेव प्रेषितस्तेन ॥५॥

एकासने निविष्टः पृच्छति स लक्ष्मणं कुतोऽसि त्वम् । अत्रागतो महायशः ! किं नाम ते परिकथय ? ॥६॥

स भणति विप्रयोगे मम भ्राता तिष्ठति वरोद्याने । यावच्च न तस्योदकं गच्छामि ततः कथयिष्येऽहम् ॥७॥

तदा भणति नराधिपतिरत्रैव भोजनं बहुविकल्पम् । उपसाधितं मनोज्ञमानीयते स इहैव ॥८॥

विसर्जितस्त्वरमाणन्प्रतिहारः कानने सुखनिविष्टम् । दृष्ट्वा पद्मनाभं करोति प्रणामं ससीतम् ॥९॥

भणति च तदा प्रतिहारः सहोदरो देव ! तव वरभवने । तिष्ठति विसर्जितोऽहं नगराधिपतिना पार्श्वं तव ॥१०॥

स्वामिन् ! कुरु प्रसादं प्रविश नगराधिपस्य वरभवनम् । वचनेन तस्य चलितः सीतायाः समं पद्मनाभः ॥११॥

---

१. विप्पओगे मइ-मु० । २. जाव य तस्स अंत०मु० । ३. इह चेव य भोयणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अब्भुट्ठिओ य एन्तो, लच्छीनिलएण जणसमग्गेणं । दिन्नासणोवविट्ठो, रामो सीयाए साहीणो ॥१२॥
सव्वम्मि सुपडिउत्ते, काउं मज्जणय-भोयणाईयं । पउमो लक्खणसहिओ, पवेसिओ तेण वरभवणं ॥१३॥
पाएसु पणमिऊणं, जंपइ ताएण पेसिओ दूओ । मह सुणसु देव ! तुब्भे, परमत्थं सारसब्भावं ॥१४॥
तो उज्झिऊण [1]लज्जा, [2]ओइंधइ कञ्चुयं सरीराओ । सुरजुवइ व्व मणहरा, नज्जइ सग्गाउ पब्भट्ठा ॥१५॥

दिट्ठा वरकन्ना सा, जोव्वण-लायण्ण-कन्तिपडिपुण्णा ।
लच्छि व्व कमलरहिया, भवणसिरी चेव पच्चक्खा ॥१६॥

तं भणइ पउमनाहो, भद्दे ! किं एरिसेण वेसेण । कीलसि वरतणुयङ्गी, कन्ने ! निययम्मि रज्जम्मि ?॥१७॥
लज्जोणउत्तिमङ्गी भणइ य निसुणेहि देव ! वित्तन्तं । नामेण वालिखिल्लो, इह पुरसामी नरवरिन्दो ॥१८॥
तस्स पुहइ त्ति महिला, सा गुरुभारा कयाइ संपन्ना । मेच्छाहिवेण जुज्झे, बद्धो सो नरवई तइया ॥१९॥
सुणिऊण वालिखिल्लं, बद्धं सीहोयरो भणइ सामी । जो इह गब्भुप्पन्नो, होही पुत्तो उ सो रज्जे ॥२०॥
तत्तो उ अहं तुजाया, मन्तीण सुबुद्धिनामधेएणं । सीहोयरस्स सिट्ठं, सामिय ! पुत्तो समुप्पन्नो ॥२१॥
बालत्तणम्मि रइयं, नामं कल्लाणमालिणी मज्झं । नवरं चिय सब्भावं, मन्ती जणणी य जाणन्ति ॥२२॥
काऊण पुरिसवेसं, गुरूहि रज्जाहिवो परिट्ठविओ । अहयं तु पावकम्मा, महिला [3]तुम्हं समक्खायं ॥२३॥
तो कुणह पसायं मे, तायं मोएह मेच्छपडिबद्धं । गुरुसोयजलणतवियं, इमं सरीरं सुहावेह ॥२४॥

अभ्युत्थितश्चायान्लक्ष्मीनिलयेन जनसमग्रेण । दत्तासनोपविष्टो रामः सीतायाः स्वाधीनः ॥१२॥
सर्वस्मिन्सुप्रयुक्ते कृत्वा मज्जन-भोजनादिकम् । पद्मो लक्ष्मणसहितः प्रवेशितस्तेन वरभवनम् ॥१३॥
पादयोः प्रणम्य जल्पति तातेन प्रेषितो दूतः । मम श्रुणु देव ! त्वं परमार्थं सारसद्भावम् ॥१४॥
तदोज्झित्वा लज्जामवमुञ्चति कञ्चुकं शरीरात् । सुरयुवतीव मनोहरा ज्ञायते स्वर्गात्प्रभ्रष्टा ॥१५॥
दृष्टा वरकन्या सा यौवन-लावण्य-कान्तिपरिपूर्णा । लक्ष्मीरिव कमलरहिता भवनश्रीरिव प्रत्यक्षा ॥१६॥
तां भणति पद्मनाभो भद्रे ! किमिदृशेन वेशेन । क्रीडसि वरतन्वाङ्गी कन्ये ! निजे राज्ये ? ॥१७॥
लज्जावनतोत्तमाङ्गी भणति च निःश्रुणु देव ! वृत्तान्तम् । नाम्ना वालिखिल्ल इह पुरस्वामी नरवेरन्द्रः ॥१८॥
तस्य पृथिवीति महिला सा गुरुभारा कदाचित्संपन्ना । म्लेच्छाधिपेन युद्धे बद्धः स नरपतिस्तदा ॥१९॥
श्रुत्वा वालिखिल्यं बद्धं सिंहोदरो भणति स्वामिन् । य इह गर्भमुत्पन्नो भविष्यति पुत्रस्तु स राज्ये ॥२०॥
ततोऽहं तु जाता मन्त्रिणा सुबुद्धिनामधेयेन । सिंदोदरस्य शिष्टं स्वामिन् ! पुत्रः समुत्पन्नः ॥२१॥
बालत्त्वे रचितं नाम कल्याणमालिनी मम । नवरमेव सद्भावं मन्त्री जननी च जानीतः ॥२२॥
कृत्वा पुरुषवेशं गुरुभी राज्याधिपः परिस्थापितः । अहं तु पापकर्मा महिला तुभ्यं समाख्यातम् ॥२३॥
ततः कुरुत प्रसादं मे तातं मोचयत म्लेच्छप्रतिबद्धम् । गुरुशोकज्वलनतापितमिदं शरीरं सुखायत ॥२४॥

---

१. लज्जं-प्रत्य० । २. अवमुञ्चति-त्यजति । ३. तुब्भं समक्खाया-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सीहोयरो वि राया, न य तस्स विमोयणं पहू ! कुणइ । जं एत्थ विसयदव्वं, नियय़ं पेसेमि मेच्छाणं ॥२५॥

नयणंसुए मुयन्ती, रामेणाऽऽसासिया ससीएणं । भणिया य लक्खणेणं, मह वयणं सुणसु तणुयङ्गी ! ॥२६॥

रज्जं करेहि सुन्दरि !, इमेण वेसेण ताव भयरहिया । मोएमि जाव तुज्झं, पियरं कइएसु दियहेसु ॥२७॥

एवभणियम्मि तोसं, जणए व विमोइए गया बाला । उल्लसियरोमकूवा, सहस त्ति [१]समुज्जला जाया ॥२८॥

दिवसाणि तिण्णि वसिउं, तत्थुज्जाणे मणोहरे रम्मे । सीयाए समं दोण्णि वि, विणिग्गया सुहपसुत्तजणे ॥२९॥

अह विमलम्मि पहाए, सा कन्ना ते तहिं अपेच्छन्ती । रोयइ कलुणं मयच्छी, सोगापन्नेण हियएणं ॥३०॥

एवं उज्जाणाओ, नियय़पुरं पविसिऊण सा कन्ना । रज्जं करेइ नयरे, तेणं चिय पुरिसवेसेणं ॥३१॥

अह ते कमेण पत्ता, विमलजलं नम्मयं सुविच्छिण्णं । चक्काय-हंस-सारस-कल-महुरुग्गीयसद्दालं ॥३२॥

संखुभियमयर-कच्छव-मच्छसमुच्छलियविलुलियावत्तं । तरलतरङ्गुब्भासिय-जलहत्थिविमुक्कसिक्कारं ॥३३॥

सीयाए समं दोण्णि वि, लीलाए नम्मयं समुत्तिण्णा । विञ्झाडविं पवन्ना, घणतरुवर-सावयाइण्णं ॥३४॥

पन्थेण संचरन्ता, वारिज्जन्ता व गोवपहिएहिं । वरवसभलीलगामी, किंचुद्देसं वइक्कन्ता ॥३५॥

अह भणइ जणयतणया, वामदिसावट्ठिओ कडुयरुक्खे । बाहरइ इमो रिट्ठो, सामिय ! कलहं निवेएइ ॥३६॥

अन्नो य खीररुक्खे, बाहरमाणो जयं परिकहेइ । भणियं महानिमित्ते, होइ मुहुत्तन्तरे कलहो ॥३७॥

सिंहोदरोऽपि राजा न च तस्य विमोचनं प्रभो !करोति । यदत्र विषयद्रव्यं नित्यं प्रेषयामि म्लेच्छानाम् ॥२५॥

नयनाश्रुणि मुञ्चन्ती रामेणाऽऽश्वासिता ससीतेन । भणिता च लक्ष्मणेन मम वचनं श्रुणु तन्वाङ्गिनि ! ॥२६॥

राज्यं कुरु सुन्दरि ! अनेन वेशेन तावद्भयरहिता । मोचयामि यावत्तव पितरं कतिपयैः दिवसैः ॥२७॥

एवं भणिते तोषं जनक इव विमोचिते गता बाला । उल्लसितरोमकूपा सहसेति समुज्ज्वला जाता ॥२८॥

दिवसानि त्रिण्युषित्वा तत्रोद्याने मनोहरे रम्ये । सीतायाः समं द्वावपि विनर्गतौ सुखप्रसुप्तजने ॥२९॥

अथ विमले प्रभाते सा कन्या तांस्तत्रापश्यन्ती । रोदिति करुणं मृगाक्षिः शोकापन्नेन ह्रदयेन ॥३०॥

एवमुद्यानान्निजपुरं प्रविश्य सा कन्या । राज्यं करोति नगरे तेनैव पुरुषवेशेन ॥३१॥

अथ ते कमेण प्राप्ता विमलजलां नर्मदां सुविस्तीर्णाम् । चक्रवाक्-हंस-सारस-कलमधुरोद्गीतशब्दालाम् ॥३२॥

संक्षुब्धमकर-कच्छप-मत्स्यसमुच्छलितविलुलितावर्त्ताम् । तरलतरङ्गोद्भाषितजलहस्तिविमुक्तसित्काराम् ॥३३॥

सीतायाः समं द्वावपि लीलया नर्मदां समुत्तीर्णौ । विंध्याटवीं प्रपन्नौ घनतरूवरश्वापदाकीर्णम् ॥३४॥

पथेन संचरन्तौ वार्यमाणाविव गोपपथिकैः । वरवृषभलीलागामिनौ किंचिदुद्देशं व्यतिक्रान्तौ ॥३५॥

अथ भणति जनकतनया वामदिगवस्थितः कटुकवृक्षे । व्यावहरत्ययं रिष्टः स्वामिन् ! कलहं निवेदयति ॥३६॥

अन्यश्च क्षीरवृक्षे व्याहरमाणो जयं परिकथयति । भणितं महानिमित्ते भवति मुर्हूतान्तरे कलहः ॥३७॥

---

१. समुज्जया-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

थोवन्तरं निविट्ठा, पुणरवि वच्चन्ति अडविपहहुत्ता । पुरओ मेच्छाण बलं, ताव य पेच्छन्ति मसिवण्णं ॥३८॥

मेच्छाण समावडिया, दोण्णि वि सरवरसयाणि मुञ्चन्ता । तह जुज्झिउं पवत्ता, जह भग्गाऽणारिया सव्वे ॥३९॥

अह ते भउद्दुयमणा, गन्तूण कहेन्ति नियसामिस्स । महया बलेण सो वि य, पुरओ य उवट्ठिओ ताणं ॥४०॥

मिच्छा कागोणन्दा, विक्खाया महियलम्मि ते सूरा । जे सयलपत्थिवेसु वि, न य संगामम्मि भज्जन्ति ॥४१॥

दट्ठूण उच्छरन्तं, मेच्छबलं पाउसे व्व घणवन्दं । लच्छीहरेण एत्तो, रुट्ठेणं वलइयं धणुयं ॥४२॥

अप्फालियं सरोसं, चावं लच्छीहरेण सहस त्ति । जेणं तं मेच्छबलं, भीयं [1]आगम्पियं सहसा ॥४३॥

दट्ठूण नियसेन्नं, संभन्तं भयपडन्तधणु-खग्गं । ओयरिय रहवराओ, पणमइ तो मेच्छसामन्तो ॥४४॥

जंपइ कोसम्बीए, विप्पो वेसाणलो त्ति नामेणं । भज्जा से पइभत्ता, तीए हं कुच्छिसंभूओ ॥४५॥

नामेण रुद्दभूई, बालपभूईए दुट्ठकम्मकरो । गहिओ य चोरियाए, सूलाए निरोविओ भेत्तुं ॥४६॥

कारुण्णमुवगएणं, वणिएण विमोइओ तहिं सन्तो । एत्थाऽऽगओ भमन्तो, कागोनन्दाहिवो जाओ ॥४७॥

इह एत्तियम्मि काले, बलवन्ता जइ वि पत्थिवा बहवे । मह दिट्ठिगोयरं ते, असमत्था रणमुहे धरिउं ॥४८॥

सो हं निराणुकम्पो, दरिसणमेत्तेण तुम्ह भयभीओ । चलणेसु एस पडिओ, भणह लहुं किं करेमि ? त्ति ॥४९॥

पउमेण तओ भणिओ, किवालुणा जइ करेह मह वयणं । मोएहि बन्धणाओ, नराहिवं वालिखिल्लं तं ॥५०॥

स्तोकान्तरं निविष्टाः पुनरपि व्रजन्ति अटवीपथाभिमुखाः । पुरतो म्लेच्छानां बलं तावच्च पश्यन्ति मसीवर्णम् ॥३८॥

म्लेच्छानां समापतितौ द्वावपि शरवरशतानि मुञ्चन्तौ । तथा योद्धुं प्रवृत्तौ यथा भग्ना अनार्याः सर्वे ॥३९॥

अथ ते भयोपद्रुतमनसो गत्वा कथयन्ति निजस्वामिनः । महता बलेन सोऽपि च पुरतश्चोपस्थितस्तयोः ॥४०॥

म्लेच्छाः काकोनन्दा विख्याता महीतले ते शूराः । ये सकलपार्थिवैरपि न च संग्रामे भज्यन्ते ॥४१॥

दृष्ट्वोच्छलन्तं म्लेच्छबलं प्रावृषीव घनवृन्दम् । लक्ष्मीधरेणेतो रुष्टेन वलयितं धनुष्कम् ॥४२॥

आस्फालितं सरोषं चापं लक्ष्मीधरेण सहसेति । येन तन्म्लेच्छबलं भीतमाकम्पितं सहसा ॥४३॥

दृष्ट्वा निजसैन्यं संभ्रान्तं भयपतद्धनूखड्गम् । अवतीर्य रथवरात्प्रणमति तदा म्लेच्छसामन्तः ॥४४॥

जल्पति कोशाम्ब्यां विप्रो वैश्वानल इति नाम्ना । भार्या तस्य पतिभक्ता तस्या अहं कुक्षिसंभूतः ॥४५॥

नाम्ना रुद्रभूति र्बालप्रभृति दुष्टकर्मकरः । गृहीतश्च चौरिकया शूलायां निरुपितो भेत्तुम् ॥४६॥

कारुण्यमुपागतेन वणिजा विमोचितस्तत्र सन् । अत्राऽऽगतो भ्रमन्काकोनन्दाधिपो जातः ॥४७॥

इहैतावति काले बलवन्तो यद्यपि पार्थिवा बहवः । मम दृष्टिगोचरं तेऽसमर्था रणमुखे धर्तुम् ॥४८॥

सोऽहं निरनुकम्पो दर्शनमात्रेण तव भयभीतः । चरणयोरेषपतितो भण लघु किं करोमीति ॥४९॥

पद्मेन ततो भणितः कृपालुना यदि करोति मम वचनम् । मुञ्च बन्धनान्नराधिपं वालिखिल्यं तम् ॥५०॥

---

१. आकम्पितम् ।

जं आणवेसि सामिय !, एवं भणिऊण वालिखिल्लं सो । मोएइ बन्धणाओ, सम्माणं से परं कुणइ ॥५१॥
नीओ पउमसयासं, पणमइ य पुणो पुणो पसंसन्तो । जं बन्धणाउ मुक्को, अहयं तुम्हं पसाएणं ॥५२॥
भणिओ य राघवेणं, इट्ठजणसमागमं लहसु सिग्घं । जाणिहिसि सव्वमेयं, निययपुरिं पत्थिओ सन्तो ॥५३॥
चलिओ य वालिखिल्लो, पणइं काऊण रुद्दभूई य । पउमो मेच्छाहिवई, ठविय वसे वच्चइ पहेणं ॥५४॥
राया वि वालिखिल्लो, संपत्तो रुद्दभूइणा समयं । पविसरइ कूववद्दं, बन्दिजणुग्घुट्ठजयसद्दो ॥५५॥
चिरविप्पओगदुहिया, पणमइ कल्लाणमालिणी पियरं । तेण वि य उत्तमङ्गे, धूया परिचुम्बिया तयणु ॥५६॥
पुहवी वि महादेवी, परितुट्ठा पुलइएसु अङ्गेसु । संभासिया सणेहं, भिच्चा य सनागरा सव्वे ॥५७॥
ण्हाओ महारहसुओ, समयं चिय रुद्दभूइणा एत्तो । आहरण-रयण-कणयाइएसु पूएइ मेच्छवइं ॥५८॥
संपूइओ पयट्टो, आउच्छेऊण मेच्छसामन्तो । संपत्तो नियपुरं, रमइ सुहं वालिखिल्लो वि ॥५९॥

सोऊण धीरस्स विचेट्ठियं ते, सीहोदराई बहवे निरन्दा ।
पसंसमाणा विमलं जसोहं, जाया ससङ्का पउमस्स निच्चं ॥६०॥

॥ इय पउमचरिए वालिखिल्लउवक्खाणं नाम चउतीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

यदाज्ञापयसि स्वामीन्नेवं भणित्वा वालिखिल्यं सः । मुञ्चति बन्धनात्सन्मानं तस्य परं करोति ॥५१॥
नीतः पद्मसकाशं प्रणमति च पुनः पुनः प्रशंसन् । यद्बन्धनान्मुक्तोऽहं तव प्रसादेन ॥५२॥
भणितश्च राघवेनेष्टजनसमागमे लभस्व शीघ्रम् । ज्ञास्यसि सर्वमेतन्निजपुरिं प्रस्थितः सन् ॥५३॥
चलितश्च वालिखिल्यः प्रणतिं कृत्वा रुद्रभूतिञ्च । पद्मो म्लेच्छाधिपतिं स्थापयित्वा वशे गच्छति पथेन ॥५४॥
राजाऽपि वालिखिल्यः संप्राप्तो रुद्रभूतिना समकम् । प्रविशति कूपपद्रं बन्दिजनोद्घुष्टजयशब्दः ॥५५॥
चिरविप्रयोगदुखिता प्रणमति कल्याणमालिनी पितरम् । तेनापि चोत्तमाङ्गे दुहिता परिचुम्बिता तदनु ॥५६॥
पृथिव्यपि महादेवी परितुष्य पुलकितैरङ्गैः । संभाषिताः स्नेहं भृत्याश्च सनागराः सर्वे ॥५७॥
स्नातो महारथसुतः समकमेव रुद्रभूतिनेतः । आभरण-रत्न-कनकादिकैः पूजयति म्लेच्छपतिम् ॥५८॥
संपूजितः प्रवृत्त आपृच्छय म्लेच्छसामन्तः । संप्राप्तो निजपुरं रमते सुखं वालिखिल्योऽपि ॥५९॥

श्रुत्वा धीरस्य विचेष्टितं ते सिंहोदरादयो बहवो नरेन्द्राः ।
प्रशंसन्तो विमलं यश औघं जाताः सशङ्काः पद्मस्य नित्यम् ॥६०॥

॥ इति पद्मचरित्रे बालिखिल्योपाख्यानं नाम चतुस्त्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International　　For Personal & Private Use Only　　www.jainelibrary.org

३५. कविलोवक्खाणं

अह ते कमेण विञ्झं, अइक्कमेऊण पाविया विसयं । मज्झेण वहइ तावी, जस्स नई निम्मलजलोहा ॥१॥
वच्चन्ताणुद्देसो, जाओ जलवज्जिओ अरण्णमि । ताव च्चिय अइगाढं, सीया तण्हं समुव्वहइ ॥२॥
भणइ पउमं वि सीया, सूसइ कण्ठो महं अइतिसाए । परिसमजणियं च तणू, तम्हा उदयं समाणेह ॥३॥
हत्थावलम्बियकरा, भणिया रामेण पेच्छ आसन्ने । गामं तुङ्गवरघरं, एत्थ तुमं पाणियं पियसु ॥४॥
एव भणिऊण सणियं, सणियं संपत्थियाऽरुणग्गामे । गेहम्मि य उवविट्ठा, कविलस्स उ आहियग्गिस्स ॥५॥
तं बम्भणीए दिन्नं, पीयं सीयाए सीयलं सलिलं । ताव च्चिय रण्णाओ, संपत्तो तक्खणं कविलो ॥६॥
तरुफल-समिहक्कन्तो, कमण्डलुग्गहियउछवित्तीओ । अइकोहणो विसीलो, [1]उलुयमुहो कक्कडच्छीओ ॥७॥
ते तत्थ सन्निविट्ठा, दट्ठूणं [2]बम्भणी भणइ रुट्ठो । एयाण घरपवेसो, किं ते दिन्नो महापावे ? ॥८॥
पहरेणुइलचलणा, मा मे उवहणह अग्गिहोत्तघरं । तुब्भे निप्फिडह लहुं, किं अच्छह एत्थ निल्लज्जा ? ॥९॥
तो भणइ जणयधूया, इमेण दुव्वयणअग्गिनिवहेणं । दड्ढं सरीरयं मे, रण्णं व जहा वणदवेणं ॥१०॥
अडवीसु वरं वासो, समयं हरिणेसु जत्थ सच्छन्दो । न य एरिसाणि सामिय !, सुव्वन्ति जहिं दुवयणाइं ॥११॥

---

३५. कपिलोपाख्यानम्

अथ ते क्रमेण विन्ध्यमतिक्रम्य प्राप्ता विषयम् । मध्येन वहति तापी यस्य नदी निर्मलजलौघा ॥१॥
व्रजतामुद्देशो जातो जलवर्जितोऽरण्ये । तावच्चैवातिगाढा सीता तृष्णां समुद्वहति ॥२॥
भणति पद्ममपि सीता शुष्यते कण्ठो ममातितृषया । परिश्रमजनितं च तनूस्तस्मादुदकं समानय ॥३॥
हस्तावलम्बितकरा भणिता रामेण पश्यासन्ने । ग्रामं तुङ्गवरगृहमत्र त्वं जलं पीब ॥४॥
एवं भणित्वा शनैः शनैः संप्रस्थिताऽरुणग्रामे । गृहे चोपविष्टाः कपिलस्य त्वाहिताग्नेः ॥५॥
तद् ब्राह्मण्या दत्तं पीतं सीतया शीतलं सलिलम् । तावदेवारण्यात्संप्राप्तस्तत्क्षणं कपिलः ॥६॥
तरुफलसमिधाक्रान्तः कमण्डलोद्ग्राहीतोञ्छवृत्तिः । अतिक्रोधनो विशील उल्लुण्ठमुखः कर्कटाक्षिः ॥७॥
तान् तत्र सन्निविष्टान् दृष्ट्वा ब्राह्मणीं भणति रुष्टः । एतेषां गृहप्रवेशः किं त्वया दत्तो महापापः ? ॥८॥
पथरेणुमलिनचरणा मा म उपघ्नन्त्वग्निहोत्रगृहम् । यूयं निस्फेटयत लघु किमाध्वमत्र निर्लज्जाः ? ॥९॥
तदा भणति जनकदुहिताऽनेन दुर्वचनाग्निनिवहेन । दग्धं शरीरं मेऽरण्यमिव यथा वनदवेन ॥१०॥
अटविषु वरं वासः समं हरिणैर्यत्र स्वच्छन्दः । न चेतादृशानि स्वामिन्श्रूयन्ते यत्र दुर्वचनानि ॥११॥

---

१. उल्लुण्ठमुहो-मु० । २. बंभणि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोएण तत्थ बडुओ, वारिज्जन्तो वि गामवासीणं । न पसिज्जइ दुट्ठप्पा, भणइ य गेहाओ निप्फिडह ॥१२॥
आरुट्ठो सोमित्ती, गाढं दुव्वयणफरुसघाएहिं । चलणेसु गेण्हिऊणं, अहोमुहं भामई विप्पं ॥१३॥
भणिओ य राघवेणं, लक्खण ! न य एरिसं हवइ जुत्तं । मेल्लेहि इमं विप्पं, पावं अयसस्स आमूलं ॥१४॥
समणा य बम्भणा वि य, गो पसु इत्थी य बालया वुड्ढा । जइ वि हु कुणन्ति दोसं, तह वि य एए न हन्तव्वा ॥१५॥
मोत्तूण बम्भणं तं, सोमित्ती राघवो सह पियाए । अह निग्गओ घराओ, पुणरवि य पहेण वच्चन्ति ॥१६॥
कूलेसु गिरिनईणं, निवसामि वरं अरण्णवासम्मि । न य खलयणस्स गेहं, पविसामि पुणो भणइ रामो ॥१७॥
ताव च्चिय घणकालो, समागओ गज्जियाइसद्दालो । चञ्चलतडिच्छडालो, धारासंभिन्नपहमग्गो ॥१८॥
अन्धारियं समत्थं, गयणं रविकिरणववगयालोयं । वरिसन्तेण पलोट्टा, जह पुहई भरियकूव-सरा ॥१९॥
सलिलेण तिम्ममाणा, पत्ता निग्गोहपायवं विउलं । घणवियडपत्तबहलं, नज्जइ गेहं व अइरम्मं ॥२०॥
सो तत्थ दुमाहिवई, इभकण्णो नाम सामियं गन्तुं । भणइ करेहि परत्तं, गिहाउ उव्वासिओ अहयं ॥२१॥
अवहिविसएण नाउं, हलहर-नारायणा तुरियवेगो । तत्थेव आगओ सो, विणायगो पूयणो नामं ॥२२॥
ताण पभावेण लहुं, वच्छल्लेण य विसालपायारा । जण-धण-रयणसमिद्धा, तेण तहिं निम्मिया नयरी ॥२३॥
तत्थेव सुहपसुत्ता, पाहाउयगीय-मङ्गलरवेणं । पेच्छन्ति नवविउद्धा, भवणं तूलीनिसण्णङ्गा ॥२४॥
पासाय-तुङ्गतोरण-हय-गय-सामन्त-परियणाइण्णा । देहुवगरणसमिद्धा, धणयपुरी चेव पच्चक्खा ॥२५॥

लोकेन तत्र बटुको वार्यमाणोऽपि ग्रामवासिना । न प्रसीद्यते दुष्यत्मा भणति च गृहान्निस्फेटयत ॥१२॥
आरुष्टः सौमित्रि र्गाढं दुर्वचनपरुषघातैः । चरणाभ्यां गृहीत्वाऽधोमुखं भ्रामयति विप्रम् ॥१३॥
भणितश्च राघवेन लक्ष्मण ! न चेतादृशं भवति युक्तम् । मुञ्चेमं विप्रं पापमयशस आमूलम् ॥१४॥
श्रमणाश्च ब्राह्मणा अपि च गौः पशुः स्त्री च बालका वृद्धाः । यद्यपि कुर्वन्ति दोषं तथापि चैते न हन्तव्याः ॥१५॥
मुक्त्वा ब्राह्मणं तं सौमित्री राघवः सहप्रियया । अथ निर्गतोगृहात्पुनरपि च पथा व्रजन्ति ॥१६॥
कुलेषु गिरिनदीणां निवसामि वरमरण्यवासे । न च खलजनस्य गृहं प्रविशामि पुनर्भणति रामः ॥१७॥
तावदेव घनकालः समागतो गर्जितादिशब्दवान् । चञ्चलतडिच्छटावान् धारासंभिन्नपथमार्गः ॥१८॥
अन्धकारितं समस्तं गगनं रविकिरणव्यपगतालोकम् । वर्षता पर्यस्ता यथा पृथिवी भृतकूपसरसी ॥१९॥
सलिलेन स्तीम्यमाना प्राप्ता न्यग्रोधपादपं विपुलम् । घनविकटपत्रबहुलं ज्ञायते गृहमिवातिरम्यम् ॥२०॥
स तत्र द्रुमाधिपतिरिभ्यकर्णो नाम स्वामी गत्वा । भणति कुरु परित्राणं गृहादुद्वासितो ऽहम् ॥२१॥
अवधिविषयेन ज्ञात्वा हलधर-नारायणौ त्वरितवेगः । तत्रैवागतः स विनायकः पूषणो नाम ॥२२॥
तेषां प्रभावेन लघु वात्सल्येन च विशालप्राकारा । जन-धन-रत्नसमृद्धा तेन तत्र निर्मिता नगरी ॥२३॥
तत्रैव सुखप्रसुप्ता प्रभातोद्गीत-मङ्गलरवेण । पश्यन्ति नवविबुद्धा भवनं तूलीनिसण्णाङ्गाः ॥२४॥
प्रसादतुङ्गतोरणहय-गज-सामन्त परिजनाकीर्णा । देहोपकरणसमृद्धा धनदपुरीव प्रत्यक्षा ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जक्खाहिवेण सहसा, रामस्स विणिम्मिया पुरी जेणं। तेणं सा रामपुरी, जाया पुहईए विक्खाया ॥२६॥

तो भणइ गणाहिवई, सेणिय! निसुणेहि तत्थ सो विप्पो। सूरुग्गमे पयट्टो, दब्भयहत्थो अरण्णम्मि ॥२७॥

तेण भमन्तेण तहिं, दिट्ठा नयरी घरा-ऽऽवणसमिद्धा। उववण-तलाय-जण-धण-समाउला तुङ्गपागारा ॥२८॥

चिन्तेह बम्भणो सो, किं सुरलोगाउ आगया एसा। नयरी मणाभिरामा, कस्स वि पुणाणुभावेणं? ॥२९॥

किं होज्ज मए सुमिणो?, दिट्ठो माया व केणइ पउत्ता?। पित्ताहियं व चक्खुं?, होज्ज व मरणं समासन्नं? ॥३०॥

एयाणि य अन्नाणि य, परिचिन्तन्तेण महिलिया दिट्ठा। भणिया य कस्स भद्दे!, एस पुरी देवनयरि व्व? ॥३१॥

सा भणइ किं न याणसि?, एस पुरी भद्द! पउमनाहस्स। सीया जस्स महिलिया, हवइ य लच्छीहरो भाया ॥३२॥

अन्नं पि विप्प! निसुणसु, पउमो दव्वं जहिच्छियं देइ। तेण वि सा पडिभणिया, कहेहि तद्दरिसणोवायं ॥३३॥

सा जक्खिणी [1]सुनामा, भणइ य भो विप्प! सुणसु मह वयणं। साहेमि तं उवायं, जेण तुमं पेच्छसी पउमं ॥३४॥

गयवर-सीहमुहेहिं, वेयालबिहीसिएहि बहुएहिं। नयरीए तिण्णि दारा, रक्खिज्जन्ते य पुरिसेहिं ॥३५॥

पुव्वद्दारस्स बहिं, जं पेच्छसि धय-वडायकयसोहं। तं जिणहरं महन्तं, जत्थ सुसाहू परिवसन्ति ॥३६॥

जो कुणइ नमोक्कारं, अरहन्ताणं विसुद्धभावेणं। सो पविसइ निव्विग्घं, लहइ वहं जो हु विवरीओ ॥३७॥

जो पुण अणुव्वयधरो, जिणधम्मुज्जयमणो सुसीलो य। सो पूईज्जइ पुरिसो, पउमेण अणेगदव्वेणं ॥३८॥

यक्षाधिपेन सहसा रामस्य विनिर्मिता पुरी येन। तेन सा रामपुरी जाता पृथिव्यां विख्याता ॥२६॥

तदा भणति गणाधिपतिः श्रेणिक! निश्रुणु तत्र स विप्रः। सूर्योदये प्रवृत्तो दर्भहस्तोऽरण्ये ॥२७॥

तेन भ्रमता तत्र दृष्टा नगरी गृहाऽऽपणसमृद्धा। उपवन-तडाग-जन-धन-समाकुला तुङ्गप्राकारा ॥२८॥

चिन्तयति ब्राह्मणः स किं सुरलोकादागतैषा। नगरी मनोभिरामा कस्यापि पुण्यानुभावेन? ॥२९॥

किं भवेन्मम स्वप्नः? दृष्टो माया वा केनचित्प्रयुक्ता?। पित्ताहितं वा चक्षुः? भवेद्वा मरणं समासन्नं? ॥३०॥

एतानि चान्यानि च परिचिन्तयता महिला दृष्टा। भणिता कस्य भद्रे! एषा पुरी देवनगरीव? ॥३१॥

सा भणति किं न जानासि? एषा पुरी भद्र! पद्मनाभस्य। सीता यस्य महिला भवति च लक्ष्मीधरो भ्राता ॥३२॥

अन्यदपि विप्र! निश्रुणु पद्मो द्रव्यं यथेच्छं ददाति। तेनापि सा प्रतिभणिता कथय तद्दर्शनोपायम् ॥३३॥

सा यक्षिणी सुनामा भणति च भो विप्र! श्रुणु मम वचनम्। कथयामि तमुपायं येन त्वं पश्यसि पद्मम् ॥३४॥

गजवर-सिंहमुखैर्वैतालबिभिषिकै र्बहुभिः। नगर्यास्त्रिणि द्वाराणि रक्ष्यन्ते च पुरुषैः ॥३५॥

पूर्वद्वारस्य बहिर्यत्पश्यसि ध्वजपताकाकृतशोभम्। तं जिनगृहं महद् यत्र सुसाधवः परिवसन्ति ॥३६॥

यः करोति नमस्कारमर्हद्भ्यो विशुद्धभावेन। स प्रविशति निर्विघ्नं लभते वधं यः खलु विपरितः ॥३७॥

यः पुनरणुव्रतधरो जिनधर्मोद्यतमनाः सुशीलश्च। स पूज्यते पुरुषः पद्मेनानेकद्रव्येण ॥३८॥

---

१. सुजामा-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुणिऊण वयणमेयं, वच्चइ विप्पो थुइं पउञ्जन्तो । संपत्तो जिणभवणं, पणमइ य तहिं जिणवरिन्दं ॥३९॥
तं पणमिऊण [1]साहू, पुच्छइ अरहन्तदेसियं धम्मं । समणो वि अपरिसेसं, साहेइ अणुव्वयामूलं ॥४०॥
तं सोऊण दियवरो, धम्मं गेण्हइ गिहत्थमणुचिण्णं । जाओ विसुद्धभावो, अणन्नदिट्ठी परमतुट्ठो ॥४१॥
[2]असणाइएण भत्तं, लद्धं जह पाणियं च तिसिएणं । तह तुज्झ पसाएणं, साहव ! धम्मो मए लद्धो ॥४२॥
एव भणिऊण समणं, पणमिय सव्वायरेण परितुट्ठो । परिओसजणियहियओ, नियघरं पत्थिओ विप्पो ॥४३॥
भणइ पहिट्ठो कविलो, सुन्दरि ! साहेमि जं मए अज्जं । दिट्ठं अदिट्ठपुव्वं, सुयं च गुरुधम्मसव्वस्सं ॥४४॥
समिहाहेउं संपत्थिएण, दिट्ठा पुरी मए रण्णे । महिला य सुन्दरङ्गी, नूणं सा देवया का वि ॥४५॥
परिपुच्छियाए सिट्ठं, तीए मह एस विप्प ! रामपुरी । सावयजणस्स पउमो, देइ किलाणन्तयं दव्वं ॥४६॥
समणस्स सन्नियासे, धम्मं सुणिऊण सावओ जाओ । परितुट्ठो हं सुन्दरि !, दुल्लहलम्भो मए लद्धो ॥४७॥
सा बम्भणी सुसम्मा, भणइ पइं जो तुमे मुणिसयासे । गहिओ जिणरधम्मो, सो हु मए चेव पडिवन्नो ॥४८॥
सव्वायरेण सुन्दरि !, फासुयदाणं मुणीण दायव्वं । अरहन्तो सयकालं, नमंसियव्वो पयत्तेणं ॥४९॥
तो भुञ्जिऊण सोक्खं, उत्तरकुरवाइभोगभूमीसु । लभिहिसि परम्पराए, निव्वाणमणुत्तरं ठाणं ॥५०॥
सागारधम्मनिरओ, कविलो तं [3]बम्भणी भणइ एवं । पउमं पउमदलच्छी !, गन्तूण पुरिं च पेच्छामो ॥५१॥

श्रुत्वा वचनमेतद्गच्छति विप्रः स्तुतिं प्रयुञ्जन् । संप्राप्तो जिनभवनं प्रणमति च तत्र जिनवरेन्द्रम् ॥३९॥
तं प्रणम्य साधुं पृच्छत्यर्हद्देशितं धर्मम् । श्रमणोऽप्यपरिशेषं कथयत्यणुव्रतामूलम् ॥४०॥
तच्छ्रुत्वा द्विजवरो धर्मं गृह्णाति गृहस्थमनुचीर्णम् । जातो विशुद्धभावोऽनन्यदृष्टिः परमतुष्टः ॥४१॥
क्षुधितेन भक्तं लब्धं यथा जलं च तृषितेन । तथा तव प्रसादेन साधो ! धर्मो मया लब्धः ॥४२॥
एवं भणित्वा श्रमणं प्रणम्य सर्वादरेण परितुष्टः । परितोषजनितहृदयो निजगृहं प्रस्थित विप्रः ॥४३॥
भणति प्रहृष्टः कपिलः सुन्दरि ! कथयामि यन्मयाद्य । दृष्टमदृष्टपूर्वं श्रुतं च गुरुधर्मसर्वस्वम् ॥४४॥
समिधाहेतुः संप्रस्थितेन दृष्ट्वा पुरी मयारण्ये । महिला च सुन्दराङ्गी नूनं सा देवता काऽपि ॥४५॥
परिपृच्छ्य शिष्टं तया ममैषा विप्र ! रामपुरी । श्रावकजनाय पद्मो ददाति किलानन्तकं द्रव्यम् ॥४६॥
श्रमणस्य सन्निकर्षे धर्मं श्रुत्वा श्रावको जातः । परितुष्टोऽहं सुन्दरि ! दुर्लभलभ्यो मया लब्धः ॥४७॥
सा ब्राह्मणी सुशर्मा भणति पतिं यस्त्वया मुनिसकाशे । गृहीतो जिनवरधर्मः स हु मयैव प्रतिपन्नः ॥४८॥
सर्वादरेण सुन्दरि ! प्रासुकदानं मुनिभ्यो दातव्यम् । अर्हन् सदाकालं नन्तव्यः प्रयत्नेन ॥४९॥
ततो भुक्त्वा सुखमुत्तरकुर्वादिभोगभूमिषु । लप्स्यते परम्परया निर्वाणमनुत्तरं स्थानम् ॥५०॥
साकारधर्मनिरतः कपिलस्तां ब्राह्मणीं भण्यत्येवम् । पद्मं पद्मदलाक्षि ! गत्वा पुरिं च पश्याव: ॥५१॥

---

१. साहूं-प्रत्य० । २. क्षुधितेन । ३. बंभणि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दव्वेण विप्पमुक्कं, पुरिसं दारिद्दसागरे पडियं । उत्तारेइ निरुत्तं, रामो अणुकम्पमावन्नो ॥५२॥

तो निग्गओ घराओ, पुरओ काऊण [१]बम्भणी विप्पो । कुसुमकरण्डयहत्थो, उच्चलिओ रामपुरिहुत्तो ॥५३॥

सो तत्थ वच्चमाणो, पेच्छइ नागे फडाविसालिल्ले । वेयाले य बहुविहे, दाढाविगरालबीहणए ॥५४॥

एयाणि य अन्नाणि य, रूवाणि बहुप्पयारघोराणि । कन्ताए मं विप्पो, घोसेइ महानमोक्कारं ॥५५॥

मोत्तूण लोगधम्मं, अहियं जिणसासणुज्जओ अहयं । जाओ नमो जिणाणं, संपइऽतीए भविस्साणं ॥५६॥

[२]पञ्चसु पञ्चसु पञ्चसु, भरहेरवएसु य तह विदेहेसु । एएसु य जायाणं, नमो जिणाणं जियभयाणं ॥५७॥

जिणधम्मनिच्छियमणो, एवं तु बिहीसियाउ वोलेउं । पत्तो [३]रामपुरी सो, कन्तासहिओ मणभिरामं ॥५८॥

अब्भन्तरं पविट्ठो, दावेन्तो महिलियाए भवणवरे । रायङ्गणं च पत्तो, आलोवइ लक्खणं विप्पो ॥५९॥

पेच्छन्तेण सुमरिओ, एसो सो रूव-कन्तिपडिपुण्णो । जो कडुय-कक्कसेहिं, तइया वयणेहि मे सत्तो ॥६०॥

तस्स भएणं तुरिओ, मोत्तूणं [४]बम्भणी पलायन्तो । लच्छीहरेण दिट्ठो, सिग्घं सद्दाविओ विप्पो ॥६१॥

वाहरिओ य नियत्तो, दट्ठूणं दो वि ते महापुरिसे । सत्थि करेइ कविलो, मुञ्चइ पुप्फञ्जली पुरओ ॥६२॥

पउमेण बम्भणो सो, भणिओ कत्तो सि आगओ तहयं ? । तो भणइ आगओ हं, अरुणग्गामाउ तुह पासं ॥६३॥

कविलो नामेणाहं, हवइ सुसम्मा य गेहिणी एसा । तइया मए न नाओ, पच्छन्नमहेसरो सि तुमं ॥६४॥

द्रव्येण विप्रमुक्तं पुरुषं दारिद्रसागरे पतितम् । उत्तारयति निश्चयं रामोऽनुकम्पापन्नः ॥५२॥

ततो निर्गतो गृहात्पुरतः कृत्वा ब्राह्मणीं विप्रः । कुसुमकरण्डकहस्त उच्चलितो रामपुरीमभिमुखः ॥५३॥

स तत्र व्रजन् पश्यति नागान्फणाविशालान् । वैतालांश्च बहुविधान् दंष्ट्राविकरालभयानकान् ॥५४॥

एतानि चान्यानि च रुपाणि बहुप्रकारघोराणि । कान्तायाः समं विप्रः घोषयति महानमस्कारम् ॥५५॥

भुक्त्वा लोकधर्ममधिकं जिनशासनोद्यतोऽहम् । जातो नमो जिनेभ्यः संप्रत्यतीतभविष्येभ्यः ॥५६॥

पञ्चसु पञ्चसु पञ्चसु भरतैरवतेषु च तथा विदेहेषु । एतेषु च जातानां नमो जिनेभ्यो जितभयेभ्यः ॥५७॥

जिनधर्मनिश्चितमना एवं तु बिभिषिकां व्यतीत्य । प्राप्तो रामपुरीं स कान्तासहितो मनोभिरामाम्॥५८॥

अभ्यन्तरं प्रविष्टो दर्शयन्महिलां भवनवरान् । राजाङ्गणं च प्राप्तो ऽवलोकयति लक्ष्मणं विप्रः ॥५९॥

पश्यता स्मृत एष स रुपकान्तिप्रतिपूर्णः । यः कटु-कर्कशैस्तदा वचनैर्मया सक्तः ॥६०॥

तस्य भयेन त्वरमानोमुक्त्वा ब्राह्मणीं पलायमानः । लक्ष्मीधरेण दृष्टः शीघ्रं शब्दायितो विप्रः ॥६१॥

व्याहृतश्च निवृत्तो दृष्ट्वा द्वावपि तौ महापुरुषौ । स्वस्ति करोति कपिलो मुञ्चति पुष्पाञ्जलिं पुरतः ॥६२॥

पद्मेन ब्राह्मणः स भणितः कुतोऽस्यागतस्त्वम् ? । तदाभणत्यागतोऽहमरुणग्रामात्तवपार्श्वम् ॥६३॥

कपिलो नाम्नाहं भवति सुशर्मा च गृहिण्येषा । तदा मया न ज्ञातः प्रच्छन्नमहेश्वरोऽसित्वम् ॥६४॥

---

१. बंभणि-प्रत्य० । २. पंचसु भरहेसु सया एरवएसु य तहा विदेहेसु-मु० । ३. रामपुरिं-प्रत्य० । ४. बंभणिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ वि य सयं नरिन्दो, परविसयगओ हवेज्ज एगागी । तह वि य परिहवठाणं, पावइ लोए ठिई एसा ॥६५॥

जस्सऽत्थो तस्स सुहं, जस्सऽत्थो पण्डिओ य सो लोए । जस्सऽत्थो सो गुरुओ, अत्थविहूणो य लहुओ उ ॥६६॥

तस्स महत्थो य जसो, धम्मो वि य तस्स होइ साहीणो । धम्मो वि सो समत्थो, जस्स अहिंसा समुद्दिट्ठा ॥६७॥

अहवा किं न सुयं ते ?, सणंकुमारो समन्तभरहवई । रूवस्स दरिसणट्ठे, जस्स सुरा आगया इहइं ॥६८॥

संवेगजणियकरुणो, पव्वज्जं गेण्हिउं परिभमन्तो । भिक्खं च अलभमाणो, विजयपुरं पाविओ कमसो ॥६९॥

पडिलाहिओ महप्पा, कयाइ दारिद्दसमभिभूयाए । पडिया य रयणवुट्ठी, गन्धोदय-पुप्फवरिसं च ॥७०॥

एवंविहा वि समणा, सुर-नरमहिय-ऽच्चिया दढचरित्ता । परविसयं विहन्ता, परिभूया दुट्ठलोएणं ॥७१॥

फरुसाणि अणिट्ठाणि य, जं भणिया राग-दोस-मूढेणं । तं खमह अविणयं मे, जो तुम्ह पहू ! कओ तइया ॥७२॥

कविलं एव रुयन्तं, संथावइ राघवो महुरभासी । सीया वि सुसम्मं संभमेण परिनिव्वुई कुणइ ॥७३॥

कणयकलसेसु कविलो, किंकरपुरिसेहि पउमआणाए । साधम्मिओ त्ति काउं, कन्ताए समं तओ ण्हविओ ॥७४॥

भुञ्जाविओ विचित्तं, आहारं भूसिओ य रयणेहिं । दिन्नं च धणं बहुयं, ताहे गेहं गओ विप्पो ॥७५॥

आजम्मधणविहीणो, पत्तो जणविम्हयं महाभोगं । तह वि न करेइ धिइं, [1]सम्माणपराहयसरीरो ॥७६॥

पुव्वं विहडिय-पडियं, मज्झ घरं आसि विभवपरिहीणं । रामस्स पसाएणं, जायं धण-रयणपरिपुण्णं ॥७७॥

यद्यपि च स्वयं नरेन्द्रः परविषयगतो भवेदेकाकी । तथापि च परिभवस्थानं प्राप्नोति लोकस्थितिरेषा ॥६५॥

यस्यार्थस्तस्य सुखं यस्यार्थः पण्डितश्च स लोके । यस्यार्थः स गुरुकोऽर्थविहीनश्च लघुकस्तु ॥६६॥

तस्य महार्थश्च यशोधर्मोऽपि च तस्य भवति स्वाधीनः । धर्मोऽपि स समर्थो यस्याहिंसा समुद्दिष्य ॥६७॥

अथवा किं न श्रुतं त्वया ? सनत्कुमारः समस्तभरताधिपतिः । रुपस्य दर्शनार्थे यस्य सुरा आगताऽत्र ॥६८॥

संवेगजनितकारुण्यः प्रव्रज्यां गृहीत्वा परिभ्रमन् । भिक्षां चालभमानो विजयपुरं प्राप्तः क्रमशः ॥६९॥

प्रतिलाभितो महात्मा कदाचिद्दारिद्रसमभिभूतया । पतिताश्च रत्नवृष्टि र्गन्धोदकपुष्पवर्षा च ॥७०॥

एवंविधा अपि श्रमणाः सुर-नरमहितार्चिता दृढचारित्राः । परविषयं विहरन्तः परिभूता दुष्टलोकेन ॥७१॥

परुषाण्यनिष्टानि च यद्भणिता रागद्वेषमूढेन । तत्क्षमस्वाविनयं मम यस्तवप्रभो ! कृतस्तदा ॥७२॥

कपिलमेवं रुदन्तं संस्थापयति राघवो मधुरभाषी । सीताऽपि सुशर्मा ससंभ्रमेण परिनिवृत्तिं करोति ॥७३॥

कनककलशैः कपिलः किंकरपुरुषैः पद्माज्ञया । साधर्मिक इतिकृत्वा कान्तायाः समं ततः स्नापितः ॥७४॥

भोजितो विचित्रमाहारं भूषितश्च रत्नैः । दत्तं च धनं बहुकं तदा गृहं गतो विप्रः ॥७५॥

आजन्मधनविहीनः प्राप्त जनविस्मितं महाभोगम् । तथापि न करोति धृतिं सन्मानपराहतशरीरः ॥७६॥

पूर्वं विघटितपतितं मम गृहमासीद्विभवपरिहीणम् । रामस्य प्रसादेन जातं धनरत्नपरिपूर्णम् ॥७७॥

---

१. सम्माणसराहय-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हा ! कट्ठं सप्पुरिसा, जं मे [1]निब्भच्छिया अलज्जेणं । तं मे दहइ सरीरं, सल्लं च अवट्ठियं हियए ॥७८॥
अट्ठारस य सहस्सा, धेणूणं तं च गेहिणी[2] मोत्तुं । [3]नन्दजइस्स सयासे, कविलो दिक्खं समणुपत्तो ॥७९॥
बारसविहं तवं सो, कुणमाणो मारुओ व्व नीसङ्गो । विहरइ मुणी महप्पा, गामा-ऽऽगरमण्डिया वसुहंधा ॥८०॥

जो कविलस्स इमं तु पयत्थं, एक्कमणो निसुणेइ मणुस्सो ।
सो उववाससहस्सविहायं, भुञ्जइ दिव्वसुहं विमलङ्गो ॥८१॥

॥ इय पउमचरिए कविलोवक्खाणं नाम पञ्चतीसइमो उद्देसओ समत्तो ॥

हा ! कष्टं सत्पुरुषा यन्मया निर्भत्सिता अलज्जेन । तन्मे दहति शरीरं शल्यं चावस्थितं हृदये ॥७८॥
अष्टादश च सहस्राणि धेनूनां तां च गृहिणीं त्यक्त्वा । नन्दपतेः सकाशे कपिलो दीक्षां समनुप्राप्तः ॥७९॥
द्वादशविधं तपः स क्रियमाणो मरुदिव निसङ्गः । विहरति मुनि र्महात्मा ग्रामाऽऽकरमण्डितां वसुधाम् ॥८०॥
यः कपिलस्येदं तु पदार्थमेकमना निश्रुणोति मनुष्यः । स उपवाससहस्रविहिते भुनक्ति दिव्यसुखं विमलाङ्गः ॥८१॥

॥ इति पद्मचरित्रे कपिलोपाख्यानं नाम पञ्चत्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. निब्भत्थिया सकज्जेणं-प्रत्य० । २. गेहिणि-प्रत्य० । ३. नन्दवइस्स-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३६. वणमालापव्व

तत्तो कमेण ताणं, तत्थऽच्छन्ताण पाउसो कालो । [1]अहिलङ्घिओ सुहेणं, ताव य सरओ समणुपत्तो ॥१॥
भणइ तओ जक्खवई, पउमं पत्थाणववसिउच्छाहं । जो कोइ अविणओ मे, सो देव तुमे खमेयव्वो ॥२॥
एव भणिओ पवुत्तो, पउमो जक्खाहिवं महुरभासी । अम्हाण वि दुच्चरियं, खमाहि सव्वं निरवसेसं ॥३॥
अहिययरं परितुट्ठो, इमेहि वयणेहि रामदेवस्स । चलणेसु पणमिऊणं, हारं च सयंपभं देइ ॥४॥
मणिकुण्डलं च दिव्वं, देवो उवणेइ लच्छिनिलयस्स । सीयाए सुकल्लाणं तुट्ठो चूडामणिं देई ॥५॥
वीणा य इच्छियसरा, दाऊणं ताण उस्सुगमणेणं । मायाविणिम्मिया सा, अवहरिया तक्खणं नयरी ॥६॥
तत्तो विणिग्गया ते, वच्चन्ति फलासिणो जहिच्छाए । रण्णं वइक्कमेउं, विजयपुरं चेव संपत्ता ॥७॥
अत्थमिए दिवसयरे, जाए तमसाउले दिसायक्के । नयरस्स समब्भासे, अवट्ठिया उत्तरवरेणं ॥८॥
तम्मि पुरे नरवसभो, महीहरो नाम निग्गयपयावो । महिला से इन्दाणी, धूया वि य तस्स वणमाला ॥९॥
बालत्तणमाईए, सा कण्णा लक्खणाणुगुणरत्ता । दिज्जन्ती वि हु नेच्छइ, अन्नं पुरिसं सुरूवं पि ॥१०॥
पव्वइयम्मि दसरहे, विणिग्गए राम-लक्खणे सोउं । पुहईधरो विसण्णो, दुहियाए वरं विचिन्तेइ ॥११॥
मुणिओ य इन्दनयरे, नरिन्दवसहस्स बालमित्तस्स । पुत्तो सुन्दररूवो, निरूविया तस्स सा कन्ना ॥१२॥

---

३६. वनमालापर्वः

ततः क्रमेण तेषां तत्रासनानां प्रावृट् कालः । अधिलङ्घितः सुखेन तावच्च शरत् समनुप्राप्तः ॥१॥
भणति ततो यक्षपतिः पद्मं प्रस्थानव्यवसितोत्साहम् । यः कोऽप्यविनयो मे स देव त्वया क्षन्तव्यः॥२॥
एवं भणितः प्रोक्तः पद्मो यक्षाधिपं मधुरभाषी । अस्माकमपि दुश्चरितं क्षमस्व सर्वं निरवशेषम् ॥३॥
अधिकतरं परितुष्ट एभि र्वचनै रामदेवस्य । चरणयोः प्रणम्य हारं च स्वयंप्रभं ददाति ॥४॥
मणिकुण्डलं च दिव्यं देव उपनयति लक्ष्मीनिलयाय । सीतायै सुकल्याणं तुष्टश्चूडामणिं ददाति ॥५॥
वीणा चेच्छितस्वरा दत्वा तेषामुत्सुकमनसा । मायाविनिर्मिता साऽपहृता तत्क्षणं नगरी ॥६॥
ततो विनिर्गतास्ते व्रजन्ति फलाशिनो यथेच्छया । अरण्यं व्यतिक्रम्य विजयपुरमेव संप्राप्ताः ॥७॥
अस्तमिते दिवाकरे जाते तम आकुले दिक्चक्रे । नगरस्य समभ्यासेऽवस्थिता उत्तरवरेण ॥८॥
तस्मिन्पुरे नरवृषभो महीधरो नाम निर्गतप्रतापः । महिला तस्येन्द्राणी दुहिताऽपि च तस्य वनमाला ॥९॥
बालत्त्वादिना सा कन्या लक्ष्मणानुगुणरक्ता । दीयमानापि हु नेच्छत्यन्यं पुरुषं सुरुपमपि ॥१०॥
प्रव्रजिते दशरथे विनिर्गतयो रामलक्ष्मणयोः श्रुत्वा । पृथिवीधरो विषण्णो दुहितु र्वरं विचिन्तयति ॥११॥
मुणितश्चेन्द्रनगरे नरेन्द्रवृषभस्य बालमित्रस्य । पुत्र ! सुन्दररुपो निरुपिता तस्य सा कन्या ॥१२॥

---

१. अह लंघिओ-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं वित्तन्तं नाऊण, बालिया लक्खणं अणुसरन्ती । भणइ य मरणं पि वरं, न य मे कज्जं तु अन्नेणं ॥१३॥
अन्नस्स दिज्जमाणी, काऊणं मरणनिच्छयं हिययं । गन्तूण भणइ पियरं, करेमि वणदेवयापूयं ॥१४॥
अणुमन्निया य तेणं, [1]पोसहियानिग्गया सह जणेणं । रयणिसमयम्मि पत्ता, जत्थुद्देसं ठिया ते उ ॥१५॥
वणदेवयाए पूयं, काऊणं जणवए पसुत्तम्मि । सिबिराउ विणिग्गन्तुं, तं चिय वडपायवं पत्ता ॥१६॥
एक्कुद्देसम्मि ठिया, तम्मि य वडपायवे अइमहन्ते । लच्छीहरेण दिट्ठा, इमाणि वयणाणि जंपन्ती ॥१७॥
जा एत्थ तरुनिवासी, सुणेउ वणदेवया इमं वयणं । लच्छीहरस्स गन्तुं, कहेज्ज मह मरणसंबन्धं ॥१८॥
जह तुज्झ विओगेणं, वणमाला दुक्खिया अणन्नमणा । [2]उल्लम्बिऊण कण्ठं, कालगया रण्णमज्झम्मि ॥१९॥
भणिऊण वयणमेयं, वत्थमयं पासयं करिय कण्ठे । साहाए बन्धमाणी, गन्तुं सोमित्तिणा गहिया ॥२०॥
अवगूहिऊण जंपइ, अहयं सो लक्खणो विसालच्छी । समदिट्ठीयऽवलोयसु, अधिइं सोगं च मोत्तूणं ॥२१॥
सो लक्खणेण पासो, कण्ठाओ फेडिओ तुरन्तेणं । आसासिया य बाला, धणियं वयणामएणं तु ॥२२॥
सुन्दररूवेण तओ, मुणेइ सा लक्खणं सुविम्हइया । किं वणदेवीए इमो, तुट्ठाए कओ पसाओ मे ? ॥२३॥
तो लक्खणेण नीया, वणमाला राघवस्स पामूले । पणमइ कयञ्जलिउडा, सीयासहियं पउमनाहं ॥२४॥
दट्ठूण अप्पबीयं, विहसन्ती लक्खणं भणइ सीया । किं चन्देण समाणं, कुमार ! जणिओ य समवाओ ?. ॥२५॥
कह जाणसि वइदेही !, णिया रामेण जंपई सीया । चेट्ठाए नवरि सामिय ! अहयं जाणामि निसुणेहि ॥२६॥
जोण्हाए समं चन्दो, जम्मि य वेलाए उग्गओ गयणे । तव्वेलम्मिह पत्तो, सहिओ बालाए सोमित्ती ॥२७॥

तद्वृतान्तं ज्ञात्वा बालिका लक्ष्मणमनुस्मरन्ती । भणति च मरणमपि वरं न च मे कार्यं त्वन्येन ॥१३॥
अन्यस्य दीयमाना कृत्वा मरणनिश्चयं हृदयम् । गत्वा भणति पितरं करोमि वनदेवतापूजाम् ॥१४॥
अनुमता च तेन निगृहीता निर्गता सह जनेन । रजनी समये प्राप्ता यत्रोद्देशं स्थितास्ते तु ॥१५॥
वनदेवतायाः पूजां कृत्वा जनपदे प्रसुप्ते । शिबिराद्विनिर्गत्य तदेव वटपादपं प्राप्ता ॥१६॥
एकोद्देशे स्थिता तस्मिंश्च वटपादपेऽतिमहति । लक्ष्मीधरेण दृष्टेमानि वचनानि जल्पन्ती ॥१७॥
याऽत्र तरुनिवासिनी श्रृणोतु वनदेवतेदं वचनम् । लक्ष्मीधरस्य गत्वा कथय मम मरणसम्बन्धम् ॥१८॥
यथा तव वियोगेन वनमाला दुखिताऽनन्यमनाः । अवलम्ब्य कण्ठं कालगताऽरण्य मध्ये ॥१९॥
भणित्वा वचनमेतद्वस्त्रमयं पाशकं कृत्वा कण्ठे । शाखायां बध्नन्ती गत्वा सौमित्रिणा गृहीता ॥२०॥
अवगूह्य जल्पत्यहं स लक्ष्मणो विशालाक्षि ! । समदृष्ट्या प्रलोकयाधृतिं शोकं च मुक्त्वा ॥२१॥
स लक्ष्मणेन पाशः कण्ठात्स्फेटितस्त्वरमाणेन । आश्वसिता च बालाऽत्यन्तं वचनामृतेन तु ॥२२॥
सुन्दररूपेण ततो मुणति सा लक्ष्मणं सुविस्मिता । किं वनदेव्याऽयं तुष्टया कृतः प्रसादो मे ? ॥२३॥
तदा लक्ष्मणेन नीता वनमाला राघवस्य पादमूले । प्रणमति कृताञ्जलिपुटा सीतासहितं पद्मनाभम् ॥२४॥
दृष्ट्वाऽत्मद्वितीयं विहसन्ती लक्ष्मणं भणति सीता । किं चन्दनेन समानं कुमार ! जनितश्च समवायः ? ॥२५॥
कथं जानासि वैदेहि ! भविता रामेण जल्पति सीता । चेष्टया नवरि स्वामिन् ! अहं जानामि निश्रृणु ॥२६॥
ज्योत्स्नया समं चन्द्रो यस्मिंश्च वेलायामुद्गतो गगने । तद्वेलायामिह प्राप्तः सहितो बालया सौमित्रिः ॥२७॥

---

१. निग्गहिया निग्गया-प्रत्य० । २. उब्बन्धिऊण-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जह आणवेसि भद्दे !, एव इमं जंपिऊण सोमित्ती । वणमालासमहिओ, उवविट्ठो सन्निगासम्मि ॥२८॥
ते तत्थ समुल्लावं, वणमालासंसियं पकुव्वन्ता । अच्छन्ति सुरसरिच्छा, नग्गोहदुमस्स हेट्ठम्मि ॥२९॥
ताव य वणमालाए, सहीओ निद्दक्खए विउद्धाओ । दट्ठूण ताए सयणं, सुन्नं ताहे गवेसन्ति ॥३०॥
सद्देण ताण सुहडा, समुट्ठिया विविहपहरणविहत्था । पायालबलसमग्गा, ते वि गवेसन्ति वणमालं ॥३१॥
दिट्ठा य भमन्तेहिं, वणमाला राम-लक्खणा य तहिं । परिमुणियकारणेहिं, नरेहि सिट्ठा महिहरस्स ॥३२॥
दिट्ठा नरवइ विद्धी, तुह सामिय ! सयलबन्धुसहियस्स । इह लक्खणो य रामो, समागया पुरिसमीवम्मि ॥३३॥
सा तुज्झ सामि ! दुहिया, वणमाला अप्पयं विवायन्ती । रुद्धा य लक्खणेणं, सा वि तहिं अच्छई बाला ॥३४॥
सुणिऊण वयणमेयं, ताण धणं देइ नरवई तुट्ठो । चिन्तेइ य दुहियाए, जं इट्ठसमागमो जाओ ॥३५॥
सव्वाण वि जीवाणं, इह इट्ठसमागमो सुहावेइ । जो पुण हवेज्ज सहसा, सो सुरलोगं विसेसेइ ॥३६॥
एवं महीहरनिवो, भज्जाए परिजणेण समसहिओ । गन्तूण रामदेवं, अवगूहइ लक्खणसमग्गं ॥३७॥
सीया य समालत्ता, कुसलं परिपुच्छिया सरीराइ । तत्थेव ण्हाण-भोयण-आभरणविही कया ताणं ॥३८॥
पडुपडह-तूरसद्दो, महूसवो कारिओ नरवईणं । नच्चन्तवरविलासिणि-जणेण बहुमङ्गलाडोवो ॥३९॥
कुङ्कुमकयङ्गरागा, सीयासहिया रहेसु आरूढा । नयरं महीहरेणं, पवेसिया जण-धणाइण्णं ॥४०॥
ते तम्मि य विजयपुरे, भुञ्जन्ता उत्तमं विसयसोक्खं । अच्छन्ति जहिच्छाए, दसरहपुत्ता गुणमहन्ता ॥४१॥
एवं तु पुण्णेण समज्जिएणं, अन्नन्नदेसेसु वि संचरन्ता । पावन्ति सम्माण परं मणुस्सा, तम्हा खु धम्मं विमलं करेह ॥४२॥

॥ इय पउमचरिए वणमालानामं छत्तीसइमं पव्वं समत्तं ॥

यथाऽऽज्ञापयसि भद्रे ! एवमिदं जल्पित्वा सौमित्रिः । वनमालासमसहित उपविष्टः सन्निकर्षे ॥२८॥
ते तत्र समुल्लापं वनमालाशंसित प्रकुर्वन्तः । आसते सुरसदृशा न्यग्रोधद्रुमस्याधस्तात् ॥२९॥
तावच्च वनमालायाः सखायो निद्राक्षये विबुद्धाः । दृष्ट्वा तस्याः शयनं शून्यं तदा गवेषयन्ति ॥३०॥
शब्देन तेषां सुभटाः समुत्थिता विविधप्रहरणविहस्ताः । पातालबलसमग्रास्तेऽपि गवेषयन्ति वनमालाम् ॥३१॥
दृष्टाश्च भ्रमद्भिर्वनमाला राम-लक्ष्मणौ च तत्र । परिमुणितकारणै नरैः शिष्टौ महीधरस्य ॥३२॥
दृष्टौ नरपते ! वृद्धिस्तव स्वामिन् ! सकलत्रबन्धुसहितस्य । इह लक्ष्मणश्च रामः समागतौ पुरिसमीपे ॥३३॥
सा तव स्वामिन् ! दुहिता वनमालाऽऽत्मानं व्यापादयन्ती । रुद्धा च लक्ष्मणेन सापि तत्रास्ते बाला ॥३४॥
श्रुत्वा वचनमेतत्तेभ्यो धनं ददाति नरपतिस्तुष्टः । चिन्तयति च दुहितु र्यदिष्टसमागमो जातः ॥३५॥
सर्वेषामपि जीवानामिहेष्टसमागमः सुखायति । यः पुन र्भवेत्सहसा स सुरलोकं विशेषयति ॥३६॥
एवं महीधरनृपो भार्यया परिजनेन समसहितः । गत्वा रामदेवअवगूहति लक्ष्मणसमग्रम् ॥३७॥
सीता च समालप्ता कुशलं परिपृष्टा शरीरादि । तत्रैव स्नान-भोजनाभरणविधिः कृतस्तेषाम् ॥३८॥
पटुपटहतूर्यशब्दो महोत्सवः कारितो नरपतिना । नृत्यद्वरविलासिनि-जनेन बहुमङ्गलाटोपः ॥३९॥
कुङ्कुमकृताङ्गरागौ सीतासहितौ रथमारुढौ । नगरं महीधरेण प्रवेशितौ जनधनाकीर्णम् ॥४०॥
तौ तस्मिन्विजयपुरे भुञ्जन्तावुत्तमं विषयसुखम् । आसाते यथेच्छया दशरथपुत्रौ गुणमहन्तौ ॥४१॥
एवं तु पुण्येन समर्जितेनान्योन्यदेशेष्वपि संचरन्तः । प्राप्नुवन्ति सन्मानं परं मनुष्यास्तस्मात्खलु धर्मं विमलं कुरुत ॥४२॥

॥ इति पद्मचरित्रे वनमालानाम षष्टिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३७. अइवीरियनिक्खमणपव्वं

अह अन्नया सहाए, राहव-लच्छीहराण पच्चक्खं। तुरियं च लेहवाहो, समागओ महिहरं नमइ ॥१॥
लेहं समप्पिऊणं, सो चेव य आसणे सुहनिविट्ठो। नरवइदिन्नाएसो, वायइ सेणावई लेहं ॥२॥
अत्थि सिरीअइविरिओ, नन्दावत्ते पुरे महाराया। पणउत्तमङ्गनरवइ-मउडतडोहट्ठचलणजुओ ॥३॥
भरहेण सह विरोहो, महीहरं आणवेइ विजयपुरे। अइविरियमहाराया, कुसलेणाऽऽभासणं कुणइ ॥४॥
जे केइह सामन्ता, सव्वे वि समागया मह समीवं। चउरङ्गबलसमग्गा, वट्टन्ति अणारिया य वसे ॥५॥
अञ्जणगिरिसरिसाणं, मत्ताण गयाण अट्ठहि सएहिं। तिहि तुरयसहस्सेहिं, समागओ विजयसद्दूलो ॥६॥
कलहे केसरिसहिओ, महाधओ तह रणम्मिमाईया। अङ्गाहिवइनरिन्दो, सएहि छहि मत्तहत्थीणं ॥७॥
तुरयाण सहस्सेहिं, सत्तहि एए लहुं समणुपत्ता। पञ्चालवई पत्थो, समागओ करिसहस्सेणं ॥८॥
पुण्डपुरसामिओ वि य, समागओ साहणेणं बहुएणं। पत्तो य मगहराया, अट्ठहिं दन्तीसहस्सेहिं ॥९॥
वज्जहरो य सुकेसो, मुणिभद्दो तह सुभद्दनामो य। नन्दणमाई, एए, जउणाहिवई समणुपत्ता ॥१०॥
अणिवारियविरिओ वि य, केसरिविरिओ य सीहरहमाई। एए साहणसहिया, समागया नियमाउलगा ॥११॥

---

३७. अतिवीर्य निष्क्रमणपर्वम्

अथान्यदा सभायां राघवलक्ष्मीधरयोः प्रत्यक्षम्। त्वरितं च लेखवाहः समागतो महीधरं नमति ॥१॥
लेखं समर्प्य स एव चासने सुखनिविष्टः। नरपतिदत्तादेशो वाचयति सेनापति र्लेखम् ॥२॥
अस्ति श्रीअतिवीर्यो नन्दावर्त्ते पुरे महाराजा। प्रणतोत्तमाङ्गनरपतिमुकुटतटावधृष्टचरणयुगः ॥३॥
भरतेन सह विरोधो महीधरमाज्ञापयति विजयपुरे। अतिवीर्यमहाराजः कुशलेनाभाषणं करोति ॥४॥
ये केऽपि सामन्ताः सर्वेऽपि समागता मम समीपम्। चतुरङ्गबलसमग्रा वर्तन्तेऽनार्याश्च वशे ॥५॥
अञ्जनगिरिसदृशानां मत्तानां गजानामष्टाभिः शतैः। त्रिभि स्तुरगसहस्रैः समागतो विजयशार्दुलः ॥६॥
कलभः केसरिसहितो महाधनस्तथा रणे आगतः। अङ्गाधिपतिनरेन्द्रः शतैः षड्भिर्मत्तहस्तीनाम् ॥७॥
तुरगाणां सहस्रैः सप्तभिरेते लघुं समनुप्राप्ताः। पञ्चालपतिः प्रस्थः समागतः करिसहस्रेण ॥८॥
पुण्डपुरस्वाम्यपि च समागतः साधनेन बहुना। प्राप्तश्च मगधराजा अष्टाभिर्दन्तिसहस्रैः ॥९॥
वज्रधरश्च सुकेशो मुनिभद्रस्तथा सुभद्रनामा च। नन्दनादय एते यमुनाधिपतयः समनुप्राप्ताः ॥१०॥
अनिवारितवीर्योऽपि च केसरिवीर्यश्च सिंहरथादयः। एते साधनसहिताः समागता निजमातुलाः ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वसुसामि मारिदत्तो, अम्बट्ठो पोट्टिलो य सोवीरो । मन्दरमाई एए, समागया तिव्वबलसहिया ॥१२॥
एए अन्ने य बहू, दससु य अक्खोहिणीसु परिपुण्णा । सिग्घं च समणुपत्ता, तियसा विय भोगदुल्ललिया ॥१३॥
एएसु [1]परिमिओ हं, भरहं इच्छामि रणमुहे जेउं । महिहर ! लेहदरिसणे, आगन्तव्वं तए सिग्घं ॥१४॥
परिवाइयम्मि लेहे, जाव च्चिय महिहरो न उल्लवइ । ताव च्चिय तं पुरिसं, वयणमिणं लक्खणो भणइ ॥१५॥
अइविरियस्स किमत्थं, भरहस्स य जेण विग्गहो जाओ । एयं साहेहि फुडं, भद्द ! महं कोउगं परमं ॥१६॥
एवं च भणियमेत्ते, वाउगई साहिउं अह पवत्तो । मह सामिएण दूओ, विसज्जिओ भरहरायस्स ॥१७॥
अह सो सुबुद्धिनामो, भरहं गन्तूण भणइ वयणाइं । अइविरिएण सुणिज्जउ, दूओ हं पेसिओ तुज्झ ॥१८॥
सो आणवेइ देवो, भरह ! तुमं मज्झ कुणसु भिच्चत्तं । अहवा पुरिं अओज्झं, मोत्तूणं वच्चसु विदेसं ॥१९॥
सुणिऊण वयणेयं, सत्तुग्घो रोसपूरियामरिसो । अह उट्ठिओ तुरन्तो, जंपन्तो फरुसवयणाइं ॥२०॥
न य तस्स भरहसामी, कुणई भिच्चत्तणं कुपुरिसस्स । किं केसरि भयभीओ, वच्चइ पासं सियालस्स ? ॥२१॥
अहवा तस्साऽऽसन्नं, मरणं जेणेरिसाइं भासेइ । पित्तजरेण व गहिओ, अणप्पवसगो दुवं जाओ ॥२२॥
दूएण वि पडिभणिओ, किं गज्जसि एत्थ अत्तणो गेहे ? । जाव च्चिय अइविरियं, न पेच्छसी रणमुहे रुट्ठं ॥२३॥
एवं च भणियमेत्ते, घेत्तुं चलणेसु कड्ढिओ दूओ । सुहडेसु नयरमज्झे, नीओ च्चिय हम्ममाणो सो ॥२४॥

वसुस्वामी मारिदत्तो ऽम्बष्टः पोट्टिलश्च सौवीरः । मन्दरादय एते समागतास्तीव्रबलसहिताः ॥१२॥
एतेऽन्ये च बहवो दशभिश्चाक्षौहिणिभिः परिपूर्णाः । शीघ्रं च समनुप्राप्तास्त्रिदशा इव भोगदुर्ललिताः ॥१३॥
एतैः परिमितोऽहं भरतमिच्छामि रणमुखे जेतुम् । महीधर ! लेखदर्शन आगन्तव्यं त्वया शीघ्रम् ॥१४॥
परिवाचिते लेखे यावदेव महीधरो नोल्लपति । तावदेव तं पुरुषं वचनमिदं लक्ष्मणो भणति ॥१५॥
अतिवीर्यस्य किमर्थं भरतस्य च येन विग्रहो जातः । एतत्कथय स्फुटं भद्र ! मम कौतुकं परमम् ॥१६॥
एवं च भणितमात्रे वायुगतिः कथयितुमथ प्रवृत्तः । मम स्वामिना दूतो विसर्जितो भरतराज्ञः ॥१७॥
अथ स सुबुद्धिनामा भरतं गत्वा भणति वचनानि । अतिवीर्येण श्रुणोतु दूतोऽहं प्रेषितस्तव ॥१८॥
स आज्ञापयति देवो भरत ! त्वं मम कुरु भृत्यत्वम् । अथवा पुरिमयोध्यां मुक्त्वा व्रज विदेशम् ॥१९॥
श्रुत्वा वचनमेतत्शत्रुघ्नो रोषपूरितामर्षः । अथोत्थितस्त्वरमाणोजल्पन्परुषवचनानि ॥२०॥
न च तस्य भरतस्वामी करोति भृत्यत्वं कुपुरुषस्य । किं केसरि भयभीतो व्रजति पार्श्वे शृगालस्य ? ॥२१॥
अथवा तस्यासन्नं मरणं येनेदृशानि भाषते । पित्तज्वरेण वा गृहीतोऽनात्मवशको ध्रुवं जातः ॥२२॥
दूतेनापि प्रतिभणितः किं गर्जस्यत्रात्मनो गृहे ? । यावदेवातिवीर्यं न पश्यसि रणमुखे रुष्टम् ॥२३॥
एवं च भणितमात्रे गृहीत्वा चरणयोः कृष्टो दूतः । सुभटैर्नगरमध्ये नीत एव हन्यमानः सः ॥२४॥

---

१. परिमिओ परिवृत्त इत्यर्थः ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सो तेहि विमाणेउं, मुक्को रयरेणुधूलियसरीरो । गन्तूण सव्वमेयं, कहेइ नियगस्स सामिस्स ॥२५॥

महया बलेण भरहो, विणिग्गओ तक्खणं पुरिवरीओ ।
अइविरियस्स अभिमुहो, [1]रणरसकण्डुं च वहमाणो ॥२६॥

सोऊण मिहिलसामी, कणगो सह साहणेण संपत्तो । सीहोयरमाईया, सुहडा भरहं समल्लीणा ॥२७॥

अहविरिओ वि नरिन्दो, दूएण विमाणिएण आरुट्ठो । भरहस्स सवडहुत्तो, विणिग्गओ निययनयराओ ॥२८॥

आगच्छामि लहुं चिय, एत्तो लेहारियं विसज्जेउं । सो महिहरो नरिन्दो, भणिओ रामेण एगन्ते ॥२९॥

भरहस्स जं सकज्जं, तं चिय अम्हाण साहणीयं तु । पच्छन्नएहि गन्तुं, अहविरिओ चेव हन्तव्वो ॥३०॥

अच्छ सुहं वीसत्थो, महिहर ! पुत्तेहि तुज्झ सहिओ हं । वच्चामि तस्स पासं, तेण वि अणुमन्निओ रामो ॥३१॥

एव भणिऊण तो सो, आरूढो रहवरं सह पियाए । महिहरसुएहि समयं, वच्चइ तो लक्खणसमग्गो ॥३२॥

नन्दावत्तपुरं ते, महिहरपुत्ता गया सह बलेणं । आवासिया य एत्तो, पउमो वि तहिं सुहासीणो ॥३॥

तिण्हं पि समुल्लावो, अइविरियपराजए निसासमए । तो भणइ जणयतणया, राघव ! वयणं निसामेहि ॥३४॥

अइविरिओ वि हु सुव्वइ, बहुसुहडसहस्सजणियपरिवारो । किह तं जिणेइ भरहो, थेवेण बलेण संगामे ? ॥३५॥

चिन्तेहि तं उवायं, अइविरिओ जेण जिप्पई पावो । एवं च परिगणेउं, अदीहसुत्तं कुणह कज्जं ॥३६॥

तो भणइ लच्छिनिलओ, किं दीणं एव जंपसे भद्दे ! । पायं तु अप्पविरियं, विणिज्जियं पेच्छसू अचिरा ॥३७॥

स तैर्विमन्य मुक्तो रजोरेणुधूलितशरीरः । गत्वा सर्वमेतत्कथयति निजस्य स्वामिनः ॥२५॥

महता बलेन भरतो विनिर्गतस्तत्क्षणं पुरवरात् । अतिवीर्यस्याभिमुखो रणरसकण्डुं च वहन् ॥२६॥

श्रुत्वा मिथिलास्वामी कनकः सहसाधनेन संप्राप्तः । सिंहोदरादयः सुभटा भरतं समालीनाः ॥२७॥

अतिवीर्योऽपि नरेन्द्रो दूतेन विमानितेनारुष्टः । भरतस्याभिमुखो विनिर्गतो निजनगरात् ॥२८॥

आगच्छामि लघ्वेवेतो लेखहारिकं विसर्ज्य । स महीधरो नरेन्द्रो भणितो रामेणेकान्ते ॥२९॥

भरतस्य यत्स्वकार्यं तदेवास्माभिः साधनीयं तु । प्रच्छन्नैर्गत्वातिवीर्य एव हन्तव्यः ॥३०॥

आस्स्व सुखं विश्वस्तो महीधर ! पुत्रैस्तव सहितोऽहम् । व्रजामि तस्य पार्श्वं तेनाप्यनुमतो रामः ॥३१॥

एवं भणित्वा तदा स आरुढो रथवरं सह प्रियया । महीधरसुतैः समकं व्रजति ततो लक्ष्मणसमग्रः ॥३२॥

नन्दावर्तपुरं ते महीधरपुत्रा गताः सहबलेन । आवासिताश्चेतः पद्मोऽपि तत्र सुखासीनः ॥३३॥

तिसृणामपि समुल्लापोऽतिवीर्यपराजये निशासमये । तदा भणति जनकतनया राघव ! वचनं निश्रुणु ॥३४॥

अतिवीर्योऽपि खलु श्रूयते बहुसुभटसहस्रजनितपरिवारः । कथं तं जीयाद्भरतः स्तोकेन बलेन संग्रामे ? ॥३५॥

चिन्तयत तदुपायमतिवीर्यो येन जीयते पापः । एवं च परिगण्यादीर्घसूत्रं कुरुत कार्यम् ॥३६॥

तदा भणति लक्ष्मीनिलयः किं दीनमेव जल्पसि भद्रे ! । प्रायस्त्वचाल्पवीर्यं विनिर्जितं पश्यस्यचिरात् ॥३७॥

---

१. रवणकण्डुं चेव वहमाणो-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भणइ पउमनाहो, लक्खण ! निसुणेहि रणमुहे भरहो ।
अइविरिएण जइ जिओ, तो अम्हं किं व जीएणं ? ।।३८।।

अन्नं पि सुणसु लक्खण !, सत्तुग्घेणं तु जं कयं कज्जं । दाऊण य उक्खन्दं, सिबिराओ साहणं हरइ ।।३९।।
सहसा निसासु गन्तुं, समयंचिय रुद्दभूइणा सिबिरं । हयविहयविप्परद्धं, काऊण भडे विगयजीए ।।४०।।
चउसट्ठिसहस्साइं, तुरयाणं गयवराण सत्तसया । भुयबलविणिज्जिया ते, नीया भरहस्स पासम्मि ।।४१।।
एवं कयसामत्था, रयणी गमिऊण तत्थ पडिबुद्धा । गन्तूण जिणहरं ते पयओ वन्दन्ति परितुट्ठा ।।४२।।
जाव जिणवन्दणं ते, कुणन्ति तावाऽऽगया भवणपाली । दिट्ठा असिवरहत्था, देवी दिव्वेण रूवेणं ।।४३।।
सा भणइ तुज्झ राघव ! अइविरियं तक्खणे वसे काउं । करयलकयञ्जलिउडं, सिग्घं चलणेसु पाडेमि ।।४४।।
तो देवयाए एत्तो, सिग्घं पुरिसाण मिहिलियारूवं । लक्खणसहियाण कयं, सुरवहुसरिसं मणभिरामं ।।४५।।
पुणरवि नमिऊण जिणं, रामो तं नट्टियाजणं घेत्तुं । पच्छन्नदेहधारी, रायहरं पत्थिओ सहसा ।।४६।।
दिट्ठो सभाए राया, आढत्ता नच्चिउं ठिया समुहा । तग्गयमणेण एत्तो, दिट्ठा लोगेण अइरूवा ।।४७।।
गन्धव्वं तु पगीयं, महुरं सत्तसरगमयसंजुत्तं । बहुविहवियप्पकुहरं हरइ मणं मुणिवराणं पि ।।४८।।
अह नच्चिउं पवत्ता, एत्तो सा नट्टिया ललियरूवा । रत्तुप्पलबलियम्मं व देइ चलणेसु वियरन्ती ।।४९।।
नयणकडक्खुक्खेवण-लीलापवियम्भमाणकर-चरणा । इसिहसियथणुक्कम्पण-भमुहासंचार[1]रसभावा ।।५०।।

अथ भणति पद्मनाभो लक्ष्मण ! निश्रुणु रणमुखे भरतः । अतिवीर्येण यदि जितस्तदास्माकं किं वा जीवितेन ? ।।३८।।
अन्यदपि श्रुणु लक्ष्मण ! शत्रुघ्नेन तु यत्कृतं कार्यम् । दत्वा चावस्कन्दं शिबिरात्साधनं हरति ।।३९।।
सहसा निशासु गत्वा समकमेव रुद्रभूतिना शिबिरम् । हतविहतविपीडितं कृत्वा भटान्विगतजीवान् ।।४०।।
चतुष्षष्टिसहस्राणि तुरगाणां गजवराणां सप्तशताः । भुजबलविनिर्जितास्ते नीता भरतस्य पार्श्वे ।।४१।।
एवं कृतसामर्थ्या रजनीं गमयित्वा तत्र प्रतिबुद्धाः । गत्वा जिनगृहं ते प्रयतो वन्दन्ते परितुष्टाः ।।४२।।
यावज्जिनवन्दनं ते कुर्वन्ति तावदागता भवनपालिनी । दृष्ट्याऽसिवरहस्ता देवी दिव्येन रुपेण ।।४३।।
सा भणति तव राघव ! अतिवीर्यं तत्क्षणे वशे कृत्वा । करतलकृताञ्जलिपुटं शीघ्रं चरणयोः पातयामि ।।४४।।
तदा देवतयेतः शीघ्रं पुरुषाणां महिलारुपम् । लक्ष्मणसहितानां कृतं सुरवधुसदृशं मनोभिरामम् ।।४५।।
पुनरपि नत्वा जिनं रामस्तं नर्तकीजनं गृहीत्वा । प्रच्छन्नदेहधारी राजगृहं प्रस्थितः सहसा ।।४६।।
दृष्टः सभायां राजाऽऽरब्धा नर्तितुं स्थिता सन्मुखा । तद्गतमनसेतः दृष्टा लोकेनातिरुपाः ।।४७।।
गान्धर्वं तु प्रगीतं मधुरं सप्तस्वरगमकसंयुक्तम् । बहुविधविकल्पकुहरं, हरति मनो मुनिवराणामपि ।।४८।।
अथ नर्तितुं प्रवृत्तेतः सा नर्तिका ललितरुपा । रक्तोत्पलबलिकर्मेव ददाति चरणयो विचरन्ती ।।४९।।
नयनकटाक्षोत्क्षेपणलीलाप्रविजृम्भमानकरचरणा । इषद्धसितस्तनकम्पनभ्रमरसंचाररसभावाः ।।५०।।

---

१. संचारसब्भावा-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिभमइ जत्थ जत्थ य, नच्चन्ती नट्टिया मणभिरामा । कुणइ जणो एगमणो, दिट्ठिं तत्थेव तत्थेव ॥५१॥

गायइ उसभाईणं, जिणाण चरियाइं तिण्णसङ्गाणं । परिओसिओ य लोगो, सव्वो वि य नरवईण समं ॥५२॥

तो नट्टिया पवुत्ता, अइविरिय किं तुमे समाढत्तं । भरहेण सह विरोहो, अकित्तिकरणो य लोगम्मि ? ॥५३॥

एवं गए वि विणयं, भरहस्स तुमं करेहि गन्तूणं । भिच्चत्तणं च ववससु, जइ इच्छसि अत्तणो जीयं ॥५४॥

सुणिऊण नट्टियाए, इमाणि वयणाणि नरवई रुट्ठो । खुहिया य सुहडपुरिसा, वेला इव लवणतोयस्स ॥५५॥

जाव च्चिय अइविरिओ, आयड्ढइ असिवरं वहत्थाए । तो नट्टियाए गहिओ, खग्गं हरिऊण केसेसु ॥५६॥

नीलुप्पलसंकासं, खग्गं सा नट्टिया समुग्गिरिउं । जंपइ जो मह पुरओ, ठाई सो होइ हन्तव्वो ॥५७॥

सो नट्टियाएँ भणिओ, जइ पणमसि भरहसामियं गन्तुं । तो होही जीयं ते, न पुणो अन्नेण भेएणं ॥५८॥

हाहाकारमुहरवो, लोगो भयविहलवेविरसरीरो । भणइ महच्छेरमिणं, चारणकन्नाए ववहरियं ॥५९॥

तो करिवरं विलग्गो, अइविरियं गेण्हिउं पउमणाहो । गन्तूण चेइयहरं, तत्थोइण्णो कुणइ पूयं ॥६०॥

सीयाए समं रामो, थोऊण जिणं विसुद्धभावेणं । वरधम्मं आयरियं, पणमइ य पुणो पयत्तेणं ॥६१॥

तं लक्खणकरगहियं, अइविरियं पेच्छिऊण जणयसुया । भणइ य मेल्लेहि लहुं, एस ठिई होइ सुहडाणं ॥६२॥

जे सव्वभूयसरणा, साहू तव-नियम-संजमाभिरया ।
ताण वि खलो खलायइ, का सण्णा पत्थिवजणेणं ? ॥६३॥

परिभ्रमति यत्र यत्र च नृत्यन्ती नर्तिका मनोभिरामा । करोति जन एकाग्रमना दृष्टिं तत्रैव तत्रैव ॥५१॥

गायति ऋषभादीनां जिनानां चरित्राणि तीर्णसङ्गानाम् । परितोषितश्च लोकः सर्वोऽपि च नरपतिना समम् ॥५२॥

तदा नर्तिका प्रोक्ताऽतिवीर्य किं त्वया समारब्धम् । भरतेन सह विरोधोऽकीर्तिकरणश्च लोके ? ॥५३॥

एवं गतेऽपि विनयं भरतस्य त्वं कुरु गत्वा । भृत्यत्वं च व्यवसय यदीच्छस्यात्मनो जीवितम् ॥५४॥

श्रुत्वा नर्तिकाया इमानि वचनानि नरपती रुष्टः । क्षुब्धाश्च सुभटपुरुषा वेला इव लवणतोयस्य ॥५५॥

यावदेवातिवीर्य आकर्षत्यसिवरं वधार्थे । तदा नर्तिकया गृहीतः खड्गं हृत्वा केशैः ॥५६॥

नीलोत्पलसंकाशं खड्गं सा नर्तिका समुद्गीर्य । जल्पति यो मम पुरतः स्थास्यति स भवति हन्तव्यः ॥५७॥

स नर्तिकया भणितो यदि प्रणमसि भवतस्वामिनं गत्वा । तदाभविष्यति जीवितम् ते न पुनरन्येन भेदेन ॥५८॥

हाहाकारमुखरवो लोको भयविह्वलवेपितशरीरः । भणति महाश्चर्यमिदं चारणकन्यया व्यवहृतम् ॥५९॥

ततः करिवरं विलग्नोऽतिवीर्यं गृहीत्वा पद्मनाभः । गत्वा चैत्यगृहं तत्रावतीर्णः करोति पूजाम् ॥६०॥

सीतायाः समं रामः स्तुत्वा जिनं विशुद्धभावेन । वरधर्ममाचरितं प्रणमति च पुनः प्रयत्नेन ॥६१॥

तं लक्ष्मणकरगृहीतमतिवीर्यं प्रेक्ष्य जनकसुता । भणति च मुञ्च लघ्वेषा स्थिति र्भवति सुभटानाम् ॥६२॥

ये सर्वभूतशरणाः साधवस्तपोनियमसंयमाभिरताः । तेषामपि खलः खलायति का संज्ञा पार्थिवजनेन ? ॥६३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एवभणिए विमुक्को, अइविरिओ लक्खणेण कयसमओ । भरहस्स होहि भिच्चो, गच्छ तुमं कोसला[१] नयरी ॥६४॥

एवं विमुक्क सन्तो, अइविरिओ राघवं पणमिऊणं । संवेगसमावन्नो, पडिबुद्धो तक्खणं चेव ॥६५॥

पउमेण तओ भणिओ, मा गेण्हसु[२] एस दुक्करा चरिया । भरहस्स वसे होउं, भुञ्जसु य तुमं महाभोगे ॥६६॥

अइविरिएण वि य भणिओ, दिट्ठो रज्जस्स अज्ज परमत्थो । संसारभउव्विग्गो, गेण्हामिह देव ! पव्वज्जं ॥६७॥

रज्जे विजयरहं सो, पुत्तं ठविऊण विगयसुयनेहो । आयरियपायमूले, अइविरिओ गेण्हई दिक्खं ॥६८॥

कुणइ तवं नीसङ्गो, जत्थऽत्थमिओ जिइन्दिओ धीरो । विहरइ वसुंधरं सो, सीहो इव निब्भओ समणो ॥६९॥

चारित्त-नाण-तव-संजम-सीलजुत्तो, छट्ठऽट्ठमेसु नियय परिखीणदेहो ।
रण्णे गुहासु वसहिं च करेइ धीरो, एवंगुणो विमलनाणधरो तिविज्जो ॥७०॥

॥ इय पउमचरिए अइविरियनिक्खमणं नाम सत्ततीसइमं पव्वं समत्तं ॥

एवं भणिते विमुक्तोऽतिवीर्यो लक्ष्मणेन कृतसमयः । भरतस्य भव भृत्यो गच्छ त्वं कोशलां नगरीम् ॥६४॥

एवं विमुक्तः सन्नतिवीर्यो राघवं प्रणम्य । संवेगसमापन्नः प्रतिबुद्धस्तत्क्षणमेव ॥६५॥

पद्मेन ततो भणितो मा गृहाणैषा दुष्करा चर्या । भरतस्य वशे भूत्वा भुङ्ग्धि च त्वं महाभोगान् ॥६६॥

अतिवीर्येणा च भणितो दृष्टो राज्यस्याद्य परमार्थः । संसारभयोद्विग्नो गृह्णामीह देव ! प्रव्रज्याम् ॥६७॥

राज्ये विजयरथं स पुत्रं स्थापयित्वा विगतसुतस्नेहः । आचार्यपादमूलेऽतिवीर्यो गृह्णाति दीक्षाम् ॥६८॥

करोति तपो निसङ्गो यत्राऽस्तमितो जितेन्द्रियो धीरः । विहरति वसुंधरां स सिंह इव निर्भयः श्रमणः ॥६९॥

चारित्रज्ञानतपःसंयमशीलयुक्तः षष्ठाष्टमै नित्यं परिक्षीणदेहः ।
अरण्ये गुहासु वसतिं च करोति धीर एवंगुणो विमलज्ञानधरोऽतिवीर्यः ॥७०॥

॥ इति पद्मचरित्रेऽतिवीर्यनिष्क्रमणं नाम सप्तत्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. नयरिं-प्रत्य । २. गेण्हसु दुक्करं जईचरियं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३८. जियपउमावक्खाणं

अह एत्तो विजयरहो, [1]रइमाला नाम अत्तणो [2]बहिणी । सुरवहुसमाणरूवा[3], देइ च्चिय लच्छिनिलयस्स ॥१॥
तं इच्छिऊण कंता, विणिग्गया दो वि सीयसंजुत्ता । संपत्ता विजयपुरं, चिट्ठन्ति तहिं जहिच्छाए ॥२॥
अइविरियं पव्वइयं, सोऊणं नट्टियानिमित्तं च । सत्तुग्घयं हसन्तं, भरहो वारेइ मइकुसलो ॥३॥
धन्नो सो अइविरिओ, मा हससु कुमार ! मूढभावेणं । मोत्तूण विसयसुक्खं, जो जिणदिक्खं समणुपत्तो ॥४॥
जाव च्चिय एस कहा, वट्टइ तावाऽऽगओ सह बलेणं । पविसइ नरिन्दभवणं, विजयरहो पेच्छई भरहं ॥५॥
काऊण सिरपणामं, उवविट्ठो तस्स पायमूलम्मि । सम्माणलद्धपसरो, विजयरहो पत्थिवं भणइ ॥६॥
रइमालाए कणिट्ठा, नामेणं विजयसुन्दरी कन्ना । सा तुज्झ मए दिन्ना, कुणसु अविग्घेण कल्लाणं ॥७॥
तीए पाणिग्गहणं, भरहो काऊण परमरिद्धीए । अइविरियस्स सयासं, वच्चइ तुरएसु वेगेणं ॥८॥
संपत्तो नरवसभो, पेच्छइ गिरिकन्दरे समणसीहं । समसत्तु-बन्धुहियय, समसुह-दुक्खं भयविमुक्कं ॥९॥
पाएसु तस्स पडिओ, भरहो सामन्त-जणवयसमेओ । थोवन्तरे निविट्ठो, तस्स गुणुक्कित्तणं कुणइ ॥१०॥
नाह ! तुमं अइविरिओ, एक्को च्चिय एत्थ तिहुयणे सयले । जो निययरायरिद्धिं, अवहत्थेऊण पव्वइओ ॥११॥

३८. जितपद्माख्यानम्

अथेतो विजयरथो रतिमालां नामात्मनो भगिनीम् । सुरवधुसमानरूपां ददात्येव लक्ष्मीनिलायाय ॥१॥
तामिष्ट्वा कान्तां विनिर्गतौ द्वावपि सीतासंयुक्तौ । संप्राप्तौ विजयपुरं तिष्ठतस्तत्र यथेच्छया ॥२॥
अतिवीर्यं प्रव्रजितं श्रुत्वा नर्तिका निमित्तं च । शत्रुघ्नं हसन्तं भरतो वारयति मतिकुशलः ॥३॥
धन्यः सोऽतिवीर्यो मा हस कुमार ! मूढभावेन । मुक्त्वा विषयसुखं यो जिनदीक्षां समनुप्राप्तः ॥४॥
यानदेवैषा कथा वर्तते तावदागतः सह बलेन । प्रविशति नरेन्द्रभवनं विजयरथः पश्यति भरतम् ॥५॥
कृत्वा शिरः प्रणाममुपविष्टस्तस्य पादमूले । सन्मानलब्धप्रसरो विजयरथः पार्थिवं भणति ॥६॥
रतिमालया कनिष्ठा नाम्ना विजयसुन्दरीकन्या । सा तुभ्यं मया दत्ता कुर्वविघ्नेन कल्याणम् ॥७॥
तस्याः पाणिग्रहणं भरतः कृत्वा परमर्द्धया । अतिवीर्यस्य सकाशं गच्छति तुरगै र्वेगेन ॥८॥
संप्राप्तो नरवृषभः पश्यति गिरिकन्दरायां श्रमणसिंहम् । समशत्रुबन्धुहृदयं समसुखदुःखं भयविमुक्तम् ॥९॥
पादयोस्तस्य पतितो भरतः सामन्तजनपदसमेतः । स्तोकान्तरे निविष्टस्तस्य गुणकीर्तनं करोति ॥१०॥
नाथ ! त्वमतिवीर्य एकैवात्र त्रिभुवने सकले । यो निजराजर्द्धिमपहस्त्य प्रव्रजितः ॥११॥

१. रइमालं-प्रत्य० । २. बहिणिं-प्रत्य० । ३. रूवं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणुसजम्मस्स फलं, धीर ! तुमे पावियं निरवसेसं । तं खमसु मज्झ सुपुरिस !, जं दुच्चरियं कयं किंचि ॥१२॥
तं पणमिऊण समणं, भरहो पडियागओ पसंसन्तो । पविसरइ निययनयरिं, पुरजणअभिणन्दिओ मुइओ ॥१३॥
सो विजयसुन्दरीए, सहिओ रज्जं महागुणं भरहो । भुञ्जइ सुरो व्व सग्गे, पणमियसामन्तपावीढो ॥१४॥
गमिऊण किंचि कालं, विजयपुरे महिहरं भणइ रामो । हियइच्छियं पएसं, अवस्स अम्हेहि गन्तव्वं ॥१५॥
सोऊण गमणसज्जे, वणमाला लक्खणं भणइ मुद्धा । पूरेहि मज्झ सुपुरिस !, मणोरहा जे कया पुव्वं ॥१६॥
लच्छीहरो पवुत्तो, मा हु विसायस्स देहि अत्ताणं । काऊण अहिट्ठाणं, जाव अहं पडिनियत्तामि ॥१७॥
सम्मत्तवज्जियाणं, जा हवइ गई नराण ससिवयणे ! । तमहं वच्चेज्ज पिए !, जइ ! नाऽऽगच्छामि तुह पासं ॥१८॥
अम्हेहि रक्खियव्वं, वयणं तायस्स निच्छियमणेहिं । नवरं पुण गन्तूणं, तत्थ अवस्सं नियत्ते हं ॥१९॥
सो एवमाइएहिं, वयणसहस्सेहि तत्थ वणमालं । संथावेऊण गओ, सोमित्ती राघवसमीवं ॥२०॥
तत्तो ते सुत्तजणे, सीयाए समं विणिग्गया सणियं । अडविपहेण पयट्टा, भुञ्जन्ता तरुवरफलाइं ॥२१॥
तं वोलिऊण रण्णं, त्ता विसयस्स मज्झयारेऽत्थ । खेमञ्जलीपुरं ते, तत्थुज्जाणे सुहनिविट्ठा ॥२२॥
तं लक्खणमुवणीयं, आहारं भुञ्जिउं जहिच्छाए । समयं जणयसुयाए, चिट्ठइ य हलाउहो गामे ॥२३॥
अह लक्खणो अणुज्जं, मग्गेऊणं सहोयरं एत्तो । वरभवणसमाइण्णं, पविसइ खेमञ्जलीनयरं ॥२४॥
तत्थ सभावुल्लवियं, नरस्स सुणिऊण लक्खणो वयणं । को सहइ सत्तिपहरं, नरिन्दमुक्कं महिलियत्थे ? ॥२५॥

मनुष्यजन्मफलं धीर ! त्वया प्राप्तं निरवशेषम् । तं क्षमस्व मम सत्पुरुष ! यद्दुश्चरितं कृतं किंचित् ॥१२॥
तं प्रणम्य श्रमणं भरतः प्रत्यागतः प्रशंसनम् । प्रविशति निजनगरिं पुरजनाभिनन्दितो मुदितः ॥१३॥
स विजयसुन्दर्या सहितो राज्यं महागुणं भरतः । भुनक्ति सुर इव स्वर्गे प्रणतसामन्तपादपीठः ॥१४॥
गमयित्वा किञ्चित्कालं विजयपुरे महीधरं भणति रामः । हृदयेच्छितं प्रदेशमवश्यमस्माभिर्गन्तव्यम् ॥१५॥
श्रुत्वा गमनसज्जान्वनमाला लक्ष्मणं भणति मुग्धा । पूरय मम सत्पुरुष ! मनोरथान्यान् कृतान् पूर्वम् ॥१६॥
लक्ष्मीधरः प्रोक्तो मा खलु विषादस्य देह्यात्मानम् । कृत्वाधिष्ठानं यावदहं प्रतिनिवर्ते ॥१७॥
सम्यक्त्ववर्जितानां या भवति गति र्नराणां शशिवदने ! । तामहं व्रजेयं प्रिये ! यदि नाऽऽगच्छामि तव पार्श्वम् ॥१८॥
अस्माभी रक्षितव्यं वचनं तातस्य निश्चितमनोभिः । नवरं पुनर्गत्वा तत्रावश्यं निवर्तेऽहम् ॥१९॥
स एवमादिभिर्वचनसहस्रैस्तत्र वनमालाम् । संस्थाप्य गतः सौमित्री राघवसमीपम् ॥२०॥
ततस्तौ सुप्तजने सीतायाः समं विनिर्गतौ शनैः । अटवीपथेन प्रवृत्तौ भुञ्जानौ तरुवरफलानि ॥२१॥
तद्व्युत्क्रम्यऽरण्यं प्राप्ता विषयस्य मध्येऽत्र । क्षेमाञ्जलिपुरं ते तत्रोद्याने सुखनिविष्टाः ॥२२॥
तं लक्ष्मणोपनीतमाहारं भुक्त्वा यथेच्छया । समकं जनकसुतायास्तिष्ठति च हलायुधो ग्रामे ॥२३॥
अथ लक्ष्मणोऽनुज्ञां मार्गयित्वा सहोदरमितः । वरभवनसमाकीर्णं प्रविशति क्षेमाञ्जलिनगरम् ॥२४॥
तत्र स्वभावोल्लपितं नरस्य श्रुत्वा लक्ष्मणो वचनम् । कः सहते शक्तिप्रहारं नरेन्द्रमुक्तं महिलार्थे ? ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण वयणमेयं, पुच्छइ लच्छीहरो तयं पुरिसं। को वि हु देइ पहारं ?, का सत्ती ? का व सा महिला ? ॥२६॥

सो भणइ सत्तुदमणो, राया भज्जा य तस्स कणयाभा। जियपउमा वि य धूया, विसकन्ना सा इहं नयरे ॥२७॥

जो सहइ सत्तिपहरं, इमस्स रायस्स कढिणकरमुक्कं। [1]तस्सेसा जियपउमा, देइ च्चिय किं तुमे न सुयं ? ॥२८॥

सोऊण तं सरोसो, विम्हियहियओ य लक्खणो तुरियं। पविसइ नरिन्दभवणं, तीए कए पवरकन्नाए ॥२९॥

इन्दीवरघणसामं, जियसत्तू पेच्छिऊण सिरिनिलयं। भणइ य उवणेह लहुं, एयस्स वरासणं एत्तो ॥३०॥

भणिओ य नरवईणं, कत्थ तुमं आगओ सि ? किं नामं ?। केणेव कारणेणं, भमसि महिं जेण एगागी ? ॥३१॥

भरहस्स अहं दूओ, पत्तो हं एत्थ कारणवसेणं। तुह दुहियमाणभङ्गं, करेमि गव्वं वहन्तीए ॥३२॥

जो मज्झ सत्तिपहरं, सहइ नरो गाढकरयलविमुक्कं। सो नवरि माणभङ्गं, कुणइ य नत्थेत्थ संदेहो ॥३३॥

भणइ तओ लच्छिहरो, एक्काए किं व मज्झ सत्तीए ?। मुञ्चसु पञ्च नराहिव !, सत्तीओ मा चिरावेहि ॥३४॥

वट्टइ जावुल्लाओ, ताव गवक्खन्तरेण जियपउमा। अह पुरिसवेसिणी तं, मोत्तूण निएइ लच्छिहरं ॥३५॥

रइऊण अञ्जलिपुडं, कुणइ पणामं पसन्नहियया सा। सन्नाए लक्खणो च्चिय, भणइ भयं मुञ्च पसयच्छि ! ॥३६॥

लच्छीहरेण भणिओ, किं पडिवालेसि अज्ज वि थिरत्तं ?।
मुञ्चसु अरिदमण ! तुमं, मह सत्ती विउलवच्छयले ॥३७॥

एवभणिओ नरिन्दो, रुट्ठो आबन्धिऊण परिवेढं। जलियाणलसंकासं, उग्गिरइ तओ महासत्तिं ॥ ३८॥

श्रुत्वा वचनमेतत्पृच्छति लक्ष्मीधरस्तं पुरुषम्। कोऽपि खलु ददाति प्रहारं ? का शक्तिः ? का वा सा महिला ? ॥२६॥

स भणति शत्रुदमनो राजा भार्या च तस्य कनकाभा। जितपद्माऽपि दुहिता विषकन्या सेहं नगरे ॥२७॥

यः सहते शक्तिप्रहारमेतस्य राज्ञः कठिनकरमुक्तम्। तस्मा एषा जितपद्मा ददात्येव किं त्वया न श्रुतम् ? ॥२८॥

श्रुत्वा तं सरोषो विस्मितहृदयश्च लक्ष्मणस्त्वरितम्। प्रविशति नरेन्द्रभवनं तस्याः कृते प्रवरकन्यायाः ॥२९॥

इन्दीवरघनश्यामं जितशत्रु दृष्ट्वा श्रीनिलयम्। भणति चोपानयत लघ्वेतस्य वरासनमितः ॥३०॥

भणितश्च नरपतिना कुतस्त्वमागतोऽसि ? किं नाम ?। केनैव कारणेन भ्रमसि महीं येनैकाकी ? ॥३१॥

भरतस्याहं दूतः प्राप्तोऽहमत्र कारणवशेन। तव दुहितृमानभङ्गं करोमि गर्वं वहन्त्याः ॥३२॥

यो मम शक्तिप्रहारं सहते नरो गाढकरतलविमुक्तम्। स नवरि मानभङ्गं करोति च नास्त्यत्र संदेहः ॥३३॥

भणति ततो लक्ष्मीधर एकया किं वा मम शक्त्या ?। मुञ्च पञ्च नराधिप ! शक्तयो मा चिरय ॥३४॥

वर्तते यावदुल्लापस्तावद्गवाक्षान्तरेण जितपद्मा। अथ पुरुषद्वेषिणी तं मुक्त्वा पश्यति लक्ष्मीधरम् ॥३५॥

रचयित्वाऽञ्जलिपूटं करोति प्रणामं प्रसन्नहृदया सा। सञ्ज्ञया लक्ष्मण एवं भणति भयं मुञ्च प्रसन्नाक्षि ! ॥३६॥

लक्ष्मीधरेण भणितः किं प्रतिपालयस्यद्यापि स्थिरत्वम् ?। मुञ्चारिदमन ! त्वं मम शक्तिं विपुलवक्षःस्थले ॥३७॥

एवं भणितो नरेन्द्रो रुष्ट आबध्य परिवेष्टम्। ज्वलितानलसंकाशामुद्गीरति ततो महाशक्तिम् ॥३८॥

---

१. तस्सेयं जियपउमं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रइऊण य वइसाहं, ठाणं सत्तुंदमो मुयइ सत्तिं । दाहिणकरेण सो वि य, गेण्हइ एंती अयत्तेणं ॥३९॥

वामकरेण य बीयं, धरेइ कक्खन्तरेण दो अन्ना । सोहइ चउदन्तसमो, सरिसो एरावणो चेव ॥४०॥

संकुद्धाभोगिसमा, संपत्ता पञ्चमा महासत्ती । दसणेहिं सा वि गेण्हइ, मासं पिव सीहसरभेणं ॥४१॥

ततो गयणयलत्था, देवा मुञ्चन्ति कुसुमवरवासं । जयसद्दं कुणमाणा, पहणन्ति य दुन्दुही अन्ने ॥४२॥

भणिओ य लक्खणेणं, अरिदमण ! पडिच्छ सत्तिपहरं मे । सुणिऊण वयणमेयं, भीओ राया सह जणेणं ॥४३॥

तत्तो सा जियपउमा, अवट्ठिया लक्खणस्स पासम्मि । सोहइ सुराहिवस्स व, देवी दिव्वेण रूवेणं ॥४४॥

सुहडाण जणवयस्स य, पुरओ सत्तुंदमस्स कन्नाए । सुन्दररूवावयवो, सयंवरो लक्खणो गहिओ ॥४५॥

भणइ विणओणङ्गो, सोमित्ती नरवई ! खमेज्जासु । जं किंचि वि दुच्चरियं, माम ! तुमं ववसियं अम्हे ॥४६॥

सत्तुदमणो वि एवं, तं खामेऊण महुरवयणेहिं । भणइ य वरकल्लाणं, कुणसु इहं मज्झ धूयाए ॥४७॥

भणइय सोमित्ती, तओ मह जेट्ठो चिट्ठई वरुज्जाणे । सो जाणइ परमत्थं, तं पुच्छसु नरवई गन्तुं ॥४८॥

आरुहिऊण रहवरं, जियपउमा लक्खणेण समसहिया । पउमस्स सन्निगासे, राया य गओ समन्तिजणो ॥४९॥

जियपउमाए समाणं, सोमित्ती रहवराउ ओयरिउं । नमिऊण रामदेवं, सीयासहियं चिय निविट्ठो ॥५०॥

सत्तुदमणो वि राया, परियण-सामन्त-बन्धुजणसहिओ । पउमस्स चलणजुयलं, पणमिय तत्थेव उवविट्ठो ॥५१॥

रचयित्वा च वैशाखं स्थानं शत्रुंदमो मुञ्चति शक्तिम् । दक्षिणकरेण सोऽपि च गृह्णाति आयान्तीमयत्नेन ॥३९॥

वामकरेण च द्वितीयां धारयति कक्षान्तरेण द्वे अन्ये । शोभते चतुर्दन्तसमः सदृश ऐरावण इव ॥४०॥

संक्रुद्धा भोगिसमा संप्राप्ता पञ्चमा महाशक्तिः । दशनैः साऽपि गृह्णाति मांसमिव सिंह-शरभयोः ॥४१॥

ततो गगनतलस्था देवा मुञ्चन्ति कुसुमवरवासम् । जयशब्दं क्रियमाणाः प्रघ्नन्ति च दुन्दुभिरन्ये ॥४२॥

भणितश्च लक्ष्मणेनारिदमन ! प्रतीच्छ शक्तिप्रहरं मे । श्रुत्वा वचनमेतद्भीतो राजा सहजनेन ॥४३॥

ततः सा जितपद्माऽवस्थिता लक्ष्मणस्य पार्श्वे । शोभते सुराधिपस्येव देवी दिव्येन रुपेण ॥४४॥

सुभटानां जनपदस्य च पुरतः शत्रुंदमस्य कन्यया । सुन्दररुपावयवः स्वयंवरो लक्ष्मणो गृहीतः ॥४५॥

भणति विनयावनताङ्गः सौमित्रि र्नरपते ! क्षमस्व । यत्किञ्चिदपि दुश्चरितं माम् ! तव व्यवसितमस्माभिः ॥४६॥

शत्रुदमनोऽप्येवं तं क्षान्त्वा मधुरवचनैः । भवति च वरकल्याणं कुर्विह मम दुहितुः ॥४७॥

भणति च सौमित्रि स्ततो मम ज्येष्टस्तिष्ठति वरोद्याने । स जानाति परमार्थं तं पृच्छ नरपते ! गत्वा ॥४८॥

आरुह्य रथवरं जितपद्मा लक्ष्मणेन समसहिता । पद्मस्य समीपं राजा च गतः समन्त्रिजनः ॥४९॥

जितपद्मायाः समानं सौमित्री रथवरादवतीर्य । नत्वा रामदेवं सीतासहितमेव निविष्टः ॥५०॥

शत्रुदमनोऽपि राजा परिजनसामन्तबन्धुजनसहितः । पद्मस्य चरणयुगलं प्रणम्य तत्रैवोपविष्टः ॥५१॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थऽच्छिउं खणेक्कं, परिपुच्छेऊण देहकुसलाई । पउमो सीयाए समं, पवेसिओ राइणा नयरं ॥५२॥

जणिओ य [1]महाणन्दो, नरवइणा हट्ठ-तुट्ठमणसेणं । तूरसहस्ससमाहय-नच्चन्तजणेण अइरम्भो ॥५३॥

तत्थऽच्छिऊण कालं, केत्तियमेत्तं पि भोगदुल्ललिया । काऊण संपहारं, गमणेक्कमणा वरकुमारा॥५४॥

जियपउमा विरहाणल-भीया दट्ठूण भणइ सोमित्ति । आसासिउं पयट्टो, जह वणमाला तहा सा वि ॥५५॥

सीया-लक्खणसहिओ, पउमो नगराउ निग्गओ रत्तिं । [2]दाऊण अद्धिइं सो, सव्वस्स वि नयरलोयस्स ॥५६॥

परभवसुकएणं ते महासत्तिमन्ता, जइ वि विहरमाणा जन्ति अन्नन्नदेसं ।

तह वि समणुहोन्ती सोक्ख-सम्माण-दाणं, जणियविमलकित्ती राम-सोमित्तिपुत्ता ॥५७॥

॥ इय पउमचरिए जियपउमावक्खाणं नाम अट्ठतीसइमं पव्वं समत्तं ॥

तत्रासित्वाक्षणमेकं परिपृच्छ्य देहकुशलादीन् । पद्मः सीतायाः समं प्रवेशितो राज्ञा नगरम् ॥५२॥

जनितश्च महानन्दो नरपतिना हृष्टतुष्टमनसा । तूर्यसहस्रसमाहतनृत्यज्जनेनातिरम्यः ॥५३॥

तत्रासित्वा कालं केचिन्मात्रमपि भोगदुर्ललितौ । कृत्वा सम्प्रहारं गमनैकमनसौ वरकुमारौ ॥५४॥

जितपद्मां विरहानलभीतां दृष्ट्वा भणति सौमित्रिः । आश्वसितुं प्रवृत्तो यथा वनमाला तथा साऽपि ॥५५॥

सीता-लक्ष्मणसहितः पद्मो नगरान्निर्गतो रात्रिम् । दत्वाऽधृतिं स सर्वस्यापि नगरलोकस्य ॥५६॥

परभवसुकृतेन तौ महाशक्तिमन्तौ यद्यपि विहरन्तौ यातोऽन्योन्यदेशम् ।

तथापि समनुभवतः सुखसन्मानदानं जनितविमलकीर्ती राम-सोमित्रिपुत्रौ ॥५७॥

॥ इति पद्मचरित्रे जितपद्मोपाख्यानं नामाष्टात्रिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

---

१. महाविवाहः । २. दाऊणं अधिइं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

३९. देसभूसण-कुलभूसणवक्खाणं

अह से बहुविहतरुवर-वल्लि-लयाकुसुमगन्धरिद्धिल्लं। वच्चन्ति दसरहसुया, लीलायन्ता महाअडविं ॥१॥

देवोवणीयभोगा, सरीरउवगरणजणियमाहप्पा। धणुरयणगहियहत्था, सीहा इव निब्भया धीरा ॥२॥

कत्थइ जलहरसामा, कत्थइ गिरिधाउविद्दुमावयवा। कत्थइ कुसुमभरेणं, धवलवलायच्छविं वहइ ॥३॥

एवं कमेण अडविं, वोलेंताणं च तत्थ संपत्ता। वंसइरिसन्नियासं, नयरं वंसत्थलं नामं ॥४॥

ताव च्चिय नयरजणो, आगच्छइ अभिमुहो अइबहुत्तो। अन्नोन्नतुरियवेगो, दिट्ठो सहसा पलायन्तो ॥५॥

तो राघवेण एक्को, पुरिसो परिच्छिओ इमो लोगो। कस्स भएण पलायइ ?, एयं साहेहि मे सिग्घं ॥६॥

सो भणइ अज्ज दिवसो, तइओवट्टइ इमम्मि गिरिसिहरे। निसुणिज्जइ अइघोरो, सद्दो लोगस्स भयजणणो ॥७॥

जइ कोइ अज्ज रत्तिं, एहिइ अम्हं वहुज्जयमईओ। तस्स भएण पलायइ, एस जणो नरवइसमग्गो ॥८॥

सुणिऊण वयणमेयं, जणयसुया भणइ राघवं एवं। अम्हे वि पलायामो, जत्थ इमो जाइ नयरजणो ॥९॥

भणिया य राघवेणं, सुन्दरि ! किं सुपुरिसा पलायन्ति ?। मरणन्तिए वि कज्जे, आवडिए अहिमुहा होन्ति ॥१०॥

एवं वारिज्जन्तो, पउमो सोमित्तिणा समं चलिओ। वंसइरिस्स अभिमुहो, जणयसुयं मग्गओ ठविउं ॥११॥

---

३९. देशभूषण-कुलभूषणव्याख्यानम्

अथ तौ बहुविधतरुवरवल्लिलताकुसुमगन्धर्द्धिवतीम्। गच्छतो दशरथसुतौ लीलायन्तौ महाटवीम् ॥१॥

देवोपनीतभोगौ शरीरोपकरणजनितमाहात्म्यौ। धनूरत्नगृहीतहस्तौ सिंहाविव निर्भयौ धीरौ ॥२॥

कुत्रचिज्जलधरश्यामां कुत्रचिद्गिरिधातुविद्रुमावयवाम्। कुत्रचित्कुसुमभारेण धवलातपत्रच्छविं वहति ॥३॥

एवं क्रमेणाटवीं विलङ्घतोश्च तत्र संप्राप्तौ। वंशगिरिसंनिकाशे नगरं वंशस्थलं नाम ॥४॥

तावदेव नगरजन आगच्छत्यभिमुखोऽतिबहुत्वः। अन्योन्यत्वरितवेगोदृष्टः सहसा पलायमानः ॥५॥

तदा राघवेनैकः पुरुषः परिपृष्टोऽयं लोकः। कस्य भयेन पलायते ? एतत्कथय मे शीघ्रम् ॥६॥

स भणत्यद्य दिवसस्तृतीयो वर्ततेऽस्मिन्गिरिशिखरे। निश्रूयतेऽतिघोरः शब्दो लोकस्य भयजननः ॥७॥

यदि कोऽप्यद्य रात्रिमैष्यत्यस्माकं वधोद्यतमतिः। तस्य भयेन पलायते एव जनो नरपतिसमग्रः ॥८॥

श्रुत्वा वचनमेतज्जनकसुता भणति राघवमेवम्। वयमपि पलायामहे यत्रायं याति नगरजनः ॥९॥

भणिता च राघवेन सुन्दरि ! किं सत्पुरुषाः पलायन्ते ?। मरणान्तिकेऽपि कार्य आपत्तितेऽभिमुखा भवन्ति ॥१०॥

एवं वार्यमाणः पद्मः सौमित्रिणा समं चलितः। वंशगिरेरभिमुखो जनकसुतां मार्गतः स्थापयित्वा ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आरुहिऊण पवत्ता, विसमसिला-सिहर-निज्झराइण्णं । गयणयलमणुलिहन्तं, वंसगिरिं गहग[1]णासन्नं ॥१२॥

हत्थावलम्बियकरा, कत्थइ विसमे भुयासु उक्खिविउं । कहकह वि पव्वयवरं, रामेणं विलइया सीया ॥१३॥

ते तत्थ गिरिवरोवरि, नवरं पेच्छन्ति दोण्णि मुणिवसभे । लम्बियकरग्गजुयले, झाणोवगए विगयमोहे ॥१४॥

जणतणयाए सहिया, दोण्णि वि गन्तूण सव्वभावेणं । सीसकयञ्जलिमउला, अवट्ठिया ताण आसन्ने ॥१५॥

ताव य पेच्छन्ति बहू, समन्तओ भमरकज्जलसवण्णे । नागे उत्तासणए, घोररवं चेव कुणमाणे ॥१६॥

नाणावण्णेहि य विञ्छिएहिं तह घोणसेहि घोरेहिं । परिवेढिया मुणी ते, पलोइया दसरहसुएहिं ॥१७॥

धणुवग्गेहि विहडिउं, विञ्छिय नागे य सव्वओ दूरं । जाया लक्खणपउमा, पसन्नहियया तओ दो वि ॥१८॥

पक्खालिऊण रामो, निज्झरसलिलेण साहुचलणजुए । लक्खणसमप्पिएहिं, अच्चेइ य वल्लिकुसुमेहिं ॥१९॥

सत्तिसरिसं च एत्तो, कुणन्ति मुणिवन्दणं परमतुट्ठा । जणयतणयए समयं, हलहर-नारायणा दो वि ॥२०॥

[2]वीणा मणोहरसरा, पउमो घेत्तूण वायई विहिणा । साहुगुणसंपउत्तं, गायइ गेयं च बहुभेयं ॥२१॥

भावेण जणयतणया, मुणिपुरओ नच्चिउं समाढत्ता । लीला-विलास-अभिणय, दावेन्ती चलचलन्तोरू ॥२२॥

ताव च्चिय अत्थाओ, मइलेन्तो अम्बरं दिवसनाहो । उवसग्गस्स व भीओ, किरणबलेणं समं नट्ठो ॥२३॥

सहसा समोत्थयं चिय, गयणयलं भूयसयसहस्सेसु । दाढा संघट्टुट्ठिय-हुयवहजालं मुयन्तेसु ॥२४॥

आरोढुं प्रवृत्तौ विषमशीलाशिखरनिर्झराकीर्णम् । गगनतलमनुलिहन्तं वंशगिरिं ग्रहगणासन्नम् ॥१२॥

हस्तावलम्बितकरा कुत्रचिद्विषमे भुजाभ्यामुत्क्षेप्य । कथंकथमपि पर्वतवरं रामेण विलग्ना सीता ॥१३॥

ते तत्र गिरिवरोपरि नवरं पश्यन्ति द्वौ मुनिवृषभौ । लम्बितकराग्रयुगलौ ध्यानोपगतौ विगतमोहौ ॥१४॥

जनकतनयया सहितौ द्वावपि गत्वा सर्वभावेण । शीर्षकृताञ्जलिमुकुटावस्थितौ तयोरासन्ने ॥१५॥

तावच्च पश्यन्ति बहून् समन्ततो भ्रमरकज्जलसवर्णान् । नागानुत्त्रासनान्घोररवमेव क्रियमाणान् ॥१६॥

नानावर्णैश्चवृश्चिकैस्तथा गोनसैः घोरैः । परिवेष्टितौ मुनी तौ प्रलोकितौ दशरथसुताभ्याम् ॥१७॥

धनुवर्गै विघट्य वृश्चिकान्नागांश्च सर्वतो दूरम् । ज्ञातौ लक्ष्मणपद्मौ प्रसन्नहृदयौ ततो द्वावपि ॥१८॥

प्रक्षाल्य रामो निर्झरसलिलेन साधुचरणयुगान् । लक्ष्मणसमर्पितैरर्चयति च वरकुसुमैः ॥१९॥

शक्तिरसदृशं चेतः कुरुतो मुनिवन्दनं परमतुष्टौ । जनकतनयया समं हलधर-नारायणौ द्वावपि ॥२०॥

वीणा मनोहरस्वरा पद्मो गृहीत्वा वादयति विधिना । साधुगुणसंप्रयुक्तं गायति गेयं च बहुभेदम् ॥२१॥

भावेन जनकतनया मुनिपुरतो नर्तितुं समारब्धा । लीलाविलासाभिनयं दर्शयन्ती चलचलदुरुः ॥२२॥

तावच्चैवास्तो मलिनयन्नम्बरं दिवसनाथः । उपसर्गादिव भीतः किरणबलेन समं नष्टः ॥२३॥

सहसा समवस्तीर्णमेव गगनतलं भूतशतसहस्रैः । दंष्ट्रासंघट्टोत्थितहुतवहज्वालां मुञ्चद्भिः ॥२४॥

---

१. गणाइन्नं-प्रत्य० । २. वीणं मणोहरसरं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मुञ्चन्ति सिर-कलेवर-जङ्घाई बहुविहाइं अङ्गाइं । घणविन्दुरुहिरवासं, वासन्ति य तडतडारावं ॥२५॥

केई तिसूलहत्था, अन्ने असि-कणय-तोमरकरग्गा । मुक्कट्टहासभीसण-संखोभियदसदिसायक्का ॥२६॥

गय-वग्घ-सीह-चित्तय-सिवामुहुज्जलियभीसणायारा । अह खोभिउं पवत्ता, भूया समणे समियपावे ॥२७॥

आलोइऊण सीया, अणेयवेयाल-भूयसंघट्टं । नच्चणविहिं पमोत्तुं, भीयारामं समल्लीणा ॥२८॥

भणिया य राधवेणं, चिट्ठसु भद्दे ! मुणीण पामूले । अहयं पुण उवसग्गं, लक्खणसहिओ पणासेमि ॥२९॥

घेत्तूण धणुवराइं, दोहि वि अप्फालियाइं अइगाढं । सद्देण तेण सेलो, नज्जइ आकम्पिओ सयलो ॥३०॥

अह सो जोइसवासी, देवो अणलप्पभो त्ति नामेणं । अवहिविसएण जाणइ, हलहर-नारायणा एए ॥३१॥

मायाविगुव्वियं तं, उवसग्गं मुणिवराण अवहरिउं । वच्चइ नियविमाणं, गयणं पि सुनिम्मलं जायं ॥३२॥

जणिए य पाडिहेरे, हलहर-नारायणेहि साहूणं । कम्मस्स खयवसेणं, उप्पन्नं केवलन्नाणं ॥३३॥

तत्तो य चउनिकाया, समागया सुरगणा नरगणा य । थोऊण समणसीहे, जहाविहं चेव उवविट्ठा ॥३४॥

काऊण केवलीणं, [1]पूया नमिऊण सव्वभावेणं । सीयाए दो वि पासे, उवविट्ठा राम-सोमित्ती ॥३५॥

तो सुरगणाण मज्झे, पउमो पुच्छि महामुणी एत्तो । अज्ज निसासुवसग्गो, केणकओ भे अपुण्णेणं ? ॥३६॥

अह साहिउं पवत्तो, केवलनाणी परब्भवसमूहं । अत्थि च्चिय विक्खाया, नयरी वि हु पउमिणी नामं ॥३७॥

मुञ्चन्ति शिरः कलेवर-जङ्घानि बहुविधान्यङ्गानि । घनबिन्दुरुधिरवर्षा वर्षन्ति च तडतडारावम् ॥२५॥

केऽपि त्रिशूलहस्ता, अन्येऽसि-कनकतोमरकराग्राः । मुक्ताट्टहास्यभीषणसंक्षोभितदशदिक्चक्राः ॥२६॥

गज-व्याघ्र-सिंह-चित्रक-शिवामुखोज्ज्वलितभीषणाकाराः । अथ क्षोभयितुं प्रवृत्ता भूताः श्रमणौ समितपापौ ॥२७॥

अवलोक्य सीताऽनेक वैतालभूतसंघट्टम् । नृत्यविधिं प्रमुच्य भीता रामं समालीना ॥२८॥

भणिता च राघवेन तिष्ठ भद्रे ! मुनीनां पादमूले । अहं पुनरुपसर्गं लक्ष्मणसहितः प्रणश्यामि ॥२९॥

गृहीत्वा धनुर्वराणि द्वाभ्याम्प्यास्फालितान्यतिगाढम् । शब्देन तेन शैलो ज्ञायत आकम्पितः सकलः ॥३०॥

अथ स ज्योतिषवासी देवोऽनलप्रभ इति नाम्ना । अवधिविषयेन जानाति हलधर-नारायणावेतौ ॥३१॥

मायाविकुर्वितं तमुपसर्गं मुनिवराणामपहृत्य । गच्छति निजविमानं गगनमपि सुनिर्मलं जातम् ॥३२॥

जनिते च प्रातिहार्ये हलधर-नारायणाभ्यां साधुनाम् । कर्म क्षयवशेनोत्पन्नं केवलज्ञानम् ॥३३॥

ततश्च चतुर्निकायाः समागताः सुरगणा नरगणाश्च । स्तुत्वा श्रमणसिंहान्यथाविधमेवोपविष्टः ॥३४॥

कृत्वा केवलीनां पूजा नत्वा सर्वभावेण । सीताया द्वावपि पार्श्वे उपविष्टौ रामसौमित्री ॥३५॥

ततः सुरगणानां मध्ये पद्मः पृच्छति महामुनिमितः । अद्य निशायामुपसर्गः केन कृतो भेऽपुण्येन ? ॥३६॥

अथ कथयितुं प्रवृत्तः केवलज्ञानी परभवसमूहम् । अस्त्येव विख्याता नगर्यपि खलु पद्मिनी नाम ॥३७॥

---

१. पूयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं भुञ्जइ वरनयरिं, नराहिवो विजयपव्वओ नामं । सुरवहुसमाणरूवा, महिला वि य धारिणी तस्स ॥३८॥
तत्थेव वसइ दूओ, अमयसरो विविहसत्थमइकुसलो । उवओगा से घरिणी, तीए दो सुन्दरा पुत्ता ॥३९॥
उदिओ त्थ हवइ एक्को, बिइओ मुइओ त्ति नाम नामेणं । सो नरवईण दूओ, पवेसिओ [1]दूयकज्जेणं ॥४०॥
वसुभूईण समाणं, मित्तेणं कवडपीइपमुहेणं । वच्चइ परविसयं सो, अणुदियहं देहसोक्खेणं ॥४१॥
विप्पो वि य वसुभूई, आसत्तो तस्स महिलियाए समं । दूयं हन्तूण तओ, रयणीसु छलेण विणियत्तो ॥४२॥
साहेइ य वसुभूई, जणस्स विणियत्तिओ अहं तेणं । दूयघरिणीए समयं, कुणइ य सो दुट्ठमन्तणयं ॥४३॥
उवओगा भणइ तओ, एए हन्तूण दो वि पुत्ते हं । भुञ्जामि तुमे समयं, भोगं निक्कण्टयं सुइरं ॥४४॥
तं बम्भणीए सव्वं, रइए वसुभूइमहिलियाए उ । ईसालुणीए सिट्ठं, उइयस्स य जं जहावत्तं ॥४५॥
तो रोसवसगएणं, उदिएणं असिवरेण तिक्खेणं । सो मारिओ कुविप्पो, मेच्छो पल्लिम्मि उप्पन्नो ॥४६॥
अह अन्नया कयाई, चाउव्वण्णेण समणसङ्घेणं । मइवद्धणो सुसाहू, समागओ पउमिणिं नयरिं ॥४७॥
आसि तया विक्खाया, अणुद्धरा नाम सयलगणपाली । धम्मज्झाणोवगया, वच्छल्लपभाणुज्जुत्ता ॥४८॥
सो समणसङ्घसहिओ, साहू मइवद्धणो वरुज्जाणे । उवविट्ठो गणजेट्ठो, तसपाणविवज्जिउद्देसे ॥४९॥
उज्जाणवालएणं, सिट्ठं गन्तूण नरवरिन्दस्स । सामिय वसन्ततिलए, उज्जाणे आगया समणा ॥५०॥

तां भुनक्ति वरनयरिं नराधिपो विजयपर्वतो नाम । सुरवधुसमानरूपा महिलापि धारिणी तस्य ॥३८॥
तत्रैव वसति दूतोऽमृतस्वरो विविधशास्त्र-मतिकुशलः । उपयोगा तस्य गृहिणी तस्या द्वौ सुन्दरौ पुत्रौ ॥३९॥
उदितोऽथ भवत्येको द्वितीयो मुदित इति नाम नाम्ना । स नरपतिना दूतः प्रेषितो दूतकार्येण ॥४०॥
वसुभूतिना समानं मित्रेण कपटप्रीतिमुखेन । व्रजति परविषयं सोऽनुदिवसं देहसुखेन ॥४१॥
विप्रोऽपि च वसुभूतिरासक्तस्तस्य महिलायाः समम् । दूतं हत्वा ततो रजन्यां छलेन विनिवृत्तः ॥४२॥
कथयति च वसुभूति र्जनस्य विनिवर्त्तितोऽहं तेन । दूतगृहिण्या समकं करोति च स दुष्टमन्त्रणाम् ॥४३॥
उपयोगा भणति तत एतौ हत्वा द्वावपि पुत्रावहम् । भुनज्मि त्वया समं भोगं निष्कण्टकं सुचिरम् ॥४४॥
तद्ब्राह्मण्या सर्वं रचिते तु वसुभूतिमहिलया तु । ईर्ष्यालुन्या शिष्टमुदितस्य च यद्यथावृत्तम् ॥४५॥
तदा रोषवशगतेनोदितेनासिवरेण तीक्ष्णेन । स मारितः कुविप्रो म्लेच्छः पल्यामुत्पन्नः ॥४६॥
अथान्यदा कदाचिच्चातुर्वर्णेन श्रमणसङ्घेन । मतिवर्धनः सुसाधुः समागतः पद्मिनीं नगरीम् ॥४७॥
आसीत्तदा विख्यातानुद्धरा नाम सकलगणपालिनी । धर्मध्यानोपगता वात्सल्यभावनोद्योता ॥४८॥
स श्रमणसङ्घसहितः साधु र्मतिवर्द्धनो वरोद्याने । उपविष्टो गणज्येष्ठस्त्रस-प्राणविवर्जितोद्देशे ॥४९॥
उद्यानपालकेन शिष्टं गत्वा नरवरेन्द्रस्य । स्वामिन् ! वसन्ततिलक उद्यान आगताः श्रमणाः ॥५०॥

---

1. नियमकज्जेणं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सोऊण वयणमेयं, नराहिवो विजयपव्वओ गन्तुं । मइवद्धणाईए, पणमइ समणे समियपावे ॥५१॥
नमिऊण मुणिवरिन्दं, जंपइ भोगेसु मज्झ अहिलासो । भयवं ! साहवचरियं, असमत्थो धारिउं अहयं ॥५२॥
भणइ मुणी मुणियत्थो, नरवइ ! जा एस भोगतण्हा ते । भवसयसहस्सजणणी, संसारनिबन्धणकरी य ॥५३॥
गयकण्णतालसरिसं, विज्जुलयाचञ्चलं हवइ जीयं । सुमिणसमा होन्ति इमे, बन्धुसिणेहा य भोगा य ॥५४॥
खणभङ्गुरे सरीरे, का एत्थ रई सभावदुग्गन्धे । नरयसरिच्छे घोरे, दुगुञ्छिए किमिकुलावासे ॥५५॥
वस-कलल-सेम्भ-सोणिय-मुत्तासुइकद्दमे मलसभावे । वसिण गब्भवासे, पुणरवि तं चेव अहिलससि ॥५६॥
एवंविहम्मि देहे, जे पुरिसा विसयरागमणुरत्ता । ते दुहसहस्सपउरे, घोरे हिण्डन्ति संसारे ॥५७॥
एवं चिय मणहत्थिं, वच्चन्तं विसयसंकडपहेसु । वेरग्गबलसमग्गो, धरेहि नाणङ्कुसेण तुमं ॥५८॥
पणमसु जिणं नराहिव, भत्तिं काऊण वज्जिय [1]कुदिट्ठी । संसारसलिलनाहं, जेण अविग्घेण उत्तरसि ॥५९॥
मोहारिमहासेन्नं, हन्तूणं संजमासिणा सिग्घं । अज्झासिय सिद्धिपुरं, करेह रज्जं भयविमुक्कं ॥६०॥
जं एव मुणिवरेणं, भणिओ च्चिय विजयपव्वओ राया । संवेगसमावन्नो, मुणिस्स पासम्मि निक्खन्तो ॥६१॥
ते वि तहिं जिणविहियं, नाणं सोऊण भायरो दो वि । वेरग्गजणियकरुणा, समणत्तं जाव पडिवन्ना ॥६२॥
सम्मेयपव्वयं ते, वन्दणहेउम्मि तत्थ वच्चन्ता । मग्गाओ पब्भट्ठा, इसिणडपल्लिं समणुपत्ता ॥६३॥

श्रुत्वा वचनमेतन्नराधिपो विजयपर्वतो गत्वा । मतिवर्धनादिकान् प्रणमति श्रमणान्समितपापान् ॥५१॥
नत्वा मुनिवरेन्द्रं जल्पति भोगेषु ममाभिलाषः । भगवन् ! साधुचर्यामसमर्थो धर्तुमहम् ॥५२॥
भणति मुनि र्मुणितार्थो नरपते ! यैषा भोगतृषणा ते । भवशतसहस्रजननी संसारनिबन्धनकरी च ॥५३॥
गजकर्णतालसदृशं विद्युल्लताचञ्चलं भवति जीवितम् । स्वप्नसमा भवन्तीमे बन्धुस्नेहाश्च भोगाश्च ॥५४॥
क्षणभङ्गुरे शरीरे कात्र रतिः स्वभावदुर्गन्धे । नरकसदृशे घोरे जुगुप्सिते कृमिकुलावासे ॥५५॥
वशा-कलल-श्लेष्म-शोणित-मूत्राशुचिकर्दमे मलस्वभावे । उषित्वा गर्भावासे पुनरपि तदेवाभिलषसि ॥५६॥
एवंविधे देहे ये पुरुषा विषयरागमनुरक्ताः । ते दुःखसहस्रप्रचूरे घोरे हिण्डन्ते संसारे ॥५७॥
एवमेव मनोहस्तिनं व्रजन्तं विषयसंकटपथेषु । वैराग्यबलसमग्रो धारय नानाङ्कुशेन त्वम् ॥५८॥
प्रणम जिनं नराधिप ! भक्तिं कृत्वा वर्जितः कुदृष्टिः । संसारसलिलनाथं येनाविघ्नेनोत्तरषि ॥५९॥
मोहारिमहासैन्यं हत्वा संयमासिना शीघ्रम् । अध्यास्य सिद्धिपुरं कुरुत राज्यं भयविमुक्तम् ॥६०॥
यदेवं मुनिवरेण भणितश्चैव विजयपर्वतो राजा । संवेगसमापन्नो मुनेः पार्श्वे निष्क्रान्तः ॥६१॥
तावपि तत्र जिनविहितं ज्ञानं श्रुत्वा भ्रातरौ द्वावपि । वैराग्यजनितकारुण्यौ श्रमणत्वं यावत्प्रतिपन्नौ ॥६२॥
सम्मेतपर्वतं तौ वन्दनहेतौ तत्र गच्छन्तौ । मार्गात्प्रभ्रष्टाविषिण्डपल्लिं समनुप्राप्तौ ॥६३॥

---

१. कुदिट्ठि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जो वि य सो वसुभूई, मेच्छो ते साहवे तहिं दट्ठुं । सविऊण समाढत्तो, कक्कस-फरुसेहि वयणेहिं ॥६४॥
तं पेच्छिऊण मेच्छं, जीवसमाणं मुणीहि सायारं । गहियं पच्चक्खाणं, पडिमाजोगो य पडिवन्नो ॥६५॥
संपत्तो य सयासं, मेच्छो हन्तुं समुज्जओ पावो । सेणावईण दिट्ठो, निवारिओ विहिनिओगेणं ॥६६॥
पउमो मुणिं पवुत्तो, एवं मेच्छेण हम्ममाणा ते । सेणावईणदोण्णि वि, निवारिया केण कज्जेणं ? ॥६७॥
केवलनाणेण मुणी, परभवचरियं कहेइ विदियत्थो । जक्खट्ठाणनिवासी, सहोयरा करिसया दो वि ॥६८॥
वाहेण गहियसन्तं, सउणं आहारकारणट्ठाए । ते करिसया दयालू, मोल्लं दाऊण मोएन्ति ॥६९॥
कालं काऊण तओ, सउणो मेच्छाहिवो समुप्पन्नो । ते करिसया य दोण्णि वि जाया उदिओ य मुदिओ य ॥७०॥
सउणो मारिज्जन्तो, जम्हा परिरक्खिओ करिसएहिं । सेणावईण तम्हा, मुणी वि परिरक्खिया तइया ॥७१॥
जं जेण निययकम्मं, समज्जियं परभवम्मि जीवेणं । तं जेण पावियव्वं, संसारे परिभमन्तेणं ॥७२॥
एवं उवसग्गाओ, विणिग्गया साहवो [1]तओ गन्तुं । सम्मेयपव्वओवरि, कुणन्ति जिणवन्दणं पयओ ॥७३॥
आराहिऊण विहिणा, चिरकालं नाण-दंसण-चरित्तं । आउक्खयम्मि साहू, उववन्ना देवलोगम्मि ॥७४॥
वसुभूई वि बहुत्तं, कालं भमिऊण नरय-तिरिएसु । पत्तो सुमाणुसत्तं, जडाधरो तावसो जाओ ॥७५॥
काऊण य बालतवं, जोइसवासी सुरो समुप्पन्नो । नामेण अग्गिकेऊ, मिच्छत्तमई महापावो ॥७६॥

योऽपि च स वसुभूतिर्म्लेच्छस्तौ साधौ तत्र दृष्ट्वा । शप्तुं समारब्धः कर्कशपरुषै र्वचनैः ॥६४॥
तं दृष्ट्वा म्लेच्छं जीवसमाणं मुनिभिः साकारम् । गृहीतं प्रत्याख्यानं प्रतिमायोगश्च प्रतिपन्नः ॥६५॥
संप्राप्तश्च सकाशं म्लेच्छो हन्तुं समुद्यतः पापः । सेनापतिना दृष्टो निवारितो विधिनियोगेन ॥६६॥
पद्मो मुनिं प्रोक्त एवं म्लेच्छेन हन्यमानौ तौ । सेनापतिना द्वावपि निवारितौ केन कार्येण ? ॥६७॥
केवलज्ञानेन मुनिः परभवचरित्रं कथयति विदितार्थः । यक्षस्थाननिवासिनौ सहोदरौ कर्षकौ द्वावपि ॥६८॥
व्याधेन गृहीतं शकुनमाहारकारणार्थे । तौ कर्षकौ दयालू मूल्यं दत्वा मोचयतः ॥६९॥
कालं कृत्वा ततः शकुनो म्लेच्छाधिपः समुत्पन्नः । तौ कर्षकौ द्वावपि जातावुदितश्च मुदितश्च ॥७०॥
शकुनो मार्यमाणो यथा परिरक्षितः कर्षकाभ्याम् । सेनापतिना तस्मान्मुन्यपि परिरक्षितौ तदा ॥७१॥
यद्येन निजकर्म समर्जितं परभवे जीवेन । तत्तेन प्राप्तव्यं संसारे परिभ्रमता ॥७२॥
एवमुपसर्गाद्विनिर्गतौ साधू ततो गत्वा । सम्मेतपर्वतोपरि कुरुतो जिनवन्दनं प्रयतः ॥७३॥
आराध्य विधिना चिरकालं ज्ञान-दर्शन-चारित्रम् । आयुःक्षये साधू उत्पन्नौ देवलोके ॥७४॥
वसुभूतिरपि बहुत्वं कालं भ्रान्त्वा नरकतिर्यक्षु । प्राप्तः सुमनुष्यत्वं जटाधरस्तापसो जातः ॥७५॥
कृत्वा च बालतपो ज्योतिर्वासी सुरःसमुत्पन्नः । नाम्नाऽग्निकेतुर्मिथ्यात्वमति र्महापापः ॥७६॥

---

१. तहिं गन्तुं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरहम्मि अरिट्ठपुरे, पियंवओ नाम नरवई वसइ । तस्स दुवे भज्जाओ, पउमाभा कञ्चणाभा य ॥७७॥

ते सुरलोगाउ चुया, पउमाभाए सुया समुप्पन्ना । रयणरह-विचित्तरहा, देवकुमारोवमसिरीया ॥७८॥

चविउं जोइसियसुरो, कणयाभानन्दणो समुप्पन्नो । बहुगुणनिहाणभूओ, अणुद्धरो नाम विक्खाओ ॥७९॥

रज्जं सुयाण दाउं, पियंवओ छद्दिणाणि जिणभवणे । संलेहणाए कालं, काऊण सुरालयं पत्तो ॥८०॥

तत्थेव रायधूया, सिरिप्पभा नाम सिरिसमाणङ्गी । तं मग्गन्ति कुमारा, रयणरहा-ऽणुद्धरा दो वि ॥८१॥

रयणरहेण तओ सा, लद्धा सोऊणऽणुद्धरो रुट्ठो । विसयं तस्स समत्थं, बलेण सहिओ विणासेइ ॥८२॥

तत्तो रयणरहेणं, गहिओ सो चित्तरहसमं तेणं । काऊण पञ्चदण्डं, निच्छूढो निययदेसाओ ॥८३॥

खलियारण-अवमाणण-परभवजणिएण वइरदोसेण । दीहजडामउडधरो, वक्कलिणो तावसो जाओ ॥८४॥

ते तत्थ दो वि नियया, सहोयरा गेण्हिऊण पव्वज्जं । कालगया सुरलोए, देवा जाया महिड्डीया ॥८५॥

ते भोत्तूण सुरसुहं, चविया सिद्धत्थनयरसामिस्स । खेमंकरस्स पुत्ता, जाया विमलाए गब्भम्मि ॥८६॥

सुन्दररूवावयवो, पढमो च्चिय देसभूसणो नामं । कुलभूसणो त्ति बीओ, गुणेहि जो भूसिओ निच्चं ॥८७॥

सायरघोसस्स तओ, पासे सिक्खन्ति सव्वविज्जाओ । नरवइसमप्पिया ते, सहोयरा ते उ कयविणया ॥८८॥

ते गुरुगिहे वसन्ता, न चेव जाणन्ति परियणं सयणं । देहुवगरणं सव्वं, ताण तहिं चेव सन्निहियं ॥८९॥

भरतेऽरिष्टपुरे प्रियंवदो नाम नरपति र्वसति । तस्य द्वे भार्ये पद्माभा कञ्चनाभा च ॥७७॥

तौ सुरलोकाच्च्युतौ पद्माभायाः सुतौ समुत्पन्नौ । रत्नरथ-विचित्ररथौ देवकुमारोपमश्रीकौ ॥७८॥

च्युत्वा ज्योतिषसुरः कनकाभानन्दनः समुत्पन्नः । बहुगुणनिधानभूतोऽनुद्धरो नाम विख्यातः ॥७९॥

राज्यं सुतानां दत्वा प्रियंवदः षड्दिनानि जिनभवने । संलेखनायाः कालं कृत्वा सुरालयं प्राप्तः ॥८०॥

तत्रैव राजदुहिता श्रीप्रभा नाम श्रीसमानाङ्गिनी । तां मार्गयतः कुमारौ रत्नरथाणुद्धरौ द्वावपि ॥८१॥

रत्नरथेन ततः सा लब्धा श्रुत्वाऽनुद्धरो रुष्टः । विषयं तस्य समस्तं बलेन सहितो विनाशयति ॥८२॥

ततो रत्नरथेन गृहीतः स चित्ररथसमं तेन । कृत्वा पञ्चदण्डं उद्धृतो निजदेशात् ॥८३॥

तिरस्करणापमानन-परभवजनितेन वैरदोषेण । दीर्घजटामुकुटधरो वल्कलीतापसो जातः ॥८४॥

तौ तत्र द्वावपि निजकौ सहोदरौ गृहीत्वा प्रव्रज्याम् । कालगतौ सुरलोके देवौ जातौ महर्द्धिकौ ॥८५॥

तौ भुक्त्वा सुरसुखं च्युतौ सिद्धार्थनगरस्वामिनः । क्षेमंकरस्य पुत्रौ जातौ विमलाया गर्भे ॥८६॥

सुन्दररुपावयवः प्रथम एव देशभूषणो नाम । कुलभूषण इति द्वितीयो गुणै र्यो भूषितो नित्यम् ॥८७॥

सागरघोषस्य ततः पार्श्वे शिक्षेते सर्वविद्याः । नरपतिसमर्पितौ तौ सहोदरौ तस्य तु कृतविनयौ ॥८८॥

तौ गुरुगृहे वसन्तौ नैव जानतः परिजनं स्वजनम् । देहोपकरणं सर्वं तयोस्तत्रैव सन्निहितम् ॥८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चिरकालस्स कयाई, घेत्तूण उवज्झओ कुमारवरे। खेमंकरस्स पासे, गओ य संपूइओ तेणं ॥९०॥

वायायणभवणत्थं, कन्नं दट्ठूण दो वि रायसुया। हियएण अहिलसन्ता, अणिमिसनयणा पलोयन्ति ॥९१॥

अम्हे किर महिलत्थे, चिन्तासमणन्तरं गया कन्ना। ताएण समाणीया, सा एसा नत्थि संदेहो ॥९२॥

ताव य वन्दीण तहिं, घुट्ठं खेमंकरो जयउ राया। विमलादेवीए समं, जस्सेए सुन्दरा पुत्ता ॥९३॥

वायायणम्मि लीणा, सुचिरं कमलुस्सवा वि वरकन्ना। जयउ इमा गुणनिलया, जीसे एक्कोयरा सूरा ॥९४॥

तं सुणिऊण कुमारा, सद्दं वन्दिस्स सोयरा बहिणी। जाणन्ति तओ दोण्णि वि, संवेगपरायणा जाया ॥९५॥

धिद्धी अहो ! अकज्जं, सव्वं मोहस्स विलसियं एयं। जं सोयरा वि बहिणी, अहिलसिया मयणमूढेणं ॥९६॥

परिचिन्तिऊण एयं, दोण्णि वि संजायतिव्वसंवेगा। सोगाउरं च जणणिं, पियरं मोत्तूण पव्वइया ॥९७॥

खेमंकरो वि राया, पुत्तविओगेण वज्जियारम्भो। संजम-तव-नियमरओ, मरिउं गरुडाहिवो जाओ ॥९८॥

आसणकम्पेण तओ, उवसग्गं सुमरिऊण पुत्ताणं। एत्थाऽऽगओ महप्पा, हवइ महालोयणो एसो ॥९९॥

जो वि य अणुद्धरो सो, सङ्घं घेत्तूण कोमुई[1] नयरिं। पत्तो सुसङ्घसहिओ, जत्थ य रायासुहाधारो ॥१००॥

कन्ता से हवइ रई, बीया अवरुद्धिया मयणवेगा। मुणिवरदत्तसयासे, सम्मत्तपरायणा जाया ॥१०१॥

चिरकाले कदाचिद् गृहीत्वोपाध्यायः कुमारवरौ। क्षेमंकरस्य पार्श्वे गतश्च संपूजितस्तेन ॥९०॥

वातायनभवनस्थां कन्यां दृष्ट्वा द्वावपि राजसुतौ। हृदयेनाभिलषन्तावनिमिषनयनौ प्रलोकेते ॥९१॥

आवयोः किल महिलार्थे चिन्तासमनन्तरं गता कन्या। तातेन समानीता सैषा नास्ति संदेहः ॥९२॥

तावच्च बन्दिनातत्र धृष्ट क्षेमंकरो जयतु राजा। विमलादेव्या समं यस्येतौ सुन्दरौ पुत्रौ ॥९३॥

वातायने लीना सुचिरं कमलोत्सवाऽपि वरकन्या। जयत्विमा गुणनिलया यस्या एकोदरौ शूरौ ॥९४॥

तच्छ्रुत्वा कुमारौ शब्दं बन्दिनः सोदरां भगिनीम्। जानीतस्ततो द्वावपि संवेगपरायणौ जातौ ॥९५॥

धिग्धिगहो ? अकार्यं सर्वं मोहस्य विलसितमेतद्। यत्सोदराऽपि भगिन्यभिलषिता मदनमूढेन ॥९६॥

परिचिन्त्यैतद्द्वावपि संजाततीव्रसंवेगौ। शोकातुरं च जननीं पितरं मुक्त्वा प्रव्रजितौ ॥९७॥

क्षेमंकरोऽपि राजा पुत्रवियोगेन वर्जितारम्भः। संयमतपोनियमरतो मृत्वा गरुडाधिपो जातः ॥९८॥

आसनकम्पेन तत उपसर्गं स्मृत्वा पुत्रयोः। अत्राऽऽगतो महात्मा भवति महालोचन एषः ॥९९॥

योऽपि चानुद्धरः स सङ्घं गृहीत्वा कौमुदीं नगरीम्। प्राप्तः सुसङ्घसहितो यत्र च राजा शुभाधारः ॥१००॥

कान्ता तस्य भवति रति द्वितीयाऽवरुद्धिका मदनवेगा। मुनिवरदत्तसकाशे सम्यक्त्वपरायणा जाता ॥१०१॥

---

१. कोमुइं-प्रत्य०।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह अन्नया नरिन्दो, पुरओ मयणाए भणइ विम्हइओ । घोरं तवोविहाणं, कुणन्ति इह तावसा एए ॥१०२॥
तो भणइ मयणवेगा, इमाण मूढाण को तवो सामि ! । सम्मत्तनाण-दंसण-चरित्तरहियाण दुट्ठाणं ? ॥१०३॥
सुणिऊण वयणमेयं, रुट्ठो च्चिय नरवई इमं भणिओ । अचिरेण इमे पेच्छसु, पडिया एए चरित्ताओ ॥१०४॥
एव भणिऊण तो सा, सगिहं संपत्थिया निसासमए । धूया य नागदत्ता, तवसनिलयं विसज्जेइ ॥१०५॥
गन्तूण य सा कन्ना, तावसगुरवस्स जोगजुत्तस्स । दावेऊण पवत्ता, देहं वरकुङ्कुमविलित्तं ॥१०६॥
अद्धुग्घाडा थणया, गयकुम्भाभं च नाहिपरिवेढं । विउलं नियम्बफलयं, कयलीथम्भोवमे ऊरू ॥१०७॥
तं दट्ठूण [1]वरतणू, खुभिओ च्चिय तावसो समुल्लवइ । बाले ! कस्स वि दुहिया ? इहागया केण कज्जेण ? ॥१०८॥
तो भणइ बालिया सा, सरणागयवच्छला ! निसामेहि । अहयं दोसेण विणा, गिहाओ अम्माए निच्छूढा ॥१०९॥
कासायपाउयङ्गी, अहमवि गेण्हामि तुज्झ नेवच्छं । अणुमोएहि महाजस !, सरणागयवच्छलो होहि ॥११०॥
जं एव बालियाए, भणिओ च्चिय तावसो समुल्लवइ । को हं सरणस्स पिए ! नवरं पुण तुमं महं सरणं ॥१११॥
एव भणिऊण तो सो, मणेण चिन्तेइ उज्जुया एसा । उवगूहिउं पवत्तो, भुयासु मयणग्गितवियङ्गो ॥११२॥
मा मा न वट्टइ इमं, कम्मं विहिवज्जिया अहं कन्ना । गन्तूण मज्झ [2]जणणी, मग्गसु को अम्ह अहिगारो ? ॥११३॥
एव भणिओ पयट्टो, समयं बालाए पत्थिओ भवणं । विन्नवइ पायवडिओ, विलासिणी ! देहि मे कन्नं ॥११४॥

अथान्यदा नरेन्द्रः पुरतो मदनाया भणति विस्मितः । घोरं तपोविधानं कुर्वन्तीह तापसा एते ॥१०२॥
तदा भणति मदनवेगैतेषां मूढानां किं तपः स्वामिन् ? । सम्यक्त्वज्ञानदर्शनचारित्ररहितानां दुष्टानाम् ॥१०३॥
श्रुत्वा वचनमेतद्रुष्ट एव नरपतिरिदं भणितः । अचिरेणेमान् पश्यसि पतिता एते चारित्रात् ॥१०४॥
एवं भणित्वा तदा सा स्वगृहं संप्रस्थिता निशासमये । दुहितरं च नागदत्तां तापसनिलयं विसर्जति ॥१०५॥
गत्वा च सा कन्या तापसगुरो र्योगयुक्तस्य । दर्शयितुं प्रवृत्ता देहं वरकुङ्कुमविलिप्तम् ॥१०६॥
अर्द्धोद्घाटे स्तने गजकुम्भाभं च नाभिपरिवेष्टम् । विपुलं नितम्बफलकं कदलीस्तम्भोपमे ऊरू ॥१०७॥
तां दृष्ट्वा वरतनुं क्षुब्ध एव तापसः समुल्लपति । बाले ? कस्यापि दुहिता इहागता केन कार्येण ॥१०८॥
ततो भणति बालिका सा शरणागतवत्सलाः ? निशाम्यत । अहं दोषेण विना गृहादम्बया निष्काषिता ॥१०९॥
काषायप्रावृतांगिन्यहमपि गृह्णामि तव नेपथ्यम् । अनुमोदस्व महायशः ! शरणागतवत्सलो भव ॥११०॥
यदेवं बालिकया भणित श्चैव तापसः समुल्लपति । कोऽहं शरणस्य प्रिये ! नवरं पुनस्त्वं मम शरणम् ॥१११॥
एवं भणित्वा ततः स मनसा चिन्तयति ऋजुकैषा । उपगुहितुम् प्रवृत्तो भूजाभ्यां मदनाग्नितप्ताङ्गः ॥११२॥
मा मा न वर्तत इदं कर्म विधिवर्जिताऽहं कन्या । गत्वा मम जननीं मार्गय को ममाधिकारः ॥११३॥
एवं भणितः प्रवृत्तः समकं बालया प्रस्थितो भवनम् । विज्ञापयति पादपतितो विलासिनि ! देहि मे कन्याम् ॥११४॥

---

१. वरतणुं-प्रत्य० । २. जणणिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताव च्चिय पढमयरं, कयसंदेसेण नरवरिन्देणं । वेसाए पायवडिओ, दिट्ठो सो तावसो धिट्ठो ॥११५॥

खररज्जुहिं स बद्धो, खलियारं पाविओ पहायम्मि । पुहइ भमन्तो य मओ, किलेसजोणीसु उप्पन्नो ॥११६॥

कम्मपरिनिजजराए, कह वि य मणुयत्तणम्मि आयाओ । धण-बन्धु-सयणरहिओ, जणओ वि गओ परविएसं ॥११७॥

जाए कुमारभावे, हरिया जणणी वि तस्स मेच्छेहिं । अइदुक्खिओ समाणो, तावसधम्मं समल्लीणो ॥११८॥

अइकट्ठं बालतवं, विहिणा काऊण आउगे झीणे । जाओ जोइसवासी, देवो अणलप्पहो नाम ॥११९॥

भयवं अणन्तविरिओ, सिस्सेणं पुच्छिओ विबूहमज्झे । मुणिसुवव्यस्स तित्थे, होही को केवली अन्नो ? ॥१२०॥

भणइ तओऽणन्तबलो, मह निव्वाणं गयस्स होहिन्ति । समणा समाहियमणा, दो वि जणा केवली एत्थ ॥१२१॥

निग्गन्थसमणसीहो, पढमो च्चिय देसभूसणो नामं । कुलभूसणोऽत्थ बीओ, केवलनाणी जगुत्तारो ॥१२२॥

अणलप्पभो वि सुणिउं, केवलिमुहकमलनिग्गयं वयणं । हियएण अणुसरन्तो, निययट्ठाणं समल्लीणो ॥१२३॥

अह अन्नयाऽवहीणं, अम्हे नाऊण एत्थ कयजोगा । जंपइ करेमि मिच्छा, अणन्तविरियस्स वयणं तं ॥१२४॥

अहिमाणेण तुरन्तो, इहागओ पुव्ववेरदढरोसो । काऊण य उवसग्गं, अइघोरं पत्थिओ सघरं ॥१२५॥

नारायणसहिएणं, राघव ! जं ते कयं तु वच्छल्लं । कम्मक्खएण अम्हं, केवलनाणं समुप्पन्नं ॥१२६॥

तावदेव प्रथमतरं कृतसंदेशेन नरवरेन्द्रेण । वेश्याया पादपतितो दृष्टः स तापसो धृष्टः ॥११५॥

खररज्जुभिः स बद्धस्तिरस्कारं प्राप्तः प्रभाते । पृथिवीं भ्रमंश्च मृतः क्लेशयोनिषूत्पन्नः ॥११६॥

कर्मपरिनिर्जरया कथमपि च मनुष्यत्व आयातः । धन-बन्धु-स्वजन रहितो जनकोऽपि गतः परविदेशम् ॥११७॥

जाते कुमारभावे हृता जनन्यपि तस्य म्लेच्छैः । अतिदुःखितः सन् तापसधर्मं समालीनः ॥११८॥

अतिकष्टं बालतपो विधिना कृत्वाऽऽयुष्ये क्षीणे । जातो ज्योतिषस्वामी देवोऽनलप्रभो नाम ॥११९॥

भगवन्नन्तवीर्यः शिष्येण पृष्टो विबुधमध्ये । मुनिसुव्रतस्य तीर्थे भविष्यति कः केवली अन्यः ॥१२०॥

भणति ततोऽनन्तबलो मम निर्वाणं गतस्य भविष्यतः । श्रमणौ: समाधितमनसौ द्वावपि जनौ केवलिनावत्र ॥१२१॥

निग्रंथश्रमणसिंहः प्रथम एव देशभूषणो नाम । कुलभूषणोऽथ द्वितीयः केवलज्ञानिनौ जगदुत्तारौ ॥१२२॥

अनलप्रभोऽपि श्रुत्वा केवलिमुखकमलनिर्गतं वचनम् । हृदयेनानुस्मरन्निजस्थानं समालीनः ॥१२३॥

अथान्यदावधिनावां ज्ञात्वाऽत्र कृतयोगौ । जल्पति करोमि मिथ्याऽनन्तवीर्यस्य वचनं तत् ॥१२४॥

अभिमानेन त्वरमाणेहागतः पूर्ववेरदृढरोषः । कृत्वा चोपसर्गमतिघोरं प्रस्थितः स्वगृहम् ॥१२५॥

नारायणसहितेन राघव ! यत्त्वया कृतं तु वात्सल्यम् । कर्मक्षयेनावयोः केवलज्ञानं समुत्पन्नम् ॥१२६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुणिऊण एवमाई, वेरनिमित्तं तु परभवदुहट्टं । परिहरह वेरकज्जं, धम्मेक्कमणा सया होह ।।१२७।।

एवं ते सुरमणुया, सुणिऊणं देसभूसणुल्लावे । भीया भवदुक्खाणं, सम्मत्तपरायणा जाया ।।१२८।।

ताव य गरुडाहिवई, नमिऊणं केवली भणइ रामं । निसुणेहि मज्झ वयणं, सिणेहदिट्ठी पसारेउं ।।१२९।।

जेणं तु पाडिहेरं, मज्झ सुयाणं कयं सुमणसेणं । जं मग्गसि हियइट्ठं, तं ते वत्थुं पणामेमि ।।१३०।।

परिचिन्तिऊण रामो, भणइ सुरं जइ तुमं पसन्नो सि । तो आवईहि अम्हे, नियमेणं संभरिज्जासु ।।१३१।।

अह ते चउप्पयारा, देवा नमिऊण केवली पयया । निययाणियपरिकिण्णा, जहागया पडिगया सव्वे ।।१३२।।

जे देसभूसणकुलस्स विभूसणाणं, एयं सुणन्ति चरियं सुविसुद्धभावा ।
ते उत्तमा जणियधम्मधुरा समत्था, बोहीफलं च विमलं अणुहोन्ति [१] भव्वा ।।१३३।।

।। इय पउमचरिए देसभूसण-कुलभूसणवक्खाणं नाम एगूणचत्तालं पव्वं समत्तं ।।

श्रुत्वेवमादि वैरनिमित्तं तु परभवदुःखार्त्तम् । परिहरत वेरकार्यं धर्मैकमनसः सदा भवत ।।१२७।।

एवं ते सुरमनुष्याः श्रुत्वा देशभूषणोल्लापान् । भीता भवदुःखात्सम्यक्त्वपरायणा जाताः ।।१२८।।

तावच्च गरुडाधिपति र्नत्वा केवलिनं भणति रामम् । निश्रुणु मम वचनं स्नेहदृष्टिं प्रसार्य ।।१२९।।

येन तु प्रातिहार्यं मम सुतयोः कृतं सुमनसा । यन्मार्गयसि हृदयेष्टं तत्ते त्वर्पयामि ।।१३०।।

परिचिन्त्य रामो भणति सुरं यदि त्वं प्रसन्नोऽसि । तत आपद्भिरस्माकं नियमेन स्मर ।।१३१।।

अथ ते चतुःप्रकारा देवा नत्वा केवलिनं प्रयताः । निजानीकपरिकीर्णा यथागताः प्रतिगताः सर्वे ।।१३२।।

ये देशभूषण-कुलभूषणयोरेतच्छृण्वन्ति चरित्रं सुविशुद्धभावाः ।
त उत्तमा जनितधर्मधूराः समर्था बोधिफलं च विलममनुभवन्ति भव्याः ।।१३३।।

।। इति पद्मचरित्रे देशभूषण-कुलभूषणव्याख्यानं नामैकोनचत्वारिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ।।

---

१. सोक्खं-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४०. रामगिरिउवक्खाणं

सुणिऊण पउमणाभो, मुणिवरवसभाण कुणइ जयसद्दं । एत्तो य समुदएणं, सो वि य पणओ नरिन्देहिं ॥१॥
वंसत्थलपुरसामी, सुप्पभो नरवई भणइ रामं । अम्ह पसाओ कीरउ, पविससु नयरं मणभिरामं ॥२॥
सुट्ठु वि पत्थिज्जन्तो, न पविट्ठो राघवो उ तं नयरं । सव्वनरिन्देहि समं, तत्थेव ठिओ जहिच्छाए ॥३॥
नाणाविहतरुछन्ने, नाणाविहपक्खिकलरवुग्गीए । वरकुसुमगन्धपवणे, निज्झरपवहन्तविमलजले ॥४॥
दप्पणयलसमसरिसा, तक्खणमेत्तेण सज्जिया भूमी । रङ्गावली विरइया, दसद्धवण्णेण चुण्णेणं ॥५॥
सुरहिसुगन्धेण पुणो, समच्चिया बहुविहेहि कुसुमेहिं । सहसा वि समुस्साविया, धय-घण्टा-तोरणा बहवे ॥६॥
आहरण-भूसणाइं, सयणा-ऽऽसण-विविहभोयणाइं । तत्थेव आणियाइं, नरवइआणाए पुरिसेहिं ॥७॥
तत्तो मज्जियजिमिया, समयं सीयाए राम-सोमित्ती । तत्थऽच्छिउं पवत्ता, बहुजणपरिवारिया निच्चं ॥८॥
तत्थेव वंससेले, पउमाणत्तेण नरवरिन्देणं । जिणवरभवणाइं तओ, निवेसियाइं पभूयाइं ॥९॥
कइलाससिहरिसरिसाइं, ताइं धुव्वन्तधयवडायाइं । वीणा-वंस-मणोहरपडुपडहरवोवगीयाइं ॥१०॥
सोभन्ति जिणिन्दाणं, वडिमाओ तेसु पवरभवणेसु । सव्वङ्गसुन्दराओ, नाणावण्णुज्जलसिरीओ ॥११॥

---

४०. रामगिर्युपाख्यानम्

श्रुत्वा पद्मनाभो मुनिवरवृषभानां करोति जयशब्दम् । इतश्च समुदायेन सोऽपि च प्रणतो नरेन्द्रैः ॥१॥
वंशस्थलपुरस्वामी सुरप्रभो नरपती रामम् । अस्माकं प्रसादं कुरु प्रविशनगरं मनोभिरामम् ॥२॥
सुष्टवपि प्रार्थ्यमाणो न प्रविष्टो राघवस्तु तन्नगरम् । सर्वनरेन्द्रैः समं तत्रैव स्थितो यथेच्छया ॥३॥
नानाविधतरुछन्ने नानाविधपक्षिकलरवोद्गीते । वरकुसुमगन्धपवने निर्झरप्रवहद्विमलजले ॥४॥
दर्पणतलसमसदृशा तत्क्षणमात्रेण सज्जिता भूमिः । रङ्गावली विरचिता दशार्द्धवर्णेन चूर्णेन ॥५॥
सुरभिसुगन्धेन पुनः समर्चिता बहुविधैः कुसुमैः । सहसाऽपि समुच्छ्रायता ध्वज-घण्टा-तोरणा बहवः ॥६॥
आभरण-भूषणानि शयनाऽऽसन विविधभोजनानि च । तत्रैवानितानि नरपत्याज्ञया पुरुषैः ॥७॥
ततो मज्जितजिमितौ समकं सीताया राम-सौमित्री । तत्रास्तुं प्रवृत्तौ बहुजनपरिवारितौ नित्यम् ॥८॥
तत्रैव वंशशैले पद्माज्ञात्वेन नरवरेन्द्रेण । जिनवरभवनानि ततो निवेशितानि प्रभूतानि ॥९॥
कैलाशशिखरिसदृशानानि तानि धुन्वद्ध्वजपताकानि । वीणा-वंश-मनोहरपटुपटहरवोपगीतानि ॥१०॥
शोभन्ते जिनेन्द्राणां प्रतिमास्तेषु प्रवरभवनेषु । सर्वाङ्गसुन्दरा नानावर्णोज्ज्वलश्रियः ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह अन्नया कयाई, भणिओ रामेण तत्थ सोमित्ती । मोत्तूण इमं ठाणं, अन्नुद्देसं पगच्छामो ॥१२॥

निसुणिज्जइ कण्णरवा, महाणई तीए अत्थि परएणं । मणुयाण दुग्गमं चिय, तरुबहलं दण्डगारण्णं ॥१३॥

तत्थ समुद्दासन्ने, काऊणं आलयं परिवसामो । भणिओ य लक्खणेणं, जहाऽऽणवेसि त्ति एवेयं ॥१४॥

आपुच्छिऊण रामो, सुरप्पहं निग्गओ गिरिवराओ । समयं चिय सीयाए, पुरओ काऊण सोमित्ती ॥१५॥

रामेण जम्हा भवणोत्तमाणि, जिणिन्दचन्दाण निवेसियाणि ।
तत्थेव तुङ्गे विमलप्पभाणि, तम्हा जणे रामगिरी पसिद्धो ॥१६॥

॥ इय पउमचरिए रामगिरिउवक्खाणं नाम चत्तालं पव्वं समत्तं ॥

अथान्यदा कदाचिद्भणितो रामेण तत्र सौमित्रिः । मुक्त्वेदं स्थानमन्योद्देशं प्रगच्छामः ॥१२॥

निःश्रूयते कर्णरवा महानदी तस्या अस्ति परेण । मनुष्याणां दुर्गममेव तरुबहलं दण्डकारण्यम् ॥१३॥

तत्र समुद्रासन्ने कृत्वाऽऽलयं परिवसामः । भणितश्च लक्ष्मणेन यथाऽऽज्ञापयसीत्येवेदम् ॥१४॥

आपृच्छ्य रामः सुरप्रभं निर्गतो गिरिवरात् । समकमेव सीतायाः पुरतः कृत्वा सौमित्रिम् ॥१५॥

रामेण यस्माद्भवनोत्तमानि जिनेन्द्रचन्द्राणां निवेशितानि ।
तत्रैव तुङ्गे विमलप्रभाणि तस्माज्जने रामगिरिः प्रसिद्धः ॥१६॥

॥ इति पद्मचरित्रे रामगिर्युपाख्यानं नाम चत्वारिंशत्तम उद्देशः समाप्तः ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४१. जडागीपक्खिउवक्खाणं

अह ते अइक्कमेउं, गामा-ऽऽगर-नगरमण्डिए देसे । पत्ता दण्डारण्णे, घणगिरि-तरुसंकडपवेसे ॥१॥

पेच्छन्ति तत्थ [1] सरिया, कण्णरवा विमलसलिलपडिपुण्णा । फल-कुसुमसमिद्धेहिं, संछन्ना पायवगणेहिं ॥२॥

तत्थ उ विमलजलाए, नईए काऊण मज्जणविहाणं । भुञ्जन्ति तरुफलाइं, नाणाविहसाउकलियाइं ॥३॥

विविहं भण्डुवगरणं, वंस-पलासेसु कुणइ सोमित्ती । धन्नं च रण्णजायं, आणेइ फलाणि य बहूणि ॥४॥

अह अन्नया कयाई, साहू मज्झण्हदेसयालम्मि । तवसिरिगवत्थियङ्गा, अवइण्णा गयणमग्गाओ ॥५॥

दट्ठूण मुणिवरे ते, सीया साहेइ राघवस्स तओ । जंपइ इमे महाजस !, पेच्छसु समणे समियपावे ॥६॥

ते पेच्छिऊण रामो, समयं सीयाए सव्वभावेणं । पणमइ पहट्ठमणसो, तिक्खुत्तपयाहिणावत्तं ॥७॥

अह ताण देइ सीया, परमन्नं साहवाण भावेणं । आरण्णजाइयाणं, गावीणं खीरनिप्फन्नं ॥८॥

नारङ्ग-फणस-इङ्गुय-कयली-खज्जूर-नालिएरेसु । उवसाहियं च दिन्नं, सीयाए फासुयं दाणं ॥९॥

अह तत्थ तक्खणं चिय, पारणसमयम्मि गयणमग्गाओ । पडिया य रयणवुट्ठी, गन्धोदय-कुसुमपरिमीसा ॥१०॥

घुट्ठं च अहो दाणं, दुन्दुहिसद्दो य गरुयगम्भीरो । वित्थरइ गयणमग्गे, पूरेन्तो दिसिवहे सव्वे ॥११॥

---

४१. जटागि पक्ष्युपाख्यानम्

अथ तेऽतिक्रम्य ग्रामाऽऽकरनगरमण्डिते देशे । प्राप्ता दण्डकारण्ये घनगिरि तरुसंकटप्रवेशे ॥१॥

पश्यन्ति तत्र सरितां कर्णरवां विमलसलिलप्रतिपूर्णाम् । फलकुसुमसमृद्धैः संच्छन्नां पादपगणैः ॥२॥

तत्र तु विमलजलायां नद्यां कृत्वा मज्जनविधानम् । भुञ्जते तरुफलानि नानाविधस्वादुकलितानि ॥३॥

विविधं भाण्डोपकरणं वंश पलालैः करोति सौमित्रिः । धान्यं चारण्यं जातमानयति फलानि च बहूनि ॥४॥

अथान्यदा कदाचित्साधवो मध्याह्नदेशकाले । तपःश्रीराच्छादिताङ्गा अवतीर्णा गगनमार्गात् ॥५॥

दृष्ट्वा मुनिवरांस्तान्सीता कथयति राघवस्य ततः । जल्पतीमान्महायशः ! पश्य श्रमणान्समितपापान् ॥६॥

तान्दृष्ट्वा रामः समकं सीतायाः सर्वभावेण । प्रणमति प्रहृष्टमनास्त्रिकृत्वः प्रदक्षिणावर्तम् ॥७॥

अथ तेभ्यो ददाति सीता परमान्नं साधुभ्यो भावेन । आरण्यजातानां गवां क्षीरनिष्पन्नम् ॥८॥

नारङ्ग-पनस-इङ्गुद-कदली-खर्जूर-नालिकेरैः । उपसाधितं च दत्तं सीतया प्रासुकं दानम् ॥९॥

अथ तत्र तत्क्षणमेव पारणासमये गगनमार्गात् । पतिता च रत्नवृष्टि र्गन्धोदक-कुसुमपरिमिश्रा ॥१०॥

धृष्टं चाहोदानं दुन्दुभिशब्दश्च गुरुकगम्भीरः । विस्तरति गगनमार्गे पूरयन् दिग्पथः सर्वान् ॥११॥

---

१. सरियं कण्णरवं० पडिपुण्णं० संछन्नं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताव य तत्थारण्णे, गिद्धो दट्ठूण साहवे सहसा । तं चाइसयं परमं, ताहे जाईसरो जाओ ॥१२॥
चिन्तेऊण पवत्तो, हा ! कट्ठं माणुसत्तणम्मि मया । परिगिण्हिऊण मुक्को, धम्मो अन्नोवएसेणं ॥१३॥
परिचिन्तिऊण एवं, संसारुच्छेयकारणनिमित्तं । पक्खी हरिसवसगओ, ताणं चलणोदए लुलिओ ॥१४॥
सो तस्स पभावेणं, जाओ च्चिय रयणरासिसरिसाभो । निव्वत्तपारणाणं, साहूणं पडइ पाएसु ॥१५॥
वेरुलियसरिसनिहसे, उवविट्ठा साहवो सिलावट्टे । परिपुच्छइ पउमाभो, भयवं ! को एरिसो पक्खी? ॥१६॥
पढमं चिय आसि इमो, दुव्वण्णो असुइओ य दुग्गंधो । कह तक्खणेण जाओ, जलन्तमणिरयणसच्छाओ? ॥१७॥
अह भासिउं पवत्तो, [१]सुगुत्तिनामो मुणी मुणियभावो । एसो आसि परभवे, राया वि हु दण्डगो नाम ॥१८॥
विसयस्स मज्झयारे, आसि इहं कण्णकुण्डलं नयरं । तं भुञ्जइ बलसहिओ, नामेणं दण्डगो राया ॥१९॥
तस्स गण-सीलकलिया, नामेणं मक्खरी महादेवी । जिणधम्मभावियमई, साहूणं वन्दणुज्जुत्ता ॥२०॥
नयराउ निग्गएणं, नरवइणा अन्नया मुणिवरिन्दो । दिट्ठो पलम्बियभुओ, झाणत्थो वइरथम्भसमो ॥२१॥
घेत्तूण किण्हसप्पं, कालगयं नरवई विसालिद्धं । निक्खिवइ कण्ठभागे, झाणोवगयस्स समणस्स ॥२२॥
ताव य इमो भुयङ्गो, न फेडिओ मज्झ केणइ नरेणं । ताव य न साहरेमी, जोगमिणं साहुणा मुणियं ॥२३॥
गमिऊण तओ रत्तिं, पुणरवि मग्गेण तेण सो राया । अह निग्गओ पुराओ, पेच्छइ य तहट्ठियं समणं ॥२४॥
फेडेइ य तं सप्पं, विम्हियहियओ नराहिवो एत्तो । जंपइ य अहो ! खन्ती, एरिसिया होइ समणाणं ॥२५॥

तावच्च तत्राऽरण्ये गृद्धो दृष्ट्वा साधून्सहसा । तं चातिशयं परमं तदा जातिस्मृतो जातः ॥१२॥
चिन्तयितुं प्रवृत्तो हा ? कष्टं मनुष्यत्वे मया । परिगृह्य मुक्तो धर्मोऽन्योपदेशेन ॥१३॥
परिचिन्त्यैवं संसारोच्छेदकारणनिमित्तम् । पक्षी हर्षवशगतस्तेषां चरणोदके लुठितः ॥१४॥
स तस्यप्रभावेण जात एव रत्नराशिसदृशाभः । निवृतपारणानां साधूनां पतति पादेषु ॥१५॥
वैडूर्यसदृशनिकष-उपविष्टाः साधवः शीलापट्टे । परिपृच्छति पद्मनाभो भगवन् ! क एतादृश पक्षी ? ॥१६॥
प्रथममेवासीदयं दुर्वर्णो ऽशूचिको दुर्गन्धश्च । कथं तत्क्षणेन जातो ज्वलन्मणिरत्नसच्छायः ॥१७॥
अथ भाषितुं प्रवृत्तः सुगुप्तिनामा मुनि र्मुणितभावः । एष आसीत्परभवे राजाऽपि हु दण्डको नाम ॥१८॥
विषयस्य मध्य आसीदिह कर्णकुण्डलं नगरम् । तं भुनक्ति बलसहितो नाम्ना दण्डको राजा ॥१९॥
तस्य गुणशीलकलिता नाम्ना मस्करी महादेवी । जिनधर्मभावितमतिः साधूनां वन्दनोद्यता ॥२०॥
नगरान्निर्गतेन नरपतिनाऽन्यदा मुनिवरेन्द्रः । दृष्टः प्रलम्बितभुजो ध्यानस्थो वज्रस्तम्भसमः ॥२१॥
गृहीत्वा कृष्णसर्पं कालगतं नरपति र्विषाभिलिष्टम् । निक्षिपति कण्ठभागे ध्यानोपगतस्य श्रमणस्य ॥२२॥
यावच्चायं भुजङ्गो न स्फेटितो मम केनचिन्नरेण । तावच्च न संहरामि योगमिमं साधुना मुणितम् ॥२३॥
गमयित्वा तत्र रात्रिं पुनरपि मार्गेण तेन स राजा । अथ निर्गतः पुरात्पश्यति च तथास्थितं श्रमणम् ॥२४॥
स्फेटयति च तं सर्पं, विस्मितहृध्यो नराधिप इतः । जल्पति च अहो क्षान्ति, एतादृशा भवति श्रमणानाम् ॥२५॥

---

१. तिगुत्तिनामो-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चलणवडिओ नरिन्दो, तं खामेऊण नियनयरत्थो । तत्तो पभूयभत्तिं, कुणइ अईवं मुणिवराणं ॥२६॥

तत्थेव परिव्वाओ, दट्ठूणं नरवइं समणभत्तं । चिन्तेइ पावहियओ, एयाण वहं करावेमि ॥२७॥

चइऊण नियजीयं, परदुक्खुप्पायणे कयमईओ । निग्गन्थरूवधारी, जाओ च्चिय विडपरिव्वाओ ॥२८॥

अन्तेउरं पविट्ठो, समयं देवीए कयसमुल्लावो । दिट्ठो य नरवईणं, भणिओ य इमो अचारित्तो ॥२९॥

तस्सावराहजणिए, आणत्ता किंकरा नरिन्देणं । पीलेह सव्वसमणे, जन्तेसु य मा चिरावेह ॥३०॥

जमदूयसच्छहेहिं, पुरिसेहिं सामियस्स वयणेणं । जन्तेहि सव्वसमणा, उच्छू इव पीसिया सिग्घं ॥३१॥

एक्को तत्थ मुणिवरो, गन्तूणं बाहिरं पडिनियत्तो । पत्तो य नियठाणं, वारिज्जन्तो वि लोएणं ॥३२॥

सो तत्थ पेच्छइ मुणी, जन्तापीलियतणू विवण्णे य । सहसा रोसमुवगओ, हुंकारसमं मुयइ अग्गिं ॥३३॥

नयरं जण-धणपुण्णं, देसो उज्जाण-गिरिवरसमग्गो । समणेण तक्खणं चिय, सव्वो कोवग्गिणा दड्ढो ॥३४॥

जेण पुरा आसि इहं, देसे नामेण दण्डगो राया । तेणं चिय पुहइयले, अह भण्णइ दण्डगारण्णं ॥३५॥

काले समइक्कन्ते, अइबहवे पायवा समुप्पन्ना । सत्ता य अणेगविहा, गय-सूयर-सीहमाईया ॥३६॥

सो दण्डगोऽतिपावो, संसारे हिण्डिऊण चिरकालं । गिद्धो य समुप्पन्नो, एसो रण्णे धिइं कुणइ ॥३७॥

भणिओ य साहवेणं, पक्खी ! मा कुणसु पावयं कम्मं । मा पुणरवि संसारे, हिण्डिहिसि अणन्तयं कालं ॥३८॥

तस्स परिबोहणत्थं, सुगुत्तिनामो कहेइ मुणिवसभो । नियं सुहमसुहफलं, जं दिट्ठं जं च अणुभूयं ॥३९॥

चरणपतितो नरेन्द्रस्तं क्षमित्वा निजनगरस्थः । ततः प्रभूतभक्तिं करोत्यतीवं मुनिवराणाम् ॥२६॥

तत्रैव परिव्राजको दृष्ट्वा नरपतिं श्रमणभक्तम् । चिन्तयति पापहृदय एतेषां वधं कारयामि ॥२७॥

त्यक्त्वा निजजीवं परदुःखोत्पादने कृतमतिः । निग्रन्थरुपधारी जात एव विट्परिव्राट् ॥२८॥

अन्तःपुरं प्रविष्टः समकं देव्या कृत समुल्लापः । दृष्टश्च नरपतिना भणितश्चायमचारित्रः ॥२९॥

तस्यापराधजनित आज्ञाप्ताः किंकरा नरेन्द्रेण । पीडयत सर्वश्रमणान्यन्त्रेषु च मा चिरायत ॥३०॥

यमदूतसदृशैः पुरुषैः स्वामिनो वचनेन । यन्त्रैः सर्वश्रमणा इक्षुरिव पीडिताःशीघ्रम् ॥३१॥

एकस्तत्र मुनिवरो गत्वा बहिः प्रतिनिवृत्तः । प्राप्तश्च निजस्थानं वार्यमाणोऽपि लोकेन ॥३२॥

स तत्र पश्यति मुनीन् यंत्रापीडिततनूविपन्नांश्च । सहसा रोषमुपागतो हुंकारसमं मुञ्चत्यग्निम् ॥३३॥

नगरं जन-धान्यपूर्णं देश उद्यानगिरिवरसमग्रः । श्रमणेन तत्क्षणमेव सर्वः कोपाग्निना दग्धः ॥३४॥

येन पुराऽऽसीदिह देशे नाम्ना दण्डको राजा । तेनैव पृथिवीतले अथ भण्यते दण्डकारण्यम् ॥३५॥

काले समतिक्रान्तेऽतिबहवः पादपाः समुत्पन्नाः । सत्त्वाश्चानेकविधा गज-शुकर-सिंहादयः ॥३६॥

स दण्डकोऽतिपापः संसारे हिण्डित्वा चिरकालम् । गृद्धश्च समुत्पन्न एषोऽरण्ये धृतिं करोति ॥३७॥

भणितश्च साधुना पक्षिन् ! मा कुरु पापकर्म । मा पुनरपि संसारे हिण्डिष्यसेऽनन्तकं कालम् ॥३८॥

तस्य प्रतिबोधनार्थं सुगुप्तिनामा कथयति मुनिवृषभः । निजं शुभाशुभफलं यदृष्टं यच्चानुभूतम् ॥३९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वाणारसीए राया, अयलो नामेण आसि विक्खाओ । भज्जा से होइ सिरी, सिरि व्व रूवेण पच्चक्खा ॥४०॥
साहू सुगुत्तिनामो, पारणवेलाए आगओ तीए । पडिलाभिओवविट्ठो, पुत्तत्थं पुच्छिओ भणइ ॥४१॥
सिट्ठं च मुणिवरेण, दो पुत्ता गब्भसंभवा तुज्झं । होहिन्ति निच्छएणं, भद्दे ! अइसुन्दरायारा ॥४२॥
अह ते कमेण जाया, दोण्णि वि पुत्ता सिरीए देवीए । सव्वजणनयणकन्ता, ससि-सूरसमप्पभसरीया ॥४३॥
जम्हा सुगुत्तिमुणिणा, आइट्ठा दो वि ते समुप्पन्ना । तम्हा सुगुत्तिनामा, कया य पियरेण तुट्ठेणं ॥४४॥
तावऽन्नो संबन्धो, जाओ गन्धावईए नयरीए । रायपुरोहियतणया, सोमस्स दुवे कुमारवरा ॥४५॥
पढमो होइ सुकेऊ, बीओ पुण अग्गिकेउनामो य । एवं चेव सुकेऊ, कयदारपरिग्गहो जाओ ॥४६॥
अह अन्नया सुकेऊ, सुहकम्मुदएण जायसंवेगो । पव्वइओ खायजसो, अणन्तविरियस्स पासम्मि ॥४७॥
इयरो वि अग्गिकेऊ, भाउविओगम्मि दुक्खिओ सन्तो । वाणारसिं च गन्तुं, अणुवत्तइ तावसं धम्मं ॥४८॥
सुणिऊण भायरं सो, तावसधम्मुज्जयं सिणेहेणं । चलिओ तत्थ सुकेऊ, तस्स य परिबोहणट्ठाए ॥४९॥
दट्ठूण गमणसज्जं, भणइ सुकेउं गुरू सुणसु एत्तो । सो तावसो विवायं, करिही समयं तुमे दुट्ठो ॥५०॥
अह जण्हवीए तीरे, कन्ना महिलासु तीसु समसहिया । दिवसस्स एगजामे, एही चित्तंसुयनियत्था ॥५१॥
चिन्धेसु एवमाई, नाऊणं तं तुमे भणेज्जासु । जइ अत्थि किंपि नाणं, जाणसु कन्नाए सुह-दुक्खं ॥५२॥
सो तं अजाणमाणो, अन्नाणी तावसो विलक्खो सो । होही परब्भवो से, कन्नाए तुमं कहेज्जासु ॥५३॥

वाराणस्यां राजाऽचलो नाम्नासीद्विख्यातः । भार्या तस्य भवति श्रीः श्रीरिव रुपेण प्रत्यक्षा ॥४०॥
साधुः सुगुप्तिनामा पारणकवेलायामागतस्तया । प्रतिलाभितोपविष्टः पुत्रार्थं पृष्टो भणति ॥४१॥
शिष्टं च मुनिवरेण द्वौ पुत्रौ गर्भसम्भवौ तव । भविष्यतो निश्चयेन भद्रे ! अतिसुन्दराकारौ ॥४२॥
अथ तौ क्रमेण जातौ द्वावपि पुत्रौ श्रिया देव्याः । सर्वजननयनकान्तौ शशि-सूर्यसमप्रभाश्रियौ ॥४३॥
यस्मात्सुगुप्तिमुनिनाऽऽदिष्टौ द्वावपि तौ समुत्पन्नौ । तस्मात्सुगुप्तिनामानौ कृतौ च पित्रा तुष्टेन ॥४४॥
तावदन्यः सम्बन्धो जातो गन्धावत्यां नगर्याम् । राजपुरोहिततनयौ सोमस्य द्वौ कुमारवरौ ॥४५॥
प्रथमो भवति सुकेतु द्वितीयः पुनरग्निकेतुनामा च । एवमेव सुकेतुः कृतदारापरिग्रहो जातः ॥४६॥
अथान्यदा सुकेतुः शुभकर्मोदयेन जातसंवेगः । प्रव्रजितः ख्यातयशा अनन्तवीर्यस्य पार्श्वे ॥४७॥
इतरोऽप्यग्निकेतु र्भ्रातृवियोगे दुःखितः सन् । वाराणसीं च गत्वानुवर्तते तापसं धर्मम् ॥४८॥
श्रुत्वा भ्रातरं स तापसधर्मोद्यतं स्नेहेन । चलितस्तत्र सुकेतुस्तस्य च प्रतिबोधनार्थे॥४९॥
दृष्ट्वा गमनसज्जं भणति सुकेतुं गुरुः श्रुण्वितः । स तापसो विवादं करिष्यति समकं त्वया दुष्टः ॥५०॥
अथ जाह्नव्यास्तीरे कन्या महिलाभिस्त्रिभिः समसहिता । दिवसस्यैकयामे आगमिष्यति चित्रांशुकनेपथ्या ॥५१॥
चिह्नैरेवमादिभि ज्ञात्वा तां त्वं भणेः । यद्यस्ति किमपि ज्ञानं जानीहि कन्यायाः सुखदुःखम् ॥५२॥
स तामज्ञायमानोऽज्ञानी तापसो विलक्षः सः । भविष्यति परभवस्तस्याः कन्यायास्त्वं कथयेः ॥५३॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थत्थ वणियगोत्ते, पवरो नामेण बहुधणाइण्णो । तस्सेसा अङ्गरुहा, भण्णइ रुइर त्ति विक्खाया ॥५४॥

एत्तो य तइयदियहे, करिही कालं इमा सकम्मेहिं । होही कुव्वरगामे, मेसी य विसालनामस्स ॥५५॥

सा मारिया वि तेणं, महिसी होऊण पुण मया सन्ती । होही विसालधूया, पवरस्स उ नियमामस्स ॥५६॥

भणिऊण वयणमेयं, पणमिय गुरुवं गओ अह सुकेऊ । पत्तो तावसनिलयं, तेहि समं कुणइ वायत्थं ॥५७॥

जं गुरुणा उवइट्ठं, तं सव्वं तावसाण परिकहियं । सुणिऊण अग्गिकेऊ, तं संबन्धं च पडिबुद्धो ॥५८॥

तत्तो विसालधूया, लद्धा पवरेण नामउ विधूया । एत्तो विवाहसमए, सो भणिओ अग्गिकेऊणं ॥५९॥

मा परिणसु पवर ! तुमं, एसा ते आसि परभवे धूया । अन्ने वि तीए जम्मा, विसालपुरओ समक्खाया ॥६०॥

सरिऊण पुव्वजाइं, सा कन्ना जाय तिव्वजायसंवेगा । नेच्छइ य विवाहविहिं, नवरं चिय महइ पव्वज्जं ॥६१॥

पवरस्स विसालस्स य, ववहारो तीए कारणे जाओ । अम्हं पिओ सभाए, दोण्ह वि उल्लावसंलावो ॥६२॥

सा कन्ना पव्वइया, अम्हे वि य तं सुणेवि वित्तन्तं । जाया निग्गन्थमुणी, पासम्मि अणन्तविरियस्स ॥६३॥

एवं मोहवसेणं, जीवाणं होन्ति कुच्छियायारा । जणणी सुया य बहिणी, जायइ महिला विहिवसेणं ॥६४॥

सुणिऊण तं जडागी, अहिययरं भवसमूहदुक्खाणं । भीओ करेइ सद्दं, कलुणं चिय धम्मगहणट्ठे ॥६५॥

तं भणइ सुगुत्तमुणी, भद्द ! तुमं मा करेहि परपीडं । अलियं अबम्भचेरं, जावज्जीवं विवज्जेहि ॥६६॥

राईभोयणविरई, करेहि मंसस्स वज्जणं चेव । उववासविहिं च पुणो, भावेण जहाणुसत्तीए ॥६७॥

अस्त्यत्र वणिक्गोत्रे प्रवरो नाम्ना बहुधनाकीर्णः । तस्यैषाङ्गरुहा भण्यते रुचिरेति विख्याता ॥५४॥

इतश्च तृतीयदिवसे करिष्यति कालमिदं स्वकर्मभिः । भविष्यति कुब्बरग्रामे मेषी च विशालनाम्नः ॥५५॥

सा मारिताऽपि तेन महिषी भूत्वा पुन मृता सती । भविष्यति विशालदुहिता प्रवरस्य तु निजमातुलस्य ॥५६॥

भणित्वा वचनमेतत्प्रणम्य गुरूङ्गतोऽथ सुकेतुः । प्राप्तस्तापसनिलयं तैः समं करोति वादार्थम् ॥५७॥

यद्गुरुणोपदिष्टं तत्सर्वं तापसानां परिकथितम् । श्रुत्वाऽग्निकेतुस्तत्सम्बन्धं च प्रतिबुद्धः ॥५८॥

ततो विशालदुहिता लब्धा प्रवरेण नामतो विधूता । इतो विवाहसमये स भणितोऽग्निकेतुना ॥५९॥

मा परिणय प्रवर ? त्वमेषा तवासीत्परभवे दुहिता। अन्यान्यपि तस्या जन्मानि विशालपुरतः समाख्याताः ॥६०॥

स्मृत्वा पूर्वजातिं सा कन्या जात तीव्रजातसंवेगा । नेच्छति च विवाहविधिं केवलमेव काङ्क्षते प्रव्रज्याम् ॥६१॥

प्रवरस्य विशालस्य च व्यवहारस्तस्याः कारणेन जातः । आवां पितुः सभायां द्वयोरप्युल्लापसंलापः ॥६२॥

सा कन्या प्रव्रजिताऽऽवामपि च तच्छ्रुत्वा वृतान्तम् । जातौ निग्रन्थमुनी पार्श्वेऽनन्तवीर्यस्य ॥६३॥

एवं मोहवशेन जीवानां भवन्ति कुत्सिताचाराः । जननी सुता च भगिनी जायते महिला विधिवशेन ॥६४॥

श्रुत्वा तज्जटाक्यधिकतरं भवसमुहदुःखानाम् । भीतः करोति शब्दं करुणमेव धर्मग्रहणार्थे ॥६५॥

तं भणति सुगुप्तमुनि र्भद्र ! त्वं माकुरु परपीडाम् । अलिकमब्रह्मचर्यं यावज्जीवं विवर्जय ॥६६॥

रात्रिभोजनविरतिः कुरु मांसस्य वर्जनमेव । उपवासविधिं च पुनर्भावेन यथानुशक्त्या ॥६७॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वारेऊण कसाए, निच्चं जिण-मुणिनमंसणुज्जुत्तो । होहि परलोगकङ्खी, जेण भवोहं समुत्तरसि ॥६८॥

जं मुणिवरेण भणियं, तं सव्वं गेण्हिऊण भावेणं । पक्खी हरिसवसगओ, सावयधम्मुज्जओ जाओ ॥६९॥

भणिया य साहवेणं, जणयसुया पक्खिणं इमं भद्दे ! । रक्खेज्जसु पययमणा, सम्मद्दिट्ठी इहारण्णे ॥७०॥

दाऊण य उवएसं, निययट्ठामं गया मुणिवरिन्दा । सीया वि पक्खिणं तं, संभमहियया परामुसइ ॥७१॥

सुणिऊण दुन्दुभिरवं, ताव य लच्छीहरो गयारूढो । तत्थाऽऽगओ य पेच्छइ, पव्वयमेत्तं रयणरासिं ॥७२॥

अह लक्खणस्स एत्तो, कोउगगहियस्स रामदेवेणं । परिकहिओ वित्तन्तो, भिक्खादाणाइओ सव्वो ॥७३॥

धम्मस्स पेच्छ विउलं, माहप्पं इह भवेसु गहियस्स । जेणेरिसो वि गिद्धो, जाओ इन्दाउहसवण्णो ॥७४॥

जेण उ रेहन्ति सिरे, जडाउ मणि-रयण-कञ्चणमईओ । तेणं चिय वाहरिओ, तेहि जडाई पहट्ठेहिं ॥७५॥

रामस्स लक्खणस्स य, पुरओ य उवट्ठिओ विणयजुत्तो । भुञ्जइ सुसाउकलियं, सीयाए पसाहियाहारं ॥७६॥

जिणवन्दणं तिसज्झं, सीयाए समं करेइ पययमणो । अच्छइ ताणऽल्लीणो, पक्खी अवियण्हदिट्ठीओ ॥७७॥

रक्खिज्जमाणो जणयङ्गयाए, निच्चं सुणन्तो जिणगीययत्थं ।
पणच्चिओ धम्मगुणाणुरत्तो, जाओ जडागी विमलाणुभावो ॥७८॥

॥ इय पउमचरिए जडागीपक्खिउवक्खाणं नाम एगचत्तालं पव्वं समत्तं ॥

वारयित्वा कषायान्नित्यं जिनमुनिनमनोद्युक्तः । भव परलोककाङ्क्षी येन भवौघं समुत्तरसि ॥६८॥

यन्मुनिवरेण भणितं तत्सर्वं गृहीत्वा भावेन । पक्षी हर्षवशगतः श्रावकधर्मोद्यतो जातः ॥६९॥

भणिता च साधुना जनकसुता पक्षिणमिमं भद्रे ! । रक्ष प्रयतमनाः सम्यग्दृष्टिरिहारण्ये ॥७०॥

दत्वा चोपदेशं निजस्थानं गता मुनिवरेन्द्राः । सीताऽपि पक्षिणं तं संभ्रमहृदया परामृशति ॥७१॥

श्रुत्वा दुन्दुभिरवं तावच्च लक्ष्मीधरो गजारुढः । तत्राऽऽगतश्च पश्यति पर्वतमात्रं रत्नराशिम् ॥७२॥

अथ लक्ष्मणस्येतः कौतुकगृहीतस्य रामदेवेन । परिकथितो वृत्तान्तो भिक्षादानादिकः सर्वः ॥७३॥

धर्मस्य पश्य विपुलं माहात्म्यमिह भवे गृहीतस्य । येनेदृशोऽपि गृद्धो जात इन्द्रायुधसवर्णः ॥७४॥

येन तु राजते शिरसि जटायु र्मणि रत्न-कञ्चनमयः । तेनैव व्याहृतस्तै र्जटाकीप्रहृष्टैः ॥७५॥

रामस्य लक्ष्मणस्य च पुरतश्चोपस्थितो विनययुक्तः । भुनक्ति सुस्वादुकलितं सीतया प्रसाधिताहारम् ॥७६॥

जिनवन्दनं त्रिःसन्ध्यं सीतायाः समं करोति प्रयतमनाः । आस्ते तेषामालीनः पक्ष्यवितृष्णदृष्टिकः ॥७७॥

रक्ष्यमाणो जनकाङ्गजया नित्यं श्रुण्वञ्जिनगीतार्थम् । प्रणर्तितो धर्मगुणानुरक्तो जातो जटायु र्विमलानुभावः ॥७८॥

॥ इति पद्मचरित्रे जटाकिपक्ष्युपाख्यानं नामैकचत्वारिंशत्तमंपर्वं समाप्तम् ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४२. दण्डगारण्णनिवासविहाणं

अह ते दसरहतणया, दिन्नेण सुपत्तदाणतेएणं । पत्ता य रयणवुट्ठी, पुण्णं च समज्जियं विउलं ॥१॥

अन्नं च हेममइयं, मणि-रयणोचूलमण्डियाडोवं । सयणा-ऽऽसणसंजुत्तं, सलिलियधुव्वन्तधयालं ॥२॥

चउतुरयसमाउत्तं, पत्ता य रहं सुरेसुउवणीयं । वियरन्ति तत्थ रण्णे, अभिरममाणा जहिच्छाए ॥३॥

कत्थइ दियहं पक्खं, कत्थइ मासं मणोहरुद्देसे । अच्छन्ति ते कयत्था, कीलन्ता निययलीलाए ॥४॥

अह ते वणतरुगहणं, लङ्घेऊणं च पव्वए बहवे । अब्भन्तरं पविट्ठा, तस्सारण्णस्स भयरहिया ॥५॥

वड-धव-सिरीस-धम्मण-अज्जुण-पुन्नाग-तिलय-आसत्था ।
सरल-कयम्ब-ऽम्बाडय-दाडिम-अङ्कोल्ल-बिल्ला य ॥६॥

उम्बर-खइर-कविट्ठा, तेन्दुग-वंसा य लोणरुक्खा य । सागा य निम्ब-फणसा, अम्बतरू नन्दिरुक्खा य ॥७॥

वउल-तिलया-ऽइमुत्तय-कोरिण्टय-कुडय-कुज्जयाइण्णं । चम्प-सहयार-अरलुग-कुन्दलयामण्डिउद्देसं ॥८॥

खज्जूरीसु समीसु य, केयइ-बयरीसु नालिएरीसु । कयलीसु य संछन्नं, अहियं चिय माउलिङ्गीसु ॥९॥

तं एवमाइएहिं, तरूहि नाणाविहप्पयारेहिं । नन्दणवणं व नज्जइ, सव्वत्तो सुन्दरायारं ॥१०॥

पुण्डुच्छुमाइएसु य, सभावजाएसु सस्सनिवहेसु । रेहइ सरेसु रण्णं, कमलुप्पलभरियसलिलेसु ॥११॥

---

४२. दण्डकारण्यनिवासविधानम्

अथ तौ दशरथतनयौ दत्तेन सुपात्रदानेन । प्राप्ता च रत्नवृष्टिः पुण्यं च समर्जितं विपुलम् ॥१॥

अन्यच्च हेममयं मणिरत्नावचूलमण्डिताटोपम् । शयनाऽऽसनसंयुक्तं सललितधुन्वद्ध्वजमालम् ॥२॥

चतुस्तुरगसमायुक्तं प्राप्तौ च रथं सुरैरुपनीतम् । विचरतस्तत्रारण्येऽभिरममाणौ यथेच्छया ॥३॥

कुत्रचिद्दिवसं पक्षं, कुत्रचिन्मासं मनोहरोद्देशे । आसाते तौ कृतार्थौ क्रीडन्तौ निजलीलया ॥४॥

अथ तौ वनतरुगहनं लङ्घित्वा च पर्वतान् बहून् । अभ्यन्तरं प्रविष्टौ तस्यारण्यस्य भयरहितौ ॥५॥

वट-धव-शिरिष-धम्मणा-ऽर्जुन-पुन्नाग-तिलकाऽऽश्वत्थाः । सरल-कदम्बाऽऽम्रातक-दाडिमा-ऽङ्कोल-बिल्वाश्च ॥६॥

उदुम्बर-खदिर-कपित्थास्तिन्दुक-वंशाश्च लवणवृक्षाश्च । सागाश्च निम्ब-पनसा आम्रतरु-नन्दिवृक्षाश्च ॥७॥

बकुल-तिलकातिमुक्तक-कोरण्टक-कुटज-कुब्जाकीर्णम् । चम्पक-सहकाराऽरटु-कुन्दलतामण्डितोद्देशम् ॥८॥

खर्जूरीभिः शमीभिश्च केतकी-बदरै र्नालिकेरैः । कदलीभिश्च संच्छन्नमधिकमेव मातुलिङ्गैः ॥९॥

तदेवमादिभिस्तरुभि र्नानाविधप्रकारैः । नन्दनवनमिव ज्ञायते सर्वतः सुन्दराकाराम् ॥१०॥

पुण्ड्रेक्ष्वादिभिश्च स्वभाव-जातैः शस्यनिवहैः । राजभते सरोभिररण्यं कमलोत्पलभृतसलिलैः ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गय-चमर-सरभ-केसरि-वराह-मय-महिस[१]-चित्तयाइण्णं ।
ससय-सय-वग्घ-रोहिय-तरच्छ-भल्लाउलं निच्चं ॥१२॥

कत्थइ फलोणयदुमं, कत्थइ सियकुसुमधवलिउद्देसं । कत्थइ नीलं हरियं, कत्थइ रत्तारुणच्छायं ॥१३॥
दण्डयगिरिस्स सिहरे, नामेण य दण्डओ महानागो । तेण इमं ससिवयणे, दण्डारण्णं जणे सिट्ठं ॥१४॥
एसा वि य कुञ्चरवा, महानई विमलसलिलपरिपुण्णा । कलहंसकलयलरवा, सच्छन्दरमन्तपक्खिउला ॥१५॥
उभयतडट्ठियपायव-निवडियवरकुसुमपिञ्जरतरङ्गा । चडुलयरमयरकच्छभ-निच्चंचियविलुलियावत्ता ॥१६॥
तं दट्ठूण [२]वरनई, जणयसुया भणइ राघवं एत्तो । जलमज्जणं महाजस !, किं न खणेक्कं कह रमामो ? ॥१७॥
भणिऊण एवमेयं, अवइण्णो राघवो सह पियाए । मज्जइ विमलजलोहे, करि व्व समयं करेणूए ॥१८॥
सुमहुरसरपरिहत्थं, जलमुखं राघवो बहुवियप्पं । पहणइ लीलायन्तो, हरिसं घरिणीए कुणमाणो ॥१९॥
सीया वि तत्थ सलिले, घेत्तूणं सुरहिपुण्डरीयाइं । दइयस्स पवरकण्ठे, आलयइ निलीणभमराइं ॥२०॥
अह ते तत्थ महुयरा, रामेण समाहया परिभमेउं । सीयाए वयणकमले, निलिन्ति पउमाहिसङ्काए ॥२१॥
सा ते मत्तमहुयरे, असमत्था वारिउं अइपभूए । सहस त्ति पउमनाभं, अवगूहइ महिलिया धणियं ॥२२॥
गायन्ति व्व महुयरा, जयसद्दं पक्खिणो इव कुणन्ति । सुहडा व तडल्लीणा, सत्ता रामस्स मज्जणए ॥२३॥
तो सिसिरसीयलबले, विहिणा परिमज्जिउं जहिच्छाए । उत्तरइ पउमनाहो, नईए समयं पिययमाए ॥२४॥
सव्वङ्गकयाभरणो, अइमुत्तयमण्डवे [३]सुहनिविट्ठो । पउमो भणइ कणिट्ठं, सुणेहि मह सन्तियं वयणं ॥२५॥

गज-चमर-शरभ-केसरि-वराह-मृग-महिष-चित्रकाकीर्णम् । शशक-शत-व्याघ्र-रोज्झ-तरक्ष-भल्लाकुलं नित्यम् ॥१२॥
कुत्रचित्फलावनतद्रुमं कुत्रचिच्छ्वेतकुसुमधवलितोद्देशम् । कुत्रचिन्नीलं हरितं, कुत्रचिद्रक्तारुणच्छायम् ॥१३॥
दण्डकगिरेः शिखरे नाम्ना च दण्डकमहानागः । तेनेदं शशिवदने ! दण्डकारण्यं जने शिष्टम् ॥१४॥
एषाऽपि च क्रौञ्चरवा महानदी विमलसलिलपरिपूर्णा । कलहंसकलकलरवा स्वच्छन्दरममाणपक्षिकुला ॥१५॥
उभयतटस्थितपादपनिपतितवरकुंसुमपिञ्जरतरङ्गा । चटुलतरमकरकच्छभनित्यमेवविलुलितावर्त्ता ॥१६॥
तां दृष्ट्वा वरनदिं जनकसुता भणति राघवमितः । जलमज्जनं महायशः ! किं न क्षणमेकमिह रमावहे ॥१७॥
भणित्वेवमेतदवतीर्णो राघवः सह प्रियया: । मज्जति विमलजलौघे करिरिव समकं करेण्वा ॥१८॥
सुमधुरस्वरदक्षं जलमुखं राघवो बहुविकल्पम् । प्रहन्ति लीलायन्हर्षं गृहिण्याः क्रीयमाणः ॥१९॥
सीताऽपि तत्र सलिले गृहीत्वा सुरभिपुण्डरिकाणि । दयितस्य प्रवरकण्ठ आरोपयति निलीनभ्रमराणि ॥२०॥
अथ ते तत्र मधुकराः, रामेण समाहताः परिभ्रम्य । सीताया वदनकमले नीलीयन्ति पद्माभिशङ्कया ॥२१॥
सा तान्मत्तमधुकरान्नसमर्था वारितुमतिप्रभुतान् । सहसेति पद्मनाभमालिङ्गति महिला धणियम् ॥२२॥
गायन्तीव मधुकरा जयशब्दं पक्षिण इव कुर्वन्ति । सुभटा इव तटालीनाः सत्त्वा रामस्य मज्जनके ॥२३॥
ततः शिशिरशीतलजले विधिना परिमज्ज्य यथेच्छया । उत्तरति पद्मनाभो नद्याः समकं प्रियतमया ॥२४॥
सर्वांगकृताभरणोऽतिमुक्तकमण्डपे सुखनिविष्टः । पद्मो भणति कनिष्ठं श्रुणु मम सत्कं वचनम् ॥२५॥

---

१. ०ससावयाइण्णं-मु० । २. वरनई-प्रत्य० । ३. सुहनिसन्नो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थेत्थ फलसमिद्धदुमा लयामण्डवेसु उववेया । सच्छोदया य सरिया, गिरी वि एसो रयणपुण्णो ॥२६॥
सिग्घं आणेहि पिया, जणणीहि समं च बन्धवा सव्वे । काऊण पइट्ठाणं, रमणिज्जे एत्थ अच्छामो ॥२७॥
भणिओ य लक्खणेणं, एव पहू जं तुमे समुद्दिट्ठं । अम्हं पि य कुणइ धिई[1], एयं चिय दण्डगारण्णं ॥२८॥
अह ताण तत्थ रण्णे, अच्छन्ताणं अइच्छिओ गिम्हो । गज्जन्तमेहनिवहो, संपत्तो पाउसो कालो ॥२९॥
गयणं समोत्थरन्ता, मेहा कज्जलनिहा [2]कयाडोवा । वरिसेऊण पवत्ता, धारासंभिन्नमहिवेढा ॥३०॥
घणपडलसमुब्भूओ, अइचण्डो सव्वओ सगसगेन्तो । नच्चावेइ तरुगणे, पवणो अन्नोन्नभेएहिं ॥३१॥
नीला हरिया पीया, अन्ने वा पण्डुरा घणा गयणे । रेहन्ति संचरन्ता, अचिराभामण्डिउद्देसा ॥३२॥
उब्भिन्नकन्दलदला, हरियङ्कुरसामला मही जाया । सर-सरसि-वावि-वप्पिण-नवजलभरिया नईपवहा ॥३३॥
भणिओ य राघवेणं, कुमार ! एयारिसे जलयकाले । न हु जुज्जइ तुह गमणं, पडन्नवसलिलवाहुल्ले ॥३४॥
सामच्छिऊण एवं, समासयं सुन्दरं समल्लीणा । सीया-जडागिसहिया, ततथ ठिया राम-सोमित्ती ॥३५॥

एवं कहासु विविहासु रईसमग्गा, आहार-पाण-सयणाऽऽसणसंपउत्ता ।
कालं गमेन्ति सलिलोहतडिच्छडालं, रण्णे सुहेण निययं विमलप्पभावा ॥३६॥

॥ इय पउमचरिए दण्डगारण्णनिवासविहाणं नाम बायालीसइमं पव्वं समत्तं ॥

सन्त्यत्र फलसमृद्धद्रुमा लतामण्डपैरुपपेताः । स्वच्छोदका च सरिता गिरिरप्येष रत्नपूर्णः ॥२६॥
शीघ्रमानय प्रियाञ्जननिभिः समं च बान्धवान्सर्वान् । कृत्वा प्रतिष्ठानं रमणीयेऽत्रास्महे ॥२७॥
भणितश्च लक्ष्मणेनैवं प्रभो ! यत्त्वया समुदिष्टम् । अस्माकमपि च करोति धृतिरेतदेव दण्डकारण्यम् ॥२८॥
अथ तेषां तत्रारण्य आसीनानामतिक्रान्तो ग्रीष्मः । गर्जन्मेघनिवहः संप्राप्तः प्रावृट् कालः ॥२९॥
गगनं समवस्तरन्तो मेघाः काजलनिभाः कृताटोपाः । वर्षितुं प्रवृत्ता धारासंभिन्नमहीपीठाः ॥३०॥
घनपटलसमुद्भूतोऽतिचण्डः सर्वतः सगसगायन् । नर्तयति तरुगणान्पवनोऽन्योन्यभेदैः ॥३१॥
नीला हरिताः पीता अन्ये वा पाण्डुराः घना गगने । राजभन्ते सञ्चरन्तो ऽचिराभामण्डितोद्देशाः ॥३२॥
उभिन्नकन्दलदला हरिताङ्कुरश्यामला मही जाता । सरः सरसी-वापी-क्षेत्र-नवजलभृता नदीप्रवाहा ॥३३॥
भणितश्च राघवेन कुमार ! एतादृशे जलदकाले । न हु युज्यते तव गमनं पतन्नवसलिलबाहुल्ये ॥३४॥
पर्यालोच्यैवं समाश्रयं सुंदर समालीनौ । सीता-जटाकिसहितौ तत्र स्थितौ राम-सौमित्री ॥३५॥

एवं कथाभिर्विविधाभी रतिसमग्रा आहार-पान-शयनाऽऽसनसंप्रयुक्ताः ।
कालं गमयन्ति सलिलौघतडिच्छ्यलमरण्ये सुखेन नित्यं विमलप्रभावाः ॥३६॥

॥ इति पद्मचरित्रे दण्डकारण्यनिवासविधानं नाम द्वाचत्वारिंशत्तमं पर्व समाप्तम् ॥

---

१. धिई-प्रत्य० । २. महाडोवा-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४३. संबुक्कवहणपव्वं

एवं पाउसकालो, तत्थऽच्छन्ताण ताण वोलीणो । सरओ च्चिय संपत्तो, कमलवणाणं सिरिं देन्तो ॥१॥

मेहमलपडलमुक्कं, धोयं धारासु निम्मलं जायं । रेहइ जलं व गयणं, तारा-कुमुएसु ससि-हंसं ॥२॥

घणवायविमुक्काइं, लहिऊण सुहत्थियं पहट्ठाइं । पल्लवकरेसु नज्जइ, नच्चन्ति व काणणवणाइं ॥३॥

पक्खीण कलयलरवो, पवियम्भइ हंस-सारसाईणं । सरियासु सरवरेसु य, कमलुप्पलभरियसलिलेसु ॥४॥

एवंविहम्मि सरए, जाए जेट्ठाणुमोइओ एत्तो । रण्णं परिभममाणो, अग्घायइ लक्खणो गन्धं ॥५॥

चिन्तेइ तो मणेणं, कस्सेसो सुरहिसीयलो गन्धो ? । किं वा तरुस्स कस्स वि, एत्थल्लीणस्स व सुरस्स ? ॥६॥

पुच्छइ मगहाहिवई, भयवं ! सो कस्स सुरहिवरगन्धो ? । नारायणो महप्पा, जेणं चिय विम्हयं पत्तो ॥७॥

अह भणइ इन्दभूई, सेणिय ! बीयस्स जिणवरिन्दस्स । सरणं चिय संपत्तो, एक्को विज्जाहरनरिन्दो ॥८॥

घणवाहणो त्ति नामं, भणिओ भीमेण रक्खसिन्देणं । गेण्हसु लङ्कानयरी[1], रक्खसदीवे तिकूडत्था[2] ॥९॥

अन्नं पियं रहस्सं, जम्बूभरहस्स दक्खिणदिसाए । लवणजलस्सुत्तरओ, ठाणं पुढवीए विवरत्थं ॥१०॥

तं जोयणद्धभागं, गन्तूण अहो य दण्डगगिरिस्स । रेहइ गुहामुहत्थं, दिव्वं मणितोरणं विउलं ॥११॥

---

४३. शंबुकवधनपर्वम्

एवं प्रावृट्कालस्तत्रासीनानां तेषां व्यतीतः । शरदेव संप्राप्ता कमलवनानां श्रियं ददती ॥१॥

मेघमलपटलमुक्तं धौतं धाराभि र्निमलं जातम् । शोभते जलमिव गगनं ताराकुमुदैः शशि-हंसम् ॥२॥

घनवातविमुक्तानि लब्ध्वा स्वस्तिकाः प्रहृष्टानि । पल्लवकरै र्ज्ञायते नृत्यन्तीव काननवनानि ॥३॥

पक्षीणां कलकलरवः प्रविजृम्भति हंस-सारसादीनाम् । सरित्सु सरःसु च कमलोत्पलभृतसलिलेषु ॥४॥

एवंविधे शरदि जाते ज्येष्ठानुमोदित इतः । अरण्यं परिभ्रमन्नाघ्राति लक्ष्मणो गन्धम् ॥५॥

चिन्तयति ततो मनसा कस्यैष सुरभिशीतलो गन्धः ? । किं वा तरोः कस्याप्यत्रालीनस्य वा सुरस्य ॥६॥

पृच्छति मगधाधिपति र्भगवन् ! स कस्य सुरभिवरगन्धः ? । नारायणो महात्मा येनैव विस्मयं प्राप्तः ॥७॥

अथ भणतीन्द्रभूतिः श्रेणिक ! द्वितीयस्य जिनवरेन्द्रस्य । शरणमेव संप्राप्त एकोविद्याधरनरेन्द्रः ॥८॥

घनवाहन इति नाम भणितो भीमेन राक्षसेन्द्रेण । गृहाण लङ्कानगरीं राक्षसद्वीपे त्रिकूटस्थाम् ॥९॥

अन्यदपि रहस्यं जम्बूभरतस्य दक्षिणदिशि । लवणजलस्योत्तरतः स्थानं पृथिव्या विवरस्थम् ॥१०॥

तं योजनार्द्धभागं गत्वाधश्च दण्डकगिरेः । शोभते गुहामुखस्थं दिव्यं मणितोरणं विपुलम् ॥११॥

---

१. नयरि-प्रत्य० । २. तिकूडत्थं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं पविसिऊण अन्तो, अत्थि अलङ्कारपुरवरं रम्मं । परचक्कदुप्पवेसं, सव्वुवगरणेसु संजुत्तं ॥१२॥

एवं चिय परिकहिए, अणुणाओ मेहवाहणो गन्तुं । लङ्कापुरीए रज्जं, करेइ इन्दो इव जहिच्छं ॥१३॥

न य रक्खसा न देवा, रक्खसदीवं तु जेण रक्खन्ति । विज्जाहरा जणेणं, वुच्चन्ति उ रक्खसा तेणं ॥१४॥

अह मेहवाहणाई, रक्खसवंसे नरिन्दवसहेसु । कालेण ववगएसुं, बहवेसु महाणुभावेसु ॥१५॥

तत्थ य रक्खसवंसे, उप्पण्णो रावणो तिखण्डवई । बहिणी से चन्दणहा, तीए खरदूसणो कन्तो ॥१६॥

चोद्दसहि सहस्सेहिं, जोहाणं सत्ति-कन्तिजुत्ताणं । भुञ्जइ पायालपुरं, दिव्वं धरणीए विवरत्थं ॥१७॥

खरदूसणस्स पुत्ता, दोण्णि जणा सुरकुमारसमरूवा । संबुक्क-सुन्दनामा, जेट्ठ-कणिट्ठा महासत्ता ॥१८॥

वारिज्जन्तो वि बहुं, गुरूहि मरणावलोइओ सन्तो । पविसइ दण्डारण्णं, सम्बुक्को सुज्जहासत्थे ॥१९॥

जो दिट्ठिगोयरपहे, ठाही असमत्तनियमजोगस्स । सो मे होही वज्झो, एत्थारण्णे न संदेहो ॥२०॥

लवणजलस्सुत्तरओ, कोञ्चरवाए नईए आसन्नं । सम्बुक्को कयकरणो, पविसइ वंसत्थलं गुविलं ॥२१॥

बारस वरिसाणि तओ, गयाणि चत्तारि चेव दिवसाणि ।
अच्छन्ति तिण्णि दिवसा, विज्जाए असिद्धिकालस्स ॥२२॥

ताव य परिहिण्डन्तो, संपत्तो लक्खणो तमुद्देसं । पेच्छइ य सुज्जहासं, खग्गं बहुकिरणपज्जलियं ॥२३॥

घणपायवसंछन्नं, बहुपत्थरवेढियं कयाभोगं । मज्झम्मिधरणिवट्ठं, समच्चियं कणयपउमेहिं ॥२४॥

तं प्रविश्यान्तेऽस्त्यलङ्कारपुरवरं रम्यम् । परचक्रदुष्प्रवेशं सर्वोपकरणैः संयुक्तम् ॥१२॥

एवमेव परिकथितेऽनुज्ञातो मेघवाहनो गत्वा । लङ्कापूर्यां राज्यं करोतीन्द्र इव यथेच्छम् ॥१३॥

न च राक्षसा न देवा राक्षसद्वीपं तु येन रक्षन्ति । विद्याधरा जनेनोच्यन्ते तु राक्षसास्तेन ॥१४॥

अथ मेघवाहनादयो राक्षसवंशे नरेन्द्रवृषभेषु । कालेन व्यपगतेषु बहुषु महानुभावेषु ॥१५॥

तत्र च राक्षसवंश उत्पन्नो रावणस्त्रिखण्डपतिः । भगिनी तस्य चन्द्रनखा तस्याः खरदूषणः कान्तः ॥१६॥

चतुर्दशभिः सहस्रैर्योधानां शक्ति-कान्ति युक्तानाम् । भुनक्ति पातालपुरं दिव्यं धरण्या विवरस्थम् ॥१७॥

खरदूषणस्य पुत्रौ द्वौ जनौ सुरकुमारसमरुपौ । शंबुक-सुन्दनामानौ ज्येष्टकनिष्टौ महासत्त्वौ ॥१८॥

वार्यमाणोऽपि बहु गुरुभि मरणावलोकितः सन् । प्रविशति दण्डारण्यं शंबुकः सूर्यहासार्थे ॥१९॥

यो दृष्टिगोचरपथे स्थास्यत्यसम्यक्त्वनियमयोगस्य । स मम भविष्यति वध्योऽत्रारण्ये न संदेहः ॥२०॥

लवणजलस्योत्तरतः क्रोंचरवाया नद्या आसन्नम् । शम्बुकः कृतकरणः प्रविशति वंशस्थलं गुपिलम् ॥२१॥

द्वादशवर्षाणि ततो गतानि चत्वार्येव दिवसानि । आसते त्रयो दिवसा विद्याया असिद्धिकालस्य ॥२२॥

तावच्च परिहिण्डन् संप्राप्तो लक्ष्मणस्तमुद्देशम् । पश्यति च सूर्यहासं खड्गं बहुकिरणप्रज्वलितम् ॥२३॥

घनपादपसंच्छन्नं बहुप्रस्तरवेष्टितं कृताभोगम् । मध्ये धरणिपृष्टं समर्चितं कनकपद्मैः ॥२४॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तं गन्धसमालद्धं, वरकुङ्कुमबहलदिन्नचच्चिक्कं । गेण्हइ तहट्ठियं सो, खग्गं लच्छीहरो सिग्घं ॥२५॥

दाहिणकरग्गगहियं, विण्णासन्तेण वाहियं खग्गं । घणनिचयबद्धमूलं, छिन्नं वंसत्थलं तेणं ॥२६॥

ताव च्चिय तत्थ सिरं, पेच्छइ पडियं सकुण्डलाडोवं । देहं च रुहिरकद्दम-समोल्लियं विदुमावयवं ॥२७॥

अह सो पउमसयासं, सोमित्ती पत्थिओ गहियखग्गो । परिपुच्छिओ य साहइ, तं वित्तन्तं अपरिसेसं ॥२८॥

ताव च्चिय चन्दणहा, पइदियहं पत्थिया सुयसमीवं । पेच्छइ य सिरकबन्धं, छिन्नं पडियं धरणिवट्ठे ॥२९॥

सुयसोगसल्लियङ्गी, [1]मुच्छा गन्तूण पुणरवि विउद्धा । हा पुत्त ! कयारावा, रुयइ विमुक्कंसुसलिलोहा ॥३०॥

बारस वरिसाणि ठिओ, चत्तारि दिणाणि जोगजुत्तमणो । तिण्णि अहोरत्ता पुण, न खामिया मे कयन्तेणं ॥३१॥

किं तुज्झ अवकयं जे, पावविही ! निट्ठुरं मए कम्मं ? पुत्तो बहुगुणनिलओ, जेण अयण्डम्मि अवहरिओ ॥३२॥

अहवा वि अपुण्णाए, कस्स वि विनिवाइओ मए पुत्तो । तस्सेयं कम्मफलं, उवट्ठियं नत्थि संदेहो ॥३३॥

परिचिन्तिया य पुत्तय ! मणोरहा जे मए अपुण्णाए । ते अन्नहा य सिग्घं, विहिणा परियत्तिया सव्वे ॥३४॥

घेत्तूण पुत्तवयणं, परिचुम्बइ रुहिर[2]पङ्कविच्छुरियं । सलिल लवविग्रलियच्छी, कलुणपलावं च कुणमाणी ॥३५॥

परिदेविऊण सुइरं, कोवं घेत्तूण तं वणं भीमं । परिभमइ गवेसन्ती, चन्दणहा वेरियं सिग्घं ॥३६॥

सा तत्थ परिभमन्ती, दट्ठूणं राम-लक्खणे दो वि । मयणसरसल्लियङ्गी, मुञ्चइ कोवं च सोगं च ॥३७॥

तं गन्धसमालब्धं वरकुङ्कुमबहलदत्तमंडितम् । गृह्णाति तथास्थितं स खड्गं लक्ष्मीधरः शीघ्रम् ॥२५॥

दक्षिणकराग्रगृहीतं जिज्ञासया वहितं खड्गम् । घननिचयबद्धमूलं छिन्नं वंशस्थलं तेन ॥२६॥

तावदेव तत्र शिरः पश्यति पतितं सुकुण्डलाटोपम् । देहं च रुधिरकर्दमसमोपलिप्तं विद्रुमावयवम् ॥२७॥

अथ स पद्मसकाशं सौमित्रिः प्रस्थितो गृहीतखड्गः । परिपृष्टश्च कथयति तद्वृतान्तमपरिशेषम् ॥२८॥

तावदेव चन्द्रनखा प्रतिदिवसं प्रस्थिता सुतसमीपम् । पश्यति च शिरःकबन्धछिन्नं पतितं धरणिपृष्टे ॥२९॥

सुतशोकशल्यिताङ्गिनी मूर्च्छां गत्वा पुनरपि विबुद्धा । हा पुत्र ! कृतारावा रोदिति विमुक्ताश्रुसलिलौघा ॥३०॥

द्वादशवर्षाणि स्थितश्चत्वारि दिवसानि योगयुक्तमनाः । त्रिण्यहोरात्राः पुन र्न क्षमिता मे कृतान्तेन ॥३१॥

किं तवापकृतं यत्पापविधे ! निष्ठुरं मया कर्म ? । पुत्रो बहुगुणनिलयो येनाकाण्डेऽपहृतः ॥३२॥

अथवाप्यपुण्यया कस्यापि विनिपातितो मया पुत्रः । तस्येदं कर्मफलमुपस्थितं नास्ति संदेहः ॥३३॥

परिचिन्तिताश्च पुत्र ! मनोरथा ये मयापुण्यया । तेऽन्यथा च शीघ्रं विधिना परिवर्त्तिताः सर्वे ॥३४॥

गृहीत्वा पुत्रवदनं परिचुम्बति रुधिरपङ्कविच्छूरितम् । सलिललवविगलिताक्षिः करुणप्रलापं च क्रियमाणा ॥३५॥

परिदेव्य सुचिरं कोपं गृहीत्वा तद्वनं भीमम् । परिभ्रमति गवेषयन्ती चन्द्रनखा वैरिकं शीघ्रम् ॥३६॥

सा तत्र परिभ्रमन्ती दृष्ट्वा रामलक्ष्मणौ द्वावपि । मदनशरशल्यिताङ्गिनी मुञ्चति कोपं च शोकं च ॥३७॥

---

१. मुच्छं-प्रत्य० । २. पङ्कपिञ्जरियं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सा ताण तक्खणं चिय, अभिलासमुवागया विचिन्तेइ । एक्कं वरेमि गन्तुं, कन्नारूवं तओ कुणइ ॥३८॥

तो सा कयनेवच्छा, ताण सयासं लहुं समणुपत्ता । नयणंसुए मुयन्ती, पुण्णागतलम्मि उवविट्ठा ॥३९॥

दट्ठूण जणयतणया, तं बालं करयलेण परिमुसइ । भणइ य अम्ह सयासं, अवट्ठिया मा भयं जासि ॥४०॥

भणिया य राघवेणं, का सि तुमं बालिए ! इहारण्णे । परिहिण्डसि एगागी, सीहाइनिसेविए घोरे ? ॥४१॥

सा जंपइ मम गेहे, कालगया मज्झ सुन्दरा जणणी । ताओ वि तीए सोगे, सो च्चिय मरणं समणुपत्तो ॥४२॥

पावेण परिग्गहिया, सा हं सयणेण वज्जिया सन्ती । वेरग्गसमावन्ना, इहागया दण्डगारण्णं ॥४३॥

कह वि भमन्तीए मए, दिट्ठा तुम्हेत्थ पुण्णजोएणं । सरणं मि असरणाए, होह[१] फुडं दुक्खपुण्णाए ॥४४॥

अह सा मयणवसगया, भणइ तओ राघवं कयपणामा । इच्छसु मए महाजस ! जाव न पाणेहिं मुञ्चामि ॥४५॥

सुणिऊण वयणमेयं, दोण्णि वि अवरोप्परं जणियसन्ना । परजुवइरहियसङ्गा, न देन्ति तीए समुल्लावं ॥४६॥

सा जंपिऊण बहुयं, विमुक्कदीहुण्हअंसुनीसासा । अवसरिय ताण पुरओ, निययट्ठाणं गया सिग्घं ॥४७॥

सो लक्खणो तीए गवेसणट्ठं, अन्नावएसेण करेवि रण्णे ।
दिव्वङ्गणारूवगुणाणुरत्तो, [२]पुणो नियत्तो विमलप्पभावो ॥४८॥

॥ इय पउमचरिए सम्बुक्कवहणं नाम तेयालीसइमं पव्वं समत्तं ॥

सा तयोस्तत्क्षणमेवाभिलाषमुपगता विचिन्तयति । एकं वृणोमि गत्वा कन्यारुपं ततः करोति ॥३८॥

तदा सा कृतनेपथ्या तयोः सकाशं लघु समनुप्राप्ता । नयनाश्रुणि मुञ्चन्ती पुन्नागतल उपविष्य ॥३९॥

दृष्ट्वा जनकतनया तां बालां करतलेन परिमृशति । भणति चास्मत्सकाशमवस्थिता मा भयं याहि ॥४०॥

भणिता च राघवेन काऽसि त्वं बालिके ! इहारण्ये । परिहिण्डसैकाकिनी सिंहादिनिसेविते घोरे ? ॥४१॥

सा जल्पति ममगृहे कालगता मम सुन्दरा जननी । तातोऽपि तस्याः शोके स एव मरणं समनुप्राप्तः ॥४२॥

पापेन परिगृहीता साऽहं स्वजनेन वर्जिता सती । वैराग्यसमापन्नेहाऽगता दण्डकारण्यम् ॥४३॥

कथमपि भ्रमन्त्या मया दृष्ट्य यूयमत्र पुण्ययोगेन । शरणं ममाशरणाया भवतः स्फुटं दुखपूर्णायाः ॥४४॥

अथ सा मदनवशगता भणति ततो राघवं कृतप्रणामा । इच्छ मां महायशः ! यावन्न प्राणैर्मुञ्चामि ॥४५॥

श्रुत्वा वचनमेतद्द्वावपि परस्परं जनितसंज्ञौ । परयुवतिरहितसङ्गौ न ददतस्तस्याः समुल्लापम् ॥४६॥

सा जल्पित्वा बहुकं विमुक्तदीर्घोष्णाश्रुनिश्वासा । अपसृत्य तेषां पुरतो निजस्थानं गता शीघ्रम् ॥४७॥

स लक्ष्मणस्तस्या गवेषणार्थमन्यापदेशेन करोत्यरण्ये । दिव्याङ्गनारुपगुणानुरक्तः पुनर्निवृत्तो विमलप्रभावः ॥४८॥

॥ इति पद्मचरित्रे शम्बुकवधनं नाम त्रिश्चत्वारिंशत्तमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. होह महं दुक्ख०-प्रत्य० । २. तओ नियत्तो-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४४. सीयाहरणे रामविप्पलावपव्वं

सा तत्थ रुवइ भवणे, चन्दणहा विगलियंसुसलिलोहा । विलिहियनहकक्खोरू, विमुक्ककेसी य रयमइला ॥१॥
खरदूसणेण दिट्ठा, मलिया नलिणि व्व गयवरिन्देणं । भणिया य साहसु तुमं, केणेयं पाविया दुक्खं ॥२॥
भणइ तओ चन्दणहा, गया य पुत्तं गवेसणट्ठाए । नवरं पेच्छामि वणे, छिन्नसिरं तं महिं पडियं ॥३॥
मारेऊण मह सुयं, केणवि पावेण सूरहासं तं । गहियं च सिद्धविज्जं, खेयरपुज्जं महाखग्गं ॥४॥
अहमवि तं पुत्तसिरं, अङ्के ठविऊण सोगतवियङ्गी । बहुला व जह विवच्छा, रुयामि रण्णे विगलियंसू ॥५॥
ताव च्चिय तेण अहं, दुट्ठेणं पुत्तवेरिएण पहू ! । अवगूहिया रुयन्ती, धणियं कज्जेण केणं पि ॥६॥
अहयं अणिच्छमाणी, दन्तेसु नहेसु तेण पावेणं । एयारिसिं अवत्थं, एगागी पाविया रण्णे ॥७॥
तत्तो वि रक्खिया हं, परभवजणिएण पुण्णजोएणं । अविखण्डियचारित्ता, कह वि इहं आगया सामी ॥८॥
विज्जाहराण राया, भाया मे रावणो तिखण्डवई । दूसण ! तुमं पि भत्ता, तह वि इमं पाविया दुक्खं ॥९॥
सुणिऊण तीए वयणं, सोगाऊरियमणो तहिं गन्तुं । खरदूसणो विवन्नं, पेच्छइ पुत्तं महीपडियं ॥१०॥
पडियागओ खणेणं, नियघरं रोसपूरियामरिसो । चोद्दसहि सहस्सेहिं, सन्नद्धो पवरजोहाणं ॥११॥

---

४४. सीताहरणे रामविप्रलापपर्वम्

सा तत्र रोदिति भवने चन्द्रनखा विगलिताश्रुसलिलौघा । विलिखितनखकक्षोरु र्विमुक्तकेशिनी च रजोमलिना ॥१॥
खरदूषणेन दृष्टा मलिना नलिनीव गजवरेन्द्रेण । भणिता च कथय त्वं केनेदं प्रापिता दुःखम् ॥२॥
भणति ततश्चन्द्रनखा गता च पुत्रं गवेषणार्थे । नवरं पश्यामि वने छिन्नशिरसं तं महीं पतितम् ॥३॥
मारयित्वा मम सुतं केनापि पापेन सूर्यहासं तम् । गृहीतं च सिद्धविद्यं खेचरपूज्यं महाखड्गम् ॥४॥
अहमपि तत्पुत्रशिरमङ्के स्थापयित्वा शोकतप्ताङ्गिनी । बहुलेव यथा विवस्त्रा रोदिम्यरण्ये विगलिताश्रुः ॥५॥
तावदेव तेनाहं दुष्टेन पुत्रवैरिणा प्रभो ! । अवगूहिता रुदन्ती गाढं कार्येण केनापि ॥६॥
अहमनिच्छन्ती दन्तै र्नखैस्तेन पापेन । एतादृशमवस्थामेकाकिनी प्राप्ताऽरण्ये ॥७॥
ततोऽपि रक्षिताहं परभवजनितेन पुण्ययोगेन । अविखण्डितचारित्रा कथमपीहमागता स्वामिन् ॥८॥
विद्याधराणां राजा भ्राता मे रावणस्त्रिखण्डाधिपतिः । दूषण ! त्वं भर्ता तथापीदं प्राप्ता दुःखम् ॥९॥
श्रुत्वा तस्या र्वचनं शोकापूरितमनास्तत्र गत्वा । खरदूषणो विपन्नं पश्यति पुत्रं महीपतितम् ॥१०॥
प्रत्यागतः क्षणेन निजगृहं रोषपूरितामर्शः । चतुर्दशभिस्सहस्रैस्सन्नद्धः प्रवरयोधानाम् ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एयन्तरम्मि तो सो, भणिओ चित्तप्पभेण मन्तीणं । लङ्काहिवस्स दूयं, पेसेहि इमेण अत्थेणं ॥१२॥
अह रावणस्स दूयं, सिग्घं खरदूसणो विसज्जेउं । बाहपगलन्तनेत्तो, रुयइ य सुयसोगमावन्नो ॥१३॥
दूएणं परिकहिए, जाव च्चिय रावणो चिरावेइ । चोद्दसहि सहस्सेहिं, जोहाणं दूसणो चलिओ ॥१४॥
दूसणबलस्स गयणे, सीया सुणिऊण तूरनिग्घोसं । किं किं ? ति उल्लवन्ती, सीया रामं समल्लीणा ॥१५॥
मा भाहि चन्दवयणे !, एए हंसा नहेण वच्चन्ता । मुञ्चन्ति मुहनिनायं, अप्पेहि धणुं पणासेमि ॥१६॥
ताव य आसन्नत्थं, विविहाउहसंकुलं महासेन्नं । दिट्ठं समोत्थरन्तं गयणयले मेहवन्दं व ॥१७॥
चिन्तेइ रामदेवो, किं वा नन्दीसरं सुरा एए । गन्तूण पडिनियत्ता, निययट्ठाणाइं वच्चन्ति ? ॥१८॥
वंसत्थलम्मि छेत्तुं, अहवा जो सो विवाइओ रण्णे । वेरपडिउञ्छणत्थे, तस्स इमे आगया बन्धू ? ॥१९॥
नूणं दुस्सीलाए, तीए गन्तूण दुट्ठमहिलाए । सिट्ठं च जहावत्तं, तेण इमे आगया इहइं ॥२०॥
परिचिन्तिऊण एवं, रामो चावे सकंकडे दिट्ठी । देन्तो य लक्खणेणं, भणिओ वयणं निसामेहि ॥२१॥
सन्तेण मए राहव !, न य जुत्तं तुज्झ जुज्झिउं एत्तो । रक्ख इमं जणयसुयं, अरीण समुहो अहं जामि ॥२२॥
जंवेल सीहनायं, वेरियपरिवेढिओ विमुञ्चे हं । तंवेल तुमं राघव ! एज्जसु सिग्घं निरुत्तेणं ॥२३॥
एव भणिऊण तो सो, सन्नद्धो गहियपहरणावरणो । अह जुज्झिउं पवत्तो, समयं चिय रक्खसभडेहिं ॥२४॥
लच्छीहरस्स उवरिं, निसायरा विविहसत्थसंघायं । मुञ्चन्ति पव्वयस्स व, धारानिवहं पओवाहा ॥२५॥

एतदन्तरे तदा स भणितश्चित्रप्रभेन मन्त्रिणा । लङ्काधिपस्य दूतं प्रेषयानेनार्थेन ॥१२॥
अथ रावणस्य दूतं शीघ्रं खरदूषणो विसर्ज्य । बाष्पप्रगलन्नेत्रो रोदिति च सुतशोकसमापन्नः ॥१३॥
दूतेन परिकथिते यावदेव रावणश्चिरयति । चतुर्दशभिस्सहस्रैर्योधानां दूषणश्चलितः ॥१४॥
दूषणबलस्य गगने सीता श्रुत्वा तूर्यनिर्घोषम् । किं किमित्युल्लपन्ती सीता रामे समालीना ॥१५॥
माभैषीश्चन्द्रवदने ! एते हंसा नभसा व्रजन्तः । मुञ्चन्ति मुखनिनादमर्पय धनुं प्रणाशयामि ॥१६॥
तावच्चासन्नस्थं विविधायुधसंकुलं महासैन्यम् । दृष्टं समवस्तरन्तं गगनतले मेघवृन्दमिव ॥१७॥
चिन्तयति रामदेवः किं वा नंदीश्वरं सुरा एते । गत्वा प्रतिनिवृत्ता निजस्थानानि व्रजन्ति ? ॥१८॥
वंशस्थले छित्वाऽथवा यः स व्यापादितोऽरण्ये । वेरप्रतिकारार्थे तस्येम आगता बन्धवः ? ॥१९॥
नूनं दुःशीलया तया गत्वा दुष्टमहिलया । शिष्टः च यथावृत्तं तेनेम आगता इह ॥२०॥
परिचिन्त्येवं रामश्चापे सकङ्कटे दृष्टिम् । ददंश्च लक्ष्मणेन भणितो वचनं निशामय ॥२१॥
सता मया राघव ! न च युक्तं तव योद्धुमितः । रक्षेमां जनकसुतामरीणां संमुखोऽहं यामि ॥२२॥
यद्वेलां सिंहनादं वैरिपरिवेष्टितो विमुञ्चेऽहम् । तद्वेलां त्वं राघव ! आगच्छेः शीघ्रं निश्चयेन ॥२३॥
एवं भणित्वा ततः स सन्नद्धो गृहीतप्रहरणावरणः । अथ योद्धुं प्रवृत्तः समकमेव राक्षसभटैः ॥२४॥
लक्ष्मीधरस्योपरि निशाचरा विविधशस्त्रसंघातम् । मुञ्चन्ति पर्वतस्येव धारानिवहं पयोधराः ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रयणियरकरविमुक्कं, आउहनिवहं रणे निवारेउं । जमदण्डसरिसवेगे, मुञ्चइ लच्छीहरो बाणे ॥२६॥
वरमउडमण्डियाइं, जलन्तमणि-रयणकुण्डलवराइं । लक्खणसरछिन्नाइं, पडन्ति कमलाइं व सिराइं ॥२७॥
निवडन्ति गय-तुरङ्गा, जोहा य रहा य विलुलियधओहा । संचुण्णियङ्गमङ्गा, घोररवं चेव कुणमाणा ॥२८॥
एत्थन्तरम्मि पत्तो, पुप्फविमाणट्ठिओ य दहवयणो । हन्तुं समुज्जयमणो, सम्बुक्करिउं घणकसाओ ॥२९॥
अहऽहोमुहं नियन्तो पेच्छइ मोहस्स [1]कारिणी सीया । सव्वङ्गसुन्दरङ्गी, सुरवइमहिलं व रूवेणं ॥३०॥
मयणाणलतवियङ्गो, एक्कमणो दहमुहो विचिन्तेइ । किं मज्झ कीरइ इहं, रज्जेण इमाए रहियस्स ? ॥३१॥
परिचिन्तिऊण एवं, ताहे अवलोयणाए विज्जाए । जाणइ ताण दहमुहो, नामं चरियं च गोत्तं च ॥३२॥
बहुएसु समं समरे, जुज्झइ जो एस लक्खणो हवइ । रामो सीयाए समं, एसो वि हु चिट्ठई रण्णे ॥३३॥
तं मोत्तूण रणमुहे, सीहरवं लक्खणस्स सरसरिसं । सिग्घं हरामि सीया[2], रामस्स वि वञ्चणं काउं ॥३४॥
मारिहिइ दो वि एए, अवस्स खरदूसणो बलसमग्गो । परिचिन्तिऊण एवं, सीहरवं कुणइ दहवयणो ॥३५॥
सुणिऊण सीहनायं, लक्खणफुडवियडभासियं रामो । जाओ समाउलमणो, अप्फालइ धणुवरं ताहे ॥३६॥
अच्छसु ताव खणेक्कं, सुन्दरि ! एत्थं जडागिकयरक्खा । लच्छीहरस्स पासं, जाव य गन्तुं नियत्तेमि ॥३७॥
भणिऊण एव पउमो, वारिज्जन्तो वि पावसउणेसु । वेगेण रणमुहं सो, पविसइ भडमुक्कबुक्कारं ॥३८॥
एत्थन्तरम्मि सहसा, अवयरिऊणं नहाउ दहवयणो । हक्खुवइ जणयतण[3]या, भुयासु नलिणि व्व मत्तगओ ॥३९॥
दट्ठूण [4]हरिज्जन्ती, सामियघरिणी जडाउणो रुट्ठो । नहणङ्गलेसु पहरइ, दसाणणं विउलवच्छयले ॥४०॥

रजनीकरकरविमुक्तमायुधनिवहं रणे निवार्य । यमदण्डसदृशवेगान्मुञ्चति लक्ष्मीधरो बाणान् ॥२६॥
वरमुकुटमण्डितानि ज्वलन्मणिरत्नकुण्डलवराणि । लक्ष्मणशरछिन्नानि पतन्ति कमलानीव शिरांसि ॥२७॥
निपतन्ति गजतुरङ्गा योधाश्च रथाश्च विलुलितध्वजौधाः । संचूर्णिताङ्गाङ्गा घोररवमेव क्रियमाणाः ॥२८॥
अत्रान्तरे प्राप्तः पुष्पविमानस्थितश्च दशवदनः । हन्तुं समुद्यतमनाः शम्बुकरिपुं घनकषायः ॥२९॥
अथाधोमुखं नियान्पश्यति मोहस्य कारिणीं सीताम् । सर्वाङ्गसुन्दराङ्गिनीं सुरपतिमहिलामिव रुपेण ॥३०॥
मदनानलतप्ताङ्ग एकाग्रमना दशमुखो विचिन्तयति । किं मम क्रियत इह राज्येनानया रहितस्य ? ॥३१॥
परिचिन्त्यैवं तदावलोकनया विद्यया । जानाति तेषां दशमुख नाम चरित्रं च गोत्रं च ॥३२॥
बहुभिस्समं समरे युध्यते य एष लक्ष्मणो भवति । रामः सीतायाः सममेषोऽपि खलु तिष्ठत्यरण्ये ॥३३॥
तं मुक्त्वा रणमुखे सिंहरवं लक्ष्मणस्य स्वरसदृशम् । शीघ्रं हरामि सीतां रामस्यापि वञ्चनं कृत्वा ॥३४॥
मारिष्यति द्वावप्येतावश्यं खरदुषणो बलसमग्रः । परिचिन्त्येवं सिंहरवं करोति दशवदनः ॥३५॥
श्रुत्वा सिंहनादं लक्ष्मणस्फुटविकटभाषितं रामः । जातः समाकुलमना आस्फालयति धनुवरं तदा ॥३६॥
आस्स्व तावत्क्षणमेकं सुन्दरि ! अत्र जटाकिकृतरक्षा । लक्ष्मीधरस्य पार्श्वं यावच्च गत्वा निवर्ते ॥३७॥
भणित्वैवं पद्मो वार्यमाणोऽपि पापशकुनैः । वेगेन रणमुखं स प्रविशति भटमुक्तगर्जारवम् ॥३८॥
अत्रान्तरे सहसाऽवतीर्य नभसो दशवदनः । उत्क्षिपति जनकतनयां भुजाभ्यां नलिनीव मत्तगजः ॥३९॥
दृष्ट्वा हारयन्तीं स्वामिगृहिणीं जटायू रुष्टः । नखांङ्गुलैः प्रहरति दशाननविपुलवक्षःस्थले ॥४०॥

---

१. कारिणि सीयं । सव्वङ्गसुन्दरङ्गि-प्रत्य० । २. सीयं-प्रत्य० । ३. तणयं-प्रत्य० । ४. हरिज्जन्ति सामिय-घरिणि-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घाएण तेण रुट्ठो, दहवयणो पक्खिणं अमरिसेणं । करपहरचुण्णियङ्गं, पाडेइ लहुं धरणिपट्ठे ॥४१॥
जाव य मुच्छाविहलो, पक्खी न उवेइ तत्थ पडिबोहं । ताव य पुप्फविमाणे, [1]सीया आणेइ दहवयणो ॥४२॥
सा तत्थ विमाणत्था, हीरन्ती जाणिऊण अप्पाणं । घणसोगवसीभूया, कुणइ पलावं जणयधूया ॥४३॥
चिन्तेइ रक्खसवई, कलुणपलावं इमा पकुव्वन्ती । बहुयं पि भण्णमाणी, रूसइ न पसज्जई मज्झं ॥४४॥
अहवा साहुसयासे, पढमं चियऽभिग्गहो मए गहिओ । अपसन्ना परमहिला, न य भोत्तव्वा सुरूवा वि ॥४५॥
तम्हा रक्खामि वयं, अहयं संसारसागरुत्तारं । होही पसन्नहियया, इमा वि मह दीहकालेणं ॥४६॥
एव परिचिन्तिऊणं, वच्चइ लङ्काहिवो सपुरिहुत्तो । रामो पविसरइ रणं, घणसत्थपडन्तसंघायं ॥४७॥
पासम्मि समल्लीणं, रामं दट्ठूण लक्खणो भणइ । [2]एगागी जणयसुया, मोत्तूण किमागओ एत्थं ॥४८॥
सो भणइ सीहनायं, तुज्झ सुणेऊण आगओ इहइं । पडिचोइओ य रामो, वच्चसु सीयासयासम्मि ॥४९॥
एए रिवू महाजस !, जिणामि अहयं न एत्थ संदेहो । वच्च तुमं अइतुरिओ, कन्तापरिक्खणं कुणसु ॥५०॥
एव भणिओ नियत्तो, तूरन्तो पाविओ तमुद्देसं । न य पेच्छइ जणयसुयं, सहसा ओमुच्छिओ रामो ॥५१॥
पुणरवि य समासत्थो, [3]दिट्ठी निक्खीवइ तत्थ तरुगहणे । घणपेम्माउलहियओ, भणइ तओ राहवो वयणं ॥५२॥
एहेहि इओ सुन्दरि !, वाया मे देहि मा चिरावेहि । दिट्ठा सि रुक्खगहणे, किं परिहासं चिरं कुणसि ? ॥५३॥
कन्ताविओगदुहिओ, तं रण्णं राहवो गवेसन्तो । पेच्छइ तओ जडागिं, केंकायन्तं महिं पडियं ॥५४॥

घातेन तेन रुष्टो दशवदनः पक्षिणममर्षेण । करप्रहरचूर्णिताङ्गं पातयति लघु धरणीपृष्टे ॥४१॥
यावच्च मूर्च्छाविह्वलः पक्षी नोपैति तत्र प्रतिबोधम् । तावच्च पुष्पकविमाने सीतामानयति दशवदनः ॥४२॥
सा तत्र विमानस्था हारयन्तीं ज्ञात्वाऽऽत्मानम् । घनशोकवशीभूता करोति प्रलापं जनकदुहिता ॥४३॥
चिन्तयति राक्षसपतिः करुणप्रलापमिमा प्रकुर्वन्ती । बहुमपि भण्यमाना रुष्यति न प्रसञ्जति मम ॥४४॥
अथवा साधुसकाशे प्रथममेवाभिग्रहो मया गृहीतः । अप्रसन्ना परमहिला न च भोक्तव्या सुरुपाऽपि ॥४५॥
तस्माद्रक्ष्यामि व्रतमहं संसारसागरोत्तारम् । भविष्यति प्रसन्नहृदयेमाऽपि मम दीर्घकालेन ॥४६॥
एवं परिचिन्त्य गच्छति लङ्काधिपः स्वपुर्यभिमुखः । रामः प्रविशति रणं घनशस्त्रपतत्संघातम् ॥४७॥
पार्श्वे समालीनं रामं दृष्ट्वा लक्ष्मणो भणति । एकाकिनीं जनकसुतां मुक्त्वा किमागतोऽत्र ॥४८॥
स भणति सिंहनादं तव श्रुत्वाऽऽगत इह । प्रतिचोदितश्च रामो गच्छ सीतासकाशे ॥४९॥
एतान् रिपून् महायशः ! नयाम्यहं नात्रसंदेहः । गच्छ त्वमतित्वरितः कान्तापरिरक्षणं कुरु ॥५०॥
एवं भणितो निवृत्तस्त्वरमाणःप्राप्तस्तमुद्देशम् । न च पश्यति जनकसुतां सहसाऽवमूर्च्छितो रामः ॥५१॥
पुनरपि च समाश्वस्थो दृष्टिं निक्षिपति तत्र तरुगहने । घनप्रेमाकुलितहृदयो भणति ततो राघवो वचनम् ॥५२॥
एहयेहीतः सुन्दरि ! वाचा मां देहि मा चिरय । दृष्टाऽसि वृक्षगहने किं परिहासं चिरं करोषि ? ॥५३॥
कान्तावियोगदुःखितस्तामरण्ये राघवो गवेषयन् । पश्यति ततो जटाकिनं कैकायन्तं महीं पतितम् ॥५४॥

---

१. सीयं-प्रत्य० । २. एगागिं जणयसुयं-प्रत्य० । ३. दिट्ठिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पक्खिस्स कण्णजावं, देइ मरन्तस्स सुहयजोएणं । मोत्तूण पूइदेहं, तत्थ जडाऊ सुरो जाओ ॥५५॥
पुणरवि सरिऊण पियं, मुच्छा [१] गन्तूण तत्थ आसत्थो । परिभमइ गवेसन्तो, सीयासीयाकउल्लावो ॥५६॥
भो भो मत्तमहागय !, एत्थारण्णे तुमे भमन्तेणं । महिला सोमसहावा, जइ दिट्ठा किं न साहेहि ? ॥५७॥
तरुवर तुमं पि वच्चसि, दूरुन्नयवियडपत्तलच्छाय ! । एत्थं अपुव्वविलया, कह ते नो लक्खिया रण्णे ? ॥५८॥
सोऊण [२] चक्कवाई, वाहरमाणी सरस्स मज्झत्था । महिलासङ्काभिमुहो, पुणो वि जाओ च्चिय निरासो ॥५९॥
रोसपसरन्तहियओ, वज्जावत्तं धणुं समारुहिउं । अप्फालेइ महप्पा, भयजणणं सव्वसत्ताणं ॥६०॥
मोत्तूण सीहनायं, पुणो विसायं खणेण संपत्तो । सोयइ मए वराकी, जणयसुया हारिया रण्णे ॥६१॥
इह मणुयसारमईयं, महिलारयणुत्तमं महं नट्ठं । न लभामि गवेसन्तो, धणियं पि सुदीहकालेणं ॥६२॥
वग्घेण व सीहेण व, खइया किं ? मारिया व हत्थीणं ? । बहुजलकल्लोलाए, अवहरिया गिरिनदीए व्व ? ॥६३॥
दिट्ठा दिट्ठा सि मए, एहेहि इओ इओ कउल्लावो । धावइ तओ तओ च्चिय, पडिसद्दयमोहिओ रामो ॥६४॥
अहवा दुट्ठेण इहं, केण व हरिया महं हिययइट्ठा ? । घणगिरि-तरुसंछन्नं, कत्तो रण्णं गवेसामि ? ॥६५॥
एव परिहिण्डिऊणं, तं रण्णं राहवो पडिनियत्तो । जाओ निरासहियओ, निययावासे तओ सुयइ ॥६६॥

एवंविहा वि पुरिसा सुकयस्स छेदे, पावन्ति दुक्खमउलं इह जीवलोए ।
तम्हा जिणुत्तममएण विसुद्धभावा, धम्मं करेह विमलं च निरन्तरायं ॥६७॥

॥ इय पउमचरिए सीयाहरणे रामविप्पलावविहाणं नाम चउत्तालीसं पव्वं समत्तं ॥

पक्षिणः कर्णजापं ददाति म्रियमाणस्य सुकृतयोगेन । मुक्त्वा पूतिदेहं तत्र जटायुः सुरो जातः ॥५५॥
पुनरपि स्मृत्वा प्रियां मूर्च्छां गत्वा तत्राश्वस्तः । परिभ्रमति गवेषयन्सीतासीताकृतोल्लापः ॥५६॥
भो भो मत्तमहागज ! अत्रारण्ये त्वया भ्रमता । महिला सौम्यस्वभावा यदि दृष्टा किं न कथय ? ॥५७॥
तरुवर ! त्वमपि व्रजसि दूरोन्नतविकटपत्रालच्छायः । अत्रापूर्ववनिता कथं त्वया न लक्षितारण्ये ? ॥५८॥
श्रुत्वा चक्रवाकीं व्याहरन्तीं सरसो मध्यस्थाम् । महिलाशङ्काभिमुखः पुनरपि जात एव निराशः ॥५९॥
रोषप्रसरद्धृदयो वज्रावर्तं धनुं समारुह्य । आस्फालयति महात्मा भयजननं सर्वसत्त्वानाम् ॥६०॥
मुक्त्वा सिंहनादं पुन र्विषादं क्षणेन संप्राप्तः । शोचति मया वराकी जनकसुता हारिताऽरण्ये ॥६१॥
इह मनुष्यसारमतिकं महिलारत्नमुत्तमं मम नष्टम् । न लभे गवेषयन्नत्यंतमपि सुदीर्घकालेन ॥६२॥
व्याघ्रेण वा सिंहेन वा खादिता किं ? मारिता वा हस्तिना ? । बहुजलकल्लोलयापहृता गिरिनद्या वा ? ॥६३॥
दृष्टा दृष्टाऽसि मयैहि एहीत इतः कृतोल्लापः । धावति ततस्तत एव प्रतिशब्दमोहितो रामः ॥६४॥
अथवा दुष्टेनेह केन वा हृता मम हृदयेष्टा ? । धनगिरितरुच्छन्नं कुतोऽरण्यं गवेषयामि ? ॥६५॥
एवं परिहिण्डय तदरण्यं राघवः प्रतिनिवृत्तः । ज्ञातो निराशहृदयो निजावासे ततः शेते ॥६६॥
एवंविधा अपि पुरुषाः सुकृतस्यच्छेदे प्राप्नुवन्ति दुःखमतुलमिह जीवलोके ।
तस्माज्जिनोत्तममतेन विशुद्धभावा धर्मं कुरुत विमलं च निरन्तरायम् ॥६७॥

॥ इति पद्मचरित्रे सीताहरणे रामविप्रलापविधानं नाम चतुश्चत्वारिंशत्तमं पर्वं समाप्तम् ॥

१. मुच्छं-प्रत्य० । २. चक्कावाइं वाहरमाणिं सरस्स मज्झत्थं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४५. सीयाविप्पओगदाहपव्वं

एत्थन्तरम्मि पत्तो, पुव्वविरुद्धो विराहिओ सहसा । सन्नद्धबद्धकवओ, बलेण सहिओ महन्तेणं ॥१॥

जुज्झन्तस्स रणमुहे, पडिओ चलणेसु लच्छिनिलयस्स । भिच्चो हं तुह सामिय ! विज्जाहरवंससंभूओ ॥२॥

चन्दोयरस्स पुत्तो, अणुराहाकुच्छिसंभवो अहयं । तुह आणाए समत्थो, नामेण विराहिओ सामि ! ॥३॥

विणओणयस्स सीसे, हत्थं दाऊण लक्खणो भणइ । सव्वं पि एवमेयं, वच्छ ! महं मग्गओ ठाहि ॥४॥

एव भणिओ पवुत्तो, एक्कं खरदूसणे तुमं सामी ! । घाएहि सेससुहडे, अहयं मारेमि संगामे ॥५॥

एव भणिऊण तो सो, दूसणसेन्नस्स अहिमुहीहूओ । अह जुज्झिउं पवत्तो, विराहिओ नियबलसहिओ ॥६॥

जोहा जोहेहि समं, आभिट्टा गयवरा सह गजेहिं । जुज्झन्ति रहारूढा, समयं रहिएहि रणसूरा ॥७॥

एयारिसम्मि जुज्झे, विणिवाइज्जन्तसुहडसंघाए । लच्छीहरेण समयं, आलग्गो दूसणो समरे ॥८॥

भणिओ य दूसणेणं, मम पुत्तं मारिऊण मज्झत्थं । कन्ताथणाभिलासी !, पाव ! कहिं वच्चसे अज्जं ? ॥९॥

ठा-ठाहि सवडहुत्तो, पाव ! तुमं सुनिसिएहि बाणेहिं । कन्तावराहकारी, पेसेमि जमालयं सिग्घं ॥१०॥

पडिभणइ लच्छिनिलओ, किं ते भड ! वोक्किएहि बहुएहिं । न य हं वच्चामि तहिं, जत्थ गओ नन्दणो तुज्झं ॥११॥

लच्छीहरेण एन्तो, सरेहि खरदूसणो कओ विरहो । छिन्नधणुहा-ऽयवत्तो, गहो व्व पडिओ नहयलाओ ॥१२॥

---

४५. सीता विप्रयोगदाहपर्वम्

अत्रान्तरे प्राप्तः पुर्वविरुद्धो विराधितः सहसा । सन्नद्धबद्धकवचो बलेन सहितो महता ॥१॥

युध्यमानस्य रणमुखे पतितश्चरणयो र्लक्ष्मीनिलयस्य । भृत्योऽहं तव स्वामिन् ! विद्याधरवंशसंभूतः ॥२॥

चन्द्रोदरस्य पुत्रोऽनुरधाकुक्षिसम्भवोऽहम् । तवाज्ञया समर्थो नाम्ना विराधितः स्वामिन् ॥३॥

विनयावनतस्य शीर्षे हस्तं दत्वा लक्ष्मणो भणति । सर्वमप्येवमेतद्वत्स ! मम मार्गतस्तिष्ठ ॥४॥

एवं भणित्वा तदा स दूषणसैन्यस्याभिमुखम् । अथ योद्धुं प्रवृतो विराधितो निजबलसहितः ॥६॥

योधा योधैः समं प्रवृत्ता गजवरा सह गजैः । युध्यन्ते रथारुढाः समकं रथिकैः रणशूराः ॥७॥

एतादृशे युद्धे विनिपद्यमानसुभटसंघाते । लक्ष्मीधरेण समकमालग्नो दूषणः समरे ॥८॥

भणितश्च दूषणेन ममपुत्रं मारयित्वा मध्यस्थम् । कान्तास्तनाभिलाषिन् ! पाप ! कुत्र गच्छस्यद्य ? ॥९॥

तिष्ठ-तिष्ठाभिमुखः पाप ! त्वां सुनिशितैर्बाणैः । कान्ताऽपराधकारिणं प्रेषयामि यमालयं शीघ्रम् ॥१०॥

प्रतिभणति लक्ष्मीनिलयः किं ते भट ! व्याहृतै र्बहुभिः । न चाहं व्रजामि तत्र यत्र गतो नन्दनस्तव ॥११॥

लक्ष्मीधरेणाऽऽयन्शरैः खरदूषणः कृतो विरथः । छिन्नधनुष्कातपत्रो ग्रह इव पतितो नभस्तलात् ॥१२॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयड्डिऊण खग्गं, सोमित्ती तस्स पाविओ सिग्घं । खरदूसणो वि समुहं, अवट्ठिओ असिवरं घेत्तुं ॥१३॥

आमरिसवसगएणं, छिन्नं खग्गेण सुज्जहासेणं । खरदूसणस्स सीसं, पडियं रत्तारुणच्छायं ॥१४॥

खरदूसणस्स मन्ती, नामेणं खारदूसणो एन्तो । लच्छीहरेण भिन्नो, सरेण मुच्छागयओ विद्धो ॥१५॥

सिग्घं विराहिएण वि, तं सव्वं दूसणस्स निययबलं । निद्दयपहराभिहयं, खणेण भग्गं निराणन्दं ॥१६॥

तं मारिऊण सत्तुं, सहिओ य विराहिएण सोमित्ती । पत्तो रामसयासं, पेच्छइ जेट्ठं सुहपसुत्तं ॥१७॥

उट्ठविऊणाऽऽलत्तो, साह कहिं जणयनन्दिणी सामि ! ।
तेण वि सो पडिभणिओ, केण वि मे अवहिया कन्ता ॥१८॥

ताव पणामं काउं, विराहिओ भणइ सविणयं सामि ! । अम्हं तुमं महाजस !, आणत्तिं देह कज्जेसु ॥१९॥

एवं च भणियमेत्ते, पुच्छि लच्छीहरं पउमणाहो । साहेहि वच्छ ! एसो, कस्स सुओ ? किं च नामं से ? ॥२०॥

चन्दोयरस्स पुत्तो, नामेण विराहिओ इमो सामि ! । जुज्झन्तस्स रणमुहे, मज्झ सयासं समणुपत्तो ॥२१॥

एएण रिवुबलं तं, साहणसहिएण रणमुहे भग्गं । खग्गरयणेण सत्तू, मए वि खरदूसणो निहओ ॥२२॥

अह भणइ लच्छिनिलओ, विज्जाहर ! कारणं सुणसु एत्तो ।
मह गुरवस्स महिलिया, केण वि हरिया महारण्णे ॥२३॥

तीए विरहम्मि इमो, वच्छय ! जइ चयइ अत्तणो जीयं । तो हं हुयवहरासिं, पविसामि न एत्थ संदेहो ॥२३॥

एयस्स जीवियव्वे, किंचि उवायं करेहि मुणिऊणं । सीयागवेसणपरो, वच्छ ! सहीणो तुमं होहि ॥२५॥

आकृष्य खड्गं सौमित्रिस्तस्य प्राप्तः शीघ्रम् । खरदूषणोऽपि संमुखमवस्थितोऽसिवरं गृहीत्वा ॥१३॥

आमर्षवशगतेन छिन्नं खड्गेन सूर्यहासेन । खरदूषणस्य शीर्षं पतितं रक्तारुणच्छायम् ॥१४॥

खरदूषणस्य मन्त्रि र्नाम्ना खारदूषण आयन् । लक्ष्मीधरेण भिन्नः शरेण मुर्च्छागतोविद्धः ॥१५॥

शीघ्रं विराधितेनापि तत्सर्वं दुषणस्य निजबलम् । निर्दयप्रहाराभिहतं क्षणेन भग्नं निराणन्दम् ॥१६॥

तं मारयित्वा शत्रुं सहितश्च विराधितेन सौमित्रिः । प्राप्तो रामसकाशं पश्यति ज्येष्टं सुखप्रसुप्तम् ॥१७॥

उत्थाप्याऽऽलप्तः कथय कुत्र जनकनन्दिनी स्वामिन् । तेनापि स प्रतिभणितः केनापि मे ऽपहृता कान्ता ॥१८॥

तावत्प्रणामं कृत्वा विराधितो भणति सविनयं स्वामिन् ! । अहं तव महायशः ! आज्ञां देहि कार्येषु ॥१९॥

एवं च भणितमात्रे पृच्छति लक्ष्मीधरं पद्मनाभः । कथय वत्स ! एष कस्य सुतः ? किं च नाम तस्य ? ॥२०॥

चन्द्रोदरस्य पुत्रो नाम्ना विराधितोऽयं स्वामिन् ! । युध्यमानस्य रणमुखे मम सकाशं समनुप्राप्तः ॥२१॥

अनेन रिपुबलं तं साधनसहितेन रणमुखे भग्नम् । खड्गरत्नेन शत्रुर्मयाऽपि खरदूषणो निहतः ॥२२॥

अथ भणति लक्ष्मीनिलयो विद्याधर ! कारणं श्रुण्वितः । मम गुरो र्महिला केनापि हृता महारण्ये ॥२३॥

तस्या विरहेऽयं वत्स ! यदि त्यजत्यात्मनोजीवम् । तदाहं हुतवहराशिं प्रविशामि नात्र संदेहः ॥२४॥

एतस्य जीवितव्ये किंचिदुपायं कुरु ज्ञात्वा । सीतागवेषणपरो वत्स ! सख्यस्त्वं भव ॥२५॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एव भणिओ पवुत्तो, चन्दोयरनन्दणो निययभिच्चे । [1]सीया लहुं गवेसह, तुम्हे वि जल-त्थला-ऽऽगासे ॥२६॥

एव भणिया पयट्टा, सुहडा सन्नद्धबद्धतोणीरा । सीयागवेसणट्ठे, दस वि दिसाओ पवणवेगा ॥२७॥

अह अक्कजडिस्स सुओ, रयणजडी नाम खेयरो गयणे । सायरवरस्स उवरिं, सुणइ पलावं महिलियाए ॥२८॥

हा रामदेव ! लक्खण !, धरेहि बन्दी इमेण हीरन्ती । सुपरिप्फुडं च सद्दं, सोउं रुट्ठो रयणकेसी ॥२९॥

पेच्छइ पुप्फविमाणे, हीरन्ती रावणेण वइदेही । भणइ य रामस्स पियं, दुट्ठ ! कहिं नेसि मह पुरओ ? ॥३०॥

सो एव भणियमेत्तो, दसाणणो तस्स निययविज्जाओ । अवलोयणीए नाउं, छिन्दइ मन्तप्पभावेणं ॥३१॥

अह सो विरिक्कविज्जो, कम्बुद्दीवम्मि तक्खणं पडिओ । आरुहइ कम्बुसेलं, समुद्दवाएण आसत्थो ॥३२॥

जे वि य ते तत्थ गया, गवेसिऊणं च आगया सिग्घं । रामस्स कहेन्ति फुडं, न सामि ! तुह गेहिणी दिट्ठा ॥३३॥

विज्जाहराण वयणं, सोऊणं राघवो विसण्णमणो । भणइ य सायरवडियं, रयणं को लहइ जियलोए ? ॥३४॥

नूणं परभवजणियं, अणुहवियव्वं मए निययकम्मं । नियमेण तं न तीरइ, देवेहि वि अन्नहा काउं ॥३५॥

एवं परिदेवन्तं, रहुनाहं भणइ खेयरनरिन्दो । थोवदिवसेसु कन्तं, दावेमि तुहं मुयसु सोगं ॥३६॥

अन्नं पि सुणसु सामिय !, निहए खरदूसणे बलब्भहिए । जाहिन्ति महाखोहं, इन्दइपमुहा भडा तुज्झं ॥३७॥

तम्हा वच्चामु लहुं, पायालंकारपुरवरं एत्तो । भामण्डलस्स वत्ता, तत्थ लभामो सुहासीणा ॥३८॥

एवं भणितः प्रोक्तश्चन्द्रोदरनन्दनो निजभृत्यान् । सीतां लघु गवेषयत यूयं हि जल-स्थलाऽऽकाशे ॥२६॥

एवं भणिताः प्रवृत्ताः सुभटाः सन्नद्धबद्धतूणीराः । सीतागवेषणार्थे दशापि दिशः पवनवेगाः ॥२७॥

अथार्कजटेः सुतो रत्नजटी नाम खेचरो गगने । सागरवरस्योपरि श्रृणोति प्रलापं महिलायाः ॥२८॥

हा रामदेव ! लक्ष्मण ! धर बन्दीमनेन ह्रियमाणाम् । सुपरिस्फुटं च शब्दं श्रुत्वा रुष्टो रत्नकेशी ॥२९॥

पश्यति पुष्पविमाने ह्रियमाणीं रावणेन वेदैहीम् । भणति च रामस्य प्रियां दुष्ट कुत्र नयसि मम पुरतः ? ॥३०॥

स एवं भणितमात्रो दशाननस्तस्य निजकविद्यया । अवलोकिन्या ज्ञात्वा छिनत्ति मन्त्रप्रभावेण ॥३१॥

अथ स विरिक्तविद्यः कम्बुद्वीपे तत्क्षणं पतितः । आरोहति कम्बुशैलं समुद्रवातेनाश्वस्तः ॥३२॥

येऽपि च ते तत्र गता गवेषयित्वा चागताः शीघ्रम् । रामस्य कथयन्ति स्फुटं न स्वामिंस्तव गृहिणी दृष्टा॥३३॥

विद्याधराणां वचनं श्रुत्वा राघवो विषण्णमनाः । भणति च सागरपतितं रत्नं को लभते जीवलोके ? ॥३४॥

नूनं परभवजानितमनुभवितव्यं मया निजकर्म । नियमेन तन्न तीर्यते देवैरप्यन्यथा कर्तुम् ॥३५॥

एवं परिदेवन्तं रघुनाथं भणति खेचरनरेन्द्रः । स्तोकदिवसैः कान्तां दर्शयामि तव मुञ्च शोकम् ॥३६॥

अन्यदपि श्रुणु स्वामिन् ! निहते खरदूषणे बलाभ्यधिके । यास्यन्ति महाक्षोभमिन्द्रजित्प्रमुखा भटास्तव ॥३७॥

तस्माद्गच्छामो लघु पाताललङ्कापुरवरमितः । भामण्डलस्य वार्तां तत्र लभामहे सुखासीनाः ॥३८॥

---

१. सीयं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामच्छिऊण एवं, राम-सुमित्ती य रहवरविलग्गा । समयं विराहिएणं, पायालपुरं चिय पविट्ठा ॥३९॥
सोऊण आगया ते, चन्दणहानन्दणो तओ सुन्दो । निययबलेण समग्गो, तेहि समं जुज्झिउं पत्तो ॥४०॥
परिणिज्जिऊण सुन्दं, चन्दोयरनन्दणेण समसहिया । खरदूसणस्स गेहे, अवट्ठिया राम-सोमित्ती ॥४१॥
तत्थ वि सुरभिसुयन्धे, पासाए राधवो परिवसन्तो । सीयासमागममणो, निमिसं पि धिइं न सो लहइ ॥४२॥
तस्स घरस्साऽऽसन्ने, जिणभवणं उववणस्स मज्झम्मि । तं पविसिऊण रामो, पणमइ [1]पडिमा धिइं पत्तो ॥४३॥
नियबलेण समग्गो, सुन्दो जणणिं च गेण्हिउं सिग्घं । लङ्कापुरिं पविट्ठो, पिइ-भाईसोगसंतत्तो ॥४४॥

एवं सङ्गा परभवकया होन्ति नेहाणुबद्धा, पच्छा दुक्खं जणियविरहा, देवमाणुस्सभावा ।
तम्हा नाणं जिणवरमए जाणिऊणं विसुद्धं, धम्मे चित्तं कुणह विमलं सव्वसोक्खाण मूलं ॥४५॥

॥ इय पउमचरिए सीयाविप्पओगदाहपव्वं पणयालं समत्तं ॥

पर्यालोच्यैवं रामसौमित्री च रथवरविलग्नौ । समकं विराधितेन पातालपुरमेव प्रविष्टौ ॥३९॥
श्रुत्वाऽऽगतांस्तेश्चन्द्रनखानन्दनस्ततः सुन्दो । निजबलेन समग्रस्तैः समं योद्धुं प्राप्तः ॥४०॥
परिणिर्जित्य सुन्दं चन्द्रोदरनन्दनेन समसहिताः । खरदूषणस्य गृहे ऽवस्थितौ रामसौमित्री ॥४१॥
तत्रापि सुरभिसुगन्धे प्रासादे राघवः परिवसन् । सीतासमागममना निमेषमपि धृतिं न स लभते ॥४२॥
तस्य गृहस्यासन्ने जिनभवनमुपवनस्य मध्ये । तं प्रविश्य रामः प्रणमति प्रतिमां धृतिं प्राप्तः ॥४३॥
निजबलेन समग्रः सुन्दो जननीं च गृहीत्वा शीघ्रम् । लङ्कापुरिं प्रविष्टः पितृ-भ्रातृ शोक संतप्तः ॥४४॥
एवं सङ्गाः परभवयुता भवन्ति स्नेहानुबद्धाः पश्चाद्दुक्खं जनितविरहा देवमनुष्यभावाः ।
तस्माज्ज्ञानं जिनवरमते ज्ञात्वा विशुद्धं धर्मे चित्तं कुरुत विमलं सर्वसौख्यानां मूलम् ॥४५॥

इति पद्मचरित्रे सीताविप्रयोगदाहपर्वं पञ्चचत्वारिंशत्तमं समाप्तम् ॥

---

१. पडिमं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

४६. मायापायारविउव्वणपव्वं

सो तत्थ विमाणत्थो वच्चन्तो रावणो जणयधूयं । दट्ठुं मिलाणवयणं, जंपइ महुराणि वयणाणि ॥१॥

होहि पसन्ना सुन्दरि !, मं दिट्ठी देहि सोमससिवयणे ! । जेण मयणाणलो मे पसमइ तुह चक्खुसलिलेणं ॥२॥

जइ दिट्ठिपसायं मे, न कुणसि वरकमलपत्तदलनयणे ! । तो पहणसुत्तिमङ्गं, इमेण चलणारविन्देणं ॥३॥

अवलोइऊण पेच्छसु, ससेल-वण-काणणं इमं पुहइं । भमइ जसो पवणो इव, मज्झ अणक्खलियगइपसरो ॥४॥

इच्छसु मए किसोयरि !, माणेहि जहिच्छियं महाभोगं । आभरणभूसियङ्गी, देवि व्व समं सुरिन्देणं ॥५॥

जं रावणेण भणिया, विवरीयमुही ठिया य तं सीया । जं परलोयविरुद्धं, कह जंपसि एरिसं वयणं ? ॥६॥

अवसर दिट्ठिपहाओ, मा मे अङ्गाइं छिवसु हत्थेणं । परमहिलियाणलसिहापडिओ सलहो व्व नासिहिसि ॥७॥

परनारिं पेच्छन्तो, पावं अज्जेसि अयससंजुत्तं । नरयं पि वच्चसि मओ, दुक्खसहस्साउलं घोरं ॥८॥

फरुसवयणेहि एवं, अहियं निब्भच्छिओ य सीयाए । मयणपरिताविय‌ङ्गो, तह वि न छड्डेइ पेम्मासा ॥९॥

ताहे लङ्काहिवई, निययसिरे विरइऊण करकमलं । पाएसु तीए पडिओ, तणमिव गणिओ विदेहाए ॥१०॥

खरदूसणसंगामे, निव्वत्ते ताव आगया सुहडा । सुय-सारणमाईया, जयसद्दं चेव कुणमाणा ॥११॥

---

४६. मायाप्राकारविकुर्वणपर्वम्

स तत्र विमानस्थो गच्छन्रावणो जनकदुहितरम् । दृष्ट्वा म्लानवदनां जल्पति मधुराणि वचनानि ॥१॥

भव प्रसन्ना सुन्दरि ! मां दृष्टिं देहि सौम्यशशिवदने ! । येन मदनानलो मम प्रशाम्यति तव चक्षुःसलिलेन ॥२॥

यदि दृष्टिप्रसादं मे न करोषि वरकमलदलपत्रनयने । तत प्रजहित्तमाङ्गमनेन चरणारविन्देन ॥३॥

अवलोक्य पश्य सशैलवनकाननामिमां पृथिवीम् । भ्रमति यशः पवन इव ममालक्षितगतिप्रसरः ॥४॥

इच्छ मां कृशोदरि ! मानय यथेच्छितं महाभोगम् । आभरणभूषिताङ्गिनी देवीव समं सुरेन्द्रेण ॥५॥

यद्रावणेन भणिता विपरितमुखी स्थिता च तत्सीता । यत्परलोकविरुद्धं कथं जल्पस्येतादृशं वचनम् ? ॥६॥

अपसर दृष्टिपथान्मा मेऽङ्गानि स्पृश हस्तेन । परमहिलानलशिखापतितः शलभ इव नङ्क्ष्यसि ॥७॥

परनारीं पश्यन्पापमर्जयस्ययशः संयुक्तम् । नरकमपि व्रजषि मृतो दुःखसहस्राकुलं घोरम् ॥८॥

परुषवचनैरेवमधिकं निर्भिर्त्सितश्च सीतया । मदनपरितप्ताङ्गस्तथापि न त्यजति प्रेमाशा ॥९॥

तदा लङ्काधिपति र्निजशिरसि विरच्य करकमलम् । पादयोस्तस्याः पतितस्तृणमिव गणितो विदेह्या ॥१०॥

खरदूषणसंग्रामे निवृते तावदागताः सुभटाः । शुक-सारणादयो जयशब्दमेव क्रियमाणाः ॥११॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडुपडह-गीय-वाइय-रवेण अभिणन्दिओ सह बलेणं । पविसइ लङ्कानयरिं, दसाणणो इन्दसमविभवो ॥१२॥

चिन्तेइ जणयतणया, हवइऽह विज्जाहराहिवो एसो । आयरइ अमज्जायं, कं सरणं तो पवज्जामि ? ॥१३॥

जाव य न एइ वत्ता, कुसला दइयस्स बन्धुसहियस्स । ताव न भुञ्जामि अहं, आहारं भणइ जणयसुया ॥१४॥

देवरमणं ति नामं, उज्जाणं पुरवरीए पुव्वेणं । ठविऊण तत्थ [1]सीया, नियययघरं पत्थिओ ताहे ॥१५॥

सीहासणे निविट्ठो, नाणाविहमणिमऊहपज्जलिए । सीयावम्महनडिओ, न लहइ निमिसं पि निव्वाणं ॥१६॥

खरदूसणम्मि वहिए, ताव पलावं कुणन्ति जुवईओ । मन्दोयरिपमुहाओ, लङ्काहिवइस्स घरिणीओ ॥१७॥

एक्कोयरस्स चलणे, चन्दणहा गेण्हिऊण रोवन्ती । भणइ हयासा पावा, अहयं पइ-पुत्तपरिमुक्का ॥१८॥

विलवन्ती भणइ तओ, लङ्कापरमेसरो अलं वच्छे ! । रुण्णेण किं व कीरइ ?, पुव्वकयं आगयं कम्मं ॥१९॥

वच्छे ! जेण रणमुहे, निगओ खरदूसणो तुह सुओ य । तं पेच्छ वहिज्जन्तं, सहायसहियं तु अचिरेणं ॥२०॥

संथाविऊण [2]बहिणी, आएसं जिणहरच्चणे दाउं । पविसइ नियमभवणं, दसाणणो मयणजरगहिओ ॥२१॥

मन्दोयरी पविट्ठा, दइयं दट्ठूण दीहनीसासं । भणइ विसायं सामिय !, मा वच्चसु दूसणवहम्मि ॥२२॥

अन्ने वि तुज्झ बन्धू, एत्थेव मया न सोइया तुम्हे । किं पुण दूसणसोगं, सामि ! अपुव्वं समुव्वहसि ? ॥२३॥

लज्जन्तो भणइ तओ, सुण सुन्दरि ! एत्थ सारसब्भावं । जइ नो रूसेसि तुमं, तो हं साहेमि ससवयणे ! ॥२४॥

पटुपटहगीतवादितरवेणाभिनन्दितः सह बलेन । प्रविशति लङ्कानगरीं दशानन इन्द्रसमविभवः ॥१२॥

चिन्तयति जनकतनया भवतीह विद्याधराधिप एषः । आचरत्यमर्यादां कं शरणं ततः प्रपद्ये ॥१३॥

यावन्नैति वार्ता कुशला दयितस्य बन्धुसहितस्य । तावन्न भुञ्जेऽहमाहारं भणति जनकसुता ॥१४॥

देवरमणमिति नामोद्यानं पुरवर्याः पूर्वेण । स्थापयित्वा तत्र सीतां निजगृहं प्रस्थितस्तदा ॥१५॥

सिंहासने निविष्टो नानाविधमणिमयूखप्रज्वलिते । सीता मन्मथनटितो न लभते निमषमपि निर्वाणम् ॥१६॥

खरदूषणे वधिते तावत्प्रलापं कुर्वन्ति युवतयः । मन्दोदरिप्रमुखा लङ्काधिपस्य गृहिण्यः ॥१७॥

एकोदरस्य चरणौ चन्द्रनखा गृहीत्वा रुदन्ती । भणति हताशा पापाऽहं पति-पुत्रपरिमुक्ता ॥१८॥

विलपन्ती भणति गतो लङ्कापरमेश्वरोऽलं वत्से ! । रुदितेन किं वा क्रियते ? पूर्वकृतमागतं कर्म ॥१९॥

वत्से ! येन रणमुखे निहतो खरदूषणस्तव सुतश्च । तं पश्य घ्नन्तं सहायसहितं त्वचिरेण ॥२०॥

संस्थाप्य भगिनिमादेशं जिनगृहाचर्ने दत्वा । प्रविशति निजभवनं दशाननो मदनज्वरगृहीतः ॥२१॥

मन्दोदरी प्रविष्य दयितं दृष्ट्वा दीर्घनिःश्वासम् । भणति विषादं स्वामिन् ! मा व्रज दूषणवधे ॥२२॥

अन्येऽपि तव बान्धवा अत्रैव मृता न शोचितास्त्वया । किं पुनो दुषणशोकं स्वामिन् ! अपूर्वं समुद्वहसि ? ॥२३॥

लज्जमानो भणति ततः श्रुणु सुन्दरि ! अत्र सारसद्भावम् । यदि न रुष्यषि त्वं ततोऽहं कथयामि शशिवदने ! ॥२४॥

---

१. सीयं-प्रत्य० । २. बहिणिं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्बुक्को जेण हओ, विवाइओ दूसणो य संगामे । सीया तस्स महिलिया, हरिऊण मए इहाऽऽणीया ॥२५॥

जइ नाम सा सुरूवा, न मए इच्छइ पइं मयणतत्तं । तो नत्थि जीवियं मे, तुज्झ पिए साहियं एयं ॥२६॥

दइयं एयावत्थं, दट्ठुं मन्दोयरी समुल्लवइ । महिला सा अकयत्था, जा देव ! तुमं न[1] इच्छेइ ॥२७॥

अहवा सयलतिहुयणे, सा एक्का रूव-जोव्वणगुणड्ढा । अइमाणगव्विएणं, जाइज्जइ जा तुमे सामि ! ॥२८॥

केऊरभूमियासू, इमासु बाहासु करिकरसमासु । किह नऽवगूहसि सामिय !, तं विलयं सबलकारेणं ॥२९॥

सो भणइ सुणसु सुन्दरि !, अत्थि इमं कारणं महागरुयं । बलगव्विओ वि सन्तो, जेण न गिण्हामि परमहिलं ॥३०॥

पुव्वं मए किसोयरि !, अणन्तविरियस्स पायमूलम्मि । साहुपडिचोइएणं, कह वि य एक्कं वयं गहियं ॥३१॥

जा नेच्छइ परमहिला, अपसन्ना जइ वि रूवगुणपुण्णा । सा वि मए बलेणं, न पत्थियव्वा सयाकालं ॥३२॥

एएण कारणेणं, बला न गिण्हामि परिगिहत्था हं । मा मे निवित्तिभङ्गो, होही पुव्वम्मि गहियाए॥३३॥

अचलिय-अखण्डियाए, एस निवित्तीए नरयपडिओ वि । उत्तारिज्जामि अहं, घडो व्व कूवम्मि रज्जूए ॥३४॥

मयणसरभिन्नहियय, जइ जीवन्तं मए तुमं महसि । सुन्दरि ! आणेहि लहुं, तं महिलाओसहिं गन्तुं ॥३५॥

एयावत्थसरीरं, कन्तं मन्दोदरी पलोएउं । जुवईहि संपरिवुडा, चलिया जत्थऽच्छए सीया ॥३६॥

उज्जाणं सुररमणं, संपत्ता तत्थ पायवसमीवे । मन्दोयरीए दिट्ठा, जणयसुया वणसिरी चेव ॥३७॥

शम्बुको येन हतो व्यापादितो दूषणश्च संग्रामे । सीता तस्य महिला हृत्वा मयेहाऽऽनीता ॥२५॥

यदि नाम सा सुरुपा न मामिच्छति पतिं मदनतप्तम् । तदा नास्ति जीवितं मे तव प्रिये ! कथितमेतत् ॥२६॥

दयितमेतदवस्थं दृष्ट्वा मन्दोदरी समुल्लपति । महिला साऽकृतार्था या देव ! त्वां नेच्छति ॥२७॥

अथवा सकलत्रिभुवने सैका रुपयौवनगुणाढ्या । अतिमानगर्वितेन ध्यायते या त्वया स्वामिन् ॥२८॥

केयूरभूषितैरेतैर्बाहुभिः करिकरसमैः । कथं नालिङ्गसि स्वामिंस्तां वनितां सबलात्कारेण ॥२९॥

स भणति श्रुणु सुन्दरि ! अस्तीदं कारणं महागुरुकम् । बलगर्वितोऽपि सन् येन न गृह्णामि परमहिलाम् ॥३०॥

पूर्वं मया कृशोदरि ! अन्तवीर्यस्य पादमूले । साधुप्रतिचोदितेन कथमपि चैकं व्रतं गृहीतम् ॥३१॥

या नेच्छति परमहिलाऽप्रसन्ना यद्यपि रुपगुणपूर्णा । सापि च मया बलेन न प्रार्थयितव्या सदाकालम् ॥३२॥

एतेन कारणेन बलान्न गृह्णामि परगृहस्थीमहम् । मा मे निवृतिभङ्गो भवेत्पूर्वे गृहीतायाः ॥३३॥

अचलिताखण्डितयैष निवृत्या नरकपतितोऽपि । उत्तीर्येऽहं घट इव कूपे रज्ज्वा ॥३४॥

मदनशरभिन्नहृदयं यदि जीवन्तं मां त्वं काङ्क्षसे । सुन्दरि ! आनय लघु तां महिलौषधिं गत्वा ॥३५॥

एतदावस्थशरीरं कान्तं मन्दोदरी प्रलोक्य । युवतिभिस्संपरिवृत्ता चलिता यत्रास्ते सीता ॥३६॥

उद्यानं सुररमणं संप्राप्ता तत्र पादपसमीपे । मन्दोदर्या दृष्टा जनकसुता वनश्रीरिव ॥३७॥

---

१. न पत्थेइ-मु० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलविऊण निविट्ठा, जंपइ मन्दोयरी सुणसु भद्दे ! । किं नेच्छसि भत्तारं, दहवयणं खेय[१]राहिवई ?॥३८॥

महिगोयरस्स अत्थे, किं अच्छसि दुक्खिया तुमं बाले ! । अणुहवसु देवसोक्खं, लद्धूण दसाणणं कन्तं ॥३९॥

जे राम-लक्खणा वि हु, तुज्झ हिए नियमेव उज्जुत्ता । तेहिं पि किं व कीरइ, विज्जापरमेसरे रुट्ठे ? ॥४०॥

मन्दोयरीए एवं, जं भणिया जणयनन्दिणी वयणं । जाया गग्गरकण्ठा, अंसुजलापुण्णनयणजुया ॥४१॥

पडिभणइ तओ सीया, सईउ किं एरिसाणि वयणाणि । जंपन्ति सुमहिलाओ, उत्तमकुलजायपुव्वाओ ? ॥४२॥

जइ वि हु इमं सरीरं, छिन्नं भिन्नं हयं च पुणरुत्तं । रामं मोत्तूण [२]पई, तह वि य अन्नं न इच्छामि ॥४३॥

जइ वि अखण्डलसरिसं, परपुरिसं सणंकुमाररूवं पि । तं पि य नेच्छामि अहं, किं वा बहुएहि भणिएहिं ? ॥४४॥

एत्थन्तरम्मि पत्तो, दहवयणो मयणवेयणुम्हविओ । सीयाए समब्भासे, अवट्ठिओ भणइ वयणाइं ॥४५॥

सुन्दरि ! विन्नप्पं सुण, हीणो हं केण वत्थुणा ताणं । जेण [३]ममं भत्तारं, नेच्छसि सुइरं पि भण्णन्ती ? ॥४६॥

भणइ तओ जणयसुया, अवसर मा मे छिवेहि अङ्गाइं । विज्जाहराहम ! तुमं, कह जंपसि एरिसं वयणं ? ॥४७॥

मइ जुवईण किसोयरि !, होहि तुमं उत्तमा महादेवी ।
माणेहि विसयसोक्खं, जहिच्छियं, जहिच्छियं मा चिरावेमि ॥४८॥

तो भणइ जणयतणया, समयं रामेण रण्णवासो य । अहियं मे कुणइ धिइं, सुरवइलोगं विसेसेइ ॥४९॥

भूसणरहिया वि सई, ताए सीलं तु मण्डणं होइ । सीलविहूणाए पुणो, वरं खु मरणं महिलियाए ॥५०॥

आलप्य निविष्ठा जल्पति मन्दोदरी श्रुणु भद्रे ! । किं नेच्छसि भर्तारं दशवदनं खेचराधिपतिम् ? ॥३८॥

महीगोचरस्यार्थे किमास्से दुःखिता त्वं बाले ! । अनुभव देहवसौख्यं लब्ध्वा दशाननं-कान्तम् ॥३९॥

यौ रामलक्ष्मणावपि खलु तव हिते नित्यमेवोद्यतौ । तैरपि किंवा क्रियते विद्यापरमेश्वरे रुष्टे ? ॥४०॥

मन्दोदर्यैव यद्भणिता जनकनन्दिनी वचनम् । जाता गद्गद्कण्ठाऽश्रुजलापूर्णनयनयुग्मा ॥४१॥

प्रतिभणति ततः सीता सत्यः किमिदृशानि वचनानि । जल्पन्ति सुमहिला उत्तमकुलजातपूर्वाः? ॥४२॥

यद्यपिह्विदं शरीरं छिन्नं भिन्नं हतं च पुनरुक्तम् । रामं मुक्त्वा पतिं तथापि चान्यं नेच्छामि ॥४३॥

यद्यप्याखण्डलसदृशं परपुरुषं सनत्कुमाररुपमपि । तमपि च नेच्छाम्यहं किं वा बहुभिर्भणितैः ? ॥४४॥

अत्रान्तरे प्राप्तो दशवदनो मदनवेदनोष्मापितः । सीताया समभ्यासेऽवस्थितो भणति वचनानि ॥४५॥

सुन्दरि ! विज्ञप्तं श्रुणु हीनोऽहं केन वस्तुना तयोः । येन माम् भर्तारं नेच्छसि सुचिरमपि भणन्ती ? ॥४६॥

भणति ततो जनकसुताऽपसर मा मे स्पृशाङ्गानि । विद्याधराधम ! त्वं कथं जल्पसीदृशं वचनम् ? ॥४७॥

मम युवतीनां कृशोदरि ! भव त्वमुत्तमा महादेवी । मानय विषयसुखं यथेच्छितं मा चिरय ॥४८॥

तदा भणति जनकतनया समकं रामेणारण्यवासश्च । अधिकं मे करोति धृतिं सुरपतिलोकं विशेषयति ॥४९॥

भूषणरहिताऽपि सती तस्याश्शीलं तु मण्डनं भवति । शीलविहीनायाः पुन र्वरं खलु मरणं महिलायाः ॥५०॥

---

१. खेयराहिवइं-प्रत्य० । २. पइं-प्रत्य० । ३. मए भत्तारं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जं एव निरागरिओ, [1]माया काउं समुज्जओ सहसा । अत्थमिओ दिवसयरो, ताव य जायं[2] तमं घोरं ॥५१॥

हत्थीसु केसरीसु य, वग्घेसु य भेसिया जणयधूया । न य पडिवन्ना सरणं, दसाणणं नेव सा खुहिया ॥५२॥

रक्खस-वेयालेसु य, अहियं भेसाविया वि नागेसु । न य पडिवन्ना सरणं, दसाणणं नेव सा खुहिया ॥५३॥

एवं दसाणणेणं, भेसिज्जन्तीए ववगया रयणी । नासेन्तो बहलतमं, ताव च्चिय उग्गओ सूरो ॥५४॥

तत्थेव वरुज्जाणे, ठियस्स सुहडा विभीसणाईया । सिग्घं च समणुपत्ता, पणमन्ति कमेण दहवयणं ॥५५॥

ताव य तहं रुयन्ती, दट्ठूण बिहीसणो जणयधूयं । पुच्छइ कहेहि भद्दे !, दुहिया भज्जा व कस्स तुमं ? ॥५६॥

सा भणइ वच्छ ! निसुणसु, दुहिया जणयस्स नरवरिन्दस्स । भामण्डलस्स बहिणी, राघवघरिणी अहं सीया ॥५७॥

जाव य मज्झ पिययमो, गवेसणट्ठे गओ कणिट्ठस्स । ताव अहं अवहरिया, इमेण पावेण रण्णाओ ॥५८॥

जाव न वच्चइ मरणं, मह विरहे राघवो तहिं रण्णे । ताव इमो दहवयणो, नेऊण मए समप्पेउ ॥५९॥

सुणिऊण तीए वयणं, बिहीसणो भायरं भणइ एवं । दित्ताणलसमसरिसी, किं परनारी [3]समाणीया ? ॥६०॥

अन्नं पि सुणसु सामिय !, तुज्झ जसो भमइ तिहुयणे सयले । परनारिपसङ्गेणं, मा अयसकलङ्किओ होहि ॥६१॥

उत्तमपुरिसाण पहू !, न य जुत्तं एरिसं हवइ कम्मं । बहुजणदुगुञ्छणीयं, दोग्गइगमणं च परलोए ॥६२॥

पडिभणइ खेयरेन्दो, किं परदव्वं महं वसुमईए । दुपयचउप्पयवत्थुं, जस्स न सामी अहं जाओ ? ॥६३॥

यदेवं तिरस्कृतो मायां कर्तुं समुद्यतः सहसा । अस्तमितो दिवाकरस्तावच्चजातं तमो घोरम् ॥५१॥

हस्तिभिः केसरभिश्च व्याघ्रैश्च भेषिता जनकदुहिता । न च प्रतिपन्ना शरणं दशाननं नैव सा क्षुब्धा ॥५२॥

राक्षस-वैतालैश्चाधिकं भेषयिताऽपि नागैः । न च प्रतिपन्ना शरणं दशाननं नैव सा क्षुब्धा ॥५३॥

एवं दशाननेन भेषयन्त्या व्यपगता रजनी । नाशयन्बहुलतमस्तावदेवोद्गतः सूर्यः ॥५४॥

तत्रैव वरोद्याने स्थितस्य सुभटा बिभीषणादयः । शीघ्रं च समनुप्राप्ताः प्रणमन्ति क्रमेण दशवदनम् ॥५५॥

तावच्च तत्र रुदन्तीं दृष्ट्वा बिभीषणो जनकदुहितरम् । पृच्छति कथय भद्रे ! दुहिता भार्या वा कस्य त्वम् ? ॥५६॥

सा भणति वत्स ! निश्रुणु दुहिता जनकस्य नरवरेन्द्रस्य । भामण्डलस्य भगिनी राघवगृहिण्यहं सीता ॥५७॥

यावच्च मम प्रियतमो गवेषणार्थे गतः कनिष्ठस्य । तावदहमपहृतानेन पापेनारण्यात् ॥५८॥

यावन्न गच्छति मरणं मम विरहे राघवस्तत्रारण्ये । तावदयं दशवदनो नीत्वा मां समर्पयेत् ॥५९॥

श्रुत्वा तस्या वचनं बिभीषणो भ्रातरं भणत्येव । दिप्तानलसमसदृशी किं परनारी समानीता ? ॥६०॥

अन्यदपि श्रुणु स्वामिंस्तव यशो भ्रमति त्रिभुवने सकले । परनारिप्रसङ्गेन माऽयशः कलङ्कितो भवेत् ॥६१॥

उत्तमपुरुषाणां प्रभो ! न च युक्तमिदृशं भवति कर्म । बहुजनजुगुप्सनीयं दुर्गतिगमनं च परलोके ॥६२॥

प्रतिभणति खेचरेन्द्र किं परद्रव्यं मम वसुमत्याम् । द्विपदचतुष्पदवस्तु यस्य न स्वाम्यहं जातः ? ॥६३॥

---

१. मायं-प्रत्य० । २. तमन्धार-प्रत्य० । ३. इहाऽऽणीया-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एत्थन्तरे विलग्गो, भुवणालंकारमत्तमायङ्गं । सीया वि य आरुहिया, पुप्फविमाणे दहमुहेणं ॥६४॥

गय-तुरय-जोह-रहवर-संघट्टुट्ठन्तमङ्गलरवेणं । अहिणन्दिओ य वच्चइ, तणमिव गणिओ विदेहाए ॥६५॥

पत्तो समत्तकुसुमं, उज्जाणं विविहपायवसमिद्धं । पुप्फगिरिस्स मणहरं, ठियं च उवरिं समन्तेणं ॥६६॥

उज्जाणस्स पएसा, सत्त तुमं ताव सुणसु मगहवई । पढमं पइण्णनामं, आणन्दं तह य सुहसेवं ॥६७॥

सामुच्चयं चउत्थं, पञ्चमयं चारणं ति नामेणं । पियदंसणं च छट्ठं, पउमुज्जाणं च सत्तमंय ॥६८॥

पढमं पइण्णगं ति य, धरणियले तह परं जणाणन्दं । नाणाविहतरुछन्नं, तत्थ जणो नायरो रमइ ॥६९॥

तइयम्मि उ सुहसेवे, समुच्चए तह चउत्थए रम्मे । कीलइ विलासिणिजणो, सुगन्धकुसुमोहबलिकम्मो ॥७०॥

चारणमणाभिरामे, उज्जाणे चारणा समणसीहा । सज्झाय-झाणनिरया, वसन्ति निच्चं दढधिईया ॥७१॥

तम्बोलवल्लिपउरं, केयइधूलीसुधूसरामोयं । पियदंसणं च छट्ठं, उज्जाणं मणहरालोयं ॥७२॥

पउमवरुज्जाणं तं, सत्तमयं विविहरइयसोवाणं । पुप्फगिरिपवरसिहर, अहिट्ठियं पण्डगवणं व ॥७३॥

नारङ्ग-फणस-चम्पग-असोग-पुन्नाग-तिलयमाईहिं । रेहन्ति उववणाइं, कोइलमुहरानिणायाइं ॥७४॥

वावीसु दीहियासु य, जणवयण्हाणावगाहणजलासु । कमलुप्पलछन्नासुं, ताइं अहियं विरायन्ति ॥७५॥

तत्थ य पउमुज्जाणे, नामेणासोगमालिणी वावी । कीलणहरेसु रम्मा, विमलजला काणणसणाहा ॥७६॥

अत्रान्तरे विलग्नो भुवनालङ्कारमत्तमातङ्गम् । सीताऽपि चारोहिता पुष्पविमाने दशमुखेन ॥६४॥

गज-तुरग-योध-रथवर-संघट्टोत्तिष्ठन्मङ्गलरवेण । अभिनन्दितश्च व्रजति तृणमिव गणितो वैदेह्या ॥६५॥

प्राप्तः समस्तकुसुममुद्यानं विविधपादपसमृद्धम् । पुष्पगिरे र्मनोहरं स्थितं चोपरि समन्तेन ॥६६॥

उद्यानस्य प्रदेशाः सप्त त्वं तावच्छृणु मगधपते ! । प्रथमं प्रकीर्णनामानन्दं तथा च सुखसेवम् ॥६७॥

समुच्चयं चतुर्थं पञ्चमं चारणमिति नाम्ना । प्रियदर्शनं च षष्ठं पद्मोद्यानं च सप्तमम् ॥६८॥

प्रथमं प्रकीर्णकमिति च धरणितले तथा परं जनानन्दम् । नानाविधतरुच्छन्नं तत्र जनो नागरिको रमते ॥६९॥

तृतीये तु सुखसेवे समुच्चये तथा चतुर्थे रम्ये । क्रीडति विलासिनिजनः सुगन्धकुसुमौघबलिकर्मा ॥७०॥

चारणमनोऽभिराम उद्याने चारणाः श्रमणसिंहाः । स्वाध्याय ध्याननिरता वसन्ति नित्यं दृढधृतयः ॥७१॥

ताम्बुलवल्लीप्रचुरं केतकीधूलीसुधूसरामोदम् । प्रियदर्शनं च षष्टमुद्यानं मनोहरालोकम् ॥७२॥

पद्मवरोद्यानं तं सप्तमं विविधरचितसोपानम् । पुष्पगिरिप्रवरशिखरेऽधिष्ठितं पाण्डकवनमिव ॥७३॥

नारङ्ग-फणस-चम्पकाशोक-पुन्नाग-तिलकादिभिः । राजन्त उपवनानि कोकिलमधुरनिनादानि ॥७४॥

वापिभि दीर्घिकाभिश्च जनपदस्नानावगाहनजलाभिः । कमलोत्पल्लछन्नाभिस्तान्यधिकं विराजन्ते ॥७५॥

तत्र च पद्मोद्याने नाम्नाऽशोकमालिनी वापिः । क्रीडनगृहै रम्या विमलजला काननसनाथा ॥७६॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्थासोगमहातरुसंछन्ने ठाविया जणयधूया । पण्डगवणे व्व नज्जइ, अवइण्णा सुरवहू चेव ॥७७॥
रावणपवेसियाहिं, जुवईहि अणेयचाडुकारीहिं । निययं पि पसाइज्जइ, वीणागन्धव्वनट्टेहिं ॥७८॥
न करेइ मज्जणविहिं, न य भुञ्जइ नेय देइ उल्लावं । एगग्गमणा सीया, अच्छइ रामं विचिन्तेन्ती ॥७९॥
गन्तूण सव्वमेयं, कहन्ति लङ्काहिवस्स दूईओ । जा न कुणइ आहारं, सा किह सामी तुमं महइ ? ॥८०॥
तत्तो सो दहवयणो, मयणाणलपज्जलन्तसव्वङ्गो । पडिओ वसणसमुद्दे, अहियं चिन्ताउरो जाओ ॥८१॥
सोयइ गायइ विलवइ, दीहुण्हे तत्थ मुयइ नीसासे । कोट्टिमतलं निसण्णो, अप्फालइ दाहिणकरेणं ॥८२॥
सहसा समुट्ठिऊणं, वच्चइ भवणाउ निग्गओ सन्तो । पुणरवि नियत्तइ लहुं, सीया सीय त्ति जंपन्तो ॥८३॥
लोलइ कमलोत्थरणे, सिंचन्तो बहलचन्दणरसेणं । उट्ठइ चलइ वियम्भइ, गहिओ मयणग्गितावेणं ॥८४॥
जंपइ भुयासु तुलिओ, कइलासो खेयरा जिया सव्वे । सो किह मोहेण अहं, मसिरासिनिरूविओ काउं ? ॥८५॥
अच्छउ ताव दहमुहो, मन्तीहि समं बिहीसणो मन्तं । काऊण समाढत्तो, भाइसिणेहुज्जयमईओ ॥८६॥
संभिन्नो भणइ तओ, अम्हं सामिस्स दइवजोगेणं । पडिओ दाहिणहत्थो, जं चिय खरदूसणो निहओ ॥८७॥
सुहकम्मपहावेणं, विराहिओ लक्खणस्स संगामे । सिग्घं च समणुपत्तो, वहमाणो बन्धवसिणेहं ॥८८॥
चलिया य इमे सव्वे, कइद्धया पवणपुत्तमाईया । काहिन्ति पक्खवायं, ताणं सुग्गीवसन्निहिया ॥८९॥

तत्राशोकमहातरुसंच्छन्ने स्थापिता जनकदुहिता । पाण्डकवन इव ज्ञायतेऽवतीर्णा सुरवधुरिव ॥७७॥
रावणप्रवेशिताभि र्युवतिभिरनेकचाटुकारिभिः । नित्यमपि प्रसाद्यते वीणागान्धर्वनृत्यैः ॥७८॥
न करोति मज्जनविधिं न च भुनक्ति नैव ददात्युल्लापम् । एकाग्रमनाः सीताऽस्ति रामं विचिन्त्यन्ती ॥७९॥
गत्वा सर्वमेतत्कथयन्ति लङ्काधिपस्य दूत्यः । या न करोत्याहारं सा कथं स्वामिंस्त्वां काङ्क्षते ? ॥८०॥
ततः स दशवदनो मदनानलप्रज्वलत्सर्वाङ्गः । पतितो व्यसनसमुद्रेऽधिकं चिन्तातुरो जातः ॥८१॥
शोचति गायति विलपति दीर्घोष्णांस्तत्र मुञ्चति निःश्वासान् । कुट्टिमतलं निसण्ण आस्फालयति दक्षिणकरेण ॥८२॥
सहसा समुत्थाय गच्छति भवनान्निर्गतस्सन् । पुनरपि निर्वर्तते लघु सीता सीतेति जल्पन् ॥८३॥
लोठति कमलास्तरणे सिञ्चन्बहलचन्दनरसेण । उत्तिष्ठति चलति विजृम्भते गृहीतो मदनाग्नितापेन ॥८४॥
जल्पति भुजाभ्यांतोलितः कैलाशः खेचरा जिताः सर्वे । स कथं मोहेनाहं मषीराशि निरुपितः कर्तुम् ? ॥८५॥
सताम् तावद्दशमुखो मन्त्रिभिः समं बिभीषणो मन्त्रम् । कर्तुं समारब्धो भ्रातृस्नेहोद्यतमतिः ॥८६॥
संभिन्नो भणति ततोऽस्माकं स्वामिनो दैवयोगेन । पतितो दक्षिणहस्तो यदेव खरदूषणो निहतः ॥८७॥
शुभकर्मप्रभावेण विराधितो लक्ष्मणस्य संग्रामे । शीघ्रं च समनुप्राप्तो वहन्बाधन्वस्नेहम् ॥८८॥
चलिताश्चेमे सर्वे कपिध्वजाः पवनपुत्रादयः । करिष्यन्ति पक्षपातं तेषां सुग्रीवसंनिहिताः ॥८९॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अह भणइ पञ्चवयणो, मन्ती मा भणह दूसणं वहियं । सूराण गई एसा, सुहडाणं हवइ संगामे ॥९०॥

जइ चिय तस्स सहीणो, विराहिओ असिवरं च रविभासं ।
लङ्काहिवस्स तह वि य, किं कीरइ लक्खणेण रणे ? ॥९१॥

भणिओ सहस्समइणा, पञ्चमुहो किं व अत्थहीणाइं । वयणाइ भाससि तुमं, अगणिन्तो सामियस्स हियं ? ॥९२॥

मा परिहवइ कयाई, तुब्भे नाऊण वेरियं थोवं । अप्पो वि देसयाले, किं न डहइ तिहुयणं अग्गी ? ॥९३॥

विज्जाहराण राया, आसग्गीवो महाबलसमग्गो । थोवेण वि संगामे, निहओ पुव्विं तिवुट्ठेणं ॥९४॥

तम्हा अकालहीणं, करेह [1]लङ्का सुदुग्गपायारा । सम्मणेह जणवयं, भिच्चा य बहुप्पयाणेणं ॥९५॥

ताहे बिभीसणेणं, रइओ मायाए दुग्गमो सिग्घं । पायारो अइविसमो, निरन्तरो कूडजन्तेसु ॥९६॥

दिन्ना य रक्खपाला, समन्तओ खेयरा बलसमग्गा । समरे अभग्गमाणा, गहियाउह-पहरणा-ऽऽवरणा ॥९७॥

एवमिमं सुणिऊण य तुब्भे, रावणवम्महदुक्खसमूहं ।
वज्जह निच्चमवि परदारं, जेण जसं विमलं अणुहोह ॥९८॥

॥ इय पउमचरिए मायापायारविउव्वणं नाम छायालीसं पव्वं समत्तं ॥

अथ भणति पञ्चवदनो मन्त्री मा भण दूषणं वहतः । शूराणां गतिरेषा सुभटानां भवति संग्रामे ॥९०॥

यद्येव तस्य स्वाधीनो विराधितोऽसिवरं च रविभासम् । लङ्काधिपस्य तथापि च किं क्रियते लक्ष्मणेन रणे ? ॥९१॥

भणितः सहस्रमतिना पञ्चमुखः किं वार्थहीनानि । वचनानि भाषसे त्वमगणयन्स्वामिनो हितम् ? ॥९२॥

मा परिभव कदाचित्त्वं ज्ञात्वा वैरिकं स्तोकम् । अल्पोऽपि देशकाले किं न दहति त्रिभुवनमग्निः ? ॥९३॥

विद्याधराणां राजाऽश्वग्रीवो महाबलसमग्रः । स्तोकेनापि संग्रामे निहतः पूर्वं त्रिपृष्टेन ॥९४॥

तस्मादकालहीनं कुरुत लङ्कां सुदुर्गप्राकाराम् । सन्मानयत जनपदं भृत्यांश्च बहुप्रदानेन ॥९५॥

तदा बिभीषणेन रचितो मायया दुर्गमः शीघ्रम् । प्राकारोऽतिविषमो निरन्तरः कूटयन्त्रैः ॥९६॥

दत्ताश्च रक्षपालाः समन्ततः खेचरा बलसमग्राः । समरेऽभग्नमाना गृहीतायुधप्रहरणावरणाः ॥९७॥

एवमिदं श्रुत्वा च यूयम् रावणमन्मथदुःखसमूहम् । वर्जयत नित्यमपि परदारां येन यशो विमलमनुभवत ॥९८॥

॥ इति पद्मचरित्रे मायाप्राकारविकुर्वणं नाम षट्चत्वारिंशतमं पर्वं समाप्तम् ॥

---

१. लङ्कं-प्रत्य० ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

આચાર્યશ્રી ૐકારસૂરિ જ્ઞાન મંદિર ગ્રંથાવલી

પ્રભુવાણી પ્રસાર સ્થંભ (યોજના-૧,૧૧,૧૧૧)

૧. શ્રી સમસ્ત વાવ પથક શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ-ગુરુમૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા-સ્મૃતિ
૨. શેઠશ્રી ચંદુલાલ કકલચંદ પરીખ પરિવાર, વાવ
૩. શ્રી સિદ્ધગિરિ ચાતુર્માસ આરાધના (સં. ૨૦૫૭) દરમ્યાન થયેલ જ્ઞાનખાતાની આવકમાંથી.
હસ્તે : શેઠશ્રી ધુડાલાલ પુનમચંદભાઈ હેક્કડ પરિવાર, ડીસા, બનાસકાંઠા
૪. શ્રી ધર્મોત્તેજક પાઠશાળા, શ્રી ઝીંઝુવાડા જૈન સંઘ, ઝીંઝુવાડા
૫. શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ, સુઈગામ
૬. શ્રી વાંકડિયા વડગામ જૈન સંઘ, વાંકડિયા વડગામ
૭. શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ, ગરાંબડી
૮. શ્રી રાંદેરરોડ જૈન સંઘ-અડાજણ પાટીયા, રાંદેરરોડ, સુરત
૯. શ્રી ચિંતામણી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ પાર્લા (ઈસ્ટ), મુંબઈ
૧૦. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વે.મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૧. શ્રી કૈલાસનગર જૈન સંઘ, કૈલાસનગર, સુરત
૧૨. શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ, સમુબા શ્રાવિકા આરાધના ભવન, સુરત જ્ઞાનખાતેથી
૧૩. શ્રી વાવ પથક જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, અમદાવાદ
૧૪. શ્રી વાવ જૈન સંઘ, વાવ, બનાસકાંઠા
૧૫. કુ. નેહલબેન કુમુદભાઈ (કટોસણ રોડ)ની દીક્ષા પ્રસંગે થયેલ આવકમાંથી
૧૬. શ્રી આદિનાથ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, નવસારી
૧૭. શ્રી ભીલડીયાજી પાર્શ્વનાથ જૈન દેરાસર પેઢી, ભીલડીયાજી
૧૮. શ્રી નવજીવન જૈન શ્વે. મૂ.પૂ. સંઘ, મુંબઈ

પ્રભુવાણી પ્રસારક (યોજના-૬૧,૧૧૧)

૧. શ્રી દિપા શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, રાંદેરરોડ, સુરત
૨. શ્રી સીમંધરસ્વામી મહિલા મંડળ, પ્રતિષ્ઠા કોમ્પલેક્ષ, સુરત
૩. શ્રી શ્રેણીકપાર્ક જૈન શ્વે.મૂ. સંઘ, ન્યૂ રાંદેરરોડ, સુરત
૪. શ્રી પુણ્યપાવન જૈન સંઘ, ઈશિતા પાર્ક, સુરત
૫. શ્રી શ્રેયસ્કર આદિનાથ જૈન સંઘ, નીઝામપુરા, વડોદરા

પ્રભુવાણી પ્રસાર અનુમોદક (યોજના - ૩૧,૧૧૧)

૧. શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ, મોરવાડા
૨. શ્રી ઉમરા જૈન સંઘ, સુરત
૩. શ્રી શત્રુંજય ટાવર જૈન સંઘ, સુરત
૪. શ્રી ચૌમુખજી પાર્શ્વનાથ જૈન મંદિર ટ્રસ્ટ, શ્રી જૈન શ્વેતાંબર તપાગચ્છ સંઘ ગઢસિવાના (રાજ.)
૫. શ્રીમતી તારાબેન ગગલદાસ વડેચા-ઉચોસણ
૬. શ્રી સુખસાગર અને મલ્હાર એપાર્ટમેન્ટ સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૭. રવિજ્યોત એપાર્ટમેન્ટ, સુરતની શ્રાવિકાઓ તરફથી
૮. અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, પાંડવબંગલો, સુરત શ્રાવિકાઓ તરફથી
૯. શ્રી આદિનાથ તપાગચ્છ શ્વે.મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ, કતારગામ, સુરત
૧૦. શ્રીમતી વર્ષાબેન કર્ણાવત, પાલનપુર
૧૧. શ્રી શાંતિનિકેતન સરદારનગર જૈન સંઘ, સુરત
૧૨. શ્રી પાર્શ્વનાથ જૈન સંઘ, ન્યુ રામારોડ, વડોદરા

પ્રભુવાણી પ્રસાર ભક્ત (યોજના - ૧૫,૧૧૧)

૧. શ્રી દેસલપુર (કંઠી) શ્રી પાર્શ્વચંદ્રગચ્છ ૨. શ્રી પ્રાંગધ્રા શ્રી પાર્શ્વચંદ્રસૂરીશ્વરગચ્છ ૩. શ્રી અઠવાલાઈન્સ જૈન સંઘ, સુરત શ્રાવિકા ઉપાશ્રય

વાવ નગરે પૂજ્ય આચાર્ય ભગવંત ૐકારસૂરિ મહારાજાની ગુરૂ મૂર્તિ પ્રતિષ્ઠા સ્મૃતિ

૧.	રૂા.	૨,૧૧,૧૧૧	શ્રી વાવ શ્વેતાંબર મૂર્તિપૂજક જૈન સંઘ
૨.	રૂા.	૧,૧૧,૧૧૧	શ્રી વાવ પથક શ્વે.મૂ. જૈન સંઘ, અમદાવાદ
૩.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી સુઈગામ જૈન સંઘ
૪.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી બેણપ જૈન સંઘ
૫.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ઉચોસણ જૈન સંઘ
૬.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ભરડવા જૈન સંઘ
૭.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી અસારા જૈન સંઘ
૮.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ગરાંબડી જૈન સંઘ
૯.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી માડકા જૈન સંઘ
૧૦.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી તીર્થગામ જૈન સંઘ
૧૧.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી કોરડા જૈન સંઘ
૧૨.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી ઢીમા જૈન સંઘ
૧૩.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી માલસણ જૈન સંઘ
૧૪.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી મોરવાડા જૈન સંઘ
૧૫.	રૂા.	૩૧,૦૦૦	શ્રી વર્ધમાન શ્વે.મૂ.પૂ.જૈન સંઘ, કતારગામ દરવાજા, સુરત
૧૬.	રૂા.	૧૧,૧૧૧	શ્રી વાસરડા જૈન સંઘ, સેવંતીલાલ મ. સંઘવી

• • •

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

KIRIT GRAPHICS - 09898490091

Jain Education International
For Personal & Private Use Only
www.jainelibrary.org